

श्रीभागवत-पत्रिका

श्रीभागवत पत्रिकाके ४६ वें वर्षकी विषय सूची

विषय	संख्या/पृष्ठ	विषय	संख्या/पृष्ठ
एकादशी माहात्म्य	८/१८३	बिल्वमङ्गल	५/११२
कुछ प्रश्न और श्रीप्रभुपाद द्वारा उनका उत्तर	२/३०, ३/५४	ब्रजमण्डल परिक्रमा	६/१४३
कृष्णतत्त्व	११/२५०	भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजीकी हरिकथा ३/६६	
गीताका सार	६/१३२	महामन्त्र युगपत् जाय और उच्च स्वरसे संकीर्तनीय है	९/२०२
गुरु-तत्त्व	१०/२२७	महान्त गुरुतत्त्व	१२/२७४
गुरुपदाश्रय	१/६, २/३९	माधुर्य भक्तिके प्रदाता	२/३४
गुरुको कोई भी धोखा नहीं दे सकता	१/१३	मायावादी कौन है?	४/७५
गौराङ्ग-सुधा १/१७, २/३९, ३/६२, ४/८७, ५/१०८, ६/१३७, ७/१६२, ८/१७९, ९/२०७, १०/२२९, ११/२५३, १२/२८०		माला और तिलकधारणकी नित्यता	५/९९
गौराङ्गलीला-स्मरण-मङ्गल-स्तोत्रम् १/१, २/२५, ३/४९, ४/७३, ५/९७, ६/१२१, ७/१४५, ८/१६९, ९/१९३, १०/२१७, ११/२४१, १२/२६५		युगलकिशोर ध्यानम्	८/१९२
जगन्नाथकी रथयात्रा और नामभजन	३/५७,	लौल्यमपि मूल्यमेकलं	६/१४१, ७/१५६
	४/८२, ६/१३०	विदेश प्रचार संवाद	५/११५, ८/१८८
जगन्नाथजीका प्राकट्य	५/१०४	विविध संवाद	१/२०, २/४४ ३/६८, ४/९१, ७/१६६ ८/१८५, ९/२११, १०/२३३, ११/२५८, १२/२२८
झूलन-गीत	६/१२९	विरह-संवाद	५/१२०, ९/२११
तिलक धारण कैसे करें	४/८१	वेदानुग्रह और वेदविरुद्ध अपसम्प्रदाय	९/१९५, १०/२२०, ११/२४३, १२/२६७
नन्दके लालाको बधाई (गीत)	६/१२९	वैष्णवधर्मकी क्षीणता क्यों है?	२/३७
परमानन्द पुरीका कूप	६/१४०	व्यासपूजाके अवसर पर वैष्णवोंका गुणगान	१/७, २/३२, ३/६०
पानीमें उतरे बिना तैरना सीखनेकी इच्छा	७/१६५	श्रेष्ठधर्ममें निरामिष आहार बाध्यतामूलक है	४/८५
प्रभुपादजीका उपदेशामृत ४/७८, ५/१०१, ६/१२६, ७/१५२, ८/१७५, ९/१९८, १०/२२३, ११/२४७, १२/२७१		सदगुरुके निकट एक जिज्ञासु	१२/२७६
प्रश्नोत्तर	६/१२३, ७/१४७, ८/१७२	साधु एक पारसमणि है?	१२/२८४
		साधुसङ्गमें स्वरूप उपलब्धि एवं पराभक्ति	१/११
		सिद्धान्तरत्न या वेदान्त-पीठक	१/३, २/२७, ३/५१

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्णण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ चैत्र मास, सन् २००२, २९ मार्च—२७ अप्रैल

{ संख्या १

श्रीश्रीगौराङ्गलीलास्मरणमङ्गल स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठक्कुरभक्तिविनोदकृत]

राहुग्रस्ते जडशशधरे फाल्गुने पूर्णिमायां गौडे शाके मनुशतमिते सप्तवर्षाधिके यः।
मायापुर्या समजनि शचीगर्भसिन्धौ प्रदोषे तं चिछक्ति-प्रकटित-तनुं मिश्रसूनुं स्मरामि ॥१॥
विश्वभर-प्रभु-हरि-द्विज-गौरचन्द्र-निम्बेश नामनिचयः क्रमतो ब्रह्मता
यस्यार्यखण्ड-मुकुटोपमगौडराष्ट्रे गौरं स्मरामि सततं कलिपावनं तम् ॥२॥
अङ्गीकुर्वन् निजसुखकरीं राधिकाभावकान्ति मिश्रावासे सुललितवपुर्गार्वणो हरियः।
पल्लीस्त्रीणां सुखमभिदध्त् खेलयामास बाल्ये वन्देऽहं तं कनकवपुषं प्राङ्गणे रिङ्गमाणम् ॥३॥

सर्पकृतिं स्वाङ्गनगं ह्यनन्तम् कृत्वासनं यस्तरसोपविष्टः।
 तत्याज तज्चात्मजनानुरोधात् विश्वम्भरं प्रणमामि नित्यम् ॥४॥
 बाल्ये शृण्वन् वद हरिमिति क्रन्दनाद् यो निवृत्तस्तस्मात् स्त्रीणां सकलसमये नामगानं तदासीत्।
 मात्रे ज्ञानं विशदमवदनृत्तिकाभक्षणे यः वन्दे गौरं कलिमलहरं नामगानाश्रयं तम् ॥५॥
 (क्रमशः)

पद्यानुवाद

(श्रीराधारमणघेरा, वृन्दावनके परलोकगत पण्डित श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी कृत)

[दोहा]

मङ्गलाचरण

जय जय श्रीराधारमण, चरण कमल रज लेश।
 श्रीब्रह्मा सनकादि शिव, सब धारण नित केश ॥
 जय जय श्रीचैतन्य प्रभु, कलिपावन अवतार।
 स्व-भजन मुद्रा जगत में, आप करी विस्तार ॥
 जय जय नित्यानन्द प्रभु, जय अद्वैताचार्य।
 जयतु गदाधर जयतु, श्रीवास भक्तपथ आर्य ॥
 रूप सनातन भट्टयुग जीव दासरघुनाथ।
 वन्दत गोस्वामी छहों कीजै मोहि सनाथ ॥
 श्रीगुरु गोपीलाल के, पद जुग नाउँ सीम।
 वैष्णव जन मोहि दीजिये, श्रीहरिभक्ति असीम ॥
 मुक्ता माता जनक निज, वन्दौ तत्त्वाराम।
 जिन करुणा बल मिलौ यह, मानव तन अभिराम ॥
 करहु शक्ति संचार प्रभु, गाउँ तव गुण रास।
 विद्या कविता न मम कछु, केवल तुम पद आस ॥
 गौरचरित विस्तृत बहुत, आयु अल्प जन जानि।
 श्रीयुत भक्ति विनोदजू, कीय संक्षेप बखान ॥
 तिन आयसु बल पायकें, सो संक्षेप विलास।
 ब्रजभाषामें रचत हौं, छन्द बन्ध परकास ॥

अनुवाद

शाके मनुशत भानुमित, पूनम फागुन मास।
 उदितहि सन्ध्या समय किय, आय राहु शशि मास ॥
 नवद्वीप मायापुरी, जगन्नाथ के गेह।
 शची गर्भ प्रकटे हरि, धरि कनकमय देह ॥१॥

कलिपावन श्रीगौरहरि, विश्वम्भर गुणधाम।
 महाप्रभु निष्ठेश अरु, भये निमाई नाम ॥२॥
 निज जलधर द्युति आवरी, राधाकञ्चन रङ्ग।
 प्रिय भाव रसलैं, प्रकट, कियौ गौर निज अङ्ग ॥
 गौर बाल्य निरखल सबै, नदिया नागरि आय।
 छोड़ि छोड़ि गृह काज निज, आनन्द उर न समाय ॥३॥
 आङ्गनमें घुटुअन रिङ्गत, फिरत गिरत मुसुकात।
 दमक दन्तुलिया चारकी मानहु मुकुता पाँत ॥
 निरख्यौ आँगनमें फिरत, भुजग भयङ्गर एक।
 सो अनन्त निज शयन लखि, लियौ खेंचकर टेक ॥
 आप विराजे तासु पर, अधिक मुदित मन माँहि।
 बालक चापल देख यह, निज जन अकुलाँहि ॥
 देख बिकलता मातु पितु, तजि दीनी हरि राय।
 विषधर मन आनन्द मगन, चलौ सबन सिर नाय ॥४॥
 मचल जात रोवत जाबै, सम्हलत कोउ विधि नाय।
 सुनत जबै “हरिबोल” धुनि, हँसत तुरत सुख पाय ॥
 नदिया नागरि युथ सब, गौर हँसावन काम।
 मिल गावत आठो पहर, मधुरे सुर हरि नाम ॥
 कहु सुवन माटी भखी, लखि धमकायौ मात।
 ‘अन्न मिष्ट माटी सबै’, कही ज्ञानकी बात ॥५॥

(क्रमशः)

सिद्धान्तरत्न या वेदान्त-पीठक

—जगद्गुरु श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीगौड़ीयवेदान्ताचार्य श्रीबलदेव विद्याभूषण महाशयने ब्रह्मसूत्रका ‘श्रीगोविन्द भाष्य’ प्रकाशित कर उसके पीठस्वरूप अर्थात् सिंहासनस्वरूप एक परम उपादेय सिद्धान्त-ग्रन्थकी भी रचना की है, जिसका नाम है—सिद्धान्तरत्न या वेदान्तपीठक। उक्त ग्रन्थसे गौड़ीय मध्व-सम्प्रदायी वैष्णवोंका विशेष हित हुआ है, इसमें सन्देह नहीं है।

श्रीबलदेव-विद्याभूषणजीके जीवन-चरित्रका उल्लेख किसी भी ग्रन्थमें नहीं मिलता है। किसी भी पुस्तकमें उनके सम्बन्धमें निर्भर योग्य सामग्री उपलब्ध नहीं

है। उन्होंने स्वयं अनेकानेक ग्रन्थ लिखे हैं। उनमेंसे वेदान्तसूत्र-भाष्य, गीता-भाष्य, सहस्रनाम-भाष्य और कुछ उपनिषदोंके भाष्य आदि ग्रन्थोंको मैंने पढ़ा है। श्रीरूप गोस्वामीकृत स्तवमालाका बलदेव भाष्य, तत्त्व-सन्दर्भकी टीका और वेदान्तस्यामन्तक (छोटी पुस्तिका) आदि पुस्तकोंको भी मैंने पढ़ा है। परन्तु किसी भी ग्रन्थमें उन्होंने अपना कोई विशेष उल्लेख योग्य परिचय नहीं लिखा है। हाँ, कहीं-कहीं केवल ‘मुरारी’ का अपने चौथे पूर्व देशिक (अपने पूर्व चौथे गुरु) के रूपमें परिचय

दिया है।

जब मैं श्रीजगन्नाथ पुरीमें राजकार्यमें नियुक्त था, उस उमय मुझे श्रीबलदेवके ब्रह्मसूत्रका पाठ करनेका सुयोग प्राप्त हुआ था। तब मैंने अनेक वृद्ध पण्डितोंसे श्रीबलदेव-विद्याभूषणका परिचय पूछा था। उनमें से कुछ पण्डितोंने ऐसा कहा था कि बलदेव उड़ीसा प्रान्तमें खण्डाइत वंशमें पैदा हुए थे। वे छोटी उम्रसे ही तीर्थ-भ्रमण और विद्योपार्जनमें लग पड़े थे। चिल्का-हृदके उस पार किसी विद्वत् ग्राममें उन्होंने व्याकरण और अलङ्कार आदि बालविद्याका अभ्यास किया। बादमें न्यायशास्त्रका विधिवत् अध्ययनकर वेदोंका भी अध्ययन किया। तत्पश्चात् मैसूर आदिमें वेदान्तका अध्ययन किया। पहले शाङ्कर-भाष्यको पढ़कर बाद श्रीमध्बभाष्यका भली-भाँति अध्ययन किया। इसी समय वे तत्त्व-वादियोंके शिष्य होकर मध्व-सम्प्रदायमें प्रविष्ट हुए।

वेदान्त विशारद बलदेव थोड़े ही दिनोंमें दिग्विजयी पण्डितके रूपमें प्रसिद्ध हो गये। दक्षिण और उत्तर भारतके जिन-जिन स्थानोंमें वेदान्तका अध्ययन-अध्यापन होता था, वे वहाँ-वहाँके पण्डितों और संन्यासियोंके द्वारा पूजित हुए थे। भारतमें ब्राह्मणोंके अतिरिक्त किसी दूसरी जातिके व्यक्तिका धर्म-प्रचारमें अधिकार नहीं होनेके कारण वे कहीं भी अपने वर्णका परिचय न देकर वैष्णव संन्यास ग्रहण करके सर्वत्र ही पूजित होते थे। श्रीपुरुषोत्तम क्षेत्रके पण्डितोंको पराजित कर वे वहाँके तत्त्ववादी (मध्व-सम्प्रदायके) मठमें निवास करने लगे। उसी समय गौड़ीय वैष्णवोंने श्रीबलदेव जैसे रत्नको अपने सम्प्रदायमें आकर्षण करनेका प्रयत्न किया। बलदेव जैसे प्रकाण्ड विद्वान् और पारमार्थिक बुद्धिसे सम्पन्न व्यक्तिको पराजित करना हँसी खेलकी बात नहीं थी, इसलिए उन लोगोंने श्रीरसिक मुरारीके प्रशिष्य श्रीराधा दामोदर दाससे श्रीबलदेवको अपने सम्प्रदायमें आकर्षण करनेका

अनुरोध किया। उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि यदि आवश्यकता पड़े तो आप बलदेवको शास्त्रार्थमें पराजित करके भी उन्हें गौड़ीय सम्प्रदायमें आकर्षण कीजिए। धीरे-धीरे श्रीराधादामोदरजीका बलदेव विद्याभूषणके साथ बन्धुत्व बढ़ने लगा। कुछ ही दिनोंमें बलदेव विद्याभूषण श्रीराधादामोदरजीके साथ ही रहने लगे। श्रीराधादामोदरजीने वेदान्त शास्त्रका साधारण रूपमें अध्ययन किया था; परन्तु षट् सन्दर्भका गम्भीर अध्ययन किया था और इस विषयमें वे पारङ्गत विद्वान् समझे जाते थे। बलदेव उनके निकट षट् सन्दर्भ अध्ययन करना चाहते थे। परन्तु जब उन्होंने यह सुना कि गौड़ीय माध्व-सम्प्रदायी वैष्णवके अतिरिक्त किसी भी दूसरे व्यक्तिका इस ग्रन्थको पढ़नेका अधिकार नहीं है, तब वे बड़े ही दुःखित हुए और उन्होंने श्रीराधादामोदरसे शास्त्रीय विचार करनेके लिए प्रार्थना की। श्रीराधादामोदरजी कान्यकुञ्ज ब्राह्मण होनेपर भी महाप्रेमी वैष्णव थे। उनके भक्तिभाव और प्रेमको देखकर उनके प्रति बलदेवकी आन्तरिक श्रद्धा हो गयी थी। फिर भी विचार स्थलमें दोनोंके बीच प्रचुर शास्त्रीय युद्ध हुआ। भगवान्‌की इच्छासे अन्तमें बलदेव पराजित हुए और श्रीराधादामोदरके शिष्य हो गये। तब उन्होंने अपना मध्वान्वय ठीक रखकर ही श्रीकृष्णचैतन्यको भगवान् जानने पर अपनेको गौड़ीय-माध्व-सम्प्रदायी मानकर धन्य समझा।

आह! बलदेव जैसे वैदिक पण्डित जब श्रीगुरुकी कृपासे कृष्णप्रेमको प्राप्त कर हरिनामके बलसे मत्त हो उठे, तब उनका जड़ीय अभिमान भला कैसे रह सकता है? उसके पश्चात् पुरुषोत्तम क्षेत्रसे श्रीनवद्वीपका दर्शनकर श्रीवृन्दावनमें उपस्थित हुए और किसी देवालयमें रहकर भजन करने लगे।

उसी समय जयपुरमें श्रीगोविन्दजी और श्रीनारायण इन दोनोंमें पहले किसकी पूजा हो—इस विषयको लेकर बड़ी हलचल मची हुई थी। जयपुरके नरेश बहुत पहलेसे ही श्रीगौड़ीय

सम्प्रदायकी मान्यताके अनुसार उनके अनुगामी होकर श्रीगोविन्दजीकी पूजा पहले करके पीछेसे श्रीनारायणकी पूजा करते आ रहे थे। परन्तु उन दिनों श्रीसम्प्रदायके कुछ महन्त वैष्णवगण जयपुरमें पथार कर श्रीकृष्णकी पूजासे पहले ही श्रीनारायणकी पूजाकी प्रथा आरम्भ करना चाहते थे। परन्तु तत्कालीन सदाचारी राजा उनकी उस नयी व्यवस्थासे सहमत नहीं हुए और साथ ही इस विषयमें वेदान्त आदि शास्त्रोंका यथार्थ विचार क्या है—यह जाननेके लिए तथा श्रीसम्प्रदायके पण्डित महन्तोंसे विचार करनेके लिए किसी योग्य एवं अधिकारी वैष्णव पण्डितको जयपुरमें बुलानेके लिए चेष्टा करने लगे। राजा द्वारा जयपुरकी गड़बड़ीका संवाद जानकर वृन्दावनके वैष्णवगण श्रीगोविन्दजीकी मर्यादाकी रक्षाके लिए तत्कालीन वैष्णवाग्रगण्य पण्डित शिरोमणि श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरके पास पहुँचे और उनसे जयपुर जाकर श्रीसम्प्रदायी वैष्णव पण्डितोंसे विचार युद्ध करनेके लिए अनुरोध किया। परन्तु चक्रवर्तीजीके उस समय अत्यन्त वृद्धावस्थाके कारण उन्होंने किसी दूसरे पण्डितको इस कार्यके लिए चुननेका आदेश दिया। तब वैष्णवोंने श्रीबलदेव विद्याभूषणको इस कार्यके लिए उपयुक्त व्यक्ति चुना। श्रीचक्रवर्ती महाशयने भी सोच-विचार करके बलदेवको अपनेसे अधिक पण्डित और वेद-वेदान्तका पारङ्गत विद्वान् जानकर जयपुर भेजा।

श्रीबलदेव जयपुरके लिए रवाना हुए। हाथोंमें कमण्डलु, कथे पर फटी गुदड़ी, कमरमें कौपीन और बहिर्वास, पूर्ण निष्क्रिचन वेशमें अकेले सीधे राज सभामें उपस्थित हुए। राजाने इनके इस निष्क्रिचन वेशको देखकर इनको एक साधारण भिक्षुक मात्र समझा। यहाँ तक कि बलदेव विद्याभूषणने जब राजासे यह कहा कि वे वृन्दावनसे श्रीसम्प्रदायके वैष्णवोंके साथ शास्त्रार्थके लिए आये हैं, तब भी राजा और सभासदोंको विश्वास नहीं हुआ कि यह साधारण भिक्षुक भी इतना विद्वान्

हो सकता है? फिर भी बलदेवजीने श्रीसम्प्रदायके वैष्णव पण्डितोंके साथ भेंट कर विचार करनेके लिए कहा। इस पर उन्होंने पूछा—“आप किस भाष्यका अवलम्बन करके विचार करेंगे?” बलदेवने उत्तर दिया—“मैं मध्वशिष्य हूँ; मध्वभाष्यको लेकर विचार करूँगा।” यह सुनकर श्रीसम्प्रदायी पण्डितोंने फिर कहा—“मध्वभाष्यमें तो केवल श्रीकृष्णकी ही प्रतिष्ठा है, श्रीराधाकी तो उसमें प्रतिष्ठा नहीं है; ऐसी दशामें क्या श्रीगोविन्दजी बिना श्रीराधिकाके अकेले पूजा ग्रहण करेंगे?” तब बलदेवने देखा कि उनका काम मध्वभाष्यसे नहीं चल सकता। इसलिए उन्होंने कुछ दिनोंका समय लेकर श्रीगोविन्ददेवके मन्दिरमें बैठकर श्रीगोविन्दजीकी आज्ञासे ब्रह्मसूत्र-भाष्य, गीता-भाष्य, सहस्रनाम-भाष्य और उपनिषद्-भाष्य लिख लिया और पुनः सभामें शास्त्रार्थ करके श्रीवैष्णवोंको पराजित कर श्रीराधागोविन्दजीकी सर्वप्रथम-पूजाकी व्यवस्थाको चालू रखवाया। इसी विद्वत्सभामें श्रीबलदेवको ‘विद्याभूषण’ की उपाधि दी गयी थी।

इस बड़े महत्वके कार्यको सुसम्प्रकर श्रीबलदेव वृन्दावन लौट आये और अपना शेष जीवन श्रीश्यामसुन्दरके अध्यक्षके रूपमें बिताया। इसी समय उन्होंने अन्यान्य ग्रन्थोंकी रचना की।

श्रीमन्महाप्रभुके अप्रकट होनेके लगभग २०० वर्षोंके मध्य ही श्रीबलदेवने यह बृहत्कार्य सम्पन्न किया। उनके गुरुदेवके परम गुरु श्रीमुरारी थे। श्रीमुरारीके गुरु श्रीरसिकानन्दजी थे तथा श्रीरसिकानन्दजीके गुरु प्रसिद्ध श्रीश्यामानन्दजी थे, जो बचपनमें दुःखी कृष्णदासके नामसे प्रसिद्ध थे। अतएव बलदेव श्रीश्यामानन्द परिवारके हैं। श्रीश्यामसुन्दर इस परिवारके कुलदेवता हैं। विद्याभूषण महाशयने लगभग दो सौ वर्ष पूर्व जयपुरमें श्रीगोविन्दपूजाकी प्रतिष्ठा और ग्रन्थ रचना आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। कुछ अत्यन्त वृद्ध वैष्णवोंने मुझसे ऐसा कहा था कि उनके

गुरुदेवने श्रीबलदेव-विद्याभूषणको देखा था।

श्रीबलदेव-विद्याभूषणजी श्रीगौड़ीय सम्प्रदायके एक उज्ज्वल नक्षत्र थे। उन्होंने इस सम्प्रदायका इतना अधिक उपकार किया है कि श्रीगोस्वामियोंके पश्चात् उनके समान और किसी भी आचार्यने नहीं किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे श्रीचैतन्य महाप्रभुके नित्यपार्षदोंमेंसे एक हैं। किसी वैष्णव ग्रन्थमें ऐसा इङ्गित दिया गया है कि श्रीचैतन्य-पार्षद श्रीगोपीनाथ मिश्र-जिन्होंने सार्वभौमके साथ श्रीमन्महाप्रभुके मुखसे ब्रह्मसूत्रका भाष्य श्रवण किया था—वे ब्रह्मा थे और वे ही गौड़ीय ब्रह्म-सम्प्रदायके भाष्यकर्त्ताके रूपमें बादमें विद्याभूषणके रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। वैष्णवोंकी सारी बातें सत्य ही होती हैं और यह बात भी सत्य ही है—ऐसा अनुमान

होता है।

कोई-कोई अर्वाचीन व्यक्ति ऐसा कहते हैं कि बलदेवका मत गोस्वामियोंके मतसे कुछ निम्न श्रेणीका है। परन्तु उनका यह विचार ठीक नहीं है। हमने अच्छी तरहसे विचार करके यह देखा है कि श्रीबलदेव और श्रीजीव गोस्वामीका मत एक ही है; दोनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं है। तब बलदेवका यह वैशिष्ट्य है कि उन्होंने भाष्यकारके गांभीर्यकी रक्षा करनेके लिए वैदान्तिक प्रणाली और वैदान्तिक शब्दोंका प्रयोग अधिक किया है। परन्तु इससे उनकी विचार धारा या मतमें गोस्वामियोंके मतसे तनिक भी अन्तर नहीं आ पाया है। तत्त्व-विषयमें अथवा उपासनाके विषयमें—सर्वत्र ही दोनोंने एक ही प्रकारका सिद्धान्त किया है।

(क्रमशः)

श्रीगुरुपदाश्रय

—जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भुक्तिसिद्धान्त
सरस्वती गोस्वामी ‘प्रभुपाद’

श्रीगुरु-पदाश्रय करना ही भगवद्भक्ति साधनका सबसे पहला दरवाजा है। इसीलिए भक्ति-आचार्य श्रीरूप गोस्वामीने ‘भक्तिरसामृतसिन्धु’-ग्रन्थमें भक्तिके अङ्गोंका वर्णन करते हुए लिखा है—

सर्व प्रथम—

**गुरुपादाश्रयस्तस्मात् कृष्ण-दीक्षादि शिक्षणम्।
विश्रम्भेण गुरोः सेवा साधु वर्त्मनुवर्तनम्॥**

अपने नित्य चरम कल्याणकी कामना रखनेवाले जीव यदि संसार बन्धनसे मुक्त होना चाहते हैं, तो उन्हें सबसे पहले भगवान्के प्रकाश-स्वरूप सद्गुरुके शरणागत होना चाहिए। श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आत्म-समर्पणके बिना अनर्थ-सागरसे उद्धार पाना कठिन ही नहीं, बिलकुल असम्भव है। सद्गुरुके दो लक्षण हैं—श्रोत्रिय अर्थात् श्रुति-शास्त्रमें पारङ्गत तथा ब्रह्मनिष्ठ अर्थात् कृष्णतत्त्वविद्। ऐसे सद्गुरुका आश्रय ग्रहण करनेके बदले जो लोग तर्क द्वारा

भव-समुद्रको पार कर परतत्त्वको जानना चाहते हैं, उन्हें केवल मात्र तर्क ही लाभ होता है। ये लोग श्रौत-पथसे विमुख होकर भ्रम, प्रमाद, करणापाटव और विप्रलिप्साके फेरमें पड़कर नास्तिक हो पड़ते हैं। इनकी सारी चेष्टाएँ गुरु-द्रोह एवं भगवत्-द्रोहके लिए होती है। जो लोग संसार-समुद्रमें सदाके लिए डूब जानेके लिए डूढ़-सङ्कल्प हैं, वे सद्गुरु पदाश्रयकी कोई आवश्यकता अनुभव नहीं करते; बल्कि वे अपने ही जैसे गृहासक्त भगवद्-विमुख गुरुब्रुवको ही गुरुके रूपमें वरण करके करोड़ों कल्पों तक अन्धविश्वासके चक्करमें पड़े रहते हैं। ऐसे लोगोंका तब तक कल्याण नहीं होता, जब तक वे सद्गुरुका वरण नहीं करते।

इस महा-सत्यका प्रचार करने तथा स्वयं आचरण द्वारा लोक शिक्षाके लिए जगद्गुरु

श्रीगौर-सुन्दरने स्वयं श्रीगुरुपादपद्मोमें आत्म-समर्पण एवं शरणागतिका आदर्श दिखलाया है। श्रीगुरुदेव यथार्थ कृष्णैकशरण एवं कृष्णकी प्रीतिके लिए ही अखिल चेष्टायुक्त होते हैं; ऐसे सहृदुकी लघुता एवं उनका अभाव अनुमान कर जो उसे पूर्ण करनेके लिए तर्क पथका अवलम्बन करता है, वह भव-यन्त्रणासे कभी छुटकारा नहीं पा सकता। “सजातीयाशये स्तिर्घे साधौ सङ्गः स्वतो वरे” (भ. र. सि. पूर्व वि. ४०) — यह कल्याणकारी विचार जिनके हृदयमें प्रबल है, केवल वे ही आत्म-समर्पण या श्रीगुरुपदाश्रय करनेमें समर्थ हो सकते हैं। श्रीभगवान्‌के चरणकमलोंको ही एकमात्र सेवनीय जानकर स्वयं भगवान् श्रीचैतन्य महाप्रभुने कृष्ण-प्रेमके सच्चे साधकोंको आदर्श-विधिकी शिक्षा प्रदान करनेके लिए श्रीमाधवेन्द्रपुरीके प्रिय कृपापात्र श्रीईश्वरपुरीपादको श्रीगुरुदेवके रूपमें वरण करनेका लीलाभिन्न करके उनपर कृपा की थी। जिस कृष्णपादपद्म-सुधारसका पान करनेके लिए शिष्यका अभिन्न करनेवाले श्रीचैतन्य महाप्रभुकी

गुरुदेवके श्रीचरणोमें भिक्षा-प्रार्थना है, उसी कृष्णपादपद्म सुधारसका पान करनेके लिए ही गुरु-लीलाका अभिन्न करनेवाले भिक्षादाता ईश्वरपुरी पादका भिक्षा प्रदान करना है। इन दोनोंमें किसी प्रकारका वैषम्य लक्षित नहीं होता।

न धनं न जनं न सुन्दरीं
कवितां वा जगदीश कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे
भवताद्वक्तिरहतुकी त्वयि ॥

— हे जगदीश! मैं न धन चाहता हूँ, न पुत्र परिवार आदि जन चाहता हूँ, न सुन्दर कविता ही चाहता हूँ। चाहता हूँ केवल हे प्राणेश्वर! आपके चरणकमलोंमें मेरी जन्म-जन्ममें अहैतुकी भक्ति हो।

उपरोक्त श्लोकमें श्रीमन्महाप्रभुजीने साधकके लिए जिस चरम प्रार्थनाकी शिक्षा दी है, वही श्रीमन्माधवेन्द्रपुरीके निष्कपट एवं परिपूर्ण करुणा-प्रसादके प्रभावसे श्रीईश्वरपुरीपादके हृदयमें संचारित होकर हृदगत भावके रूपमें सदैव निहित थी।

श्रीव्यासपूजाके अवसर पर दीन-अकिञ्चनके द्वारा

श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंका गुणगान

[अङ्गविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजी द्वारा उनकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें लिखित प्रबन्ध]

आज एक विशेष दिन है। किसीके भी जन्मदिनके उपलक्ष्यमें गुरु-वैष्णव-भगवान्‌की विशेष पूजाका आयोजन होता है। श्रीव्यासदेवके अनुगत सम्प्रदायमें तुर्यश्रीमीगण प्रतिवर्ष अपने-अपने जन्मदिन पर पूर्व गुरुवर्गकी पूजा करते हैं। गुरुदेवके आविर्भाव तिथिके अवसर पर व्यासपूजाका जो अनुष्ठान होता है, उससे भगवान् श्रीव्यासदेव एवं समग्र वैयासिक सम्प्रदायकी पूजा हो जाती है। विचार यह है कि व्यासानुगत्यको छोड़कर गुरुपूजाका कोई वास्तव फल नहीं है। श्रीव्यासदेव भगवान्‌के

अभिन्न मूर्त्ति या प्रकाश-विग्रह हैं। भगवान् स्वयं अपनेको प्रकाशित करनेके लिए अक्षरात्मक वेदशास्त्रके रूपमें प्रकटित हुए हैं। परन्तु वेद भी साधारणतः बुद्धिद्वारा अगम्य होनेके कारण उनके विस्तारकी आवश्यकता होती है। तब भगवान् श्रीव्यासदेवके रूपमें उनका विस्तार करते हैं, क्योंकि वे स्वयं तत्त्व-वस्तु हैं। यदि वे स्वयं अपनेको प्रकाश न करें तो कोई उनको यथायथ रूपमें नहीं जान सकता। ‘वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्या वेदान्तकृद्वदिविदेव चाहम्।’ श्रीकृष्ण बोल रहे हैं—“मैं

ही वेदोंका प्रतिपाद्य वस्तु हूँ मैं ही वेदोंका तात्पर्य-वेत्ता हूँ मैं ही वेदान्त-प्रकाशक हूँ। अतएव व्यासानुगत्य व्यतीत भगवान्‌को जाननेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। श्रीगुरुदेव उन व्यासदेवका ही प्रतिनिधित्व कर भगवत्तत्त्वको प्रकाश करते हैं। इसलिए श्रीगुरुपूजाके रूपमें श्रीव्यासपूजाको लक्ष्य किया जाता है। यही व्यासानुगत सम्प्रदायका वैशिष्ट्य है। श्रीगुरुतत्त्व और श्रीव्यासतत्त्व—एक ही तत्त्व हैं। इसलिए ‘श्रीव्यासपूजा’ नामान्तर ‘श्रीगुरुपादपद्ममें पाद्यार्पण’ से श्रीगुरुदेवकी मनोभीष्ट ‘सुष्ठुरूपसे भगवत्सेवा’ ही परिलक्षित होती है।

शास्त्र बताते हैं—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् ।
समित्याणि: श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥

‘तद्विज्ञानार्थं’ का अर्थ केवल तत्त्वज्ञान नहीं है, बल्कि विज्ञान समन्वित तत्त्वज्ञान है अर्थात् प्रेमभक्तिका तत्त्वज्ञान प्राप्त करना होगा। केवल तत्त्वज्ञानके द्वारा अनेक समय निर्विशेष ब्रह्मकी धारणा होती है, उससे जीवका अविद्यासे परित्राण नहीं होता है; क्योंकि निर्विशेष कहनेसे शास्त्रोंमें यथार्थ रूपमें जिस वस्तुको लक्ष्य किया जाता है, उसे प्राकृत विचारसम्पन्न मनुष्य ग्रहण नहीं कर सकते हैं। उनकी कल्पनामें जो निर्विशेष वस्तुकी धारणा है, ब्रह्म तो वह वस्तु नहीं हैं। सर्वकारणकारण ब्रह्म यदि निर्विशेष होते, तब जगतमें इतने सारे वैशिष्ट्य, विचित्रताएँ कहाँसे आयीं? अतः तत्त्व-जिज्ञासाके प्रारम्भसे ही यदि गड़बड़ हो जाए तो कभी भी आत्मकल्प्याण नहीं हो सकता। श्रीव्यासदेवने सूत्रके आरम्भमें ही कहा है—‘अथातो ब्रह्मजिज्ञासा’। मैं ब्रह्मको नहीं जानता, वे कौन हैं, उनका परिचय क्या है तथा उनके साथ मेरा क्या सम्बन्ध है?—इन सब बातोंको जानना चाहिए, समझना चाहिए। यदि मेरा यह ज्ञान होता तो मेरी इस प्रकारकी कोई जिज्ञासा नहीं रहती। इसलिए मुझे इस ज्ञानको प्रदान करनेवाले ब्रह्मज्ञ गुरुकी आवश्यकता है। इसलिए श्रुतिमें कहा गया

है—‘गुरुमेवाभिगच्छेत्’। ‘गुरुमेव’—निश्चय कर कहा गया है—‘गुरु’ व्यतीत अन्य किसी Source से उन ब्रह्मवस्तुका ज्ञान नहीं होता है। इसलिए उनके निकट अभिगच्छेत् अर्थात् अभिगमन करना (जाना) होगा। ‘अभिगमन’ का क्या अर्थ है? Approaching with serving temperament, honest enquiry.

तद्विज्ञि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।

उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

गीताके इस श्लोकमें अभिगमनकी व्याख्या है। प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा—इन विचारोंको लेकर गमनका नाम अभिगमन है। प्रणिपात अर्थात् आत्मनिवेदन सर्वप्रथम आवश्यकता है। उसके बाद परिप्रश्न अर्थात् honest enquiry—वास्तवमें जाननेके लिए, समझनेके लिए प्रश्न; व्यर्थ तर्कके उद्देश्यसे नहीं एवं सेवा—serving temperament, यह नहीं रहनेसे reciprocation अच्छा नहीं होता है।

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।

भुड़क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥

प्रीति न होनेसे मैं उनके हृदयके भावोंको समझ नहीं सकता। इसलिए अभिगमन न होनेसे तत्त्वज्ञान लाभ नहीं हो सकता। केवल समय नष्ट होगा। लेकिन जिनका ऐसे अभिगमनका विचार है—वे कैसे हैं? उनका क्या वैशिष्ट्य है? शास्त्रोंमें बताया गया है—‘श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्’। वे श्रौतपन्थी ब्रह्मनिष्ठ गुरु हैं। ब्रह्म क्या वस्तु है—यह केवल श्रौत पन्थासे ही ज्ञात होता है—वे कभी भी mental speculation या तर्क-पन्थाके विषयवस्तु नहीं हैं।

अचिन्त्या खलु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत् ।

प्रकृतिभ्यः परं यच्च तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥

प्रकृतिसे जो परे हैं, उनको प्रकृतिके अन्तर्गत युक्तियोंके द्वारा नापा नहीं जा सकता। इस प्रकारकी चेष्टाओं द्वारा किसी प्रकारकी बुद्धिमत्ता प्रमाणित नहीं होती है। इसलिए श्रौत-पन्थाके

अतिरिक्त उनको जाननेका समझनेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। श्रौत-पन्थाका अर्थ यह नहीं है कि अचानक किसीने कुछ बोल दिया और वह अज्ञ परम्परामें प्रचलित होने लगा। श्रौत-पन्थामें मूल वक्ता स्वयं भगवान् हैं और श्रोता उनके कोई विशेष कृपाप्राप्त व्यक्ति हैं। पहले हमारी आलोचनामें यह विचार आया है—ब्रह्म क्या वस्तु है, इसे स्वयं ब्रह्मके बताये बिना कोई भी भलीभाँति जान नहीं सकता। इसके बारेमें जगत्-स्थापितामह ब्रह्म कह रहे हैं—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय-
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिमो
न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन्॥
हे प्रभो, हे भगवन्—आपकी कृपालेश व्यतीत
चिरकाल अनुसन्धान करनेसे भी कोई आपको
जान नहीं सकता।
इश्वरे कृपालेश हये त जाहरे।
सङ्ग से इश्वर तत्त्व जानिबारे पारे॥
उपनिषद्में भी वर्णन है—
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो
न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्॥
अपने पाण्डित्य एवं अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिके
द्वारा भगवान्को जान लूँगा, समझ लूँगा, अपने
मनके अनुसार उनको गढ़ लूँगा—यह सम्भव नहीं
है। वे जिसको अपना लेते हैं, ‘तेन लभ्य’—केवल
वही उनको प्राप्त कर सकता है। भगवान् स्वयं
ब्रह्माजीके साथ communicate किया, क्यों? भगवान्को जाननेके लिए ब्रह्माजीकी विशेष चेष्टा थी—लेकिन बहुत चेष्टा करने पर भी जब
सफल नहीं हुए, तब सब चेष्टाओंको छोड़कर,
आरोहपन्थाका त्यागकर वे भगवान्के शरणागत
हुए। भगवान् उनके निकट वेदको प्रकाश
किया—

कालेन नष्टा प्रलये वानीयं वेदसञ्जिता।
मयादौ ब्रह्मणे प्रोक्ता धर्मो यस्यां मदात्मकः॥
श्रीकृष्ण बोल रहे हैं—सृष्टिके प्रारम्भमें मैंने
शरणागत ब्रह्माको शब्दब्रह्म—वेद प्रदान किया
था। उसमें क्या है? ‘धर्मो यस्यां मदात्मकः’,
अर्थात् जिससे मेरे प्रति प्रेमभक्ति प्राप्त हो, उस
भागवत-धर्मकी कथा उसमें है।

यावानहं यथाभावो यदूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥
हे ब्रह्मन्, मैं जो तत्त्व हूँ, मेरा जो भाव, जो
रूप, गुण, कर्म इत्यादि हैं—यह तत्त्वविज्ञान मेरे
अनुग्रहसे तुम्हें प्राप्त हो। अतएव उन तत्त्ववस्तुसे
ही श्रौतपन्थाका उदय हुआ है। इसी प्रकारसे ही
चार वैष्णव सम्प्रदायोंका प्रकाश हुआ है।
सम्प्रदायविहीना ये मन्त्रास्ते विफला मताः।
श्री—ब्रह्म—रुद्र—सनका वैष्णवाः क्षितिपावनाः॥
श्री सम्प्रदाय, ब्रह्म सम्प्रदाय, रुद्र सम्प्रदाय
और सनक सम्प्रदाय—ये चार वैष्णव सम्प्रदाय
हैं—चार श्रौतपन्था हैं। दूसरे सब अश्रौत विचार
हैं—स्वकपोलकल्पना मात्र है। ब्रह्म निर्विशेष
निराकार हैं, जो इसके अलावा ब्रह्मका दूसरा
कोई विचार नहीं मानते हैं, वे अश्रौतपन्थी हैं।
जिस श्रुतिमें भगवान्का निर्विशेषत्वकी बात है,
उसी श्रुतिमें ही उनके सविशेषत्वकी बात भी
है—

या या श्रुतिर्जल्पति निर्विशेषं, सा साधिधत्ते
सविशेषमेव। विचारयोगे मति हन्तु तासां प्राये वलीय
सविशेषमेव।

अतः दानों विचार ही तो युगपत है। लेकिन उनमेंसे सविशेषत्व ही अधिक बलवान है—कारण सविशेषत्व ही ब्रह्मका स्वरूप लक्षण है—निर्विशेषत्व तो केवल तटस्थ विचार, व्यतिरेक विचार है। ‘निर्विशेष’ का अर्थ जिसकी कोई जड़—विशेषता, प्राकृत विशेषता नहीं है और ‘सविशेष’ का अर्थ है—जो अप्राकृत विशेषतायुक्त, अप्राकृत रूप, अप्राकृत गुण एवं अप्राकृत विलास समन्वित है।

दोनों विचारोंका ही तो एक तात्पर्य है—विरोध कहाँ है? जो इनमें विरोध देखते हैं—जो निर्विशेषत्वको ही केवल पारमार्थिक बोलते हैं और सविशेषत्वको व्यावहारिक, मिथ्या, बच्चा-बहलाव, एवं तात्कालिक बताते हैं, इस प्रकारसे वेदवाक्यके अर्थवाद करते हैं, वे ब्रह्मनिष्ठ नहीं हैं, वे अपराधी हैं। ब्रह्मका एक विषय ग्रहण करूँगा, दूसरा मेरे सुविधाके अनुसार नहीं है, इसलिए परित्याग करूँगा, उसे व्यावहारिक बोलूँगा—इससे ब्रह्मनिष्ठा प्रमाणित नहीं होती है। किन्तु श्रीगुरुदेव ‘श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्’—वे ब्रह्मनिष्ठ हैं—वे दोनों विचारोंके ही सुसामज्जस्यकारी हैं।

**तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेयः उत्तमम्।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥**

उत्तम श्रेयः क्या है, आत्यन्तिक मङ्गल क्या है तथा वह किस प्रकार लाभ होता है, जो उसे जानना-समझना चाहते हैं—वे शब्दब्रह्म और परब्रह्मके विषयमें विज्ञ गुरुके शरणागत होंगे। ‘शब्दब्रह्म’का अर्थ नामब्रह्म या वाचकब्रह्म, ‘परब्रह्म’का अर्थ नामीब्रह्म या वाच्यब्रह्म—‘शब्दब्रह्म परब्रह्म नमोभे शाश्वती तनूः।’ ‘वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नामस्वरूपद्वयम्।’— भगवान्‌के इन दोनों स्वरूपोंमें ही वे निष्णात (पारङ्गत) हैं—realised soul—वे professional priest नहीं हैं या platform speaker नहीं हैं। वे तत्त्वदर्शी—तत्त्ववस्तुका दर्शन करते हैं, अनुभव करते हैं। तत्त्ववस्तुका अर्थ है—भगवान्, उनके नाम, रूप, गुण, परिकर, लीला और धाम आदि। इन सबको लेकर ही तत्त्ववस्तु है तथा श्रीगुरुदेव उसी तत्त्वदर्शी हैं।

श्रीकृष्णने उन तत्त्वदर्शी गुरुदेवको ही अपना स्वरूप बतलाया है—

आचार्य मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।

न मर्त्यबृद्ध्यासूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

जो गुरुदेवको साक्षात् कृष्णका प्रकाश नहीं मानते, उनको शास्त्रोंमें नारकी या पाषण्डी बतलाया

गया है। भगवान् एवं भगवत्परिकर अभिन्नतत्त्व हैं—किन्तु अभिन्न होते हुए भी एक वस्तु नहीं हैं। ‘भगवत्परिकर’—भगवत्सेवा विधानकारी हैं, एवं ‘गुरुदेव’ भगवत्सेवा प्रकाशक हैं। इसलिए भगवत्परिकरोंमें ही वह गुरुत्व विद्यमान है।

यद्यपि आमार गुरु चैतन्यर दास।

तथापि जानिये आमि ताँहार प्रकाश॥

जैसे सूर्यसे उसका प्रकाश अभिन्न है, इसलिए उसे सूर्यसे अलग नहीं किया जा सकता ऐसे ही गुरुको भी भगवान्‌से अलग नहीं किया जा सकता। और भी सूर्यका प्रकाश जैसे सूर्यके अधीन है, वैसे ही श्रीगुरुदेव भगवद् अधीन तत्त्व एवं उनके सेवक तत्त्व हैं। इसलिए शास्त्रोंमें गुरुदेवको अभिन्न कृष्ण कहा गया है। इससे यह समझा दिया गया है कि वे भगवान्‌के अत्यन्त प्रियजन हैं।

शुद्धभक्ताः श्रीगुरोः श्रीशिवस्य च भगवतासह अभेददृष्टिं तत्प्रियतमत्वेनैव मन्यते॥

साक्षाद्वरित्वेन समस्त शास्त्रै-

रुक्सत्था भाव्यत एव सद्गः।

किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य

वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम्॥

गुरुवरं मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्तं ननु मनः॥

इसलिए सर्वत्र ही कहा गया है—गुरुदेव भगवद् प्रियतम जन हैं—इसीलिए उनका भगवद् अभिन्नत्व है। श्रील प्रभुपादने भी यही बताया है—“विषय जातीय कृष्ण आधा और दूसरा आधा आश्रयजातीय कृष्ण। दोनोंमें विलास-वैचित्र्यकी पूर्णता है। श्रीकृष्ण विषयजातीय पूर्ण प्रतीति हैं तथा श्रीगुरुदेव आश्रयजातीय पूर्णप्रतीति हैं।” इसीलिए बोला गया है—गुरु कृष्णके स्वरूप हैं, स्वयं कृष्ण नहीं हैं। किसलिए कृष्णके स्वरूप हैं? कारण—“कृष्णभक्ते कृष्णो गुण सकलि सञ्चारे”, “बृहत्वाद् बृहत्वाद् ब्रह्म”—ब्रह्म स्वयं बृहत् तत्त्व हैं तथा वे अपने आश्रित तत्त्वोंको भी बृहत् प्रदान करते हैं—इसलिए वे ब्रह्म हैं।

(क्रमशः)

साधुसंगमें स्वरूप उपलब्धि एवं पराभक्ति

—श्रीश्रीमद्भक्तिवदान्त त्रिविक्रम महाराज

सत्य और मिथ्या दो प्रकारकी प्रतीतियाँ होती हैं। परन्तु दोनोंका फल विपरीत होता है। अर्थात् सत्य प्रतीतिका फल यथार्थ और मिथ्या प्रतीतिका फल अयथार्थ (असत्य) होता है। किसी वस्तुको जो जैसी है, उसे वह नहीं समझना ही मिथ्या प्रतीति है। उदाहरणस्वरूप जो मूर्ख हैं, उन्हें विद्वान् समझनेसे वज्जित होना पड़ता है। सर्वत्र ही यह विचार मान्य है। इसलिए मैं कौन हूँ, इस सम्बन्धमें जो सत्य है, वही धारणा करने या समझनेसे सत्यकी प्रतीति होती है। जो मेरा है, उसे मेरा बोलनेसे यथार्थ सत्य होता है एवं जो मेरा नहीं है, उसे मेरा बोलनेसे यथार्थ सत्य नहीं होता है। अन्य व्यक्तिके खेतमें, खेत मेरा है मानकर खेती करनेसे भी उपजका अधिकारी खेतका मालिक ही होता है। इस प्रकार अपना परिश्रम एवं खर्च आदि सार्थक नहीं होते हैं, वृथा हो जाते हैं।

मनुष्यके अतिरिक्त अन्य किसी प्राणीमें यह (सत्य और मिथ्याके सम्बन्धमें) विचार करनेकी शक्ति न होनेके कारण ही मनुष्यको श्रेष्ठ प्राणी कहा गया है। अन्यथा मिथ्या प्रतीतिमें अभिमानी प्राणी, यदि वह मनुष्य हो, तो भी उसे अधम कहा गया है। मनुष्यके अतिरिक्त अन्य प्राणी शरीर और आत्माका भेद नहीं समझते हैं। यहाँ तक कि जो मनुष्य भी यह पार्थक्य नहीं समझते, उन्हें भी पशुकी संज्ञा दी जाती है। जो कि शरीरका धर्म, आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन आदि क्रियाओंमें ही प्रमत्त होते हैं, उन्हें मनुष्य होनेपर भी पशुकी गिनतीमें लिया जाता है—

आहारनिद्राभयमैथुनाज्ञ
सामान्यमेतत् पशुभिन्नराणाम्।
धर्मोहि तेषाम् अधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

इसलिए आत्माका धर्म ही सत्य है एवं शरीरका धर्म ही असत्य है—यही सनातन धर्मका विचार है। जिन समस्त देशोंमें शरीरके धर्मको मुख्यरूपमें पालन किया जाता है, उन देशोंको मिथ्याश्रयी बोलना अत्युक्ति नहीं है। उनकी आहार, निद्रादि सम्बन्धमें उन्नतिको प्रकृत उन्नति न समझकर मिथ्यागत उन्नति ही समझना पड़ेगा। इस उन्नति द्वारा वे समस्त देशवासी पराशान्ति या परम सुख प्राप्त नहीं कर पाते हैं। उनकी समस्त चेष्टाएँ विपरीत फल प्रसव करती है, जैसा कि शास्त्रोंमें वर्णित है—

कर्मण्यारभमाणानां दुःखहत्यै सुखाय च।
पश्येत्पाकविपर्यासं मिथुनीचारिणां नृणाम्॥

(भागवत ११/३/१८)

राष्ट्रगत समवेत चेष्टा तथा मैथुन क्रियागत चेष्टा सुख तथा शान्ति प्रदान करनेके बदले विपरीत फल यानि अशान्ति ही प्रदान करती है क्योंकि वह मिथ्यामूलक देहसे सम्बन्धित क्रिया होती है, आत्म सम्बन्धीय सत्य विषयक क्रिया नहीं है। सुवृहद् अद्वालिका, मूल्यवान् वित्त सम्पत्ति, परमप्रिय स्त्री-पुत्रादि ध्वंसशील होनेके कारण इनमें प्रीति एवं आसक्ति होनेपर अवश्य ही उद्वेग प्राप्त होगा। ये जितने ही अधिक रूप एवं गुणसम्पन्न होंगे, उतना ही अधिक भय एवं उद्वेग प्राप्त होगा—यह सत्य है। अल्पमूल्यवान् वस्तुके नष्ट होनेपर अल्प दुःख होता है, लेकिन बहुमूल्य वस्तुके विनष्ट होनेसे कष्ट भी अधिक परिमाणमें होता है। इन समस्त वस्तुओंमें ममत्व बुद्धि ही दुःखका कारण है। अन्यके पुत्रकी मृत्यु होनेसे हमें उतना दुःख नहीं होता है, क्योंकि उसमें ‘मेरा’ बुद्धि (अपनापन) नहीं है, किन्तु अपने पुत्रके प्रति ‘मेरा’ बुद्धि होनेके कारण

उसकी मृत्यु होनेपर दुःखप्राप्ति अवश्यम्भावी है। इसलिए ध्वंसशील वस्तुमें ममत्व बुद्धिको ही दुःखका कारण जानना होगा और उसमें ममत्वहीन होनेसे ही दुःख निराकरण होता है। ऐसा ही श्रीमद्भागवतमें वर्णित है—

नित्यार्तिदेन वित्तेन दुर्लभेनात्ममृत्युना।
गृहापत्याप्तपशुभिः का प्रीतिः साधितैश्चलैः ॥

(भागवत ११/३/१९)

अतएव मिथ्यावस्तु व मायिकवस्तुमें आसक्त न होकर सत्यवस्तु व आत्मवस्तुमें आसक्त करना ही नित्य शान्ति प्राप्तिका उपाय है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरथोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

(भागवत १/२/६)

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना-
मेको ब्रह्मान् यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥

(कठोपनिषद् २/२/१३)

जीव जब देहसुखकी चेष्टा छोड़कर आत्मसुखकी चेष्टा करने लगता है, तब वह सत्य वस्तुमें अभिमानी होकर वास्तव सुख प्राप्त करनेमें सक्षम होता है। देहमें प्रीति व इन्द्रिय सुखकी चेष्टा न करके जीव जब परमात्म वस्तुमें ममत्व बुद्धिसे आसक्त होता है, तब वह सत्याश्रयी होनेके कारण पराशान्ति प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। परन्तु देहाभिमान व देहसुखमें रत होकर, दुःसंगमें रहकर आत्मवस्तु या सत्यवस्तुमें आसक्त होना सम्भव नहीं है। भाग्यफलसे जिनको सत्संग प्राप्त होता है, वे ही आत्मतत्त्वमें आसक्त होनेके योग्य होते हैं।

भक्तिस्तु भगवद्वक्तसङ्गेन परिजायते।
सत्सङ्गः प्राप्यते पुंभिः सुकृतैः पूर्वसञ्चितैः ॥

(बृहत्पारदीय पुराण ४/३३)

महत्सेवां द्वारामाहुर्विमुक्ते-
स्तमोद्वारं योषितां सङ्ग्निसङ्ग्नम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥

(भागवत ५/५/२)

संग प्रभावसे जीवका स्वभाव परिवर्तन होता है। असत्संग द्वारा असद् वस्तुमें आसक्ति एवं सत्संग द्वारा ही सत्संगमें प्रवृत्ति जन्मती है। सिंहशावक यदि शिशुकालसे ही मेषपालमें रहता है, तो तृण भक्षण एवं मेषकी भाँति बोलना सीखता है। उसी प्रकार चोर व्यक्तिके संगफलसे चोर और साधु व्यक्तिके संगमें निवास करनेसे साधु हुआ जा सकता है। मनुष्य यदि देहको आत्मा मानकर मिथ्याश्रयी वृत्तिमें वास करता है, तब वह स्वयं मिथ्याश्रयी होकर सत्यभ्रष्ट होता है। मायामोहित जीव स्वयं आत्मवस्तु है, इसे भूलकर ध्वंसशील देहको ही अपना स्वरूप मानकर विश्वास कर बैठता है, इसे वह स्वयं समझ नहीं पाता है। बहुजन्मोंके ज्ञात एवं अज्ञात हरि-गुरु-वैष्णव सेवाके फलसे साधुसंग प्राप्त होता है। साधुसंगसे ही सत् एवं आत्मवस्तुमें ममत्व बुद्धि जन्मती है—

सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसम्बिदो
भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः।
तज्जोषणादाश्वपवर्गवर्त्मनि -
श्रद्धारतिभक्तिरनुक्रमिष्यति ॥

(भा. ३/२५/१५)

सत्संगमें अवस्थान व वास करने पर श्रद्धासे क्रमशः प्रेमभक्ति प्राप्त होती है। किन्तु बद्धजीव असत्संगमें या देहसुख चेष्टाकारी व्यक्तियोंमें रुचिविशिष्ट होनेके कारण साधुसंगमें रुचिहीन रहता है। किन्तु जिनकी सुकृति सञ्चित होती है, वे ही साधुओंके प्रति आकृष्ट होते हैं। जैसे धर्मसभामें उपस्थित सब व्यक्ति साधुकी वाणी

श्रवण करते हैं, किन्तु श्रवणके बाद सुकृतिहीन व्यक्ति पूर्ववत् स्त्री-पुत्रोंमें ही यत्नवान् रहते हैं, उनमें कोई भी परिवर्तन दिखायी नहीं पड़ता। किन्तु इनमेंसे दो-एक व्यक्ति ही साधुके निकट अधिकतर हरिकथा या आत्मधर्म-कथा सुननेके आग्रही देखे जाते हैं। अतएव इस सुकृतिको ही साधुसंगका मूल कहा गया है। यह सुकृति किस प्रकार अर्जित होती है, उसके उत्तरमें देखा जाता है—जानते हुए या अनजानेमें, इच्छापूर्वक या अनिच्छापूर्वक किसी जीव द्वारा यदि कोई आत्मकल्याणजनक कार्य हो जाता है, उससे जीवकी सुकृति होती है। जैसे एकादशीके दिन खाद्य अभावमें उपवास रहनेसे भी अनिच्छापूर्वक सुकृति एवं भक्तिमूलक फल होता है। किसी साधु व्यक्तिको कुछ दान करनेसे इच्छाकृत सुकृतिका फल होता है। मनुष्यके अतिरिक्त अन्य प्राणियोंमें भी इस प्रकारकी सुकृतिका सञ्चय होता है। गाय दूध देती है, उसका पालनकर्ता दूध पान करता है। किसी दिन उनके गृहमें एक साधु व्यक्ति आते हैं। गृहस्वामी साधुको कुछ दूध प्रदान करते हैं, इससे गृहस्वामी व गायकी भी सुकृति हो जाती है। इस प्रकार सुकृतिपुष्ट जीवकी ही साधुके प्रति श्रद्धा उदित

होती है। इस श्रद्धाको ही प्रेमभक्तिका मूल कहा गया है। श्रद्धा उत्पन्न होनेसे शास्त्रवाक्य एवं साधुवाक्यमें दृढ़ विश्वास जन्मता है। तब वह मिथ्या व मायाका कार्य परित्यागकर सत्यके चरणोंमें आग्रही होता है, अपनेको कृष्णका नित्यदास मानने लगता है एवं उसकी साधुओंके आनुगत्यमें कृष्णसेवाकी इच्छा होती है। परन्तु सुकृतिविहीन व्यक्ति स्त्रीपुत्रादिके प्रति आसक्ति परित्याग करनेमें सक्षम नहीं होता है। सुकृतियुक्त जीवको 'जीवेर स्वरूप हय कृष्णेर नित्यदास' एवं 'श्रीकृष्ण-सेवा करनेसे सभीकी सेवा सम्पादित होती है'—इन बातों पर विश्वास हो जाता है तथा इस विश्वाससे परिचालित होकर माता, पिता, स्त्री, पुत्र, कन्या एवं देह सम्बन्धीय व्यक्तियोंके प्रति कर्तव्य परित्याग करनेकी शक्ति प्राप्त करता है। अतः साधुसंग ही जीवको सत्यमें प्रतिष्ठित करता है।

अतः प्रकृष्ट साधुसंगके फलस्वरूप सत्य वस्तु भगवान्की कथा श्रवणकर मनुष्यकी भगवान्के प्रति प्रीति उत्पन्न होती है। यह भगवत्प्रीति व प्रेम ही जीवका परम धर्म एवं पराशान्ति कहलाता है।

[अनुवादक—श्रीबनवारीलाल व्रजवासी]

गुरुको कोई भी धोखा नहीं दे सकता

[अंविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी द्वारा उनकी आविर्भाव तिथिके अवसर पर प्रदत्त प्रवचन, २४ जनवरी २००१, मुर्विलुम्बा, ऑष्ट्रेलिया]

मैं पहले शिष्योंके कर्तव्योंके विषयमें बता चुका हूँ। मैंने यह बताया था कि गुरु-निष्ठा भक्तिकी रीढ़ है। गुरुनिष्ठाके बिना कोई भी किसी प्रकारकी भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता। किसी दीक्षित व्यक्तिकी यदि गुरुनिष्ठा न हो, तो वह उस अदीक्षित व्यक्तिसे नीच है, जो कि हवनके माध्यमसे दीक्षा नहीं लिया हो लेकिन निष्ठावान् हो।

मैंने इस चीजको देखा है तथा अनुभव भी किया है। श्रीनारायण प्रभु परमपूज्यपाद श्रौति महाराजजीके शिष्य थे। वे हमारे गुरु महाराजजीके प्रति पूर्ण शरणागत थे। वे मन, बुद्धि तथा शरीरके समस्त अङ्गोंके द्वारा उनकी सेवा करते थे। वे हमारे गुरुदेवके साथ सदैव रहते थे, उनसे हरिकथा श्रवण करते थे, उनके सारे उपदेशोंको पालन करते थे। हम सब उनका बड़ा सम्मान

करते थे। परमपूज्यपाद वामन महाराजजी, परमपूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीका मैं जैसे सम्मान करता हूँ, उनको भी ऐसी प्रीति व सम्मान करता था; क्यों? वे तो हमारे गुरुदेवसे दीक्षित नहीं थे, परन्तु दीक्षितसे अधिक थे। वे वास्तव शिक्षा-शिष्य थे। गुरुवाक्यमें निष्ठा तथा उनकी आज्ञाओंका पालन करना ही शिष्यत्वका मुख्य मापदण्ड हैं।

मैं देख रहा हूँ कि अनेक लोग उनके हृदयमें क्या है, उसे छिपा रहे हैं। वे सोच रहे हैं, ‘मेरे गुरुदेव कुछ नहीं जानते, वे निर्बोध हैं, मैं उनको ठग सकता हूँ।’ वे ऐसा सीधा नहीं बोलते, लेकिन ऐसा ही सोचते हैं। वे सोचते हैं कि वे गुरुदेव या शुद्ध भक्तोंको धोखा दे सकते हैं। परन्तु एक शुद्ध भक्तको कोई भी धोखा नहीं दे सकता। जो श्रीकृष्णको वशीभूत कर सकते हैं, आप उन्हें कैसे ठग सकते हैं? यदि वे सद्गुरु हैं, तो उन्हें कोई धोखा नहीं दे सकता या ठग नहीं सकता।

आपलोगोंको गुरुका परिचय जानना चाहिए। श्रीलरघुनाथ दास गोस्वामीने श्रीमनःशिक्षामें ‘न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणं’ श्लोकमें लिखा है—रे मन! तुम शचीनन्दन श्रीचैतन्य महाप्रभुको सर्वदा ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरके रूपमें समझो तथा वे ही वास्तवमें गुरु हैं। श्रीराय रामानन्द प्रभुने श्रीमन्महाप्रभुसे कहा, “मैं आपका एक औजार हूँ। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, वह आपकी प्रेरणा ही है। मुख मेरा है, लेकिन वास्तवमें आप ही बोल रहे हैं।”

कोई अगर कहे—‘मैं श्रीमन्महाप्रभुकी सेवा गोपियोंकी भाँति करना चाहता हूँ। वे मेरे प्रियतम हैं, मैं उनकी प्रेयसी हूँ।’ हम ऐसा कर सकते हैं या नहीं? यह ‘सहजिया’ है। इसे ‘गौराङ्ग-नागरी-वाद’ कहा जाता है, यह अपसिद्धान्त है। हमें ऐसा सोचना भी नहीं चाहिए। श्रीचैतन्य महाप्रभु गुरु हैं

एवं हमें उनके आदेशोंका पालन करना चाहिए।

एक दिन बल्लभ भट्टने श्रीअद्वैताचार्य प्रभुसे कहा, “आपलोग ‘हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम हरे हरे’ का उच्च स्वरसे कीर्तन क्यों कर रहे हैं? प्रत्येक जीव स्त्री है तथा कृष्ण सबके पति हैं। एक सती स्त्रीका कर्तव्य है—अपने पतिका नाम उच्चारण नहीं करना, लेकिन आप सभी कृष्णका नाम कीर्तन कर रहे हैं। यह कैसा धर्म है?”

श्रीअद्वैताचार्य प्रभु बोले, “आपके सामने श्रीचैतन्य महाप्रभु हैं जो धार्मिक नियमोंका मूर्त्तिमान् विग्रह हैं। आप उनसे पुछ सकते हैं। वे आपको सही उत्तर दे सकते हैं।” यह सुनकर श्रीमन्महाप्रभु बोले, “प्रिय बल्लभभट्ट, तुम धार्मिक नियमोंको नहीं जानते हो। वास्तवमें सती स्त्रीका पहला कर्तव्य है—उसके पतिदेवका आदेशका पालन करना। श्रीकृष्णका आदेश है—निरन्तर उनके नामका कीर्तन करना। इसलिए जो सत्यनिष्ठ हैं तथा श्रीकृष्णको पति मानते हैं, उन्हें श्रीकृष्णके नामका कीर्तन करना चाहिए, उन्हें पतिके आदेशकी अवमानना नहीं करनी चाहिए। धार्मिक नियमोंका अनुसरण करते हुए एक शुद्ध कृष्ण-भक्त सर्वदा नाम-कीर्तन करता है जिससे उसे कृष्णप्रेमरूप फल प्राप्त होता है। मेरे पतिदेवने मुझे आदेश दिया है इस महामंत्रका कीर्तन करनेके लिए। उन्होंने बताया है कि तुम इसका आचरण करो, मैं उससे खुश हो जाऊँगा। मुझे उनको खुश करना है, इसलिए उनके निर्देशानुसार सेवा करनी है।”

यह सुनकर बल्लभ भट्टके मुखसे एक भी शब्द नहीं निकला।

इससे पहले बल्लभ भट्टने श्रीमन्महाप्रभुको कहा था—मैंने कृष्णनामकी विशद् रूपसे व्याख्या की है। दयापूर्वक इन व्याख्याओंको श्रवण कीजिए।

श्रीमन्महाप्रभुने उत्तर दिया—मैं श्रीकृष्णके पवित्र

नामका भिन्न-भिन्न अर्थ ग्रहण नहीं करता। मैं केवल इतना ही जानता हूँ कि कृष्ण श्यामसुन्दर तथा यशोदानन्दन हैं। कृष्णनामका भावार्थ यह है कि वे तमालवृक्ष की भाँति एवं घनश्याम वर्णवाले हैं तथा मैया यशोदाके पुत्र हैं। यही समस्त शास्त्रोंका उपसंहार है। मैं इन दोनों नामोंको ही जानता हूँ—श्यामसुन्दर एवं यशोदानन्दन। मैं दूसरे अर्थोंको नहीं समझता, तथा उन्हें समझनेके लिए मेरी शक्ति भी नहीं है।

बल्लभ भट्टने जो कहा, श्रीमन्महाप्रभुने उसका ऐसा सरल उत्तर दिया, जिससे वह चुप हो गया। वह श्रीमन्महाप्रभुको पराजित कर अपना यश विस्तार करना चाहता था। वह कितना योग्य है, कितना विज्ञ है—इसे दिखाना चाहता था। लेकिन श्रीचैतन्य महाप्रभु जगद्गुरु हैं। इसलिए उन्होंने जो आदेश दिये हैं, जो शिक्षाएँ दी हैं, हमें उन सबका अनुसरण करना चाहिए।

श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—कृष्णके नामका कीर्तन करो, 'हरे कृष्ण' कीर्तन करो। वास्तवमें श्रीकृष्णने ही श्रीमन्महाप्रभुके रूपमें यह आदेश दिया है। यह समझो कि श्रीचैतन्य महाप्रभु गुरु हैं। वे राधाभावमें स्वयं कृष्ण हैं। इसको जानना बहुत आवश्यक है। क्या कोई ऐसा है, जो श्रीमन्महाप्रभुके ज्ञानको आवृत कर सकेगा? क्या श्रीमन्महाप्रभुसे कोई भी चीज गोपन रखी जा सकती है? जिनके हृदयमें ये गुरु, श्रीमन्महाप्रभु विराजमान हैं, वे ठगबाजी या धोखेबाजीमें पड़ नहीं सकते। जो उन्हें धोखा देनेके लिए चेष्टा करेगा, वह स्वयं धोखेमें पड़ जाएगा। हमें गुरु या वैष्णवोंको ठगनेका प्रयास नहीं करना चाहिए।

हमें गुरुदेवके मनोभीष्टोंको जानना चाहिए। जो गुरुदेवकी बाह्य तथा आन्तरिक इच्छाओंको समझता है, वह सेवक है। कोई सेवक एक आदेश ग्रहण करता है, किन्तु उसे कार्यकारी करनेमें पीछे हटता है, वह कहता है, 'हे गुरुदेव,

मैं यह कैसे कर सकूँगा?' गुरुदेव बोले—'जाओ, एक गिलास पानी ले आओ।' वह बोलने लगा—'गुरुदेव, यदि पानी नहीं मिला तो क्या करूँ? गिलास धोऊँ या नहीं? गरम पानी लाऊँ या ठण्डा?' ऐसा व्यक्ति सेवक नहीं है। जो आदेश पालन करनेसे सीधा मना कर देता है, वह सेवक नहीं है, एक बक है। हम वास्तव अर्थमें एक सेवक बननेका प्रयास करें जैसे—गोविन्द (श्रीमन्महाप्रभुके सेवक), जीव गोस्वामी, श्रीश्यामानन्द प्रभु, श्रीलनरोत्तम दास ठाकुर, श्रीश्रीनिवास आचार्य आदि। हमें प्रभुपाद श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जैसा सेवक बनना चाहिए जो श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजजीके सेवक थे। हमें अपने गुरुदेवकी भाँति शिष्य बनना चाहिए। उन्होंने अपने गुरुदेवकी इच्छापूर्तिके लिए अपने जानकी बाजी लगायी।

इस प्रकार आपलोग यदि भक्ति चाहते हैं, तो आपमें निष्ठा होनी चाहिए, तब कृष्णकी कृपा आप लाभ कर सकते हैं।

सभी शास्त्रोंने गुरुदेवकी महिमा गान की है। श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने श्रीगुर्वाष्टकम् लिखा है। इसके प्रारम्भसे अन्ततक प्रत्येक श्लोकमें उन्होंने गुरुदेवकी महिमाका गान किया है। मैंने इन श्लोकोंके विषयमें जर्मनीमें कुछ वर्णन किया था। 'संसार दावानल लीढ़ लोक त्राणाय कारुण्य धनाधनत्वम्' का विशेष रूपमें वर्णन किया था। गुरुदेव श्रीकृष्णकी कृपाका घनीभूत विग्रह हैं। वे क्या करते हैं? 'श्रीविग्रहाराधन नित्य नाना'—वे सर्वदा श्रीविग्रहोंकी अर्थात् स्वयं राधाकृष्णकी सेवा करते हैं। नैवेद्य प्रस्तुति, अर्चन, श्रवण, कीर्तन, स्मरण इत्यादिके द्वारा वे श्रीविग्रहोंकी प्रत्यक्ष सेवा करते हैं। वे चार प्रकारके नैवेद्य या भोग श्रीकृष्णको अर्पण करते हैं तथा भक्तोंके साथ उनके प्रसादकी सेवा करते हैं। वे अकेले प्रसाद-सेवा नहीं करते। 'श्रीसाधिका-

माधवयोरपार'—वे श्रीराधाकृष्णके नाम, रूप, गुण, लीला आदिके माधुर्यका आस्वादन करनेके लिए अत्यन्त आग्रही हैं। और आगे '**निकृज्जयूनो रतिकलेसिद्धै'** श्लोक गुरुदेवके अति गोपनीय तथा महान् गुणको प्रकाश करता है, जिसके लिए पर श्लोकमें '**साक्षाद्वितिरत्वेन**' कहा गया है। वे हरि नहीं हैं, अपितु '**हरित्वेन**' हैं। श्रीहरिके समस्त गुण उनमें प्रकाशित हैं। वे श्रीकृष्ण नहीं हैं या श्रीमन्महाप्रभु नहीं हैं, लेकिन श्रीकृष्ण और श्रीमन्महाप्रभुके सब गुण उनमें विद्यमान हैं। वे राधाकृष्ण युगलके निगूढ़ नित्य सेवक हैं।

अनेक लोगोंने प्रश्न किया है—“यदि किसी गुरुने किसी शिष्यको दीक्षा प्रदान की तो दूसरे जन्ममें वे ही उसके गुरु होंगे या कोई दूसरे होंगे?” यदि गुरु प्रामाणिक तथा योग्य नहीं हैं, उन्होंने अपने स्वरूपकी उपलब्धि नहीं की है तथा यदि वे उत्तम-अधिकारी नहीं हैं, तो वे बदल सकते हैं। श्रीकृष्ण उसकी व्यवस्था करेंगे। यदि वे कनिष्ठ अधिकारी हैं, एक पथप्रदर्शक गुरु हैं, अनुभूतिसम्पन्न नहीं हैं तो वे परिवर्तित हो जाएँगे। सद्गुरु परिवर्तित नहीं होते। वे अपने निष्कपट तथा निष्ठावान् शिष्योंकी सब समय सब प्रकारकी सहायता करते हैं।

उनके बहुत कपड़े हैं। वे कभी भी अपने कपड़े बदल सकते हैं, लेकिन उनका व्यक्तित्व सब समय समान रहता है। श्रीचैतन्य महाप्रभु आए, लेकिन वे श्रीकृष्ण थे। श्रीमती राधिका श्रीगदाधर पण्डितके रूपमें आई। ठीक वैसे ही गुरु भिन्न-भिन्न नहीं हैं, एक हैं। वे कभी-कभी बाहरी रूपसे बदल सकते हैं—कभी मुण्डित अवस्थामें, कभी सफेद कपड़में, कभी संन्यास वेशमें, परन्तु उनके व्यक्तित्वमें अभेद है।

मैं क्या कह रहा हूँ, इसे समझनेका प्रयास करो। कोई पुरुष रूपमें श्रीमती राधिकाकी सेवा नहीं कर सकता। इसलिए जब गुरुदेव

श्रीराधाकृष्ण-युगलकी सेवामें रत हैं, तब वे गोपी रूपमें हैं। इसलिए गुरु-मन्त्रमें '**कृष्णानन्दाय धीमहि**' एवं '**प्रचोदयात्**' कहा गया है। शिष्य प्रार्थना कर रहा है, “श्रीराधाकृष्णकी आप किस प्रकार सेवा कर रहे हैं, कृपया प्रकाश कीजिए।” तब वे उनको प्रकाशित कर सकते हैं। इसके अलावा इन सब तत्त्वोंको जाननेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

नारद कभी-कभी मधुमङ्गलके रूपमें आते हैं, लेकिन उनसे अभिन्न हैं। वे अनेक रूपोंमें आते हैं, कभी श्रीवास पण्डितके रूपमें, कभी नारदीय-गोपीके रूपमें इत्यादि। यदि किसीने अनुभव किया है कि गुरुदेव कौन हैं तथा गुरुदेव उसके निकट प्रकाशित हैं, तो वे कभी बदल नहीं सकते। वे गुरु ही आपकी सहायता करेंगे। उनके कपड़ेसे चिन्तित मत होओ।

यदि कोई वास्तवमें गुरु हैं, चाहे वे मध्यम-उत्तम स्तरका ही भक्त क्यों न हों, तब भी भगवान् श्रीकृष्ण या श्रीमन्महाप्रभुकी कृपाशक्ति उनके माध्यमसे कार्य करेगी, क्योंकि वे उनके प्रतिनिधि हैं। श्रीकृष्णने उन्हें भेजा है।

यदि किसीने किसी साधारण व्यक्तिको, अयोग्य व्यक्तिको भी गुरु रूपमें ग्रहण किया है, जैसा कि कुलगुरु अथवा यदि शिष्यकी यह धारणा है कि ‘मेरे गुरु कृष्ण हैं’ एवं उसकी सांसारिक कामनाएँ हैं, तो वे कामनाएँ पूरी हो जाती हैं। कैसे? इसका कारण है कि वह गुरुदेवको श्रीकृष्ण समझता है। यदि उसकी कामनाएँ पूरी नहीं होगी, तो निन्दा श्रीकृष्णकी होगी। इसलिए श्रीकृष्णको उसकी आशाओंकी पूर्ति करनी पड़ेगी। शिष्यको नैष्ठिक होना पड़ेगा, चाहे उसके गुरु कुल-गुरु ही क्यों न हों। बिना निष्ठाके उसे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। श्रील सनातन गोस्वामीने लिखा है कि यदि कोई एक सूखे हुए तिनकेको भी कृष्ण समझकर पूजा करता है, तो उसे कुछ न

कुछ मिलेगा ही।

जो भी हो, आपलोगोंको गुरु एवं वैष्णवोंका आदर करना चाहिए। वैष्णवोंका सम्मान करो, अन्यथा गुरुदेवकी सेवा नहीं कर सकोगे।

विचित्रा देवी दासी—श्रील प्रभुपाद भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके अनेक शिष्य थे। कुछ शिष्य आत्मानुभूति मार्गमें पूर्ण प्रगति नहीं कर सके, तो अगले जनममें वे किनके आश्रयमें रहेंगे?

श्रीलमहाराजजी—श्रील प्रभुपाद आएँगे। किसी भी रूपमें वे आएँगे। श्रीबृहद् भागवतामृतमें इसका वर्णन है। गोपकुमारके गुरु अनेक जन्मों तक उनके पास आते रहते थे। अन्तमें वे बोले, “मैं अपने हृदयसे तुम्हें आशीर्वाद करता हूँ कि तुम अभी अति शीघ्र गोलोक वृन्दावनको जाओ।” गोपकुमारने तब देखा कि उसी समय ही वे गोलोक वृन्दावनकी तरफ जा रहे हैं।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

भगवत् आवेशकी अवस्थामें भक्तोंको वरदान

श्रीवासजीको वरदान

अब प्रभु संतुष्ट होकर श्रीवासजीसे बोले—“श्रीवास ! क्या तुम्हें स्मरण है, वह दिन जब आप देवानन्द पण्डितके पास भागवत सुनने गये थे तथा भागवत सुनते-सुनते प्रेममें आविष्ट होकर जोर-जोरसे रोते-रोते सभाके बीचमें ही मूर्ढ्छित होकर गिर पड़े थे, तब देवानन्दके भक्तिशून्य अबोध शिष्योंने आपके भावोंको न जानकर तथा कोई पागल समझकर आपको दरवाजेके बाहर पटक दिया था। उस समय स्वयं देवानन्द पण्डित भी यह सब देखता रहा, परन्तु उसने अपने शिष्योंको ऐसा करनेसे रोका नहीं, क्योंकि यद्यपि वह भागवत पाठ करता था, परन्तु उसके हृदयमें भी भक्तिका लेशमात्र नहीं था। वह तो पाठ करता था केवल मान-सम्मान अथवा धन-सम्पत्ति प्राप्त करनेके लिए। इसलिए वह भी आपके हृदयके भावोंको समझ न पाया क्योंकि एक वैष्णव ही वैष्णवके हृदयके भावोंको समझ सकता है, दूसरा कोई नहीं। इस प्रकार कुछ क्षण पश्चात् जब आपको होश आया तो आप बहुत दुखी होकर एकान्त स्थान पर जाकर रोने लगे। परन्तु फिर से आपकी इच्छा भागवत सुननेकी हुई।

उस समय आपका दुःख मैं सह न पाया तथा वैकुण्ठसे आपके हृदयमें आविर्भूत हो गया। इस प्रकार आपके हृदयमें बैठकर मैंने आपको अपनी लीलाओंकी अनुभूति कराई थी यह सुनकर तथा प्रभुकी कृपाके स्मरण कर श्रीवास पण्डित आनन्दसे नाचने लगे।

गङ्गा दास पर कृपा

इसके बाद प्रभु श्रीगौरसुन्दर गङ्गा दाससे बोले—“गङ्गादास ! क्या तुम्हें याद है वह रात, जब तुम मुसलमान राजाके भयसे गँव छोड़कर अपने सारे परिवारको लेकर भाग रहे थे, परन्तु गङ्गाके किनारे पहुँचते-पहुँचते रात हो जानेके कारण वहाँ पर तुम्हें एक भी नाव नहीं मिली। तब तुमने अपने मनमें विचार किया कि अभी कुछ ही देरमें राजाके सिपाही आकर हमें पकड़ लेंगे तथा मेरी आँखोंके साथ सामने ही मेरे परिवारकी लियोंके साथ दुर्व्यवहार करेंगे। अतः इससे पहले कि वे ऐसा दुष्कर्म करें, मैं गङ्गामें कूदकर आत्म हत्याकर लूँगा। ऐसा सोचकर जैसे ही तुमने गङ्गामें कूदना चाहा, उसी समय मैं स्वयं एक नाविकके रूपमें एक नौकाको चलाते हुए तुम्हारे सामने पहुँच गया।

अपने सामने ही एक नौका देखकर तुम्हारी प्रसन्नताकी सीमा न रही तथा तुम बहुत करुण स्वरमें मुझसे कहने लगे—‘हे भाई! आज मेरी जाति, प्राण, धन, सब कुछ तुम्हारे हाथोंमें है। अतः कृपाकर तुम मुझे सपरिवार गङ्गा पार करा दो। मैं तुम्हारा उपकार जीवन भर नहीं भूलूँगा तथा तुम्हें मुँहमाँगा पुरस्कार दूँगा।’ तुम्हारी ऐसी करुण प्रार्थना सुनकर मैं तुम्हें तथा तुम्हारे सारे परिवारको गङ्गा पार कराकर अपने धाम वैकुण्ठको चला गया।” यह सुनकर गङ्गादास आनन्दसे मूर्छ्छत ही हो गये।

श्रीधरपर कृपा

उसी समय प्रभुने भक्तोंको आदेश दिया कि शीघ्र ही श्रीधरको बुलाकर ले आओ। वह सदा-सर्वदा रोते-रोते मेरा भजन करता रहता है तथा मेरा दर्शन करनेके लिए उत्कण्ठित रहता है। अतः आज यहाँ आकर वह अपनी अभिलाषा पूर्ण करे। मेरा दर्शन करे।” यह सुनकर सभी भक्तवृन्द श्रीधरको बुलानेके लिए चल पड़े। अभी वे आधे रास्तेमें ही पहुँचे थे कि उन्हें श्रीधरकी आवाज सुनाई दी। वे जोर-जोरसे नाम-संकीर्तन कर रहे थे। यह सुनकर वैष्णवलोग जहाँसे आवाजें आ रही थीं, उस दिशामें चल पड़े। कुछ ही दूरी पर देखा कि वे निर्जनमें बैठकर जोर-जोरसे रोते-रोते हरिनाम कीर्तन कर रहे हैं। यह देखकर सभी लोग उनके पास गये उनसे बोले—“श्रीधरजी! चलिए आपको प्रभुने बुलवाया है।” प्रभुका नाम सुनते ही श्रीधर आनन्दसे मूर्छ्छत हो गये। जल्दीसे भक्तोंने उन्हें उठा लिया तथा प्रभुके पास लाकर उनके चरणोंमें रख दिया। अपने चरणोंके निकट श्रीधरको देखकर प्रभु प्रसन्न हो गये तथा प्रेमसे कहने लगे—“श्रीधर आओ। तुमने अनेकों जन्मों तक मेरी आराधना की। कितनी ही बार मेरा प्रेम प्राप्त करनेके लिए भजन करते-करते देह छोड़ा। इस जन्ममें भी तुमने मेरी बहुत सेवा की। मैं सब

समय तुम्हारे दिये हुए केले, मूली, थोड़ (केलेका फूल) आदि ही खाता हूँ। क्या तुम भूल गये कि जब मैं व्याकरणका छात्र था, उस समय मैं तुम्हारी दुकानमें आया करता था। तुमसे झगड़कर भी तुमसे केले, मूली आदि ले लिया करता था तथा पैसे भी नहीं देता था। परन्तु तुम मुझे पहचान नहीं पाते थे। तुम्हें याद होगा कि मैंने तुमसे कहा था कि मैं एक दिन जगतको दिखाऊँगा कि तुम कितने धनी हो। अतः अब तुम मेरे स्वरूपका दर्शन करो। मैं तुम्हें अष्ट सिद्धियाँ प्रदान करूँगा।” यह सुनकर जैसे ही श्रीधरने सिर उठाकर प्रभुकी ओर देखा तो प्रभुके दिव्य स्वरूपके दर्शन किए। उस समय उन्होंने श्रीगौरसुन्दरको श्यामवर्णमें देखा, उनके हाथोंमें वंशी थी, उनके दाहिनी ओर बलरामजी विद्यमान थे। लक्ष्मीजी उनके हाथमें ताम्बुल (पान) अर्पणकर रही थी तथा चतुर्मुख ब्रह्मा, शिव आदि सभी देवता हाथ जोड़कर उनकी स्तुती कर रहे थे। यह देखते ही श्रीधर विस्मित हो गया तथा मूर्छ्छत होकर भूमिपर गिर पड़ा। यह देखकर प्रभु बोले—“उठो श्रीधर, उठो।” यह सुनते ही जब श्रीधरकी मूर्छा दूर हो गई। तो प्रभु बोले—“श्रीधर! तुम मेरी स्तुती करो।”

श्रीधर—“प्रभो! मैं तो एक मूर्ख व्यक्ति हूँ। आपकी स्तुती करनेका सामर्थ्य मुझमें कहाँ है?”

प्रभु—“श्रीधर! तुम्हारे जैसे भक्तका बोलना ही स्तुती है।” उसी समय प्रभुकी आज्ञासे जगन्माता सरस्वती देवी श्रीधरकी जिह्वापर विराजमान हो गई। अब तो श्रीधर अत्यन्त सुन्दर ढंगसे प्रभुकी स्तुती करने लगे—“हे प्रभो! आप तो वेदोंके लिए भी गोप्य हैं अर्थात् वेद भी आपको जाननेमें पूर्ण रूपसे समर्थ नहीं हैं। आप प्रति युगमें धर्मकी रक्षा करनेके लिए अलग-अलग रूपोंमें आते हैं। आप ही राम हैं, आप ही नृसिंह, आप ही कुर्म हैं आदि। हे प्रभो! मुझे याद है एक बार आपने मुझसे कहा था कि तुम्हारी आराध्या गङ्गा मेरी चरणोंसे निकली है। परन्तु

मेरा चित्त पापोंसे कलुषित होनेके कारण मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। परन्तु आपकी ही कृपासे अब मैं समझ गया हूँ कि जिन्होंने अपनी मनोहारी लीलाओंके द्वारा गोकुल नगरीको धन्य किया था, वे आप ही हैं तथा अभी इस नवद्वीपको धन्य करनेके लिए अवतरित हुए हैं। आप भक्तिके अधीन हैं। भीष्मने अपनी भक्तिके बलसे ही रणभूमिमें आपको हरा दिया था। भक्तिके बलसे ही माता यशोदाने आपको बाँध दिया था। भक्तिके वश होकर ही अनन्त ब्रह्माण्डोंका लय-प्रलय करनेवाले आपने श्रीदाम नामक अपने गोप सखाओंको कथेपर बैठाकर ढोया।” इस प्रकार श्रीधर निरन्तर प्रभुकी स्तुती करते जा रहे थे। यह देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी वैष्णवोंको बहुत आश्चर्य हुआ। क्योंकि वे सभी सोचते थे कि यह श्रीधर एक अनपढ़ सब्जी बेचने वाला है। श्रीधर ऐसा भक्त होगा ऐसा किसीने कल्पना भी नहीं की थी, परन्तु आज उसके उपर प्रभुकी ऐसी कृपा देखकर सभीको आश्चर्य हुआ। प्रभु मुस्कराते हुए कहने लगे—“श्रीधर! तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँगो। आज मैं तुम्हें सभीके सामने अष्ट-सिद्धियाँ दान करूँगा।”

श्रीधर—“प्रभो! आप मुझे फिरसे ठगनेकी चेष्टा कर रहे हैं। परन्तु अब मुझे ठगना आपके लिए असम्भव है।”

प्रभु (मुस्कराते हुए)—“परन्तु श्रीधर मेरा दर्शन व्यर्थ नहीं जाता। इसलिए तुम्हारे मनमें जो हो माँग लो।”

इस प्रकार जब प्रभु बार-बार वर माँगनेको कहने लगे तो श्रीधर बोले—“प्रभु यदि आप मुझे वर देना ही चाहते हैं तो यही वर दीजिए कि जो ब्राह्मण मुझसे केले, मूली, थोड़ आदि छीन लिया करता था, वहीं ब्राह्मण जन्म-जन्मान्तरोंमें मेरा प्राणनाथ हो जाए।” ऐसा कहते-कहते श्रीधरका प्रेम बढ़ने लगा तथा उसका हृदय द्रवित हो गया तथा वे दोनों भुजाओंको उठाकर जोर-जोरसे रोने लगे। श्रीधरकी

भक्ति देखकर सभी वैष्णव लोग भी क्रन्दन करने लगे। यह देखकर प्रभु बोले—“सुनो श्रीधर! मैं तुम्हें एक चक्रवर्ती सम्राट बना देता हूँ।”

श्रीधर—“प्रभो! मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं यही चाहता हूँ कि मैं सब समय आपका नाम गाता रहूँ। प्रभु—“श्रीधर! तुम तो मेरे नित्य दास हो। इसका लक्षण यही है कि मेरे भक्तको भक्तिके अतिरिक्त कोई भी वस्तु अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकती। इसलिए मैं वेदोंके लिए भी दुर्लभ भक्तियोग तुम्हें दे रहा हूँ।” यह सुनकर सभी वैष्णव लोग प्रभु एवं श्रीधर दोनोंकी जय जयकार करने लगे।

मुरारी गुप्त पर कृपा

श्रीधरपर कृपा करनेके बाद प्रभु मुरारीगुप्त जो हनुमानके अवतार हैं, उनसे कहने लगे—“मुरारी! तू मेरे स्वरूपका दर्शन कर।” प्रभुके यह कहते ही मुरारी को श्रीगौरसुन्दर रामचन्द्रके रूप दीखने लगे। उस समय उनका वर्ण दुर्वादलकी भाँति श्याम वर्णका था। वे वीर आसनमें बैठे हुए थे। उनके हाथोंमें धनुष सुशोभित हो रहा था। उनके बायीं ओर सीताजी एवं दार्यों ओर लक्ष्मणजी विराजमान थे। चारों ओर से बानर एवं भालू इत्यादि उनकी स्तुती कर रहे थे। यह देखते ही मुरारी हनुमानके भावमें आविष्ट होकर मूर्छ्छत होकर गिर पड़े। यह देखकर प्रभु विश्वभर कहने लगे—“अरे बानर! क्या तू सब भूल गया—सीता चोर रावणने तेरी पूँछमें आग लगाई थी तथा तूने उसकी सारी सोनेकी लंकाको जलाकर भस्मकर दिया था? मैं तेरा प्रभु हूँ। मुरारी! उठो, उठो। तुम तो मुझे प्राणोंसे भी प्यारे हो। मैं वही राघवेन्द्र राम तथा तुम हनुमान हो। इन सुमित्रानन्दन लक्ष्मणको देखो, जिसे जीवित करनेके लिए तुम गन्धमादन पर्वतको ले आये थे। और ये जानकीजी हैं, इन्हें प्रणाम करो, जिन्हें अशोक वाटिकामें दुःखी देखकर तुम बहुत रोये थे।” प्रभुके वचनोंको सुनकर मुरारी गुप्तकी मूर्छा दूर हो गई तथा वे उस दृश्यको

दर्शनकर इस प्रकार प्रेमसे अधीर होकर रोने लगे कि उनका करुण क्रन्दन सुनकर तो सुखी हुई लकड़ी भी द्रवित हो गई। उन्हें रोता हुआ देखकर प्रभुका हृदय भी द्रवित हो गया। वे बहुत प्रेमसे कहने लगे—“मुरारी! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ तुम मुझसे कुछ भी माँगो।” मुरारी—“प्रभो! मुझे और कुछ नहीं चाहिए। बस आप मुझे यही वरदान दीजिए कि मैं सदा-सर्वदा आपका गुणगान करता रहूँ। जहाँ कहीं पर भी मेरा जन्म हो, वहाँ पर मुझे आपका स्मरण सब समय बना रहे तथा सर्वदा आपके दासोंका संग मिलता रहे। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँ पर भी आप अपने समस्त पार्षदोंके साथ अवतरित होंगे, वहीं पर मैं भी आपका दास होकर

आपकी सेवा करूँगा।” यह सुनकर प्रभु बोले—“मुरारी! मैं तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हूँ। इसलिए मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम सब समय मेरे प्रिय रहोगे।” यह सुनकर वैष्णववृन्द आनन्दसे जय-जयकार करने लगे। तब प्रभु सभी से कहने लगे—“सभी लोग ध्यानपूर्वक सुनें। यदि कोई व्यक्ति एक बार भी मुरारीकी निन्दा करेगा—तो करोड़ों बार गङ्गा स्नान करनेपर अथवा हरिनाम करनेपर भी उसका कल्याण नहीं होगा। बल्कि गङ्गा एवं हरिनाम ही उसका संहार कर डालेंगे। क्योंकि इसके हृदयमें मुरारी (कृष्ण) गुप्त रूपसे निवास करते हैं। इसीलिए इसका नाम मुरारी गुप्त है।

(क्रमशः)

विविध संवाद

प्राच्य और पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणी प्रचार

श्रीलमहाराजजी Hawaii में प्रचार समाप्त कर New Zealand में पहुँचे, २६-१-२००२ से २-२-२००२ तक Auckland स्थित श्रीराधाकृष्ण मन्दिर एवं भारतीय मन्दिरमें प्रधान आलोचनाका विषय था—सनातन धर्म और श्रीगोपालभट्ट गोस्वामीके तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें उनके अप्राकृत जीवन चरित्र एवं वैष्णव धर्ममें उनका अवदान अथवा वैशिष्ट्य। श्रीलसनातन गोस्वामीजीके आदेशके अनुसार उन्होंने दक्षिण भारतसे वैष्णवी स्मृतिके विभिन्न विषय ग्रहणकर श्रीसत्क्रियासार दीपिका व संस्कार दीपिका, श्रीहरिभक्तिविलास आदि ग्रन्थोंकी रचना की। ऐसा कहा जा सकता है कि उनसे पूर्व वैष्णव साहित्यमें दश संस्कारोंमेंसे कोई भी वैदिक नियमोंके अनुसार यथायथरूपमें प्रचलित नहीं था। श्रीलजीव गोस्वामी प्रणीत षट्सन्दर्भ, जो लोग वर्तमान देख रहे हैं, श्रील भट्टगोस्वामीजीने यह कारिका रूपमें लिखा था। परवर्ती कालमें श्रीलजीव गोस्वामीने इसे विषयानुसार सजाकर अपनी टीकाके साथ

प्रकाशित किया। श्रीलगोपालभट्ट गोस्वामीजीकी भक्तिके वशीभूत होकर उनकी सेवा यथायथरूपमें ग्रहण करनेकी अभिलाषासे शालग्रामशिलाने श्रीराधारमणजीके रूपमें आत्मप्रकाश किया। उन श्रीविग्रहमें श्रीगौड़ीय वैष्णवोंके आराध्य सम्बन्ध, अभिधेय और प्रयोजन तीनों तत्त्वोंके दर्शन आज भी विद्यमान हैं। ३-२-२००२ से ९-२-२००२ पर्यन्त श्रीलमहाराजजी Fiji में रहे तथा वहाँका प्रधान आलोच्य विषय था—‘सनातन धर्म’ तथा ‘योग किसे कहते हैं। योग शब्दकी व्याख्या करते हुए श्रीलमहाराजजीने कहा—भगवद् विमुख जीवोंको किसी भी प्रकारसे भगवान्‌के प्रति उन्मुख कर उनसे युक्त करना ही योग है। विभिन्न स्थान एवं शास्त्रोंमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, हठयोग आदि देखनेको मिलते हैं। लेकिन प्रेमपुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरिने इन समस्त योगोंको ‘बाह्य’ रूपमें प्रतिपादित किया है एवं श्रीमद्भागवतमें भी इनका हेयत्व प्रतिपादित कर तिरस्कृत किया गया है। वर्तमान समयमें प्राच्य एवं पाश्चात्य जगतमें

Park में जाकर शरीरकी कुछ कसरत एवं कृत्रिम भावसे हाहा, हिहि करनेको ही योग समझते हैं। किन्तु यह बिल्कुल भी योग नहीं है, योगका विकृत रूप मात्र है। सर्वमान्य शास्त्र श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीभगवान्‌की मुखनिःसृत वाणीमें कर्मयोग, ज्ञानयोगकी बातें रहने पर भी चरम तात्पर्य भक्तियोग ही देखा जाता है।

श्रीलमहाराजजी Fiji में प्रचार समाप्त कर भक्तोंके साथ आष्ट्रेलिया पहुँचे तथा उन्होंने १०-२-२००२ से २८-२-२००२ तक श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी शाखा मठ श्रीगिरिराज गौड़ीय मठ, Murwillumbah, Brisbane, Cessnock, Sydney आदि स्थानोंमें प्रचार किया। आष्ट्रेलिया प्रचारमें आलोचनाके प्रधान-प्रधान विषय थे—श्रीवसन्त पञ्चमी, श्रीविष्णुप्रियादेवी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर, श्रीमद् अद्वैताचार्य, श्रीमध्याचार्य एवं श्रीमद् नित्यानन्द प्रभुजीके जीवन चरित्रोंकी विशद् रूपमें आलोचना। श्रीगौरशक्ति विष्णुप्रियाजीके सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजीने कहा—ये भक्तिदेवीकी मूर्तिमान प्रतीक, भूशक्तिकी अवतार हैं। किस प्रकार भक्ति की जाती है, भक्तिमें आविष्टता अत्यन्त प्रयोजनीय है—यह उन्होंने अपने चरित्रके माध्यमसे शिक्षा दी है। श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके साधक एवं सिद्धरूप दोनों विषयों पर आलोचना होनेपर भी उनके साधक चरित्रके ऊपर विशेष जोर दिया गया है। भजन करनेके लिए श्रील दास गोस्वामीकी भजन पद्धतिका अनुसरण किये बिना अन्य कोई भी वास्तव उपाय नहीं है। किस प्रकार वैष्णवोंको सम्मान किया जाता है, उन्होंने स्वरूप दामोदर, श्रीलरूप और श्रील सनातन गोस्वामीके आनुगत्यमें रहकर जगतको शिक्षा प्रदान की है। वैष्णवधर्म आनुगत्यमयी धर्म है—यह उन्होंने पद-पद पर दिखलाया है। भजन आरम्भ करने पर साधकके मनमें क्या-क्या भाव व दशाँ उपस्थित होती

हैं, श्रील चक्रवर्ती ठाकुरजीने उनके माधुर्यकादम्बिनी ग्रन्थमें उत्साहमयी, घनतरला, व्यूढविकल्पा, विषयसङ्ग्रह, नियमाक्षमा, तरङ्गरङ्गनीके रूपमें स्पष्टरूपसे व्याख्या करके दिखाया है। इन समस्त अनर्थोंके दूर होनेपर भी निष्ठा प्रकट होनेके पूर्व साधकको और कुछ दशाँ अतिक्रम करनी पड़ती हैं, जैसे लय, विक्षेप, अप्रतिपत्ति, कषाय, रसास्वाद। निष्ठा, रुचि आदिमें साधककी मनोवृत्ति किस रूपमें होती है, श्रील चक्रवर्ती ठाकुरने सुन्दर रूपसे दिखलाया है। इन समस्त विषयोंको अच्छी तरह जानकर यत्नपूर्वक भक्तिराज्यमें प्रवेश करना होगा।

श्रीमद् अद्वैताचार्यजीके सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजीने कहा—वे, श्रीहरि या भगवान् तत्त्वगत अभिन्न होनेके कारण ‘अद्वैत’ एवं भक्तिशिक्षक होनेके कारण ‘आचार्य’ हैं। साधारण रूपसे देखा जाता है, समस्त अवतारण यहाँ तक कि स्वयं अवतारी भी युगके शेष भागमें जगतमें अवतरित होते हैं। किन्तु प्रेमपुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरिके सम्बन्धमें इसका व्यतिक्रम देखा जाता है। श्रीअद्वैताचार्यकी आराधनासे सन्तुष्ट होकर श्रीमन्महाप्रभु कलिकी प्रथम सन्ध्यामें अवतीर्ण हुए हैं, इसलिए हमारे पूर्व-पूर्व आचार्यगणने श्रीमद् अद्वैताचार्यकी वन्दना की है—

वन्दे आचार्यमद्वैतं भक्तावतारपीश्वरम्।

यस्य ज्ञात्वां मनोवृत्तिं चैतन्योऽवतरेदुवि॥

भक्तावतार श्रीमद् अद्वैताचार्यकी मैं वन्दना करता हूँ जिनका हृदयगत भाव जानकर श्रीशचीनन्दन गौरहरि जगतमें अवतीर्ण हुए हैं। शुद्ध वैष्णवजनोंका किस प्रकार सम्मान किया जाता है, नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुरजीको प्रथम श्राद्धपात्र प्रदान कर उन्होंने जगतको शिक्षा प्रदान की।

श्रीमन्त्यानन्द प्रभुजीके सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजीने कहा—(१) जो सदा सर्वदा नित्यवस्तुमें व नित्यवस्तुकी सेवामें आनन्दित रहते हैं एवं

आश्रितजनको अकातर नित्यवस्तुकी सेवा प्रदान करते हैं, वे ही श्रीनित्यानन्द हैं। (२) श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी कहते हैं, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र अनुज लक्ष्मणसे कुछ हृदय विदारक सेवा कराते थे, जिन्हें लक्ष्मणजीको न चाहते हुए भी छोटा भाई होनेके कारण करना पड़ता था, जैसे सीतादेवीको बनवास देना आदि। अतः उन्होंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि भविष्यमें अनुजके रूपमें न आकर अग्रज रूपमें ही आऊँगा, जिससे मुझको ऐसे आदेशोंका पालन नहीं करना पड़ेगा, बल्कि मैं ही आदेश प्रदान करूँगा। इसलिए द्वापरयुगमें अग्रज भ्राता श्रीबलदेवके रूपमें एवं कलियुगमें अग्रज नित्यानन्दके रूपमें अवतीर्ण हुए। (३) नित्यानन्दप्रभु जगतके जीवोंका उद्धार करके भगवद् पादपद्मोंमें पहुँचानेके लिए सर्वदा ही आतुर हृदय रहते हैं। जगाई-माधाईका उद्धार इसका प्रकृष्ट उदाहरण है। वे मार खाकर भी प्रेम प्रदान करते हैं। पतित जीवोंके प्रति करुणाद्र हृदयका अनुभव कर श्रीचैतन्यभागवत प्रणेता श्रीलवृन्दावनदास ठाकुर लिखते हैं—

यथेष्टं रे श्रातः! कुरु हरिहरि-ध्वानमनिशं
ततो वः संसारम्बुधितरणदायो मयि लगेत्।
इदं बाहुस्फोटैरटति रटयन् यः प्रतिगृहं
भजे नित्यानन्दं भजनतरुकन्दं निरवधि ॥

मैं श्रीकृष्णभक्तिरूप वृक्षके मूलस्वरूप श्रीमन्त्रित्यानन्द प्रभुका भजन करता हूँ, जो कि पतित जीवोंकी दुर्दशा देखकर करुणाविगलित हृदयसे घर-घर जाकर बाहु विस्तार (उठा) कर कहते—हे भाई, तुमलोग सभी मिलकर निश्चिन्त मनसे निरन्तर हरिनाम ध्वनि करो। हरिनाम ध्वनि निरन्तर करनेसे तुमलोगोंका संसार-सागरसे उद्धारका दायित्व मेरे ऊपर रहेगा—इस तरह कहकर सर्वदा नित्यानन्दप्रभु परिभ्रमण करते रहते हैं।

आष्ट्रेलिया प्रचार समापन कर श्रीलमहाराजजीने १-३-२००२ तारीखको नेताजी सुभाष चन्द्र बोष

द्वारा गठित आजाद हिन्द फौजके स्थान सिंगापुरमें पदार्पण किया। १-३-२००२ से १५-३-२००२ पर्यन्त श्रीलमहाराजजीने सिंगापुर एवं मलेशियामें प्रचार किया। इन दोनों स्थानोंमें प्रचारका विषय था—श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता नित्यलीला-प्रविष्ट ३५विष्णुपाद श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज प्रभुवरके शुभ आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें उनकी गुरुसेवाका वैशिष्ट्य एवं श्रीगौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' का अप्राकृत जीवन चरित्र। उपरोक्त दोनों महापुरुषोंके जीवन चरित्र और गुरुतत्त्वकी आलोचना सुनकर श्रोतागण अत्यन्त आनन्दित हुए। धर्मसभाके बाद कुछ श्रद्धालु जिज्ञासुओंने गुरुतत्त्वके सम्बन्धमें कुछ परिप्रश्न किये, जिनका विवरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

एक श्रोता (Gerand Chev) (हाथ उठाकर बोले)—स्वामीजी, मेरी कुछ जिज्ञासा है, कृपापूर्वक उत्तर दान कर उत्तम मनको सुतृप्त कीजिए।

श्रीलमहाराजजी—आप निःसंकोच द्विधारहित होकर प्रश्न कर सकते हैं।

Gerand Chev—दीक्षा गुरुको क्या कभी परित्याग किया जा सकता है?

श्रीलमहाराजजी—नहीं, कभी नहीं। फिर भी इस विषयमें विशेष विचार है।

एक श्रोता (Kwan wai wah)—विशेष विचार क्या है? कुछ व्याख्या कर बोलनेसे हम जैसे साधारण श्रद्धालुओंका विशेष उपकार होगा।

श्रीलमहाराजजी—आपलोग चाईनीज होने पर भी मैं आशा करता हूँ आपने रामायण, महाभारत आदिका नाम सुना होगा।

इसके साथ-साथ ही अनेक श्रोता—हाँ, हाँ, हमलोग जानते हैं, कुछ-कुछ दूरदर्शन पर देखा है।

श्रीलमहाराजजी—मनोयोगपूर्वक श्रवण कीजिए।

महाभारतमें वर्णन किया गया है—

**गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्यकार्यमजानतः।
उत्पथ प्रतिपत्रस्य परित्यागो विधीयते ॥**

अर्थात् जागतिक भोग-विषयोंमें लिप्त, कर्तव्य-अकर्तव्य विवेकरहित, भक्तिरहित उच्छृंखल होकर भक्तिविरोधी पथमें गमनकारी व्यक्ति गुरु so called गुरुब्रुव हैं। इस प्रकारके गुरुको परित्याग करना ही विधि एवं अवश्य कर्तव्य है। श्रीलजीव गोस्वामी पादजीने भी कहा है—गुरुके वैष्णव विद्वेषी होनेपर 'गुरोरप्यवलिप्तस्य' श्लोकका स्मरण कर so called गुरुको अवश्य ही परित्यागकर सद् वैष्णव-गुरुसे पुनः दीक्षा प्राप्त करना अत्यन्त प्रयोजनीय है। पुनः दीक्षा ग्रहण न करने पर किसी प्रकार भी भक्ति राज्यमें अग्रसर नहीं हो सकते हैं।

एक श्रोता (Lim Yugh Choong)—‘जागतिक भोग विषयमें लिप्त’ कहनेका क्या अभिप्राय है? इस विषयमें कुछ खोलकर बोलनेसे अच्छा होगा।

श्रीलमहाराजजी—सद्गुरुके लक्षणमें कहा गया है—सद्गुरु सर्वशास्त्रमें सुपण्डित, भगवदनुभूतिसम्पन्न और जागतिक भोग विषयसे विरक्त होते हैं। जागतिक भोग विषय माने—वर्तमान भोगी जगत जैसे 3W और 4D में लिप्त हैं, उनसे ऊपर होंगे। 3W अर्थात् Woman, Wealth, Wine एवं 4D माने Dance in Night Club, Divorce, Drink (alcohol), Duplicity.

एक श्रोता (Lai Mei Lin)—भजन करनेके लिए क्या गुरुकरण करना ही होगा? दीक्षा-ग्रहण क्या अत्यन्त प्रयोजनीय है? मैं तो समझता हूँ—गुरु एक Agent या Broker अथवा Mediator हैं। मैंने अपने जीवनमें दो बार धोखा खाया है, ठगा हूँ। Mediator के निकट न जाकर Direct कृष्णभजन करना ही मैं युक्तिसङ्गत समझता हूँ।

श्रीलमहाराजजी—श्रीमान् आश्रम महाराज इस प्रश्नका जबाब देंगे।

श्रीपाद आश्रम महाराज—श्रीलमहाराजजीने तो आपके प्रश्नोंका उत्तर दिया ही है। देखिए, ध्रुव महाराज भगवान्को प्राप्त करनेके लिए तपस्या करने आये, किन्तु गुरुकरण नहीं हुआ था। इसलिए भगवान्ने नारद ऋषिको भेजकर दीक्षा-मन्त्र प्रदान कराया। मैं भी आपकी तरह अपने पारमार्थिक जीवनमें दो बार धोखा खाया हूँ। श्रील गुरुदेव इस जगतके Broker, Agent या Mediator नहीं होते हैं। श्रीगुरुदेवकी कृपा अनिवार्य है।

श्रीलमहाराजजी—श्रीपुण्डरीक ब्रह्मचारी इस विषय पर कुछ प्रकाश डाले।

श्रीपुण्डरीक ब्रह्मचारी—श्रीपाद आश्रम महाराजने ठीक ही कहा है। हमलोगोंने शास्त्रमें देखा है, गुरुवर्गके निकट श्रवण किया है—‘हरौ रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन’ भगवान् रुष्ट होनेपर श्रीगुरुदेव रक्षा करते हैं, किन्तु श्रीगुरुदेव रुष्ट होनेपर रक्षाकर्ता कोई भी नहीं है। और भी सुना है—

**गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागु पाँव।
बलिहारी श्रीगुरुदेवकी जो गोविन्द दियो बताय ॥**

श्रीलमहाराजजी—श्रीमान् माधव महाराज इस विषयको और स्पष्ट करें।

श्रीपाद माधव महाराज—आपलोगोंने पूर्व वक्तागणके निकट इस विषयमें श्रवण किया। फिर भी श्रीगुरु-वैष्णवोंके निकट जो श्रवण किया, उसे स्मृतिमें लानेकी चेष्टा मात्र कर रहा हूँ। आपलोगोंने जो जिज्ञासा की है, इस विषयमें भगवान्का क्या मत है, आलोचना करने पर विषयवस्तु स्पष्ट होगी।

श्रीलसनातन गोस्वामी हरिभक्तिविलास ग्रन्थमें भगवद् उक्ति देकर दिखा रहे हैं—

**प्रथमन्तु गुरुं पूज्यं ततश्चैव ममार्चनम्।
कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत् ॥**

किसी भक्तके भगवान्‌की सेवा-पूजा करनेके लिए आकुल प्राण होनेपर श्रीभगवान् कहते हैं—हे वत्स! तुम सर्वप्रथम अपने श्रीगुरुदेवकी सेवा-पूजा कर उनको प्रसन्न कर उनकी अनुमति लेकर मेरी सेवा-पूजा करो। इस तरह तुम सहज ही सिद्धि लाभ करोगे। इस नियमके व्यतिक्रम करनेसे तुम्हारी समस्त सेवा गुड़-गोबर अर्थात् निष्फल हो जाएगी।

श्रीचैतन्यभागवतके प्रणेता, श्रीचैतन्ययुगके व्यास श्रीलक्ष्मीवनदास ठाकुरजी कहते हैं—

सिद्धिर्भवति वा नेति संशयोऽच्युतसेविनाम्।

निःशंसयस्तु तद्वक्त परिचर्यारत्तात्मनाम्॥

Direct भगवान्‌की सेवा करने पर सिद्धि लाभ हो भी सकती है, नहीं भी—इस विषयमें काफी संशय है, सन्देह भी है। किन्तु भगवद्भक्त अर्थात् सद्गुरु व सद्-वैष्णवकी सेवामें तत्पर साधककी सिद्धिके विषयमें किसी भी प्रकारका संशय नहीं है, सन्देह नहीं है तथा रह भी नहीं सकता है।

और भी देखा जाता है—‘गुरु छाड़ि गोविन्द भजे, से पापी नरके मजे।’

किसी एक समय मेरे दीक्षागुरुपादपद्मके भारतवर्षमें एक धर्मसभामें वक्तृता करनेके लिए Dias पर पदार्पण करते ही कुछ छात्र वैष्णव जनोंकी शिखा (चोटी) देखकर Ariel, Ariel शब्द बोलकर चिल्ला उठे। परमाराध्य गुरुपादपद्म ॐविष्णुपाद परित्राजकाचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजीने मङ्गलाचरणके बाद Ariel, Ariel बोलकर ही वक्तृता प्रारम्भ की। उन्होंने Ariel की वैज्ञानिक एवं पारमार्थिक व्याख्याके द्वारा समझा दिया कि श्रीगुरुवैष्णवगणकी शिखा पारमार्थिक Ariel है और वैकुण्ठ-वार्ता catch करनेके लिए अत्यन्त जरूरी है। यह

वैष्णव धर्मकी uniform भी है। यह इस जगतके radio व television का Ariel या Antenna नहीं है। इसी प्रकार आपलोग श्रीगुरुदेवको या श्रीगुरुतत्त्वको Broker, Agent या Mediator कह रहे हैं। सद्गुरु इस जगतमें money making के लिए broker आदि नहीं है, बल्कि श्रीगुरुदेव भगवान्‌के निजजन हैं। मायामुआध जीवोंको भगवान्‌के पास ले जानेके लिए श्रीभगवान् निज जनोंको agent बनाकर भेजते हैं। वैष्णवी भाषामें श्रीगुरुदेवको महाजन कहा जाता है। श्रीकृष्णप्रेम वितरण करनेके लिए श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूप दामोदर, श्रीरायरामानन्द प्रभुको श्रीमन्त्रित्यानन्द प्रभुके आनुगत्यमें whole-sale dealer बनाया, इस प्रकार retailer भी अनेक नियुक्त किए। लीलापुरुषोत्तम श्रीब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीदाशरथी राम, प्रेमपुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरि—सभीने गुरुदीक्षा ग्रहण कर निज-निज आचरणके द्वारा जगज्जीवोंको शिक्षा प्रदान की है। इस प्रकार गुरुदीक्षा व्यतीत भजन राज्यमें अग्रसर होना सम्भवपर नहीं है। दीक्षामन्त्र ग्रहण करना अत्यावश्यक है। इसलिए श्रीजीव गोस्वामी पाद कहते हैं—

यो मन्त्रः स गुरुः साक्षात् यो गुरुः स हरि स्वयम्।

गुरुर्यस्य भवेत् तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयम्॥

जो मन्त्र हैं, वे साक्षात् गुरु एवं प्रियत्व हेतु श्रीगुरु ही श्रीहरिकी तरह पूज्य हैं। श्रीगुरुदेव जिनके प्रति प्रसन्न होते हैं, श्रीभगवान् भी उनके प्रति प्रसन्न हो जाते हैं।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।

पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥

श्रीश्रीनिताई गौर प्रेमानन्दे हरि हरि बोल, हरिबोल।

—त्रिदण्डभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्णण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ वैशाख मास, सन् २००२, २८ अप्रैल—२६ मई

{ संख्या २

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

[श्रीलठक्कुरभक्तिविनोदकृत]

(वर्ष ४६ संख्या १ पृष्ठ ३ से आगे)

पौण्डडादौ द्विजगणगृहे चापलं यो वितन्वन् विद्यारम्भे शिशुपरिवृतो जाहवीस्नानकाले।
वारिक्षेपैर्द्विजकुलपतीन् चालयामास सर्वान् तं गौराङ्गं परमचपलं कौतुकीशं स्मरामि ॥६॥
तीर्थभ्रामिद्विजकुलमणेभक्षयन् पक्वमन्नं पश्चात्तं यो विपुलकृपया ज्ञापयामास तत्त्वम्।
स्कन्धारोहीच्छलबहुतया मोहयामास चौरौ वन्देऽहं तं सुजनसुखदं दण्डदं दुर्जनानाम् ॥७॥
आरहा पृष्ठं शिवभक्तभिक्षोः संकीर्त्य रुद्रस्य गुणानुवादम्।
रेमे महानन्दमयो च ईशस्तं भक्तभक्तं प्रणमामि गौरम् ॥८॥

लक्ष्मीदेव्याः प्रणयविहितं मिष्टमन्त्रं गृहीत्वा तस्ये प्रादात् वरमतिशुभं चित्तसन्तोषणं यः।
 मसयाश्चिहैर्निजपरिजनान् तोषयामास यश्च तं गौराङ्गं परमरसिकं चितचौरं स्मरामि ॥९॥
 उच्छिष्ट भाण्डेषु वसन् वराङ्गः मात्रे ददौ ज्ञानमनुत्तमं यः।
 अद्वैतवीथीपथिकैरूपास्यं तं गौरचन्द्रं प्रणमामि नित्यम् ॥१०॥
 दृष्ट्वा तु मातुः कदनं स्वलोष्टैः तस्ये ददौ द्वे सितनारिकेले।
 वात्सल्यभक्त्या सहसा शिशुर्यः तं मातृभक्तं प्रणमामि नित्यम् ॥११॥
 संन्यासार्थं गतवति गृहादग्रजे विश्वरूपे मिष्टालापैर्व्यथितजनकं तोषयामास तूर्णम्।
 मातुः शोकं पितरि विगते सान्त्वयामास यश्च तं गौराङ्गं परमसुखदं मातृभक्तं स्मरामि ॥१२॥

(क्रमशः)

पद्मानुवाद
[स्वधामगत श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी कृत]
दोहा

अब पर गेहन हूँ अधिक, करत चपलता जाय।
 वासन फोरत दुग्ध घृत, मधुरस देत बहाय ॥
 प्रभु विद्या आरम्भ किय, विष्णु सुदर्शन पास।
 सहपाठी शिशु संग लै, सुरधुनि वारि विलास ॥
 छीन्टा-छीन्टी पङ्क जल, फेंक पण्डितन अङ्ग।
 सुरसरि सतत हवावही, को जानत यह रङ्ग ॥
 तीरथवासी विप्रको, कर पक्वान्न आहार।
 फेर दिखायौ तत्त्व प्रभु, कर करुणा विस्तार ॥
 चढ़ जुग चोरन कन्ध प्रभु, भ्रमे नगर चहुँ ओर ॥७॥
 मोहित कर निज गेह पुनि, आय उबारे चोर ॥७॥
 शंभुभक्तकी पीठ चढ़ि, गाय रुद्र गुण नाम।
 खेल किये आनन्द अति, भक्त-भक्त अभिराम ॥८॥
 लक्ष्मी देवी बालिका, गन सह सुरसरि न्हाय।
 मिष्ट अन्न उपचार प्रभु, लै लै तिनसौं खाय ॥
 “गंगा दुर्गा दासिका, किंकर ब्रह्मा इश।
 मोहि पूजौ मैं दें वर, निश्चय विश्वा वीस ॥”
 ऐसी प्रभु लीला करत, मन वाञ्छित वर देत।
 “पति सर्वोत्तम मिलहि” यह, को जानत संकेत ॥
 सुन चंचलता सुवनकी, जनक दण्ड कर जात।
 मसि चिह्नित गुरुकुल फिरौ सुत निरखत हरखात ॥९॥
 जूठी हाँड़िन कोट कर, गौर विराजे जाय।
 अति पुनीत मा पुत्र गति, देखि लगी धमकाय ॥
 आप कहत “मा शुचि अशुचि, भेद सकल अज्ञान।
 माया कल्पित सब है, अद्वय ब्रह्म समान” ॥१०॥

बाल चपलता मृत्तिका, फेंकी माता गात।
 नारिकेल सित जुगल हरि, लाय दिये अकुलात ॥११॥
 अग्रज संन्यासी भये, जनक शोक बहु जान।
 समझाये तजि चपलता, सेवे विविध विधान ॥
 पिता विरह व्याकुल जदपि, जननी करी विशोक।
 पढ़त रहत घर विनय साँ, अनुसर मानुष लोक ॥१२॥

(क्रमशः)

सिद्धान्तरत्न या वेदान्त पीठक

(पूर्व प्रकाशित वर्ष ४६, संख्या १, पृष्ठ ६ से आगे)

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

इस “सिद्धान्तरत्न” ग्रन्थमें श्रीबलदेव विद्याभूषणजीने जिस प्रणालीके अनुसार सम्बन्ध, अधिधेय और प्रयोजन तत्त्वका विचार किया है, उसीको यहाँ बतलाया जा रहा है। समस्त तत्त्वालोचनाको आठ पादोंमें विभक्त किया गया है।

प्रथम पादमें कहा गया है कि दुःखका परिहार एवं सुखकी प्राप्तिके लिए ही सभी जीवोंकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इन उभय प्रकारके साधनोंके लिए कपिल, पतञ्जलि, कणाद, गौतम और जैमिनीने जो सब उपाय बतलाये हैं, वे दोषपूर्ण हैं। श्रीवेदव्यासजीने उन सभी मर्तोंका खण्डन किया है एवं वेद शास्त्रोंका मंथनकर उनसे वदोन्त-सूत्रकी रचना की है। इस वेदान्त सूत्रमें उन्होंने यही शिक्षा दी है कि आत्मज्ञानको प्राप्तकर उसके द्वारा सर्वेश्वर भगवानकी उपलब्धि ही दुःख परिहार एवं सुख प्राप्तिका एकमात्र साधन है। वे सर्वेश्वर भगवान ज्ञानानन्द-स्वरूप, सर्वशक्ति सम्पन्न, अचिन्त्य, अलौकिक, सत्यकाम आदि आठ गुणोंसे युक्त और पुरुषाकार हैं। उनके स्वरूपमें धर्म-धर्मिगत या स्वगत भेद नहीं है, फिर भी वे अपनी अचिन्त्य शक्तिके प्रभावसे सविशेष हैं। शास्त्रोंकी अधिधाशक्तिके द्वारा ही वे और उनका विचित्र “विशेष” जाना जाता है। दुःखकी निवृत्ति एवं सुखकी प्राप्ति इन दोनों कार्योंके लिए कर्मको साक्षात् कारण नहीं बतलाया है। बल्कि ज्ञान

और भक्तिका साक्षात् निर्देश किया है। “त्वं” पदार्थका अनुभव ही निर्भद् ज्ञान है। उसमें कैवल्य लक्षण मोक्ष निहित है। तत् (भगवान) और त्वम् (जीव) पदार्थोंका अपाङ्ग-वीक्षण अर्थात् उनके कटाक्षादि परमाद्भूत अप्राकृत सौन्दर्यका साक्षात्कार ही भक्ति स्वरूप ज्ञान है। शुद्ध “तत्” पदार्थके परिज्ञानरूपी भक्तिसे सालोक्यादि मुक्तिकी प्राप्ति होती है। शुद्ध सम्बन्ध विशेष परिज्ञानरूपी भक्तिके द्वारा “तत्” पदार्थके श्रीचरणयुग्लोंकी सेवारूपी पुरुषार्थकी प्राप्ति होती है। यह भक्ति ह्लादिनी-सार-समवेत सम्बित्-सार-स्वरूपा है, केवल जैवानन्दादिरूपा नहीं है। यही भक्ति भगवान और जीव दोनोंका ही आनन्द विधान करती है। सन्धिनी, सम्बित् और ह्लादिनी—ये तीनों भगवानकी पराशक्तिकी तीन वृत्तियाँ हैं। जीवके वर्तमान शरीरादिमें आविर्भूत होकर भक्ति विशुद्धानन्द तादात्म्य-स्वरूपसे सर्वेन्द्रियोंमें कार्य करती है। कर्मके द्वारा चित्त-शुद्धिकी अपेक्षा न रखते हुए भी अधिकांश लोगोंने साधुसङ्गके द्वारा श्रद्धायुक्त भजनसे ही चित्त शुद्धि लाभ करते हुए भगवत्-साक्षात्कार किया है। सालोक्यादि मुक्ति गौण फल होनेके कारण उनके लिए प्रयास करना अकर्मण्यता ही है। “कृष्णका सुख ही मेरा सुख है”—इस तरह की निष्काम भक्तिका

भक्ति ही एकमात्र फल है। यही भक्ति भगवत्-परिकरोंसे आरम्भकर आधुनिक भक्तों तक सम्प्रदाय-प्रणालीसे गङ्गा स्रोतकी भाँति प्रवाहित हो रही है। पूर्णकाम भगवान् भक्तोंकी पूजाको आदरके साथ ग्रहण करते हैं। कृष्ण-प्रसाद अचिन्त्य और अवितर्क है।

द्वितीय पादमें यह बतलाया है कि ऐश्वर्य और माधुर्यके भेदसे भगवत्ता दो प्रकार की है। इसी भेदके अनुसार जीवका ज्ञान और भक्ति दोनों दो-दो प्रकार के हैं। जहाँ पर परमैश्वर्य प्रकाशित हो अथवा अप्रकाशित हो और नरवत्-लीलाका अतिक्रमण न हो, वहाँ पर माधुर्य है और जहाँ पर नरवत्-लीलाका अतिक्रमण होता है तथा जहाँ परमैश्वर्य प्रकाशित होता है, वहाँ सम्प्रम बुद्धि द्वारा स्वभाव-शैथिल्यकारी धर्मको ऐश्वर्य ज्ञान कहा जा सकता है। निहित ऐश्वर्य ज्ञान माधुर्यकी पुष्टि करता है। विस्मय, विरह और आपत्तिके समय माधुर्य भक्तको ऐश्वर्यकी अनुभूति होती है। ऐश्वर्य धर्म और माधुर्य धर्म दोनों ही ब्रह्मधर्म हैं। माधुर्य चित्-शक्तिका सार एवं लीलानन्द स्वरूप है। यह भगवत्-स्वरूपसे अभिन्न है। यही स्वरूप अठारह दोषोंसे शून्य भगवत्तनु है। मुग्धता, सर्वज्ञता आदि अनन्त विरोधी गुण समूह भगवानके परमैश्वर्यके वशीभूत होकर अविरुद्ध रूपसे लीलाका विस्तार करते हैं। भक्ति दो प्रकारकी है—(१) ऐश्वर्य प्रकाशिनी विधिभक्ति और (२) माधुर्य प्रकाशिनी रुचिभक्ति या प्रेम भक्ति। विधि भक्ति मिश्र और शुद्ध भेदसे दो प्रकारकी है। मिश्र विधि-भक्तगण स्वनिष्ठ, होते हैं, वे अचिरादि मार्गसे होते हुएअन्तमें वैकुण्ठ गमन करते हैं। शुद्ध भक्त व्याकुलताके कारण कृपालु भगवानकी प्रेरणासे गरुड़के द्वारा उनके धाममें पहुँचाए जाते हैं। रुचिभक्ति माधुर्यमयी तथा बन्धुत्व भावसे युक्त होती है। ऐसे भक्त सम्प्रम-शून्य भगवत्-धाममें गमन करते हैं। यशोदानन्दन कृष्ण गोपोंके बन्धु

हैं। पुरुषोत्तम कृष्ण ही सर्वशक्ति सम्पन्न हैं और वे ही स्वयं-भगवान हैं। जिन सब स्वरूपोंमें सर्वशक्ति व्यक्त नहीं हुई हैं, केवल दो एक शक्तियाँ ही व्यक्त हुई हैं, वे विलास, अंश या कला हैं। कृष्ण सर्वावतारी हैं। परव्योमपति नारायण उनकी विलास-मूर्ति हैं। कृष्ण अनन्यापेक्षी (अन्यान्य रूपोंकी अपेक्षा न करनेवाले) स्वयंरूप हैं। (१) राधादि पूर्णशक्तियोंका परिकरमण्डल-सहचरत्व, (२) चराचरको विस्मित करनेवाली वेणुमाधुरी, (३) स्वयंको भी आकर्षित करनेवाली श्रीरूप-माधुरी, (४) निरतिशय कारुण्यादि-गुणव्यञ्जि सर्वाद्वृत चमत्कार लीला-कल्लोल-समुद्र—ये चार असाधारण गुण एकमात्र श्रीकृष्णमें ही पाये जाते हैं। नारायणादिमें भी ये प्रकाशित नहीं हैं। हांदिनीका सारांश प्रेमात्मिका श्रीमती राधारानी भगवानकी पराशक्ति हैं। लक्ष्मी दुर्गादि उनके अंश या छाया-विशेष हैं। इसलिए चौंसठ गुणोंसे युक्त एवं समस्त धर्मोंके पूर्णाविष्कार-प्रयुक्त कृष्ण ही स्वयंरूप हैं। कृष्णकी नित्यलीलाका धाम 'गोलोक' के नामसे वेदमें प्रसिद्ध है। गोलोकके नीचे मथुरा, मथुराके नीचे द्वारका, उसके नीचे वैकुण्ठ, उसके नीचे शिवधाम एवं सबसे नीचे देवीधामरूप यह जड़ जगत है। ये सभी धाम उन-उन लीलाओंको प्रकाश करनेके लिए जड़-जगतमें भगवत्-इच्छासे आविर्भूत होते हैं।

आविर्भूत धाम सम्पूर्णरूपसे अप्राकृत होनेपर भी असंस्कृत स्थूल दृष्टिमें प्रपञ्च जैसे प्रतीत होते हैं। वैसी दृष्टि भी पुण्यजनक ही है। अनन्ताकार, अनन्तप्रकाश, अनन्तलीला, अनन्त-ब्रह्माण्ड, अनन्तवैकुण्ठ और अनन्तपार्षदोंके अनन्त व्यतिक्रमसे कृष्णकी सभी लीलाएँ नित्य हैं। भगवानकी कृपाके बिना इस रहस्यको जाना नहीं जा सकता है। भगवत् धाममें भूत, भविष्य और वर्तमानादि तीनों काल नहीं होते। वहाँके स्थान, द्रव्य और सूर्य चन्द्रादि सभी अप्राकृत हैं। प्रपञ्चका नाश होनेसे जड़-जगतमें भगवानकी

लीलाका प्रकाश नहीं होता, किन्तु उनके नित्यधारमें नित्यलीलाका कभी भी नाश नहीं होता। विधि और रागानुगा भक्ति दोनों ही दुःख नाश और सुख प्राप्तिके कारण हैं। कृष्ण कृपाके बिना ऐसी भक्तिमें रुचि उत्पन्न नहीं होती। विधि भक्तिकी अपेक्षा रुचि भक्ति (रागानुगा भक्ति) श्रेष्ठ है।

तृतीय पादमें कहा गया है कि भगवान् सम और अधिक रहित हैं। वे पराशक्तिविशिष्ट एवं षड्-विकारहीन हैं। वे देवताओंके भी उपास्य हैं। वे सभी देवताओंके भी देवता हैं एवं मुमुक्षओंके उपास्य हैं। इसलिए केवल उर्हांकी उपासना करनी चाहिए। परन्तु दूसरे-दूसरे देवताओंकी अवज्ञा नहीं करनी चाहिए। विष्णु भक्तिके विरोधी तीन प्रकारके हैं—(१) सब देवताओंको एक माननेवाले, (२) त्रिवेदोंको एक माननेवाले और (३) हरि और हरको एक माननेवाले। ये सभी शास्त्रोंके आंशिक वाक्योंको लेकर विष्णुकी अनन्य भक्तिमें बाधा उत्पन्न करते हैं। परन्तु इससे केवल दूसरोंकी और अपनी ही वज्चना होती है। उन सभी शास्त्र वाक्योंका अन्यान्य शास्त्र वाक्योंके साथ विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रीविष्णु ही परदेवता और जीवोंके उपास्य हैं। अन्यान्य देवता श्रीविष्णुके सेवकके रूपमें कार्य करते हैं। विष्णु ही सभी देवताओंके नियन्ता हैं, अतएव त्रिमूर्तियोंमें विष्णु ही एकमात्र स्वेच्छामय पुरुष हैं और ब्रह्मा एवं महेश उनके विभिन्नांश तत्त्व हैं न कि स्वांश। विष्णुके जन्म कर्मादि अप्राकृत हैं जो उर्हांकी कृपासे जगतमें प्रकाशित होते हैं। अपने विभिन्नांशोंके साथ वे जो लीलाएँ करते हैं, वे भी नित्य हैं।

चतुर्थ पादमें कैवल्यात्मकवादियोंको निरस्त किया गया है। कैवल्यात्मकवादियोंके मतानुसार सभी श्रुतियाँ दो भागोंमें विभक्त हैं—सगुण और निर्गुण। निर्गुण श्रुतियाँ ही ब्रह्मका प्रतिपादन करती हैं। सगुण श्रुतियाँ ब्रह्मके व्यवहारिक भावको व्यक्तकर निर्गुण श्रुतिसिद्ध शुद्ध चिन्मात्र

आत्माको प्रतिष्ठित करनेके लिए अनुवादके रूपसे वर्तमान हैं। इस तरहसे श्रुतियोंका विभाग करना नितान्त अन्यायपूर्ण कार्य है। ऋषियोंने श्रुतियाँका जो कर्म-काण्डीय और ज्ञानकाण्डीय विभाग किया है, वह अनिन्दनीय है। क्योंकि वस्तुतः ज्ञानकाण्डीय श्रुतियाँ ब्रह्मका साक्षात् निर्देश करती हैं और कर्मकाण्डीय श्रुतियाँ ज्ञानाङ्गरूपसे परम्पराक्रमसे ब्रह्मका ही निर्देश करती हैं। इस स्थलपर ज्ञानकाण्डीय श्रुतियोंको पारमार्थिक और व्यवहारिक भेदसे विभाग करना अनुचित है। वेदवाक्योंमें ऐसे विभागका कोई इङ्गित नहीं है। प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अज्ञे य सभी सगुण श्रुतियाँ ब्रह्मके अलौकिक पारमार्थिक गुणोंकी प्रतिष्ठा करती हैं और निर्गुण श्रुतियाँ केवल प्राकृत गुणोंका निषेध करती हैं। उपनिषद् पुरुष शब्द वाच्य है। भोग त्यागके लक्षणके द्वारा कल्पित ब्रह्मका अचैतन्यत्व ही सिद्ध होता है। “साक्षी, ‘केवल’, निर्विशेष”,—ये सभी निर्गुण साधक वाक्य क्या गुण साधक नहीं हैं? सर्वज्ञादिकी तरह साक्षीत्यादि वाक्य भी पारमार्थिक हैं। निर्गुण-चिन्मात्र चिन्ता सर्वदा अलीक है। वेदवाक्योंमें शिथिल विश्वासके कारण मायावादकी उत्पत्ति हुई है। शुद्धसत्त्वमें स्वरूपानुरहित अप्राकृत नामरूपादि हैं, यही ज्ञानकाण्डीय वेदवाक्योंका साक्षात् अर्थ है। सभीमें वाच्य न होनेपर भी भगवान् ही वेदवाच्य हैं, और वे जीव एवं जगत्‌से पृथक हैं। क्षर-अक्षरसे अतीत पुरुषोत्तम स्वरूप भगवानको जानकर जीव कृतार्थ होते हैं।

पञ्चम पादमें कहा है कि “अद्वैत” कभी भी सिद्ध नहीं होता। अद्वैतको ब्रह्मातिरिक्त कहनेसे ‘अद्वैत’ नहीं रहता। ब्रह्मात्मक कहनेसे सिद्ध—साधनता दोष आता है। यह नितान्त निष्फल है। आत्मा-स्वरूपसिद्ध वस्तुका जब आवरण ही सम्बव नहीं हैं, तो तब अद्वैतको अज्ञान कैसे आच्छादित कर सकता है? अनधिगत अर्थ करनेसे शास्त्र अप्रमाणित हो पड़ते हैं। यदि अज्ञान नहीं है,

तब सिद्ध-आत्मा, का मोक्ष भी सम्भव नहीं है। अज्ञान सत् भी नहीं है, असत् भी नहीं है। तब अनिर्वचनीय क्या है? इस तरह कल्पनाका कोई अन्त ही नहीं है। एक झूठे मतका पोषण करनेके लिए कल्पना ही कल्पना करनी पड़ती है। अतः

अद्वैत विचार आकाश कुसुम' की भाँति सर्वदा मिथ्या है। अद्वैतमतका विचार करनेसे विषय, प्रयोजन एवं अधिकारीका अभाव हो पड़ता है। उस मतका शास्त्रके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। सत् वस्तुके साथ ही शास्त्रका सम्बन्ध है। (क्रमशः)

कुछ प्रश्न और श्रीश्रीप्रभुपाद द्वारा उनका उत्तर

प्रश्न—क्या शरणागतोंका कल्याण होना निश्चित है?

उत्तर—निश्चित है। जिस क्षण जीव शरणागत होता है, कल्याण उसी क्षण उसकी मुट्ठीमें आ जाता है। मूल प्रभुके ऊपर निर्भर करनेमें ही सबका कल्याण है। हम जब तक शरणागत नहीं हैं, अथवा जितने अंशोंमें शरणागत नहीं हैं, तब तक अमङ्गलको आलिङ्गन किये हुए हैं अथवा उतने ही अंशोंमें अमङ्गलका वरण किये हुए हैं।

कृष्ण हमें क्लेश देनेके लिए जगतमें नहीं लाये हैं। हमने स्वयं अपनी स्वतन्त्रताका अपव्यवहार करके अपने-आप ही अमङ्गल और क्लेशका वरण किया है। कृष्णकी मङ्गलमयी वाणीके प्रति श्रद्धा होनेसे ही हमारा कर्तृत्वाभिमान दूर होगा। उस समय हम कर्मवीर बननेके लिए नहीं दौड़ेंगे। उनकी वाणीका श्रवण करनेके लिए ही हम उनके चरणोंमें शरणागत होंगे।

प्रश्न—क्या मनुष्यजन्म देवजन्मसे श्रेष्ठ है?

उत्तर—अवश्य। देवजन्मसे मनुष्य-जन्म उत्तम है। इसीलिए देवतागण भी मनुष्यजन्मकी कामना करते हैं। देवता लोग विषय-भोगोंको भोगनेमें इतने मत्त रहते हैं कि उन्हें इस बातका ध्यान ही नहीं रहता कि सामने ही उनका भविष्य उनके लिए दुःखोंका भण्डार लादे आ रहा है। वे सामयिक सुखमें ही प्रमत्त रहते हैं। कितने दिनोंके लिए यह सुख-भोगका रंग है?—‘क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।’ कुछ दिनोंके बाद ही तो पुण्य-भोगका काल समाप्त होने पर पुनः मृत्युलोकमें गिर पड़ेंगे—इसकी वे कल्पना तक

नहीं कर पाते।

संसारमें सब प्रकारके प्राणियोंमें मनुष्य सर्वश्रेष्ठ है। अन्यान्य प्राणियोंकी अपेक्षा मनुष्यको भविष्यकी चिन्ता अधिक होती है। यह बात ठीक है कि देवता लोग मनुष्यकी अपेक्षा अधिक सुखसे रहते हैं; उनकी आयु अधिक लम्बी होती है और वे अधिक दिनों तक भोग भी कर सकते हैं; परन्तु देवताओंको असुविधाएँ भी होती हैं और वे असुविधाएँ मनुष्योंको प्राप्त असुविधाओंसे भी कहीं भयझङ्गर होती हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्योंको कुछ ऐसी सुविधाएँ भी प्राप्त हैं, जो देवताओंको प्राप्त नहीं हैं। देवता जन्म, ऐश्वर्य, विद्या और रूपके मदमें मत्त होकर इनकी वृद्धिके लिए ही यत्न करते हैं। मनुष्यकी अपेक्षा उनके पास भोगोंके प्रसाधन प्रचुर मात्रामें हैं, इसलिए हम उनको मनुष्यसे श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु मनुष्यको एक विशेष सुविधा यह है कि इनको देवताओं जैसी भोगोंकी प्रचुरता न होनेके कारण देवताओंकी अपेक्षा अधिक कल्याणकी चिन्ता करनेका अधिकार प्राप्त होता है। यदि देवताओंकी देखा-देखी मनुष्य भी प्रचुर मात्रामें भोगोंको भोगनेमें ही व्यस्त रहा तो वह अपने कल्याणकी चिन्ता नहीं कर पायेगा। देवजन्मकी अपेक्षा मनुष्य जन्ममें भगवद्भजन और साधुसंगका सुयोग अधिक है। इसीलिए देवजन्मसे मानव जन्म श्रेष्ठ है।

मनुष्य-जीवनमें प्रति क्षण कुछ न कुछ ऐसी असुविधाजनक घटनाएँ घटित होती हैं, जो हमें जागतिक भोगों एवं संसारकी क्षणभंगुरताका पग-पग पर अनुभव कराती हैं। परन्तु देवताओंके जीवनमें

अपेक्षाकृत सुखकी अधिकता एवं निरवच्छन्नताके कारण उनको भोगों एवं स्वर्गीय सुखोंकी क्षणभंगुरताकी उपलब्धि सहज ही नहीं होती। अतः मनुष्य जीवनमें हमें मङ्गल और अमङ्गलको पहचान कर अपना यथार्थ कल्याण करनेका यथेष्ट सुअवसर प्राप्त हुआ है।

प्रश्न—सर्वश्रेष्ठ उपकारी बन्धु कौन है?

उत्तर—जो हरिनामकी ओर जीवको आकर्षित करते हैं, उनके समान सच्चे और उपकारी बन्धु इस संसारमें दूसरे नहीं हैं। हरिनाम-प्रचारकोंकी महावदान्यताके सामने करोड़ों-करोड़ों दाताकर्णोंके दान भी अत्यन्त तुच्छ और हेय हैं, जो जीवको वे हरिनामका सुयोग प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रीविग्रह-प्रतिष्ठा, विभिन्न स्थानोंमें हरिकथा और हरिनाम प्रचारकेन्द्र स्थापन, भक्ति शास्त्रोंके प्रकाशन और अधिकाधिक प्रचारके लिए मुद्रण-यन्त्र स्थापन, धाम-परिक्रमा, प्रवचन एवं पारमार्थिक प्रदर्शनी आदिके द्वारा नाना प्रकारसे भगवद्विमुख जीवोंको भगवान्की ओर खींचनेका प्रयत्न करते हैं, जिससे उनका यथार्थ कल्याण हो जाय। सोते समय, भोजनके समय, जागते समय, परस्पर वार्तालाप करते समय, अपने प्रत्येक कार्योंमें मनुष्य जिससे मूल आकर वस्तु—भगवान्के साथ सम्बन्धित रह सके—इसीके लिए शास्त्रोंमें साधु-संग और श्रीविग्रहका इतना महत्व दिखलाया गया है।

प्रश्न—कृपा या शक्ति किस प्रकारसे पायी जा सकती है?

उत्तर—ऐकान्तिक रूपसे श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आश्रय लेनेपर गुरुदेव उस शरणागत जीवके हृदयमें कृपा-शक्तिका संचार करते हैं। वही कृपा-शक्ति सेवाद्वारा पुष्ट होकर क्रमशः सम्पूर्ण अनर्थोंको ध्वंस करती है। परन्तु सेवा छोड़ देनेसे अथवा सेवाके प्रति उदासीन होनेसे वे अनर्थसमूह पुनः प्रबल हो पड़ते हैं तथा मूल कृपा-शक्ति भी क्रमशः क्षीण होकर अन्तमें सम्पूर्णरूपसे तिरोहित (लुप्त) हो जाती है। जैसे

कोई बीज लगाने पर उसे यत्नपूर्वक समय-समय पर जल द्वारा सींचनेकी आवश्यकता होती है, यदि उपयुक्त प्रकारसे सिंचाई की गयी तो बीज अंकुरित हो जाता है तथा धीरे-धीरे पुष्ट होकर विराट वृक्षका रूप धारण कर लेता है; ठीक उसी प्रकार गुरुप्रदत्त कृपाशक्तिको भजन और साधुसंग द्वारा पुष्ट करना चाहिए और रक्षा द्वारा क्रमशः बढ़ाना चाहिए।

प्रश्न—भक्ति और अभक्ति किसे कहते हैं?

उत्तर—इन्द्रिय-ज्ञानका त्याग न करनेका नाम अभक्ति है। इस अभक्तिकी तीन धाराएँ हैं—अन्याभिलाष, कर्म और ज्ञान। अपने और दूसरोंके इन्द्रिय-सुखकर भोगोंकी व्यवस्था या सुविधाका नाम ही कर्म है। न सुविधा करूँगा, न असुविधा ही—निरपेक्ष रहूँगा, इसका नाम ज्ञान है। इन्द्रियज (इन्द्रियोंसे उत्पन्न) ज्ञान और निर्विशेष ज्ञान—इन दोनोंको छोड़कर इन्द्रियातीत अधोक्षज-वस्तु श्रीहरिका प्रीतिविधान करना ही भक्ति है। भोग और मोक्ष—इन दोनोंके पंजोंसे छुटकारा नहीं मिलनेसे भक्तिकी भूमिका आरम्भ नहीं होती।

प्रश्न—दुर्बलचित्त और अपराधीमें क्या अन्तर है?

उत्तर—दुर्बलचित्त और अपराधी एक ही श्रेणीमें नहीं हैं। यद्यपि चित्तकी दुर्बलता ही आगे चलकर अपराधके रूपमें बदल जाती है, तथापि चित्त दुर्बलताकी सीमामें कामनारूप पाप और अपराधके प्रति धृणा है। दुर्बलचित्त व्यक्ति पाप और अपराधको अत्यन्त अन्याय जानकर भी उसका परित्याग करनेमें असमर्थ होता है। दूसरी तरफ अपराधी व्यक्ति पाप एवं अपराधको अन्याय ही नहीं मानता। वह जो कुछ करता है, जो कुछ समझता है, उसीको ठीक मानता है। बल्कि यथार्थ साधुलोग ही भूल कर रहे हैं—उसे ऐसा प्रतीत होता है।

दुर्बलचित्त व्यक्ति कामनाको आदर और रुचिपूर्वक ग्रहण न करके उसे अनादर और

घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे और क्रमशः त्याग करेंगे। ऐसा होनेसे ही ऐसा समझा जाएगा कि उसके प्रति भगवान्‌की कृपा हो रही है।

प्रश्न-हरिजन कौन है?

उत्तर-आजकल 'हरिजन' शब्दका अपव्यवहार हो रहा है। वास्तवमें 'हरिजन' कहनेसे भगवान्‌के प्रियभक्तोंका बोध होता है, जिनको अपने स्वरूपकी उपलब्धि हो चुकी होती है। जिस किसी भी कुलमें पैदा क्यों न हों, बाहरी परिचय कुछ भी क्यों न हो, सद्गुरुका पदाश्रय करके ऐकान्तिक भावसे हरिका भजन करनेवाला ही 'हरिजन' है। उनमें भगवत् सेवाके अतिरिक्त कोई भी दूसरी कामना नहीं होती। जिनको अपने स्वरूपकी उपलब्धि नहीं होती, ऐसे अवैष्णव-जनोंको 'हरिजन'

कहना असंगत और अशास्त्रीय है। यह बात ठीक है कि प्रत्येक जीव ही स्वरूपतः हरिजन है; परन्तु विरूपगत अवस्थामें हरिजनत्वका परिचय नहीं है। पहले उनका स्वरूप उद्बुद्ध हो, वे भगवान्‌की सेवा करें, फिर उनको हरिजन कहनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं हो सकती। प्रत्येक धानमें ही चावल है—यह सर्वथा सत्य है, परन्तु धान ही चावल है—यह बात गलत है। धानका आवरण दूर होने पर ही उसे चावल कहा जाता है। उसी प्रकार जीवमात्र ही हरिदास या हरिजन हैं; परन्तु जीव जब हरिसेवामें नियुक्त हो जाता है, तभी वह हरिजन कहलावेगा, उससे पहले नहीं। (क्रमशः)
(त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिमयूख भागवत महाराज द्वारा संगृहीत)

श्रीव्यासपूजाके अवसर पर दीन-अकिञ्चनके द्वारा

श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंका गुणगान

[अङ्गविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजी द्वारा उनकी आविर्भाव तिथिके उपलक्ष्यमें लिखित प्रबन्ध, वर्ष ४६ संख्या १ पृष्ठ १० से आगे]

बृहतके सात्रिध्यसे क्षुद्रत्व (लघुत्व) दूरीभूत होता है—जिस प्रकार प्रकाशके प्रभावसे अन्धकार दूर होता है, उसी प्रकार।

कृष्ण सूर्यसम्, माया अन्धकार!
जाँहा कृष्ण, ताँहा नाहि मायार अधिकार॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि मयिदृष्टैखिलात्मनि।

भगवत् सात्रिध्यसे जीवकी समस्त अविद्यारूपी हृदयग्रन्थि दूर हो (खुल) जाती है, समस्त संशय छिन्न भिन्न हो जाते हैं, समस्त कर्म क्षय हो जाते हैं। इस प्रकार जीवका जितना भी क्षुद्रत्व, लघुत्व है, वह सब दूर हो जाता है तथा कृष्णमें जो स्वतःसिद्ध गुरुत्व है, वह जीवमें सञ्चारित होता है।

परम दुर्मति छिल, तारे गोरा उद्धारिल,
तारा हळत पतितपावन।

उस समय 'नान मातृका' न्यायके अनुसार उनके पूर्व क्षुद्रत्वका विचार करनेसे अपराध होता है।

किवा विप्र किवा न्यासी शूद्र केने नय।
जेर्इ कृष्ण तत्त्व वेत्ता सेर्इ गुरु हय॥

बाह्य दर्शनके द्वारा गुरुत्व निर्णित नहीं होता, स्वरूप धर्मके प्रकाश द्वारा ही गुरुत्व प्रकाशित होता है। इसीलिए कहा गया है 'क्षुद्र केने नय'। भगवत् भक्त क्या क्षुद्र होते हैं? कभी नहीं।

न शूद्रा भगवद्भक्तास्ते तु भागवता मताः।
सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनादने॥

अत्रि ऋषिने इस विचारको स्पष्ट करके दिया है—भगवान्‌के भक्तोंको कभी भी शूद्र नहीं बोला जा सकता है, वे सब भागवत ही हैं अर्थात् पारमार्थिक विप्र हैं। उनमें किसी प्रकारका शोक धर्म नहीं है। किन्तु 'शोचनात् इति शूद्रः'

इसलिए समस्त शोकोंसे परिमुक्त भगवत् भक्तोंको शूद्र बोलनेसे महा अपराध होता है। तब किसको शूद्र कहा जाएगा? ‘सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये न भक्ता जनार्दने’। भगवान्‌के प्रति जिनकी भक्ति उत्पत्ति नहीं हुई, मति नहीं लगी, वे सब समय ही शोक-मोह-भय ग्रस्त रहते हैं। अतएव वे शूद्र हैं। भगवद्गति ही एकमात्र ‘शोक-मोह-भयापह’ है—इसको अवलम्बन न करनेसे जीवका शूद्रत्व दूर नहीं होता। कृष्ण तत्त्ववेत्ता भक्तोंमें इस शूद्रत्वका स्थान नहीं होता। ‘कृष्णतत्त्ववेत्ता’ का तात्पर्य केवल theoretical ही नहीं है, अर्थात् समस्त सिद्धान्तोंको रट लेना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि उन सिद्धान्तोंमें प्रतिष्ठित होना भी है। ऐसे व्यक्तिकी करनी एवं कथनीमें कोई अन्तर नहीं होता। कृष्णैकशरण (कृष्णके चरणोंमें शरणागति) ही उनका स्वरूप लक्षण है। उनकी समस्त इन्द्रियाँ निरन्तर कृष्ण सेवामें नियुक्त रहती हैं—adjusted, dovetailed। इसलिए उनके लिए छः वेगों द्वारा किसी प्रकारकी disturbance नहीं है।

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहत धीरः
सर्वार्थीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥

जिन्होंने इन छः वेगोंको जीत लिया है, वे ही जगद्गुरु हैं। रेचक, पूरक, कुम्भक, यम, नियम, प्राणायाम कर इन्द्रियोंको totally disengagement करनेसे छः वेगोंका दमन होगा—ऐसा नहीं है, इन्द्रियोंको proper adjustment अर्थात् भगवान्‌की सेवामें लगा देनेसे ही छः वेगोंका वास्तविक रूपमें दमन हो सकता है।

यमादिभिः योगपथैः कामलोभहतो मुहुः।
मुकुन्दसेवया यद्वद् तथाद्वात्मा न शास्यति ॥
अतः कृष्णभक्त ही यथार्थ छः वेगोंको जीतनेवाले हैं—वे ही वास्तवमें जगद्गुरु हैं।

‘कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्’—श्रीकृष्ण ही मूल जगद्गुरु हैं, उनके गुरुत्व द्वारा ही सबका गुरुत्व है। वे दूसरोंको गुरुत्व प्रदान करते हैं—
जारे देख, तारे कर कृष्ण—उपदेश।
आमार आज्ञाय गुरु हजा तार एइ देश ॥
कभु न बाँधिवे तोमाय विषयतरङ्ग।
पुनरपि एइ ठाजि पाबे मार सङ्ग ॥

इस प्रकार भगवान् अपने आश्रितजनोंमें शक्ति सञ्चार कर गुरुरूपमें जीव-कल्याणके लिए जगतमें भेजते हैं। भगवत् शक्ति सञ्चारित नहीं होनेसे जीवोंको गुरुत्व प्राप्त नहीं होता। लघु जीव भगवत् शक्तिके अभावमें विषय तरङ्गमें निमग्न हो पड़ते हैं। किन्तु भगवत् शक्ति प्राप्त गुरुमें ऐसा नहीं होता, इसीलिए कहा गया है—‘कभु न बाँधिवे तोमाय विषय तरङ्ग’। श्रील प्रभुपादने इस प्रसङ्गमें कहा है—“हिंसा परित्यागपूर्वक जीवके प्रति दयावान होओ। हिंसा करनेके लिए गुरुगिरि मत करो। अपनेको विषयोंमें डुबानेके लिए गुरुगिरि मत करो। किन्तु यदि तुम मेरे निष्कपट सेवक हो सकते हो, मेरी शक्ति प्राप्त कर सकते हो, तब तुम्हारे लिए भय नहीं है।” अर्थात् निष्कपट भगवत् भक्तमें ही भगवत् शक्ति सञ्चारित होती है, उस शक्तिके प्राप्त न होनेपर जीवदयाके बदले जीवहिंसा हो जाती है। जीवहिंसा माने क्या? प्रभुपादने कहा है—“जीवहिंसा शब्दके द्वारा शुद्ध भक्तिके प्रचारमें कुण्ठा या कृपणता, मायावादी, कर्मी या अन्याभिलाषीको प्रश्रय देना या उनका मन रखनेके लिए ही कथा बोलना इत्यादि सब बातें आ जाती हैं।” अर्थात् शास्त्रकी निरपेक्ष सत्य कथाको गोपन कर मनोधर्मको प्रश्रय देकर जीवको मुमुक्षता या मुमुक्षताका इन्धन देना ही जीवहिंसा है। कर्मी, ज्ञानी, योगी—ये सब ही अन्याभिलाषी, शरणागत और आरोहवादी हैं। ये गुरुरूपमें सजकर भीषण जीवहिंसा करते हैं। कर्मप्रयास, ज्ञानप्रयास या योगप्रयाससे जीवका आत्मधर्म विकसित होनेकी तो कोई सम्भावना ही

नहीं है। ये अवैष्णव हैं। ये अनेक क्षेत्रोंमें जो भगवान् विष्णुको स्वीकार करते हैं, वह केवल सुविधा प्राप्त करनेके लिए। जो विष्णुको तात्कालिक, सौपाधिक विचार करते हैं, उनके द्वारा श्रीविष्णुको स्वीकारना मूल्यहीन है। पञ्चोपासनामें जो विष्णोपासना देखी जाती है, उसकी तो कोई नित्यता ही नहीं है। वे विष्णुके साथ अपना नित्य सम्बन्ध समझते नहीं, नित्य विष्णु दासत्वके रूपमें अपना परिचय स्वीकार नहीं करते। अतः उनकी वैष्णवता विद्ध वैष्णवता है। समस्त पञ्चोपासकगण ही निर्विशेष ब्रह्मवादी। वे ब्रह्मकी सविशेषताको मायिक गुणके अधीन मानकर विचार करते हैं। इसलिए वे अपराधी हैं—

प्राकृत करिया माने विष्णु कलेवरा
यमदण्ड नाहि आर इहार उपर॥

उनका स्वरूपतः वैष्णव परिचय आच्छादित रहता है। इसलिए उन लोगोंका अमङ्गलसे छुटकारा नहीं है। इस कारण वे अन्य लोगोंका अमङ्गल किस प्रकार दूर कर सकते हैं? इसलिए शास्त्रोंमें कहा गया है—

अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण निरयं व्रजेत्।
पुनश्च विधिना सम्यक् ग्राहयेद्वैष्णवाद् गुरोः॥
अवैष्णव प्रदत्त मन्त्रसे नरकगति ही प्राप्त होती है। इसलिए पुनः वैष्णव गुरुसे ही यथाविधि

माधुर्य भक्तिके प्रदाता

[अंविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' की आविर्भाव तिथिके अवसर पर सायंकाल १३ फरवरी, २००१ को प्रदत्त प्रवचन]

आज जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरजीका आविर्भाव है। इसलिए हमें उनका गुणगान करना चाहिए।

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्णाय भूतले।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त सरस्वती इति नामिने॥

इस मन्त्रमें 'भक्तिसिद्धान्त सरस्वती' वर्णित है। अर्थात्, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने भक्तिके सिद्धान्तोंके मूर्तिमान विग्रहको आविर्भूत किया।

मन्त्र ग्रहण करना चाहिए। क्योंकि अवैष्णव गुरु एवं शिष्य दोनोंकी क्या गति होती है, शास्त्रोंमें वर्णन है—

यो व्यक्ति न्यायरहितमन्यायेन शृणोति यः।

तावुभौ नरकं धोरं व्रजतः कालमक्षयम्॥

जो शास्त्रोंके विचारोंको उलटा-पुलटा अपनी सुविधाके अनुसार व्याख्या करते हैं और जो ऐसी व्याख्या सुनते हैं, वे दोनों ही अक्षयकाल पर्यन्त नरक वास करते हैं। एकमात्र भगवद्भक्ति द्वारा ही जीवका समस्त अमङ्गल नाश होता है। भगवद्भक्ति द्वारा ही कर्म-ज्ञान-योग सुसामजस्यपूर्वक एकतात्पर्यपर होकर अवस्थान करते हैं अर्थात् जहाँ उनमें परस्पर कोई द्वन्द्व (लड़ाई या विवाद) नहीं होता।

यत्कर्मभिर्यत्तपसा ज्ञानवैराग्यतश्च यत्।

योगेन दानधर्मेण श्रेयोभरितरैषि॥

सर्वं मद्भक्तियोगेन मद्भक्तो लभते ज्ञज्ञसा।

कर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य, अष्टाङ्गयोग या अन्यान्य व्रत द्वारा जो कुछ भी भिन्न-भिन्न रूपोंमें प्राप्त होता है, वह सब कुछ मेरे भक्त सहज ही प्राप्त कर लेते हैं। अतः भक्तिमें ही तो सब कुछ सिद्ध है—यह तो स्वयं भगवान्‌की ही वाणी (verdict)—इसमें कोई पक्षपातित्व नहीं है। जो भगवद्भक्ति प्रकाशक वैष्णव गुरु हैं, उनकी महिमा स्वयं विष्णु तुल्य है। (क्रमशः)

शास्त्रार्थ करता तो तुरन्त पराजित हो जाता एवं इनकी शिक्षाको बाध्य होकर स्वीकार करता।

भक्तिसिद्धान्त सरस्वती—सरस्वती दो प्रकारकी हैं। ब्रह्माजीकी शक्ति जो सरस्वती हैं, वे वास्तव सरस्वती नहीं हैं। गोलोक वृन्दावनकी सरस्वती (श्रीमती राधिका) ही वास्तव सरस्वती हैं। ये सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर पराविद्या, दिव्य ज्ञान (जो श्रीमती राधिकाके द्वारा प्रकाशित है) के मूर्तिमान विग्रह हैं। इस दिव्य-ज्ञानको प्रदान करने हेतु इनका नाम श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपाद है।

उनको प्रभुपाद क्यों कहा जाता है? वे वास्तव रूपमें प्रभुपाद हैं, क्योंकि उन्होंने अपने प्रभुकी महिमाका गुणगान सारे विश्वमें किया। उनके प्रभु कौन हैं? श्रीश्रीराधा-कृष्ण या श्रीगौरचन्द्र, श्रीगौरगदाधर, श्रीगौर-नित्यानन्द। ये ही वास्तव रूपमें श्रीलप्रभुपाद हैं, क्योंकि इन्होंने अपने इष्टकी महिमाका सर्वत्र प्रचार किया।

नमः ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले—वे पुरुष रूपमें कृष्णके अति अन्तरङ्ग हैं। परन्तु वे हैं कौन? प्रणाम मन्त्रके दूसरे श्लोकमें है ‘श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय’। वे वास्तवमें श्रीमती राधिकाकी नित्य सेविका हैं। वे नयनमञ्जरीके रूपमें राधिकाजीकी अत्यधिक प्रिय हैं। श्रीमन्-महाप्रभुकी लीलामें वे श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी और श्रीश्रीराधाकृष्णकी लीलामें नयनमञ्जरी हैं। नयनमञ्जरीका अर्थ क्या है? जैसे अपने नेत्र सभीको प्रिय होते हैं, उसी प्रकार नयनमञ्जरी जो राधिकाजीकी साक्षात् नेत्र स्वरूप हैं, उनको अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिए श्रील सरस्वती ठाकुरके दो स्वरूप हैं। एक तो चैतन्य महाप्रभुके पार्षद रूपमें (न केवल इस जगतमें बल्कि गोलोक वृन्दावन, श्वेतद्वीपमें भी) और वृन्दावनमें नयनमञ्जरीके रूपमें श्रीमती राधिकाकी सेवा करते हैं। श्रीलरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा रचित विलाप कुसुमाञ्जलिमें देखा जाता है कि किस

प्रकार मञ्जरियाँ राधाकृष्ण युगलकी सेवा करती हैं। नयनमञ्जरी उसी प्रकार श्रीयुगलकी सेवा करती हैं।

श्रील सरस्वती ठाकुर ‘कृपाव्यये’ हैं अर्थात् कृपाके समुद्र हैं। वे चार सम्प्रदायमेंसे पहले ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने ऐसी परिस्थिति बनायी जिसमें संसारके सभी जीव जो श्रीकृष्णको भूल गये हैं, वे शुद्ध भक्तिको जान सकें और शुद्ध भक्त बन सकें। यदि श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने प्रिय आश्रित जनोंको देश-विदेशमें नहीं भेजते तो आपमें से कोई भी शुद्ध भक्तके सम्पर्कमें नहीं आ सकता था। अभी श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामीजीकी कृपासे श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज और मेरे गुरुपादपद्म द्वारा कृष्ण-कीर्तनका विश्वमें सर्वत्र प्रचार हो रहा है। इन्हीं महापुरुषोंकी कृपासे जन समुदाय श्रीचैतन्य महाप्रभु और राधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका श्रवणकर रहा है। श्रील प्रभुपादने इच्छा की और अपनी भुजाएँ कौन हैं? उनके शिष्यगण, उनके आश्रितजन ही उनकी भुजाएँ हैं।

यद्यपि उनकी धारामें आनेके कारण हम सभी सौभाग्यशाली हैं, तथापि हमें और अधिक दृढ़ बननेका अथाह प्रयास करना चाहिए। कभी कभी जब आपलोग अच्छे संगमें नहीं रहते हो, तब दुर्बल हो जाते हो। ऐसा हो सकता है कि जब मैं भारत लौट जाऊँगा, तब तुमलोग दुर्बल हो जाओगे। दुर्बल मत होओ। सर्वदा यह अनुभव करो कि तुम्हारे साथ सभी गुरुवर्ग, श्रीराधाकृष्ण, श्रीमन्महाप्रभु, श्रीनित्यानन्दप्रभु, श्रीगुरुदेव हैं; वे तुम्हारी सदैव रक्षा करेंगे। श्रीहरिनाम तथा कृष्ण-स्मरणका कभी त्याग मत करो।

श्रील सरस्वती ठाकुर कृपाके समुद्र केवल इसलिए नहीं हैं कि उन्होंने हमें हरिनाम प्रदान किया, बल्कि उन्होंने इससे भी बहुत अधिक कुछ प्रदान किया है। वे गोलोक वृन्दावनसे

ब्रजगोपियोंका विमल प्रेम लाये। यदि वे प्रेम नहीं लाते तो हम कभी भी इसे नहीं जान पाते। इसलिए वे कृपाके समुद्र हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरने हमें बतलाया कि ज्ञान पाँच प्रकारके होते हैं—प्रत्यक्ष, परोक्ष, अपरोक्ष, अधोक्षज और अप्राकृत। जो ज्ञान हमें वस्तुओंको प्रत्यक्ष रूपसे देखकर और अनुभवकर प्राप्त होता है, उस ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं; यह ज्ञान प्राकृत (जड़) इन्द्रियों द्वारा उपलब्ध होनेके नाते सीमित है। परोक्ष ज्ञान—हम स्वर्ग नहीं गये, परन्तु स्वर्गका इतिहास अवश्य पाते हैं, इसलिए हम स्वर्गमें विश्वास करते हैं यद्यपि हमने स्वर्ग देखा नहीं है। हम सुनते हैं कि एक व्यक्ति चोर, डकैत है तो उसे नरक जाना पड़ेगा और यदि कोई व्यक्ति पुण्य कर्म करता है तो उसे स्वर्गकी गति होगी, इस ज्ञानको परोक्ष कहते हैं। अपरोक्ष ज्ञान—यह ज्ञान शंकराचार्यने प्रदान किया। एक दिन हम सबको मरना है और सब कुछ इसी संसारमें ही छोड़ना पड़ेगा, जैसे—अपना सौन्दर्य, अपना शरीर तथा अपनी सम्पत्ति। कुछ भी हमारे साथ नहीं जायेगा, फिर हम क्यों इन तुच्छ वस्तुओंको इकट्ठा कर रहे हैं? एक बुद्धिमान व्यक्ति इन वस्तुओंसे विरक्त रहता है। परन्तु मूर्ख इन्हीं वस्तुओंमें आसक्त होता है और शरीरको बलवान् और सुन्दर बनानेमें ही लगा रहता है। आजकल मिस इंडिया, मिस वर्ल्ड, और मिस युनिवर्सकी प्रतियोगिताएँ होने लगी हैं। एक वर्षके पश्चात् क्या मिस इंडिया फिरसे मिस इंडिया नियुक्त होगी? नहीं। बल्कि सभी उसकी उपेक्षा करेंगे।

कीर्तन, स्मरण करने पर भी कई भक्त काम अर्थात् इन्द्रिय-तृप्ति छोड़ नहीं पाते। यही माया है। इसलिए भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर अपने योग्य शिष्योंको सर्वत्र भेजते थे जो इन कमजोर भक्तोंको बल प्रदान कर सकें। श्रील प्रभुपादने ही मुझे भी प्रेरणा दी। उनके अन्तरांग परिकर श्रील

भक्तिप्रज्ञान केशब गोस्वामी महाराजजीने एवं श्रील स्वामी महाराजजीने मुझे आज्ञा दी।

अधोक्षज—अधोक्षज क्या है? अधोक्षज वैकुण्ठ है, जहाँ कालकी सीमा नहीं है। वहाँ नित्य वर्तमान है। वहाँ जन्म-मृत्यु, रोग, दुःख नहीं हैं। उस लोकमें बहुत ऐश्वर्य है और वहाँ सभी नारायणकी उपासना करते हैं।

इन सबसे बढ़कर एक और श्रेष्ठ ज्ञान है जो हमें श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरजीने बतलाया। उस ज्ञानका नाम ‘अप्राकृत’ है। अप्राकृत वह प्रकोष्ठ है, जहाँ ब्रजलीला होती है। श्रीकृष्ण जहाँ अनेक प्रकारकी लीलाएँ करते हैं। वहाँ वे अनेक माता-पिताके द्वारा वशीभूत होते हैं, प्रिय गोपियों और सखाओं द्वारा वशीभूत होते हैं। हमें उन्हीं अप्राकृत श्रीकृष्णकी सदैव सेवा करनेका प्रयास करना चाहिये जो गोपियों, सखाओं, माता-पिता और गौ-वत्सके मध्य शोभायमान हैं। इस अप्राकृत ज्ञान द्वारा जीव यह अनुभूति प्राप्तकर सकता है कि कृष्णकी सेवा करना ही हमारे जीवनका उद्देश्य है।

कृष्ण सम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः। इस संसारमें हमारा सम्बन्ध माता पिता और परिवारसे है। हम समझते हैं कि यह मेरी माता है, वे मेरे पिता हैं, वह मेरा भाई है, परन्तु इन सम्बन्धोंके होते हुए भी हम इनसे सन्तुष्ट नहीं हैं।

ये सम्बन्ध कहाँसे आये? गोलोक वृन्दावनसे। वहाँ केवल कृष्णसे सम्बन्ध है। वे वहाँ किसीके पिता नहीं हैं। वे तो मित्र, बालक, प्रियतमके रूपमें ही वहाँ वास करते हैं। कृष्णके साथ हमारी आत्माका स्वरूपात् सम्बन्ध है। परन्तु हम इस सम्बन्धको भूल गये हैं। इस शरीरसे सम्बन्धित सभी सम्बन्ध क्षणिक और मिथ्या हैं।

हमें प्रेम चाहिए। पहले हम माता-पितासे प्रेम करते थे, फिर भाई और सम्बन्धियोंसे प्रेम किया। परन्तु कहीं भी सन्तुष्ट नहीं हो पाये। इसके उपरान्त हमने पति और पत्नीको संग्रह किया। परन्तु फिर भी सन्तुष्ट नहीं हो सके।

कोई भी इस प्रकार सन्तुष्ट नहीं हो सकता। हम तभी पूर्णरूपसे सन्तुष्ट हो सकते हैं, जब हम कृष्णसे मिलें और कृष्णकी सेवा करें। यह दिव्य सम्बन्ध गुरुदेव देते हैं, प्रभुपादजीने यह दिया। इसलिए उन्होंने मन्त्र दिया ‘क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय’।

माधुर्योज्ज्वल प्रेमाढ्य श्रीरूपानुग भक्तिद—वे वास्तवमें यह माधुर्योज्ज्वल प्रेम या गोपी प्रेम प्रदान करनेके लिए आये थे, जिसे श्रीरूपगोस्वामीजीने अपने ग्रन्थोंमें सर्वत्र वर्णन किया और जिस प्रेमको देनेके लिए श्रीमन्महाप्रभु इस जगतमें आये। वे केवल इस सम्बन्धको देनेके लिए आये कि ‘कृष्ण ही हमारे प्रियतम हैं’। श्रीलप्रभुपादजीने अपने प्रबन्धोंमें लिखा है “मैं केवल यही देने आया था परन्तु मेरा सारा समय इन अपसिद्धान्तरूप जड़लोंको काटनेमें चला गया”। श्रील स्वामी महाराजजी भी विदेशोंमें कृष्णका यह प्रेम प्रदान करने आये थे। परन्तु वे किसे प्रदान करते? सभी तो अयोग्य थे। उनका सारा समय मायावादरूपी जंगलको काटनेमें चला गया। परन्तु इस गोपीप्रेमके सिद्धान्तको उन्होंने अपने ग्रन्थोंमें संरक्षित करके रख दिया।

प्रभुपाद श्रीभक्तिसिद्धान्त सरस्वतीजीने भी ऐसा ही किया। उनके अन्तिम दिनोंमें जब वे राधाकृष्णदेव काटनेमें वास कर रहे थे, उन्होंने कहा—“यदि कोई मायावादका जंगल काटनेमें लगा रहे और रूपगोस्वामी द्वारा बताये हुए गोपीभावको स्वीकार न करे और राधा-कृष्णका भजन न करे तो

जल्दी ही कीर्तन करनेमें कमजोर हो जायेगा।” फलस्वरूप स्वयं निर्विशेषवादी, मायावादी बन जाएँगे, जैसे कि कुछ लोग आजकल हो रहे हैं।

श्रीरूपानुगभक्तिद—श्रील प्रभुपाद और हमारी सम्पूर्ण गुरुपरम्परा केवल रूपानुग भक्तिका प्रचार करनेके लिए ही आयी। उनके पास अधिक समय नहीं था क्योंकि उनका समय मायावादरूपी जंगल काटनेमें चला गया। मैं एक महत्वपूर्ण कार्य करना चाहता हूँ। मैंने इस रागानुगा मार्गको स्वीकार किया है एवं सब समय इसीका प्रचार किया। फिर, विदेशमें आने पर मैंने विचार किया, “मैं उच्च स्तरकी भक्तिके विचार किसको सुनाऊँ?” अब मुझे भी कुछ जंगल काटने हैं। जब मैं वृन्दावन या नवद्वीपमें होता हूँ तो मैं श्रीमन्महाप्रभु एवं राधा-कृष्णकी उत्तरत स्तरकी मधुर लीलाओंका वर्णन करता हूँ।

इस प्रकार श्रील प्रभुपाद माधुर्योज्ज्वल प्रेमके रस समुद्र हैं। वे इसीको प्रदान करना चाहते थे एवं उन्होंने किया भी। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो फिर हमें श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शुद्ध भक्ति धाराके विचार कहाँसे प्राप्त होते? श्रील प्रभुपादको प्रणाम है। श्रील प्रभुपादकी जय हो। श्रील प्रभुपादके सभी परिकरोंकी जय हो। श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी जय हो। आप सभी भक्तवृन्दकी जय हो।

वैष्णव धर्मकी क्षीणता क्यों है?

—श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

बुद्ध, आल्ला एवं योशु इत्यादि में भेद क्यों देखा जाता है? क्या यह भेद मिथ्या है?

मुसलमान एवं ख्रीष्टान कहने से एक ही धर्मकी धारणा नहीं होती है, क्यों? इनमें भिन्नताका क्या कारण है? आजकल मुसलमान एवं ख्रीष्टान धर्मके बढ़ते हुए प्रचारको देखकर

एकमेवाद्वितीयम्—वस्तु मात्र एक है। अतः बहुत वस्तुओंकी बात सत्य नहीं है, यह विचार जिस प्रकार अज्ञानजनित है, उसी प्रकार बहुत्वहीन एक वस्तुकी धारणा भी अज्ञानजनित ही है। भगवान अथवा ईश्वर एक हैं—सभी ऐसा ही कहते हैं। यदि यही सत्य है तो कृष्ण, राम,

कुछ लोग भयभीत क्यों हो रहे हैं? सनातन धर्मका प्रचार धीर-धीरे क्षीण क्यों होता जा रहा है? मठ एवं मन्दिरोंकी संख्यामें पहले की अपेक्षा कई गुणा वृद्धि होनेपर भी सनातन धर्मका प्रचार क्यों नहीं देखा जा रहा है? ये सब बातें विचारणीय हैं।

यह विषय बहुत ही जटिल है। इस विषयकी धारणा करनेकी योग्यता भी सबके पास नहीं है। वस्तु मात्र एक ही है, यह अटल सत्य है। यह बात काल्पनिक नहीं है। क्योंकि ऐसा शास्त्रोंमें वर्णन है एवं शास्त्र अभ्यान्त सत्य हैं। परन्तु वस्तु एक होनेपर भी सर्वदा वैशिष्ट्य युक्त है। जिस प्रकार मनुष्य एक तत्त्व है। परन्तु मनुष्य कहने से किसी एक ही मनुष्यका पता नहीं चलता, बल्कि मनुष्यके वैशिष्ट्यके कारण कितने ही प्रकारके मनुष्योंका पता चलता है। जीव कहनेसे भी मात्र एक जीव नहीं, अपितु अनेकों जीवोंका पता चलता है। उसी प्रकार भगवान कहनेसे भी केवल एक ही भगवानका पता नहीं चलता, बल्कि रूप, गुण एवं लीलाके वैशिष्ट्यके अनुसार भगवानके बहुतसे स्वरूपोंका पता चलता है। उनके द्वारा प्रवर्तित आचरण, लीला एवं उपदेश आदि भी भिन्न-भिन्न होते हैं। इसलिए उनकी उपासनाके फलमें भी भेद देखा जाता है। वैशिष्ट्यके कारण भगवानका कोई स्वरूप रूप, गुण और लीलासे युक्त एवं कोई रूप, गुण और लीलासे रहित की भाँति प्रतीत होते हैं।

साधक एवं सिद्ध अवस्थामें सर्वदा ही भेद है, उसी प्रकार साधन एवं सिद्धिमें भी भेद है। जिस प्रकार कोई साकाहारी होता है, तो कोई मांसाहारी। किसी धर्ममें भोगोंकी प्रचुरता देखी जाती है, तो किसी धर्ममें कठोर त्याग देखा जाता है। बद्ध अवस्थामें जीव इन्द्रियसुख चाहता है। इसलिए जिस धर्ममें जितने अधिक परिमाणमें इन्द्रियतर्पणकी सुविधा होती है, उसी धर्मके प्रति उसकी निष्ठा हो जाती है। इसके विपरीत इन्द्रियसंयम कष्टकर होने

एवं रुचिकर न होनेके कारण त्याग एवं संयमपूर्ण धर्मका प्रचार नहीं हो पाता। इसीलिए दोनों धर्म समान फल देनेवाले नहीं होते, अतः ठीक-ठीक विचार करनेपर उत्कृष्ट और अपकृष्ट इन दो गुणोंवाले धर्मको देखा जाता है। यदि कोई किसी को दुःख प्रदान करता है तो उसे भी उसी प्रकार दुःखी होना पड़ेगा यह सत्य है। जिन समस्त धर्मोंमें भोगोंकी सुविधा अधिक होती है, यदि उन सभी धर्मोंका प्रचार बढ़ता है, तो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। स्त्री, पुत्र आदिमें अनासक्त, संयमी एवं भगवानमें आसक्तियुक्त भक्तोंकी संख्या तो कम होगी ही। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। एम.ए. कक्षाके छात्रोंकी संख्या कम होनेपर भी वे श्रेष्ठ छात्र कहे जाते हैं, उसी प्रकार सनातन धर्मका प्रचार कम होनेपर भी शुद्धताके कारण इसको श्रेष्ठ मानना पड़ेगा।

मुक्तानामपि सिद्धानां नारायण परायणः।

सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने॥

(श्रीमद्भा. ६/१४/५)

कोटि-कोटि सिद्ध एवं मुक्त पुरुषोंमें एक नारायण परायण भक्त दुर्लभ है। सनातन धर्मका चरम लक्ष्य कृष्णप्रेम है। दुष्कर्मफल भोगी किसी दरिद्रसे प्रेम करनेसे उस लक्ष्यकी प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं है। अतः उत्रत भक्त दरिद्रोंकी सेवाको ही चरम प्रयोजन नहीं मानते। सनातनधर्मके शास्त्रोंका भी यही उपदेश है—**सर्व धर्मान् परत्यज्य मामेकं शरणं व्रज।** (गीता. १८/६६) राजासे प्रेम करनेका फल एवं प्रजासे प्रेम करनेका फल, ये कभी भी एक नहीं हो सकता, कनिष्ठ अधिकारी इसे समझ नहीं पाते। प्राचीनकालमें हिमालय पर्वत पर साधुलोग निवास करते थे, परन्तु आजकल वहाँ पर बड़े-बड़े गिरजाघर हो गये हैं तथा उनमें दरिद्र एवं अज्ञलोग अपने धर्मको परिवर्तन करके रह रहे हैं, इसीसे पता चलता है कि सनातन धर्मका प्रचार उचित प्रकारसे नहीं हो रहा है। अब विचारणीय विषय यह है कि इसके

लिए दोषी साधुलोग हैं अथवा धर्म निरपेक्ष राष्ट्र? साधुलोग हिमालय पर्वत पर फल, मूल आदि खाकर जीवन धारण करते हैं। सरकार उनके लिए किसी प्रकारकी चिन्ता करनेकी आवश्यकता ही नहीं समझती है, परन्तु जंगलमें हिंसक प्राणी किस प्रकार सुरक्षित रहेंगे, इसके लिए कितनी ही प्रकारकी व्यवस्थाएँ कर रही है। क्या यह विचारणीय नहीं है? महाराज अशोक एवं चन्द्रगुप्तके समय बौद्धधर्म केवल भारतमें ही नहीं, अपितु सिंहल, चीन, जापान इत्यादि देशोंमें भी फैल गया था। आज भी वे समस्त देश बौद्धधर्मके अनुयायी हैं, परन्तु आज हमारे ही देशमें सनातन धर्म लुप्त हो रहा है। क्यों? धर्मनिरपेक्षता, उदासीनता तथा धर्मद्रोहिता ही इसका मूल एवं प्रधान कारण है। इसके अतिरिक्त सनातन धर्मके शास्त्र संस्कृत भाषामें लिखे हुए हैं। आजकल हमारा देश संस्कृत भाषाके प्रति उदासीन होकर उसके स्थान पर हिन्दी भाषाको महत्व दे रहा है। इसी कारण हिन्दी भाषाका उत्थान एवं संस्कृत भाषाका पतन हो रहा है—क्या यह सत्य नहीं है? ख्रीष्टान धर्मके प्रचारके लिए ख्रीष्टान राष्ट्र जिस प्रकार बिना कृपणताके धन व्यय करते हैं, आजकल भारतवर्ष ऐसा कर रहा है क्या?

विशेष रूपसे श्रीमन्महाप्रभुके द्वारा प्रचारित धर्म कठोर वैराग्ययुक्त होनेके कारण इसके प्रति

बद्ध जीवकी रुचि होना बहुत ही कठिन है।

धन जन आर कविता सुन्दरी।

बलिव न चाहि देह सुख करि॥

जन्मे जन्मे दाऊ ओहे गौर हरि।

अहैतुकी भक्ति चरणे तोमार॥

न धनं न जनं न सुन्दरीं

कवितां वा जगदीश कामये।

मम जन्मनि जन्मनीश्वरे

भवताद्वक्तिरहैतुकी त्वयि॥

यही महाप्रभुकी शिक्षा है। श्रीकृष्णके प्रति अहैतुकी भक्ति ही उनकी मुख्य शिक्षा है।

आश्लब्ध वा पादरतां पिनष्टु-

मामदर्शनान्मर्हतां करोतु वा।

यथा तथा वा विदधातु लम्पटो

मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः॥

इस श्लोकमें यही व्यक्त है। महाप्रभुके द्वारा प्रचारित धर्ममें संकीर्णता नहीं है।

जेइ भजे सेइ बड़ अभक्तहीन छाड़,

कृष्ण भजने नाहि जाति कुल आदि विचार॥

परन्तु फिर भी भोग वर्जित होनेके कारण तथा वैराग्ययुक्त होनेके कारण इसका प्रचार कम होना स्वभाविक ही है। Oh God give me my daily bread. ऐसी सकाम भक्तिका स्थान महाप्रभुके धर्ममें नहीं है। इसीलिए इसके ग्राहक भोगपर धर्मोंकी अपेक्षा बहुत कम होंगे, यही सिद्धान्त है।

श्रीगौराज्ञ-सुधा

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

हरिदास पर कृपा

मुरारीगुप्तपर कृपाके पश्चात् प्रभु हरिदास ठाकुर (इन्हें ब्रह्माजी एवं प्रह्लादजीका मिला हुआ रूप कहा जाता है।) से बोले—“हरिदास! तुम भी मेरा दर्शन करो। तुम तो मुझे मेरे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। उन पापी मुसलमानोंने तुम्हें जो कष्ट दिये, उनको स्मरण कर तो मेरा हृदय

विदीर्ण हो जाता है। हरिदास! जब दुष्ट मुसलमान तुम्हें बाइस बाजारोंमें मारते-मारते घुमा रहे थे, उस समय मैं तुम्हारा कष्ट सह नहीं पाया तथा क्रोधित होकर हाथमें चक्र लेकर उनका विनाश करनेके लिए वैकुण्ठसे वहाँ पर गया था। अभी मैं उनके विनाशके लिए अपना चक्र छोड़ने ही

वाला था कि सभी का हित चाहनेवाले परम दयालु तुमने मुझसे प्रार्थना की—हे प्रभो! आप कृपापूर्वक इन लोगोंको क्षमा करें। क्योंकि ये अबोध हैं।” तुम्हारी ऐसी प्रार्थनाने मुझे एवं मेरे चक्रको रोक दिया। परन्तु वे तो दुष्ट थे। अतः वे निर्दयतापूर्वक तुम्हें कोड़ोंसे पीटते ही जा रहे थे। अब मैं क्या कर सकता था। तुम्हें इस प्रकार पिटता हुआ मैं नहीं देख सका। अतः तुम्हारे पीठ पर होनेवाले प्रहरोंको मैंने अपनी पीठ दिखाई तो उनके मक्खनसे भी अधिक कोमल पीठपर गहरे-गहरे कोड़ोंके निशानोंको देखकर सभीको बहुत आश्चर्य हुआ। हरिदासकी तो विचित्र ही दशा हो गयी। अपने प्रति प्रभुकी कृपा देखकर उनकी आँखोंसे गंगा-यमुनाकी भाँति अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा वे रोते-रोते प्रभुके श्रीचरणोंसे लिपट गये। उन्हें इस प्रकार विकलतापूर्वक रोता देखकर प्रभुकी आँखें भी छलछला आई। वे हरिदासको सांत्वना देते हुए कहने लगे—“हरिदास! मैं इस धरा-धामपर कुछ विलम्बसे आनेवाला था, परन्तु तुम्हारा दुःख न सह पानेके कारण अतिशीघ्र ही आ गया।” इस प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा अपने प्रेमी भक्तोंकी रक्षाके लिए तथा जगतमें उनका सम्मान बढ़ानेके लिए क्या कुछ नहीं कहते एवं क्या कुछ नहीं करते? कभी-कभी वे अपने प्रिय भक्तोंकी रक्षाके लिए आगको भी खा जाते हैं।

एक बार कृष्ण एवं उनके सखालोग भाण्डीरवट पर खेल रहे थे। खेलते-खेलते बछड़ोंके प्रति उनका ध्यान हट गया तथा वे बछड़े चरते-चरते वहाँसे कुछ दूरीपर मुँजा घासके वनमें चले गये। उस समय घास सूखी हुई थी। इधर कुछ समय बाद जब कृष्ण एवं सखाओंको बछड़ोंका ध्यान आया तो वहाँ पर बछड़ोंको न देखकर दुःखी हो गये तथा कृष्णको वहाँ छोड़कर वे भी बछड़ोंको

खोजते-खोजते उसी वनमें प्रवेश कर गये। उसी समय कंसका भेजा हुआ एक दैत्य वहाँ पहुँचा। उसने देखा कि सभी सखा एवं बछड़े वनके बीचमें हैं, तो उसने चारों ओरसे वनमें आग लगा दी। घास तो वैसे ही सुखी हुई थी। अतः कुछ क्षणोंमें ही आगने विकरालरूप धारणकर लिया तथा सभी बच्चे एवं बछड़े आगसे घिर गये। आग धीरे-धीरे उनके निकट आती जा रही थी। आगकी प्रचण्ड लपटोंके तापसे उनके शरीर तपने लगे। पीड़ाके कारण सभी सखा एवं बछड़े व्याकुल होकर बचनेके लिए इधर-उधर दोड़ने लगे। परन्तु जब उन्हें बचनेका कोई उपाय न सूझा तो वे जोर-जोरसे रोते हुए करुण स्वरसे कृष्णको पुकारने लगे। उनकी करुण पुकारको सुनकर कृष्ण वहाँ पर प्रकट हो गये। कृष्णको अपने सामने देखकर उन्हें कुछ शान्ति मिलि क्योंकि वे जानते थे कि अवश्य ही हमारा सखा हमारी रक्षा कर लेगा। कृष्ण बोले—“मेरे प्यारे सखाओ! तुमलोग डरो मत। तुम सब अपनी आँखें बन्द कर लो। सखाओंने विचार किया कि कृष्ण कुछ मन्त्र इत्यादि पढ़ेगा। मन्त्र किसीके सामने नहीं किए जाते। अतः उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसी समय कृष्णने उस सारे दावानल (आग) को पान कर लिया। कुछ क्षण पश्चात् कृष्णके कहने पर जब सभीने आँखें खोली तो उन्हें यह देखकर बहुत आश्चर्य हुआ कि वे जहाँ पहले खेल रहे थे वहाँ पर थे तथा निकट ही बछड़े चर रहे थे। वहाँ पर आगका नामोनिशान भी नहीं था।

वे अपनी इच्छानुसार अपने भक्तोंका सम्मान बढ़ानेके लिए उनके दास भी बन जाते हैं। वास्तविक तथ्य तो यह है कि वे अपने भक्तोंके अतिरिक्त और किसीको भी नहीं जानते। प्रभु बोले—“हरिदास! उठो तथा मेरे स्वरूपका दर्शन करो।” यह सुनकर हरिदासजीको बाह्यज्ञान तो हुआ, परन्तु दर्शन क्या करेंगे, वे तो बिलखते

हुए जमीनपर लोट-पोट खाने लगे। उनकी ऐसी अवस्था देखकर स्वयं प्रभु उन्हें स्थिर कराने लगे, परन्तु उनके हृदयमें उठने वाले भावोंकी तरंगें शान्त होनेका नाम नहीं ले रही थीं।

प्रभुको अपने समक्ष दर्शनकर भाव तरंगे और भी अधिक बढ़ रही थी। उस समय वे आर्तनाद करते हुए कहने लगे—“हे प्रभो! मैं आपका गुणगान क्या कर सकता हूँ। मैं तो पापी हूँ, अधम हूँ तथा समस्त जातियोंसे बहिष्कृत हूँ। यदि एकबार भी गलतीसे किसीकी दृष्टि मुझपर पड़ जाए तो उसे घोर पाप लगता है तथा यदि कोई मुझे स्पर्श भी कर ले तो उसे सवस्त्र तीर्थ स्नान करना पड़ेगा। अतः मुझ जैसे पापीके मुखसे आपकी पवित्र महिमाका गुणगान निकलना कैसे सम्भव हो सकता है? आपकी दयाका वर्णन क्या करूँ? पापी-से-पापी व्यक्ति भी यदि एक बार आपका स्मरण करे, तो आप उसको अपना लेते हैं। मनुष्यकी तो बात ही क्या पशु-पक्षी, इत्यादि भी यदि आपका स्मरण मात्र करें तो आप तत्काल उसपर कृपा करते हैं। जैसे—गजेन्द्रने आपका स्मरण किया तथा आपने तुरन्त मगरमच्छसे उसकी रक्षा ही नहीं की, बल्कि उसे अपना पार्श्व बनाकर वैकुण्ठ पहुँचा दिया। जब भरी हुई कौरव सभामें आपकी प्रिया द्रौपदीको दुःशासन नग्न करनेका प्रयास कर रहा था, उस समय जब सब ओरसे निराश होकर उसने रोते-रोते कातर स्वरसे आपको पुकार, उस समय आप तुरन्त उसकी साड़ीमें ही प्रवेश कर गये। जिससे वह दुष्ट साड़ी खींचते-खींचते हार गया, परन्तु द्रौपदीके शरीरसे साड़ी अलग नहीं हो सकी। क्योंकि आप तो अनन्त हैं, अतः आपके प्रभावसे वह साड़ी भी अनन्त हो गई थी। एक समय पार्वतीजीको पिशाचिनियोंने घेर लिया तथा उसे खानेको तैयार हो गई। उस समय पार्वतीजीने घबराकर आपका स्मरण किया। उनके स्मरण करते ही आपने वहाँ पर प्रकट

होकर उन पिशाचिनियोंसे पार्वतीजीकी रक्षा की। दुष्ट हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको सर्पोंसे डँसवानेका, विष देकर मारनेका, आगमें जलाकर मारनेका तथा गलेमें भारी पथर बौधकर उन्हें नदीमें डुबाकर मारनेकी अनेक कुचेष्टाएँ की, परन्तु अपने भक्तोंको अपने प्राणोंसे बढ़कर माननेवाले—आपने सब समय उनकी रक्षा की तथा हिरण्यकशिपुकी छातीको फाड़ दिया। बनवासके समय जब दुर्योधनने छलपूर्वक दुर्वासाके हाथों पाण्डवोंका विनाश करानेके लिए उन्हें पाण्डवोंके पास भेजा तो उस समय आप वहाँ पर प्रकट हो गये तथा पाण्डवोंसे बोले कि तुमलोग चिन्ता मत करो, आज दुर्वासा ऋषिको मैं भिक्षा दूँगा, ऐसा कहकर आपने हाँड़ीके तलपर चिपके हुए सागके एक छोटेसे टुकड़ेको प्रसन्नतापूर्वक खा लिया, जिससे नदीमें स्नानके लिए गए दुर्वासा एवं उनके शिष्योंका पेट भर गया। अपने पुत्रके लिए नारायण पुकारने पर भी आपने पापी अजामिलका उद्धार कर दिया। परन्तु प्रभो! मैं तो आपका स्मरण भी नहीं कर पाता हूँ। फिर भी आपसे निवेदन करता हूँ कि आप मेरे जैसे पापीको नहीं छोड़ेंगे। मैं आपसे एक ही वस्तु माँगता हूँ और मुझे कुछ नहीं चाहिए।”

यह सुनकर प्रभु जल्दीसे बोले—“माँगो हरिदास! माँगो। तुम्हें जो कुछ भी चाहिए निःशंकोच्चपूर्वक माँगो। मैं तुम्हें सब कुछ प्रदान करूँगा।” यह सुनकर हरिदास हाथ जोड़कर कहने लगे—“प्रभो! मैं आपसे यही माँगता हूँ कि जो सौभाग्यवान व्यक्ति आपका भजन करते हैं, उनके उच्छिष्ट (जूठन) से ही मेरा जीवन निर्वाह हो। क्योंकि मैं अत्यन्त पापी हूँ। अतः अपने दासोंका उच्छिष्ट प्रदानकर मुझे कृतार्थ करें, अथवा आप मुझे अपने भक्तके घरका कुत्ता बना दीजिए, जिससे मैं उनके दरवाजेपर बैठकर उनकी सेवा करूँगा तथा बदलेमें उनके उच्छिष्टसे अपना निर्वाह करूँगा।”

प्रभु—“हरिदास! मैं आज सबके सामने घोषणा कर रहा हूँ कि एक दिन भी यदि कोई आपका संग करेगा अथवा एक क्षणके लिए भी यदि आपने किसीके साथ बातें की तो वह अवश्य ही मुझे प्राप्त करेगा, इसमें लेशमात्र भी संदेह नहीं है। यदि कोई तुम्हारे प्रति श्रद्धा करेगा तो वह श्रद्धा मेरे प्रति होगी, क्योंकि मैं सर्वदा ही तुम्हारे शरीरमें निवास करता हूँ। हरिदास! तुम्हारे जैसे सेवकके आगे मेरी एक भी नहीं चलती। तुमलोग मुझे सर्वदाके लिए अपने हृदयमें बाँध लेते हो। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि मेरे चरणोंमें अथवा मेरे भक्तोंके चरणोंमें तुम्हारा कभी भी अपराध नहीं होगा। तुम सर्वदा निर्भय होकर सदा-सर्वदा मेरा भजन करो।” जब प्रभुने हरिदासको यह वरदान दिया तो वैष्णवोंमें आनन्दकी लहर दौड़ गई। सभी लोग भुजाओंको उठाकर आनन्दसे जय-जयकार करने लगे।

श्रीअद्वैताचार्य पर कृपा

उसी समय प्रभुकी दृष्टि निकट ही हाथ जोड़े बैठे श्रीअद्वैताचार्य पर पड़ी। प्रभु हँसते हुए कहने लगे—“आचार्य! आपको याद है, एक दिन मैंने आपको आधी रातके समय भोजन कराया था। जब मैं आविर्भूत नहीं हुआ था, उस समय मुझे जगतमें प्रकट करानेके लिए आप कठोर परिश्रम कर रहे थे। आप गीता एवं भागवत आदिका पाठ करते थे, परन्तु आपकी भक्तिपरक व्याख्याओंको समझनेमें कोई भी समर्थ नहीं होता था। एक दिन एक श्लोकका भक्तिपरक अर्थ आपको समझमें नहीं आया। उस समय आपने श्लोकका दोष नहीं देखा, बल्कि स्वयंको धिक्कार करने लगे। इस प्रकार बहुत दुःखी होकर आपने भोजन भी नहीं किया तथा सारी रात भूखे रहकर मेरी स्तुति करते-करते आप सो गये थे। उस समय आपको दुःखी एवं भूखा देखकर मुझे असहनीय पीड़ा हो रही थी। क्योंकि मैं आपका लेशमात्र भी कष्ट नहीं सह सकता। अतः आधी

रातके समय स्वप्नमें मैं आपके पास आया तथा आपसे बोला—“हे आचार्य! उठिए। श्लोकका अर्थ सुनिए तथा भोजन कीजिए। इस प्रकार मैंने आपको अर्थ बताया तब आपने भोजन किया। इस प्रकार एकबार नहीं अनेक बार मैंने कभी प्रत्यक्ष अथवा कभी स्वप्नमें आपको श्लोकोंका अर्थ बताया है।” यह सुनकर अद्वैताचार्य आनन्दसे विहङ्ग होकर रोने लगे। प्रभु कहने लगे—“आचार्य! आप मेरा दर्शन कीजिए तथा मुझसे अपनी इच्छानुसार कुछ भी बरदान माँगिए।”

अद्वैताचार्य—“हे प्रभो! मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि आप मूर्ख, नीच एवं पतितोंका भी उद्धार करें।” उस समय सभी लोग प्रभुसे अपने परिवारके विमुख सदस्योंपर कृपा करनेके लिए प्रार्थना करने लगे। कोई बोलने लगा—“प्रभो! मेरे पिताजी मुझे आपके पास नहीं आने देते। अतः आप ऐसी कृपा कीजिए कि उनकी बुद्धि शुद्ध हो जाए।” इस प्रकार कोई कहने लगा—“मेरी स्त्री विमुख है, आप कृपा कीजिए कि वह भी आपका भजन करने लग जाए।” कोई बोला—“प्रभो! आप मुझे यही वर दीजिए कि अपने गुरुके चरणोंमें मेरी दृढ़ श्रद्धा हो जाए।” यह सुनकर भक्तोंकी वाणीको सत्य करनेवाले प्रभु मुस्कराते हुए सभीको उनके इच्छित वर देने लगे।

मुकुन्द पर कृपा

जब सभीलोग प्रभुसे वरदान माँग रहे थे, उस समय प्रभुके प्रधान कीर्तनीया मुकुन्द दरवाजेके बाहर बैठे हुए थे। उनकी हिम्मत नहीं हो रही थी कि वे प्रभुके समक्ष जा सकें। मुकुन्द तो सभीके प्रियपात्र थे। कोई भी समझ नहीं पा रहा था कि प्रभु सभीको बुला-बुलाकर कृपा कर रहे हैं, परन्तु मुकुन्द जो कि यहीं पर बैठा है, उसे नहीं बुला रहे हैं, जबकि यह प्रभुका प्रधान कीर्तनीया है। आखिर इससे क्या अपराध हो गया? यह देखकर सभीको बहुत कष्ट हुआ। कुछ क्षण पश्चात् श्रीवास पण्डितने हिम्मत

करके प्रभुसे पूछ ही लिया—“हे प्रभो! हे जगतके नाथ! मुकुन्दने ऐसा क्या अपराध किया, जो आपने सब पर तो कृपा की परन्तु मुकुन्द पर कृपा नहीं की। मुकुन्द तो आपका प्रिय है तथा हम सभीको प्राणोंके समान प्यारा है। जब वह कीर्तन करता है तो पाषाण हृदय व्यक्तिका हृदय भी पिघल जाता है। यदि इससे कुछ अपराध भी हो गया हो तो आप कृपाकर इसे दण्ड दीजिए, परन्तु इस प्रकार अपने सेवकको अपनेसे दूर न कीजिए। अतः आप इसे क्षमा कर अपने पास बुलाइये। यदि आप नहीं बुलाएँगे तो वह आपके सम्मुख नहीं आ पाएगा” यह सुनकर प्रभु कुछ रोषपूर्वक कहने लगे—“श्रीवास! आपलोग फिरसे ऐसी बात मत कहना तथा उसके लिए मेरे पास प्रार्थना भी मत करना। क्योंकि यह बेटा खड़जाठिया है अर्थात् यह जहाँ जाता है, वहाँ वैसा ही आचरण करता है। जब यहाँ पर रहता है अर्थात् वैष्णव मण्डलीमें रहता है तो दाँतोंमें तृण धारण करता है अर्थात् अपनी दीनता प्रकाशित करता है, अपनेको मेरा अकिञ्चन दीन-हीन सेवक मानता है। परन्तु जब मायावादियोंकी मण्डलीमें जाता है, तो वहाँ जाकर मेरे स्वरूपको नहीं मानता। मुझे निराकार, निर्विशेष इत्यादि कहकर तथा भक्तिको अनित्य मानकर मेरे शरीर पर जाठी (लाठी) से प्रहार करता है। इस प्रकार इसका भक्तिदेवीके श्रीचरणोंमें अपराध हुआ है। इसीलिए इसपर मेरी कृपा सम्भव नहीं है।” मुकुन्द बाहरसे ही यह सब सुन रहे थे। वे विचार करने लगे कि बहुत समय पहले साम्प्रदायिक शिक्षाके प्रभावके कारण मैंने भक्तिकी श्रेष्ठता स्वीकार नहीं की। अन्तर्यामी प्रभु इसे जान गये। इसलिए अब जबकि मुझपर उनकी कृपा नहीं होगी तो इस पापी शरीरको ढोनेसे क्या लाभ? जब यह प्रभुकी सेवामें नहीं लगा तो। इसलिए मैं आज ही इस अपराधी शरीरको छोड़ दूँगा। ऐसा विचारकर वे श्रीवास पण्डितसे बोले—“हे

श्रीवासजी! आप मेरी तरफसे कृपाकरके प्रभुसे पूछिये कि क्या कभी वे मुझे दर्शन देंगे।” ऐसा कहकर मुकुन्द फूट-फूटकर रोने लगे। उन्हें रोता देखकर वैष्णवोंका हृदय भी टुकड़े-टुकड़े हो गया तथा वे भी क्रन्दन करने लगे। श्रीवासजी प्रभुसे बोले—“प्रभो! मुकुन्द पूछ रहा है कि क्या आप उसपर कृपा करेंगे?”

प्रभु—“एक करोड़ जन्मोंके बाद मैं उसपर कृपा करूँगा। अर्थात् वह मेरा दर्शन पाएगा।”

बाहर बैठे मुकुन्दने जब सुना कि एक करोड़ जन्मके बाद प्रभु मुझे दर्शन देंगे तो उन्हें अपार आनन्द हुआ तथा आनन्दसे भुजाएँ उठाकर उद्दण्ड नृत्य करते हुए कहने लगे—“मुझपर प्रभुकी कृपा अवश्य होगी, अवश्य होगी।” उन्हें इस प्रकार आनन्दसे नाचते देख प्रभु विश्वम्भर हँसने लगे। हँसते हुए उन्होंने आदेश दिया—“मुकुन्दको मेरे पास ले आओ।” यह सुनकर सभी वैष्णववृन्द मुकुन्दसे कहने लगे—“मुकुन्द! चलो, तुम्हें प्रभुजी बुला रहे हैं।” परन्तु मुकुन्दको तो होश ही नहीं, वे तो आनन्दसे नाचे ही जा रहे थे। तब प्रभु स्वयं ही बोले—“मुकुन्द, तुम्हारे अपराध नष्ट हो गए हैं। अब तुम मेरे पास आकर मेरा दर्शन करो।” तब सभीलोग मुकुन्दको पकड़कर अन्दर ले आए। प्रभुके समीप जाते ही वे प्रभुके श्रीचरणोंमें गिर पड़े। प्रभु बोले—“मुकुन्द! उठो। तुम मेरा दर्शन करो। अब तुम्हारा अपराध नहीं बचा। संग दोषके कारण ही तुम्हारा अपराध हुआ था। परन्तु अब तुम्हारा वह असत्संग नष्ट हो गया। मैं तुमसे हार गया। मेरे यह कहने पर कि कोटि जन्मके बाद तुम्हारे ऊपर कृपा होगी, तुम्हारी जो स्थिति हुई उसके द्वारा तुमने कोटि जन्म एक क्षणमें ही बिता दिये। मेरी बातोंपर इतना दृढ़ विश्वासकर तुमने तो मुझे अपने हृदयमें बौध लिया। असली बात तो यह है कि तुम मुझे बहुत प्रिय हो। अतः प्रिय होनेके कारण ही मैंने तुमसे हास-परिहास किया, जबकि

वास्तविक बात तो यह है कि यदि तुम कोटि-कोटि अपराध भी करो, तो भी तुम मेरे प्रिय ही बने रहोगे।” प्रभुकी इन सांत्वनापूर्ण, स्नेहपूर्ण बातें सुनकर मुकुन्द रोते-रोते अपनेको धिक्कार देते हुए कहने लगे—“हे प्रभो! मैंने अपने इसी पापी मुखसे भक्तिकी नित्यताको अस्वीकार किया। अतः मेरे जैसा भक्तिरहित व्यक्ति आपके मनोहर रूपका दर्शन करके भी क्या सुख प्राप्त कर सकता है? कदापि नहीं। जैसे—दुर्योधनने आपके विश्वरूपका दर्शन किया, जिसे दर्शन करनेके लिए बड़े-बड़े ऋषि-मुनि एवं स्वयं वेद भी इच्छा करते हैं, परन्तु भक्तिरहित होनेके कारण ऐसे दुर्लभ विश्वरूपका दर्शन करनेपर भी उसे आनन्द नहीं हुआ, बल्कि आपसे द्वेष करनेके कारण सर्वंश नष्ट हो गया। जब पृथ्वीदेवीका उद्धार करनेके लिए आप वराह (शूकर रूप) रूपमें प्रकट हुए तथा आपने पृथ्वी देवीको अपने दाँतोंमें धारण किया था, उस समय आपकी जो शोभा हुई, उस मनोहर रूपका दर्शनके लिए वेद भी लालायित रहते हैं। परन्तु उसी अद्भुत स्वरूपका दर्शनकर हिरण्याक्षको आनन्द नहीं हुआ, बल्कि उसके अन्दर क्रोधकी ज्वाला धधकने लगी, क्योंकि उसके हृदयमें लेशमात्र भी भक्ति नहीं थी। इसी प्रकार एक

ओर जहाँ कुञ्जा, यज्ञपत्नियाँ, माली, अक्रूर आदि सभी लोग आपका दर्शन पाकर धन्य हो गये, वहाँ दूसरी ओर कंस, जरासन्ध आदि राजा आपका दर्शन करनेपर भी द्वेष भावके कारण सर्वनाशको प्राप्त हुए। उसी प्रकार मैं भी भक्तिरहित होनेके कारण आपके स्वरूपका कैसे दर्शन कर सकता हूँ?” ऐसा कहकर मुकुन्द दोनों भुजाएँ उठाकर “हा गौर! हा गौरसुन्दर” कहकर आर्तनाद करने लगे। उन्हें इस प्रकार व्याकुलतापूर्वक खेद करते हुए देखकर प्रभु कुछ लज्जितसे होकर कहने लगे—“मुकुन्द! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। तुम जहाँ पर भी कीर्तन करोगे, मैं वहाँ पर अवतरित हो जाऊँगा। तुमने जितनी बातें कहीं वे सब सत्य हैं। भक्तिके बिना मुझे कोई भी नहीं देख सकता। जिसका तन, मन, वचन सब मुझमें अर्पित है, केवल वे ही मेरा दर्शन कर सकते हैं, और तुम मेरे ऐसे ही भक्त हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम जिस प्रकार मुझे प्रिय हो, उसी प्रकार सभी वैष्णवोंके भी प्रिय बने रहोगे। इसके अतिरिक्त जहाँ-जहाँ पर भी मेरा अवतार होगा वहाँ पर तुम मेरे कीर्तनमें रहोगे।” मुकुन्दके प्रति प्रभुका वरदान सुनकर सभी वैष्णववृन्द हर्षपूर्वक जय-जयकार करने लगे। (क्रमशः)

विविध संवाद

विश्वव्यापी श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणीके प्रचारक एवं श्रीगौ

श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके अनुग्रहीत श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज विदेशोंमें सर्वत्र श्रीमन्महाप्रभु द्वारा आचरित एवं प्रचारित धर्मका सफल प्रचार कर १५/०३/०२ को कोलकाता पहुँचे। कोलकाता हवाई अड्डे पर अनेक गौ

करते हुए उनका विशेषरूपसे स्वागत किया। तत्पश्चात्

कोलकातामें एक-दो दिन रहकर श्रीलमहाराजजी जब श्रीगौ

पधारे तो वहाँ मठवासी भक्तवृन्द उनको देखकर आनन्दसे फूले नहीं समा रहे थे। चारों ओर आनन्दकी लहर दौ

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमाके प्रारम्भ होनेके चार दिन पहलेसे ही श्रीलमहाराजजीने महाप्रभुके अन्तरङ्ग प्रिय पार्षद श्रीजगदानन्द पण्डित द्वारा रचित ‘श्रीप्रेमविवर्त’ का पाठ प्रारम्भ किया। सभामें श्रीलमहाराजजीके साथ ॐविष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज एवं अन्यान्य संन्यासी व ब्रह्मचारीवृन्द उपस्थित थे। जब श्रीलमहाराजजी

अपने नेत्रोंको बन्द करके मङ्गलाचरण कर रहे थे, उसी समय श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराजजीने सर्वप्रथम श्रील-भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीको एवं तदुपरान्त श्रीलमहाराजजीको माल्यार्पण किया। जब श्रीपाद माधव महाराजजी श्रीलमहाराजजीको माल्यार्पण कर रहे थे तो उसी समय श्रीलमहाराजजीने अपने नेत्रोंको खोलकर श्रील त्रिविक्रम महाराजजीको पहले माला देनेके लिए कहा। यद्यपि श्रीलमहाराजजी सम्पूर्ण विश्वमें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका विपुलरूपमें प्रचार करके नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद व उनके अन्तरङ्ग प्रिय पार्षद अपने गुरुदेव एवं सम्पूर्ण गुरु-परम्पराके मनोऽभीष्टको पूर्ण कर रहे हैं

तेशमात्र भी नहीं है

उसमें श्रीलमहाराजजी अपने आचरण द्वारा अनेक प्रकारकी शिक्षाएँ दे रहे हैं

‘सुनीचेन’, ‘मर्यादा लंघन मुजि सहिते न पारि’ इत्यादि शिक्षाओंका पग-पग पर अनुसरण कर रहे हैं

एक औं

हम उन्हींकी ही दिव्य वाणी द्वारा उसको प्रस्तुत करनेका प्रयास कर रहे हैं

पहले कहा कि मैं

उसमें मेरा कुछ भी कर्तृत्व नहीं है

तीक्ष्णागुरुपादपद्म एवं शिक्षागुरुपादपद्मकी ही कृपा है

मेरे द्वारा अर्थात् मुझमें शक्ति संचारित करके इतना महान कार्य करवा रहे हैं

वै

हूँ। ये पर्देके पीछे रहनेवाले कुहकका कार्य कर रहे हैं

त्रिविक्रम महाराजजीकी ओर इङ्गित करके श्रीलमहाराजजीने कहा कि इनको साधारण मत समझना। यद्यपि इन्होंने कोई भी शिष्य नहीं बनाया औ

लिए गए, तथापि ये एक आचार्यका सम्पूर्ण दायित्व निभा रहे हैं

आचार्य श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज अपनी दिव्य वाणी द्वारा श्रीगुरुपादपद्मकी उपदेशावलीका स्मरण कराते थे, परन्तु इस वर्ष कुछ अस्वस्थ लीला प्रकट करनेके कारण वे यहाँ पर उपस्थित नहीं हो पाए हैं

(श्रील त्रिविक्रम महाराजजीसे) निवेदन करता हूँ कि आप ही दो-एक बातें कहकर मेरे हृदयको सान्त्वना प्रदान कीजिए।

श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीका स्मरण करते हुए श्रीलमहाराजजीने बताया कि वे सभी गुणोंके आकर हैं

वै Dictionary है

है

है

श्रीश्रीगाधाविनोदविहारीजीसे प्रार्थना करता हूँ कि वे अतिशीघ्र फिरसे अच्छा स्वास्थ्य लाभ करके हम पर कृपा करें।

श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने प्रेमविवर्तका प्रारम्भ करनेसे पहले कहा कि सर्वप्रथम यह अच्छेसे समझो कि श्रीनवद्वीप धाम साक्षात् वृन्दावन है कृष्ण ही साक्षात् गौ

उपवन, गिरिराज गोवर्धन, राधाकुण्ड, श्यामकुण्ड इत्यादि सब कुछ है

गम्भीरामें रहकर श्रीमन्महाप्रभुने जो लीलाएँ की हैं

श्रीनवद्वीप धामकी लीलाओंसे श्रेष्ठ है

श्रीजगन्नाथपुरीधाम श्रीनवद्वीपधामसे श्रेष्ठ है

तक मुझे अनुभव है

है

की है

विप्रलम्भ रसका ही आस्वादन किया है

शास्त्रोंमें किसी क्रमसे ब्रज नहीं कहा गया। गौ

श्रीमन्महाप्रभुके जिन नामोंका वर्णन आता है

रूपसे दिखायी देता है

लीलाके ही पुष्टिकारक है

उद्दीपना कराते हैं

रसराज महाभावके दर्शन कराये, तथापि श्रीनवद्वीपधाममें की गई लीला उससे करोड़ गुण श्रेष्ठ है

जगदानन्द पण्डित एवं नवद्वीपके अन्यान्य भक्तोंके साथ

श्रीमन्महाप्रभुका व्यवहार ठीक ब्रजवासियों जै

श्रीनवद्वीपधाम किसी-किसी विशेष अवस्थामें वृन्दावनसे भी श्रेष्ठ है

श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने अनुग्रहपूर्वक इस ग्रन्थको प्रकाशित किया है

इतना स्वाभाविक औ
है
ध्यान करके या चिन्ता करके नहीं, बल्कि श्रीमन्महाप्रभुकी
लीलाएँ अपने आप ही मानस पटल पर उदित हो रही हैं
उसके लिए कुछ प्रयास नहीं करना पड़ा। जै
उद्घवजीके प्रति कुछ बिगड़ करके कहती हैं
भूलना चाहती हैं
हो। श्रीलमहाराजजीने जोर देकर कहा कि ऐसे ही एक
सदाशिष्यको स्वाभाविक रूपमें गुरुका चिन्तन होता है
होती है
नहीं होती। श्रीलजगदानन्द पण्डितने इस ग्रन्थमें वे सब विचार
सूत्र रूपमें रख दिये, जिन सबका श्रीउज्ज्वलनीलमणि,
श्रीकृष्णभावनामृत एवं श्रीगोविन्दलीलामृतमें विस्तृत रूपमें
वर्णन किया गया है
जगदानन्द पण्डित कौ
सत्यभामा है
श्रीवृषभानुनन्दिनी राधारानीजीकी प्रिय सखी है
देते हुए श्रीलमहाराजजीने इसी ग्रन्थमेंसे ही श्रीजगदानन्द
पण्डितके वाक्योंको उद्धृत करते हुए कहा कि—
प्रभु मोरे हास्य करि कै
द्वाराकार पाटेश्वरी तुमि त प्रवीण ॥
आमि त भिखारी अति, मोरे सेव केन।
कत शत संन्यासी पाइबे आमा हेन ॥
श्रीजगदानन्द पण्डितजी बता रहे हैं
एक दिन हास्य करते हुए मुझसे कहा कि तुम तो द्वारिकाकी
मुख्या पटरानी हो। औ
करते हो ? मेरे जै
तो मै

मुजि बलि-रेखे दाओ तोमार छलना।
राधापद-दासी आमि, ओ कथा बल ना ॥
रहने दो अपनी छलना। मै
हूँ, मुझे पटरानी कहकर मेरी वज्चना मत करो।
आमार राधार वर्ण करियाछ चुरि।
ब्रजे लये याव आमि तोमाय चोर धरि ॥
तुमने मेरी राधाजीके वर्णको चोरी किया है
पकड़कर ब्रजमें ले जाऊँगी।

आमि चाई राधापद, तुमि फेल ठेलि ।
द्वारका पाठाओ मोरे, इह तोमार केलि ॥
मै
द्वारका भेजना चाहते हो, यह तुम्हारी लीला है
तोमार संन्यासगिर आमि भाल जानि ।
मोदेर वज्चिया राधा सेविबे आपनि ॥
मै
मुझे वज्चित करके तुम स्वयं राधाजीकी सेवा करना चाहते
हो।

श्रीलमहाराजजीने कहा कि यदि श्रीजगदानन्द पण्डित
सत्यभामा होते तो फिर 'आमार राधा' अर्थात् 'मेरी राधा'
क्यों कहते ? यदि तुमने मुझे फिर कभी ऐसा कहा तो मै
सबके निकट यह घोषित कर दूँगी कि तुम चोर हो औ
पकड़कर श्रीराधाजीके कोटमें ले जाऊँगी औ
ललिता-विशाखा आदि वर्कीलों द्वारा तुम्हें तुम्हारे अपराधका
उचित दण्ड दिलाऊँगी। तुम कृष्ण हो औ
श्रीमतीजीकी सेवा करना चाहते हो, परन्तु शायद तुम नहीं
जानते कि मै
तुम्हें कुञ्जसे बाहर भी कर सकती हूँ।

हरि-हरि जाई। माधव जाई।

श्रीलमहाराजजीने अन्य प्रमाण देते हुए कहा कि
श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामीने श्रीमन्महाप्रभुके विभिन्न
रसिक भक्तोंका परिचय प्रदान करते हुए लिखा है
पुरीर वात्सल्य मुख्य, रामानन्देर शुद्ध सख्य,
गोविन्दाद्येर शुद्धदास्यरस ।
गदाधर, जगदानन्द, स्वरूपेर (मुख्य) रसानन्द,
इह चारि भावे प्रभु वश ॥

(चै)

श्रीपरमानन्दपुरीमें अन्यान्य भाव रहने पर भी
वात्सल्यभाव ही उनमें प्रधान रूपसे विराजमान है
श्रीरामानन्दरायमें ऐश्वर्य ज्ञान आदि शून्य विशुद्ध सख्य है
गोविन्द आदिका शुद्ध दास्य रस है
जगदानन्द पण्डित एवं स्वरूप दामोदर गोस्वामीका मधुर
भाव है
परमाराध्य श्रील प्रभुपाद इस पयारके अनुभाष्यमें लिखते
हैं

वात्सल्य-रसप्रधान भाव, रामानन्द (अर्जुन व विशाखा) का
शुद्ध सख्य भाव, गोविन्द आदिका सेवापर शुद्ध दास्य एवं
अन्तरङ्ग भक्त गदाधर, जगदानन्द औ
मधुर रस-इन चार भावोंसे उनके निकट भजन-सङ्ग-
सुख-रूपी सेवा ग्रहण करनेके लिए श्रीमन्महाप्रभु बाध्य थे।

[श्रीमन्महाप्रभुकी लीला भावमयी है
उनके आन्तरिक भाव हैं
भाव हैं

श्रीलमहाराजजीने एक औं
सुस्पष्ट करते हुए कहा कि श्रीचै
हैं

जगदानन्द पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव ।
सत्यभामा-प्राय प्रेम 'वाम्य-स्वभाव' ॥
बारबार प्रणय कलह करे प्रभु-सने ।
अन्योऽन्ये खटमटि चले दुइजने ॥
गदाधर पण्डितेर शुद्ध गाढ़ भाव ।
रुक्मिणी देवीर यै
ताँर प्रणय-रोष देखिते प्रभुर इच्छा हय ।
ऐश्वर्यज्ञाने ताँर रोष नाहि उपजय ॥

(चै

जगदानन्द पण्डितजीका शुद्ध गूढ़ भाव है
सत्यभामाजीके समान 'वाम्य-स्वभाव' है
श्रीमन्महाप्रभुके साथ प्रणय कलह करते हैं
दोनोंमें सब समय खटपट चलती रहती है
पण्डितजीका शुद्ध गूढ़ भाव है
'दक्षिण-स्व भाव' है
श्रीमन्महाप्रभुकी इच्छा होती है
रोष उत्पन्न नहीं होता ।

श्रीचै
विचार किया जाए तो लगता है
सत्यभामा एवं श्रीगदाधर पण्डितजी रुक्मिणी देवी हैं
यदि इनकी विशद आलोचना अर्थात् गूढ़भावसे आलोचना
की जाएँ तो हम देखेंगे कि मुरारीगुप्तके कड़चा, श्रीनरहिर
सरकारके श्रीभजनामृतम् एवं स्वरूप दामोदरके कड़चामें
सर्वत्र श्रीगदाधरपण्डितको राधाजीसे अभिन्न स्वीकार किया
गया है

श्रीजगदानन्द पण्डितके विषयमें बाह्यतः वै
है
प्रकारका कोई संशय नहीं है
राधारानी है
दासी । आवश्यकता है
यद्यपि श्रीगौ

केनावान्तरभेदेन भेदं कुर्वन्ति सात्वताः ।
सत्यभामा-प्रकाशोऽपि जगदानन्द पण्डितः ॥

(गौ

अर्थात् भगवद्भक्त किसी अवान्तर भेद द्वारा भेद करके
रहते हैं।

एक ओर उन्हें श्रीगौ
जा रहा है
नहीं, मैं
इस प्रकार है
साथ-साथ अर्जुनका भी अंश प्रवेश किया है
हरिदास ठाकुरजीमें ब्रह्माजीके साथ प्रह्लादजीका भी अंश
प्रवेश किया है
राधारानीकी दासीके साथ-साथ सत्यभामाजीका भी कुछ
अंश प्रवेश किया है

श्रीजगदानन्द पण्डितकी स्वाभाविक वाम्य भावमयी
गौ
ब्रजमें श्रीमती राधारानीकी पद-दासी होना ही उनका आन्तरिक
भाव है
श्रीलमहाराजजीने इस विषयको औं
कहा कि इसी 'श्रीप्रेमविवर्त' के तृतीय अध्यायके प्रथम
पायरमें स्वयं श्रीजगदानन्दजी लिख रहे हैं

याँर अंशे सत्यभामा द्वारकाय धाम ।
से राधा-चरणे मोर असंख्य प्रणाम ॥
जिनके अंशसे सत्यभामा द्वारिकामें वास करती है
श्रीमती राधारानीको मैं
यदि श्रीजगदानन्द पण्डित सत्यभामा होते तो वे कभी भी
ऐसा नहीं कह सकते थे ।
औं
मोरे दिल गिरिधारी सेवा सिन्धुतटे ।

गौ

दामोदर स्वरूप आमार प्राणेर समान।

श्रीकृष्ण चै

श्रीमन्महाप्रभुने मुझे गिरिधारीकी सेवा प्रदान की।
स्वरूप दामोदर मुझे मेरे प्राणोंके समान प्रिय है

यदि वे सत्यभामा होते तो श्रीमन्महाप्रभु उन्हें गिरिधारीकी
सेवा करनेको क्यों कहते? औ
दामोदर (ललिताजी) को प्राणोंसे भी प्रिय कै
है

औ

गौ

दामोदर जाने इड भाव।

इत्यादि अनेक उदाहरण देते हुए श्रील गुरु महाराजीने
सुस्पष्ट कर दिया कि श्रीजगदानन्द पण्डित सत्यभामा नहीं,
बल्कि श्रीमती राधारानीजीकी दासी है

श्रीलमहाराजजीके ऐसे गूढ़, सुसिद्धान्तपूर्ण कथाओंको
सुनकर बड़े-बड़े संन्यासीवृन्द भी हतप्रभ रहे गये।
श्रीलमहाराजजीकी ऐसी मधुर कथाओंको श्रवणकर सभीका
हृदय आनन्दसे भर गया। अनेक भक्तोंको कहते सुना गया कि
अब तक उनकी सदै

पण्डित सत्यभामा है
हमारा ऐसा सौ

स्वरूपका परिचय मिला है

श्रीनवद्वीप धाम परिक्रमाके अधिवास दिवस पर
श्रीलमहाराजजी सहित अनेक संन्यासियोंने श्रीधाम परिक्रमाके
वास्तविक उद्देश्यको बताते हुए कहा कि श्रीधाम परिक्रमामें

सभी श्रेणीके भक्तोंको भक्तिके समस्त अङ्गोंका सुष्ठुरूपसे
पालन करनेका सुयोग प्राप्त होता है
तनय' श्लोकमें प्रतिष्ठित होना ही धाम परिक्रमाका वास्तविक
फल है

कृपाको स्मरण करते हुए कहा कि श्रीलप्रभुपादके अप्रकट
लीलामें प्रवेश करनेके उपरान्त जब श्रीधाम परिक्रमा बन्द हो
गई थी, तब इन्हीं महापुरुषने (श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव
गोस्वामी महाराज) पुनः इसका प्रवर्तन करके जगत्के समस्त
जीवोंको श्रीमन्महाप्रभुकी कृपा प्राप्त करनेके लिए निमन्त्रित
किया। सर्वप्रथम जब श्रीदेवानन्द गौ

प्रारम्भ हुई, उस समय परमगुरुदेव स्वयं ही कुछ एक सेवकों
[सज्जनसेवक (श्रीलभक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराज)],
राधानाथ (श्रीलभक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज), गौ
(श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज) इत्यादि] को
लेकर परिक्रमामें आनेवाले भक्तोंके उद्देश्यसे चावल इत्यादिकी
भिक्षा करते थे। उस समय लगभग एक सौ

के बीच भक्त आते थे। औ

विश्वके लगभग सभी राष्ट्रोंसे बीस हजारसे भी अधिक भक्त
इस परिक्रमामें भाग लेकर उनकी कृपा प्राप्तिके लिए
यथासम्भव प्रयास कर रहे हैं

संसारबन्धनसे मुक्ति अवश्य ही प्राप्त होती है

किसी भी प्रकारका अपराध न करके धाम परिक्रमा करे, तो
उसे श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे अवश्य ही प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति
होती है

श्रीधाम परिक्रमामें हुई कथाओंका विस्तृत वर्णन अगले
अङ्गमें दिया जाएगा। (क्रमशः)

श्रीभागवत पत्रिकाके प्रकाशनके सम्बन्धमें विवरण प्रपत्र-४, नियम-८

१. प्रकाशन स्थान—श्रीकेशवजी गौ
२. प्रकाशन अवधि—मासिक
३. प्रकाशकका नाम—श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी (त्रिदण्डस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज)

पता—श्रीकेशवजी गौ

४. सम्पादकका नाम—त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज

पता—श्रीकेशवजी गौ

५. मुद्रक—श्रीनवीनकृष्ण ब्रह्मचारी (त्रिदण्डस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त माधव महाराज)

६. उन व्यक्तियोंके नाम औ

है

मे

दिये गए विवरण सत्य है

अप्रै

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्णण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५१ वैशाख ज्येष्ठ मास, सन् २००२, २७ मई—२४ जून

{ संख्या ३

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठककुरभक्तिविनोद]

(वर्ष ४६ संख्या २ पृष्ठ २७ से आगे)

प्रेमक्षेत्रे द्विजपरिवृतः सर्वदेवप्रणम्यः मत्रं लेभे निजगुरुपुरीवक्त्रतो यो दशार्णम्।
गोड़ं लब्ध्वा स्वमतिविकृतिच्छद्यनोवाच तत्त्वं तं गौराङ्गं नवरसपरं भक्तमूर्ति स्मरामि ॥१३॥
विप्रपादेदकं पीत्वा यो बभूव गतामयः। वर्णाश्रमाचारपालं तं स्मरामि महाप्रभुम् ॥१४॥
लक्ष्मीदेवीं प्रणयविधिना वल्लभाचार्यकन्यामङ्गीकुर्वन् गृहमखपरः पूर्वदेशं जगाम।
विद्यालापैर्बहुधनमहो प्राप यः शास्त्रवृत्ति स्तं गौराङ्गं गृहपतिवरं धर्ममूर्ति स्मरामि ॥१५॥

वाराणस्यां सुजनतपनं सङ्गमय्य स्वदेशं लब्ध्वा लक्ष्मीविरहवशतः शोकतप्तां प्रसूतिम्।
तत्त्वालापैः सुखदवचनैः सान्त्वयामास यो वै तं गौराङ्गं विरतिसुखदं शान्तमूर्ति स्मरामि ॥१६॥
मातुर्वर्वक्यात् परिणयविधौ प्राप्यविष्णुप्रियां यः गङ्गातीरे परिकरजनैर्दिग्जितो दर्पहारी।
रेमे विद्वज्जनकुलमणिः श्रीनवद्वीपचन्द्रः वन्देऽहं तं सकल विषये सिंहमध्यापकानाम् ॥१७॥
विद्याविलासैर्नवखण्डमध्य सर्वान् द्विजान् यो विरराज जित्वा।
स्मार्तार्थं च नैयायिक तात्रिकांशं तं ज्ञानस्त्रयं प्रणमामि गौरम् ॥१८॥

पद्यानुवाद—

[परलोकगत पं. मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]

गया गये पितु पिण्ड हित विद्यार्थी गन संग।
विष्णुपाद निरखत तहाँ बाढ़ी प्रेम तरंग ॥
तहाँ गुरु ईश्वर पुरीतें तियौ दशारण मंत्र।
पालत शास्त्राचार प्रभु यद्यपि परम स्वतन्त्र ॥१३॥
वर्णश्रम आचार प्रभु पालत निज कृत सेतु।
रोग न सायौ विप्रपद वारि पान इह हेतु ॥
गौड़ देश पुनि आयकै मत विकार छल लाय।
आप आपनों तत्त्व सब भक्तन दियौ बताय ॥१४॥
बलभ आचार्य सुता लक्ष्मी सों करि ब्याह।
गृहमेधिनकौ धर्म प्रभु पालौ परम उछाह ॥
पूर्व देश यात्रा करी विद्या द्विजन पढ़ाय।
धन संग्रह कीयौ प्रचुर विप्रवृत्ति दरसाय ॥१५॥
तपन मिश्र उपदेश कर पठये काशीधाम।
आये मुनि जननी सविध गौड़ देश अभिराम ॥
प्रभु वियोग लक्ष्मी बधु भई तिरोहित हाय।
जननि शोक सन्ताप प्रभु हरौ तत्त्व समुझाय ॥१६॥
व्याही पुनि विष्णुप्रिया जननी आयसु पाय।
हरखित सब नदिया नगर जुगल निरखि द्विजराय ॥
उजियारी निस गङ्ग तट शिष्यन मधि आसीन।
नदिया ससि पण्डित मुकट दिग्विजयी जय कीन ॥
सकल पण्डिजन यूथमें सदा सिंह सम राज।
विद्या विविध विलास कर जीते द्विजन समाज ॥१७॥

तात्रिक, नैयायिक, जिते स्मार्त, शास्त्र परवीन।
सब पण्डित जीते प्रभु कर कर पक्ष नवीन॥
पण्डित जय अचरज कहा ज्ञान रूप प्रभु आप।
नरलीला अनुसार कवि वरन्त प्रकट प्रताप॥१८॥

(क्रमशः)

सिद्धान्तरत्न या वेदान्त पीठक

(वर्ष ४६, संख्या २, पृष्ठ ३० से आगे)

छठवें पाठमें अद्वैतवादियोंके सभी वितर्कोंका खण्डन किया गया है। वेदोंके अनुसार ज्ञात्, ज्ञेय, ज्ञान आदि विषयोंके द्वारा अद्वितीय ब्रह्ममें भेदकी प्रतीति होती है। वह प्रतीति पारमार्थिक है, मिथ्या नहीं। अभेद पारमार्थिक नहीं है। ब्रह्मभाव फल नहीं है, बल्कि ब्रह्मसुखानुभव ही फल है। शास्त्रोंमें ब्रह्मके अभेदत्वका निर्देश नहीं है। आत्मा मूढ़ चिन्मात्रमय होनेपर भी कर्तृत्व और भोक्तृत्व धर्मयुक्त सविशेष वस्तु है। आत्मामें अस्मदर्थ (मैं) और युष्मदर्थ (तुम) है, वह माया कल्पित नहीं है, बल्कि पारमार्थिक तद्विशेष है। 'सत्य', 'ज्ञान', 'अनन्त'—ये सभी ब्रह्मके गुण हैं। 'द्वा सुपर्णा सयुजा' आदि श्रुति-मन्त्र पारमार्थिक भेदको सूचित करती हैं। जीव और जड़-जगत् अध्यासित नहीं हैं, बल्कि वे ब्रह्मसे सम्बन्धित पारमार्थिक भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। परस्पर स्वरूप भेद पारमार्थिक है। श्रुतियोंमें ब्रह्मके जिस रूपका वर्णन किया है, वह काल्पनिक नहीं, सर्वथा सत्य है। अद्वैतवादियोंका साधन-काण्ड निरर्थक है। उपक्रम, उपसंहार, अभ्यास, अपूर्वताफल, अर्थवाद और उपपत्ति इन छः लक्षणोंके द्वारा विचार करनेपर भी सभी वेदमंत्रोंमें पारमार्थिक भेद देखा जा

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर
सकता है और 'ब्रह्म सविशेष है'—इस सिद्धान्तकी भी स्थापना होगी। ब्रह्मात्मक वृत्तिकर्त्त्व होनेके कारण यह जगत् ब्रह्मात्मक है। ब्रह्म-निष्ठत्व और ब्रह्म-व्याप्तत्वके कारण भी ब्रह्मात्मकता सिद्ध होती है। सांसारिक दशामें अज्ञाताके कारण "जगत् ब्रह्मसे स्वतन्त्र है"—ऐसा भ्रम होता है। शास्त्रके एक देशका अवलम्बन करनेसे सिद्धान्तमें भूल हो जाता है। सर्वदेशीय सिद्धान्तमें भ्रम नहीं होता। ब्रह्म-शक्तिमय जगतको शास्त्रोंमें कहीं भी मिथ्या नहीं कहा गया है। जन्मादि अनित्य व्याप्त होनेके कारण त्रिकाल मिथ्यात्व नहीं होनेके कारण जगत् सत्य है। किन्तु वह ईश्वरके अधीन है। ब्रह्मकी सृष्टयादि-भावशक्तियाँ हैं—यह श्रुति और स्मृतिसिद्ध है। समस्त ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्यसे युक्त भगवान् ही परब्रह्म हैं। अखिल भूतोंमें वे वर्तमान हैं। उनमें हेय-गुण नहीं हैं। विष्णुकी भगवत्ता वस्तुसिद्ध है। दूसरोंकी लीलामय हैं। वे नित्यमुक्त जीवोंके भी परतत्त्व हैं। निगुणता उनकी एकदेशिक धर्म या आविर्भाव है। केवल ब्रह्मात्मक बुद्धिसे अज्ञानकी निवृत्ति

नहीं होती, बल्कि केवल ब्रह्म-प्रपत्तिसे ही यह सम्भव है। वेदोंमें मात्रका निषेध नहीं है, बल्कि अचिन्त्य अप्राकृत रूपका उल्लेख है। “यतो वा इमानि भूतानि” आदि वेदवाक्योंमें जगतको सत्य कहा गया है। बौद्धमतानुसार जगत झूठा है। इसलिए मायावाद प्रच्छन्न बौद्धवाद ही है—इसे स्मृतियाँ स्वीकार करती हैं। बौद्धोंका क्षणिकवाद भी मायावादके दृष्टि-सृष्टिमतमें पाया जाता है। मायावाद-बौद्धोंके शून्यवादकी प्रतिच्छवि मात्र है। बौद्धोंकी भाँति मायावादी भी ब्रह्मको सदसत् अनिर्वचनीय मानते हैं। इसलिए मायावादीको जैन-बन्धु भी कहा जा सकता है। अतः सर्ववेद-तात्पर्यसिद्ध भेदवाद ही पारमार्थिक है।

सप्तमपादमें कहते हैं कि मायावादी एक, अद्वितीय, सत्य, अनन्तशक्तयादि विशेषशून्य एवं स्वजातीयादि भेदत्रय शून्य-ज्ञानको ही परतत्त्व मानते हैं। भाववाच्य साधित होनेपर वही ज्ञान निर्भेद सम्बित् अनुभूति जप्तिवाचक तत्त्व है। कारक वाच्य करनेसे भेद-दोष होता है—यह बात नितान्त हास्यास्पद है। “ज्ञायते अनेन इति ज्ञानं”—ऐसा साधनसे क्या शक्ति मानना नहीं हुआ? शक्ति रहनेसे ही ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञानके विशेष समूह अवश्य ही उपस्थित होंगे। शक्तिके रहनेसे क्या भय है? शक्तिका अनन्त-ज्ञान भी अनन्त है। शक्तिके कारण ज्ञानमें भेद नहीं पड़ता। यदि कहा जाय कि अहमर्थ स्थूलदेहके अनुगत है, तो ऐसी बात नहीं है। ज्ञान गुणका आश्रयत्व ही ज्ञातृत्व ही है। ज्ञान आत्माका औत्पत्तिक धर्म है। जैसे प्रकाश रूप सूर्यके प्रकाशकत्वके द्वारा जिस प्रकार द्वैत नहीं होता, उसी प्रकार

ज्ञानके ज्ञातृत्व द्वारा भी द्वैत या भेद नहीं होता। अतएव ज्ञानादि अनन्त शक्तियोंसे युक्त तत्त्व ही ब्रह्म है। अनुभूति किसे कहते हैं? अपनी सत्ताके द्वारा अपने आश्रयका प्रकाशक अथवा अपना विषय साधक ही अनुभूति है। निर्द्धर्मा अनुभूति सम्भव नहीं है। अनुभूति सम्भव होनेपर शक्तिमात्र होती है। अहं बुद्धिको अनात्म-तत्त्व नहीं कहा जा सकता। अहं-बुद्धि शुद्धात्मासे सम्बन्धित है। मैं जानता हूँ—मैं सुखी हूँ—ऐसा ज्ञान “सुखमहमस्वप्सम्” आदि श्रुतिमत्रोंके द्वारा अनुमोदित है। अहंकार शुद्ध ज्ञातृनिष्ठ धर्म है, वह अनात्म नहीं है। देहकी भाँति पृथगात्म-बुद्धिरूपी अहंता (मैं पन) महतत्त्वसे उत्पन्न है, अतएव प्राकृत है। इसलिए शुद्ध-ज्ञाननिष्ठ अहंतासे पृथक् है। शुद्ध अहंभाव स्वरूपगत है। वह संसारका कारण नहीं है, बल्कि उसका निवर्तक है। यदि प्राकृत अहंकार ही जीवका निजस्व अहंकार होता, तो मोक्षके लिए कौन प्रयास करता? मोक्ष होनेपर जिसका नाश हो जायगा, वह मोक्षकी बात क्यों सुनेगा एवं उसके लिए क्यों यत्न करेगा? इसलिए मुमुक्षु अहंकार शुद्धाहंकार-निष्ठ है। वामदेवादियोंके वचनोंका विचार करना आवश्यक है। अनुभूतिकी सत्तामें विषय-विषयीका भेद अनुस्युत रहता है। आत्मा अनुभविता है एवं अनुभूति उसका धर्म है। वह धर्म जब विषयको प्रकाश करता है, उस समय वह स्वप्रकाश है एवं दूसरे समयमें ज्ञानगम्य है।

आठवें पादमें यह स्थिर किया है कि कर्तृत्वादि मान ज्ञान और ज्ञाता स्वरूप है, अहम्पदार्थ आत्मा-ईश्वर और जीव भेदसे दो

प्रकारका है। ईश्वर विभु हैं, एवं अपनी शक्तिके द्वारा जगतकर्ता हैं। स्वेच्छाधीन प्रकृतिके द्वारा वे जगतके निमित्त एवं उपादान कारण हैं प्रकृति एवं जीवसे उनके आश्रयरूप ईश्वर नित्यकाल ही पृथक् हैं। परादि तीन शक्तियोंसे युक्त ब्रह्म सर्वदा स्वरूपानिरिक्त जगत्-जन्मादिके हेतु हैं। इसलिए जगत् पारमार्थिक दृष्टिसे सत्य है एवं भगवान् श्रीकृष्णमें ही नित्य प्रतिष्ठि है। जीव अणु एवं संख्यामें अनन्त हैं। वे ईश्वराधीन कर्ता, मन्ता, बोद्धा और ज्ञाता हैं। जीवमें बिन्दु-बिन्दु मात्रामें सभी गुण नित्य अवस्थित हैं। चेतनकण होनेपर भी जीव आनन्द-धर्मके उपयोगी हैं एवं अणु-चैतन्यत्वके कारण ईश्वरांश हैं। विराट् अग्निसे निसृत विस्फुलिङ्ग (चिन्नारी) की भाँति जीव ब्रह्मका ही अंश-स्वरूप है। जैसे चिन्तामणी सोनेको पैदा करके भी अविकृत रहती है, उसी तरह ब्रह्म अनन्त जीवोंको उत्पन्न करके भी अविकृत ही रहते हैं। इसलिए जीव ब्रह्मसे नित्यकाल ही पृथक् हैं। ब्रह्मकी तटस्थाशक्तिसे प्रकटित जीव शक्तिमान भगवानसे अभेद भी हैं। इसलिए ईश्वर और जीवमें अचिन्त्यभेदाभेद है। दूसरे मतोंमें जिस प्रकार कार्य-कारणादि भेद स्वीकृत है, उस रूपसे यहाँ स्वीकृत नहीं हैं। मायावादका तटस्थ लक्षण इसमें नहीं है। अचिन्त्य भेदाभेदकी प्रतीति नित्य भेद ही है। अहं-बुद्धिके विनाशको मायावादी पुरुषार्थ समझते हैं। उससे दुःखोंका नाश एवं सुखकी प्राप्ति नहीं होती। उससे तो केवल आत्म-विनाश ही होता है। जीव एवं ईश्वरका भेद सर्व-शास्त्र सम्पत्त है। ब्रह्मांश जीव भगवत्-विमुखताके कारण मायाके बन्धनमें

आबद्ध हैं। सत्सङ्गके द्वारा भगवत्-सान्मुख्य होनेपर ही विश्व-मायाकी निवृत्ति होती है। सत्सङ्गरूप भगवत् प्रसाद ही भगवत्-सान्मुख्य है। निरन्तर अनुवृत्ति (भगवत्-अनुशीलन) के द्वारा भगवानके नित्य गुण-समूहको आवृत करनेवाली अविद्याका नाश होता है। तत्पश्चात् भगवानका साक्षात्कार होता है। भगवत् कृपा ही इसका एकमात्र कारण है। शास्त्रोंके अभेदसूचक वाक्य केवल ब्रह्मायत्तक वृत्ति, ब्रह्माधीन स्थिति, ब्रह्मनिष्ठता और ब्रह्म व्याप्त्याके बोधक हैं, वस्तुतः अभेद सूचक नहीं हैं। कहीं-कहीं स्थान और निति के ऐक्यमें ऐक्य वाक्योंका प्रयोग हुआ है। सब कुछ ब्रह्मकी शक्ति विशेष है एवं शक्ति और शक्तिमानके अभेद विचारसे ही अभेद वाक्योंका प्रयोग है। उसमें कोई दोष नहीं है। उन सब तथ्योंको दृष्टिपथमें रखकर नितान्त अभेदवादकी स्थापना करनेकी चेष्टा मूर्खता मात्र है। कोई-कोई वैष्णवोंका कहना है कि परतत्त्व परमार्थ-स्वरूपमें ही सर्वाकार हैं। इसलिए शंकर सिद्धान्त और माध्व-सिद्धान्त दोनोंके एक साथ माननेसे सभी श्रुतियोंका सम्मान करना हो जाता है एवं भक्तिकी हानि भी नहीं होती। परन्तु इसमें यह दोष है कि प्रपञ्च ब्रह्म होनेसे वैराग्यका कोई कारण नहीं रह जाता। मिथ्या कहनेसे वेद-विरुद्ध हो पड़ता है। जीवोंके प्रति करुणा-गुणका भी कारण नहीं होता। यहाँ पर भेदाभेदवादको दूरकर अचिन्त्य-भेदाभेद ही मानना चाहिये।

श्रीबलदेव विद्याभूषणजीने असामान्य वैदिक और वेदान्तिक पाण्डित्य एवं ब्रह्म धीषणका परिचय देकर ग्रन्थमें पहले भगवत्तत्त्वकी

स्थापना की है। तथा श्रीकृष्णकी ही भगवत्ता दिखलाकर शुद्ध भक्तिसे ही सर्वार्थसिद्धि होती है—ऐसा बतलाया है। वे भगवान् श्रीकृष्ण परम लौकिक-अलौकिक चमत्कार धर्म प्रकाश करके अपने स्वधाम—सर्वोपरि स्थित गोलोक धाममें रहते हुए भी जगतमें अपनी अप्राकृत लीलाका विस्तार करते हैं। जगत् सृष्टि करके उसमें अपने विभिन्नांश तत्त्व स्वरूप देवताओंको अधिकारिक दास रूपसे स्थापित कर स्वयं स्वेच्छापूर्वक शुद्धसत्त्व स्वप्रकाशरूप विष्णु-स्वरूपमें परदेवता होकर जगतका पालन करते हैं। सर्ववेद-वेद्य विष्णुपद ही सर्वोपास्य है। दूसरे सभी देवताओंका यथायथ सम्मानपूर्वक श्रीविष्णुकी उपासना करना ही जीवोंका कर्तव्य है। सर्वदेवतैक्यवाद, त्रिदेवैक्यवाद एवं हरिहरैक्यवादको विष्णुभक्तिमें बाधक बतलाया है। शुद्धभक्तिके विरोधी केवलात्मैकवादी, अद्वैतवादी मायावादी, निर्गुण-ज्ञानवादी, आदि दुष्टमतोंका खण्डनपूर्वक शुद्धब्रह्मका उपास्यत्व, शुद्ध जीवका उपासकत्व एवं मोक्षका स्वरूप दिखलाकर शुद्धभक्तिवादका प्रचार किया है।

कुछ प्रश्न और श्रीश्रीप्रभुपाद द्वारा उनका उत्तर

(वर्ष ४६ संख्या २ पृष्ठ ३२ से आगे)

प्रश्न—कुछ लोग कहते हैं कि सभी बराबर हैं, सभी समान हैं—क्या यह विचार ठीक है?

उत्तर—सत् और असत्, भक्त और अभक्त,

पापी और पुण्यवान्, शिक्षित और अशिक्षित, देवता और भगवान्, सती और असती, धर्म और अधर्म, प्रकाश और अन्धकार तथा झूठ और सच—ये सब कैसे एक समान हो सकते हैं?

जो आध्यन्तरीण वस्तुकी खबर नहीं रखते, जिनके भीतर वस्तु-तत्त्वका सूक्ष्मानुसूक्ष्म विचार प्रवेश नहीं कर पाया है, उन मूर्खोंके लिए सब कुछ अच्छा ही है। जैसे कोई निरक्षर-मूर्ख लड़का निरर्थक लकीरें खींचकर, यह कहे कि यदि पढ़े लिखे व्यक्तिके द्वारा लिखे हुए का अर्थ हो सकता है, तो मेरे लिखे हुएका भी अर्थ अवश्य होना चाहिए। झूठ-मूठकी अर्थहीन लकीरें और अर्थ-सूचक शब्दोंको एक समान नहीं माननेसे वह उसमें पक्षपातका दोष लगाता है। ठीक इसी प्रकार जो लोग भगवत्-तत्त्व, भगवत्कथा और सत्य सिद्धान्तोंके विषयमें आन्तरिक खबर नहीं रखते—ऐसे अतत्त्वज्ञ लोग ही किसी तत्त्वज्ञ व्यक्तिके द्वारा यथार्थ शास्त्रीय सिद्धान्तोंकी स्थापना तथा अपसिद्धान्तोंका खण्डन करनेपर इसे साम्प्रदायिक पक्षपात मानते हैं। उनका मत यह है कि जब हम बिलकुल ही कुछ नहीं जानते हैं, कुछ नहीं समझते हैं, तब हमारे लिए ‘सब समान हैं’ यही कहना युक्तिसङ्गत और अच्छी बात है। ऐसा कहनेसे सभी दलोंको सन्तुष्ट रखा जा सकता है तथा किसीका भी बुरा नहीं हुआ जा सकता है। परन्तु क्या इसीसे सत्य और असत्य, भक्ति और अभक्ति एक समान या एक हो जाएँगे। निश्चय ही एक नहीं हो सकते। जिनको भक्ति नहीं है, वे भगवत्सेवाकी

आवश्यकता अनुभव नहीं करते। जो वास्तविक कल्याण नहीं चाहते, भोग या प्रतिष्ठा ही जिनके जीवनका उद्देश्य है, वे बिछु एवं शुद्ध भक्तिको एक समान ही समझेंगे।

प्रश्न—शुद्धभक्त श्रीगुरुदेवको किस रूपमें देखते हैं?

उत्तर—साधारण लोग गुरुको जिस रूपमें देखते हैं, अन्तरङ्ग भक्तजन उनको किसी दूसरे ही रूपमें देखते हैं। शुद्ध भक्तजन श्रीगुरुदेवको अपना परम बन्धु, कृष्णका प्रियतम, प्रेमकी मूर्ति, नित्यसेव्य, प्राणधन और जीवन-सर्वस्व मानते एवं कहते हैं। श्रीगुरुदेव श्रीकृष्णके परम प्रियपात्र और उनसे अभिन्न हैं। श्रीगुरुदेवकी सेवाको छोड़कर कृष्णकी सेवा प्राप्त करना असम्भव है। जो गुरुदेवकी सेवा करते हैं, वे ही सच्चे वैष्णव या भगवद्भक्त हैं। इनके अतिरिक्त सभी अहङ्कार-विमूढ़ात्मा हैं अर्थात् सहज शब्दोंमें अन्याभिलाषी अथवा भोगकी वासनावाले हैं। परन्तु आपलोग यह लिखकर रख लें कि मनुष्य न भोगी हो सकता है और न त्यागी ही।

पापियोंके चर्म-चक्षुओंसे गुरुदेवके चरणकमलोंका दर्शन नहीं होता, बल्कि उनसे भोग्य पदार्थोंके दर्शन करनेकी ही आकांक्षा होती है। मनुष्यदर्शन—गुरुदर्शन नहीं है। गुरुके प्रति मनुष्यबुद्धि रखनेसे नरक भोग करना पड़ता है। श्रीगुरु—लघु या मनुष्य नहीं हैं; वे ईश्वर हैं, वे भगवानके प्रियजन हैं, महापुरुष हैं, महाजन हैं, और हैं—नामाचार्य कृष्णप्रेष्ठ।

प्रश्न—शरणागतका लक्षण क्या है?

उत्तर—अपना कर्तृत्व-त्याग ही शरणागत पुरुषका लक्षण है। कर्तृत्वका त्याग करके

कृष्णको पालनकर्त्ताके रूपमें वरण करना ही शरणागतिका स्वरूप लक्षण है। आश्रित व्यक्तिको कर्तृत्वकी तनिक भी आवश्यकता नहीं होती। श्रीवृषभानु- नन्दिनीकी पाल्यदासी होनेकी अभिलाषा उत्पन्न होनेपर इस जगतका कोई भी क्षुद्र अभिमान हमारे हृदय पर अधिकार नहीं जमा सकता। मैं कृष्णके आश्रित हूँ—ऐसा अभिमान न होने तक शरणागति या आश्रित नहीं हुआ जाता। उस समय पिता-अभिमान, कर्ता-अभिमानका होना स्वाभाविक है।

प्रश्न—हमारा विघ्ननाश और अभीष्ट पूर्ण क्यों नहीं हो रहा है?

उत्तर—इसका कारण यह है कि भगवद्-अभिन्न श्रीगुरुदेवमें हमारी अभी तक मनुष्यबुद्धि एवं मर्त्यबुद्धि है; इसलिए उनके प्रति दोष दृष्टि होनेके कारण हम अभी तक निष्कपट रूपसे उनके श्रीचरणकमलोंमें आत्मसमर्पण नहीं कर पाये हैं। वेद वाक्यों, श्रीमद्भागवतवाक्यों तथा गीतावाक्योंका उल्लंघन करके गुरुके प्रति मनुष्यबुद्धि, वैष्णवोंमें जातिबुद्धि और भगवान्के अर्च्चावतार श्रीविग्रहमें शिला, पत्थर, काष्ठ या मिट्टीबुद्धि रखनेके कारण ही हमारी यह दुर्दशा है।

प्रश्न—जीवका कर्तव्य क्या है?

उत्तर—ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ही एकमात्र कामदेव हैं तथा सबके एकमात्र नित्य सेव्य हैं। उनकी सेवा ही जीवका नित्यधर्म या कर्तव्य है। भगवत्सेवा भूलकर ही जीव कभी ‘अहं ब्रह्मास्मि’ की भ्रान्त धारणासे निर्विशेष ज्ञानी हो पड़ता है। कभी भोगी बनकर वर्णाश्रम-धर्मका पालन करनेके लिए व्यस्त हो पड़ता है। इसीलिए कहता हूँ—‘जीवो !

आपलोग दम्भ-अहङ्कार, स्त्री-पूजा और स्नैणभावका परित्याग करें और श्रीरूपमञ्जरीके आनुगत्यमें श्रीमती राधारानीकी पाल्यदासीका अभिमान ग्रहण करें। ब्रजगोपियोंके आनुगत्यमें सदा-सर्वदा श्रीराधाकृष्ण युगलकी सेवामें नियुक्त हों।”

प्रश्न—श्रीनाम-ग्रहणके समय जड़-चिन्ताएँ क्यों आती हैं?

उत्तर—निर्बंध अर्थात् संख्यापूर्वक अतिशय यत्न और आग्रहके साथ कृष्णनाम ग्रहण करनेसे अवश्य ही कल्याण होता है। श्रीनाम करनेके समय जड़-चिन्ताएँ आने पर भी श्रीनाम ग्रहणमें तनिक भी शिथिलता नहीं आने देंगे। श्रीनाम लेते-लेते क्रमशः व्यर्थकी चिन्ताएँ दूर होती जायेंगी। अतः इसके लिए अधिक घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। पहले ही फलकी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए। कृष्णनाममें अतिशय प्रीतिका उदय होनेपर जड़-चिन्ताएँ अपने आप ही दूर हो जाती हैं। कृष्णनाममें अत्यन्त आग्रह पैदा होनेसे पहले जड़-चिन्ताएँ कैसे रुक सकती हैं? तन-मन-वचनसे श्रीनामकी सेवा करनेसे ही श्रीनामी प्रभु अपना मङ्गलमय स्वरूप प्रदर्शन करते हैं।

प्रश्न—श्रीनाम ही साक्षात् कृष्ण हैं—ऐसी कब उपलब्धि होगी?

उत्तर—नाम और नामी अभिन्न हैं। हमारे अनर्थ दूर हो जानेपर ही हमें इसकी विशेषरूपसे उपलब्धि हो सकेगी। अपराधरहित होकर प्रीतिपूर्वक कृष्णनाम करनेसे ही आपलोग स्वयं समझ सकेंगे कि नाम द्वारा अनायास ही सब कुछ सिद्ध हो जाता है।

नाम करते-करते अनर्थ दूर होनेपर श्रीनाममें ही रूप, गुण और लीला आदिकी अपने आप ही स्फूर्ति होती है। चेष्टा करके कृत्रिमभावसे रूप, गुण और लीलाका स्मरण नहीं करना चाहिये। जो नाम उच्चारण करते हैं, आत्माको ढकनेवाले स्थूल और सूक्ष्म शरीरोंके क्रमशः नष्ट होनेपर उनका सिद्धरूप उदित होता है। सिद्धरूप उदित होनेपर श्रीनाम करते समय वे श्रीनाममें ही कृष्णके अप्राकृत रूपका दर्शन करते हैं। श्रीनाम ही जीवका स्वरूप उदय करवाकर स्वयं कृष्णरूपके प्रति आकर्षण करते हैं। श्रीनाम ही जीवके स्वगुणोंका उदय करवाकर कृष्णगुणके प्रति आकृष्ट करवाते हैं। श्रीनाम ही जीवको स्व-क्रिया उत्पन्न करवाकर कृष्णलीलाके प्रति आकर्षण करते हैं।

नामसेवा करनेसे श्रीनाम-सम्बन्धी अनुष्ठान आदिको भी उसके अन्तर्गत ही समझना चाहिये।

श्रीनाम करते-करते श्रीनामकी कृपासे ही सब कुछ होगा। शास्त्र-श्रवण, शास्त्र-पठन अथवा उस विषयके अनुशीलन द्वारा श्रीनामका स्वरूप उदित होता है।

प्रश्न—क्या करनेसे हमारा कल्याण होगा?

उत्तर—भगवानके चरणोंमें मति रखकर भगवान्‌को पुकारनेसे ही हमारा कल्याण होगा। मैं तो यही जानता हूँ। आपलोग भी यही करेंगे—यही मेरी प्रार्थना है।

सांसारिक उत्तरि और सांसारिक सुविधा एवं असुविधा प्रदान करनेवाले मालिक एकमात्र भगवान् ही हैं। हम सभी उनके पाल्य और शरणागत हैं। हमारे प्रति उनका जो विधान

या व्यवस्थाएँ हैं, उन सबको सिर झुकाकर ग्रहण करना ही कर्तव्य है।

(त्रिदण्डस्वामी श्रीश्रीमद्भक्तिमूल्य भागवत
महाराज द्वारा संगृहीत)

भगवान् जगन्नाथकी रथयात्रा और नाम भजन

—नित्यलीलाप्रवीष्ट अविष्णुपाद

श्रीश्रीभक्तिप्रमोद पूरी गोस्वामी महाराज
कृष्णादास कविराज गोस्वामी वृन्दावनकी
लीलाओंको आस्वादन करते हुए कहते हैं।

अन्येर हृदय—मन, मोर मन—वृन्दावन,
'मने' 'वने' एक करि' जानि।

ताहाँ तोमार पदद्वय, कराइ यदि उदय,
तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि॥

(चै.चै मध्य १३.१३७)

अधिकांश लोगोंके लिए मन तथा हृदय एक हैं, किन्तु मेरा मन वृन्दावन है। अतएव मैं अपने मन और वृन्दावनको एक मानता हूँ। मेरा मन पहलेसे वृन्दावन है तो क्या आप अपने चरणकमल वहाँ रखेंगे? इसे मैं आपकी पुर्ण कृपा मानूँगा।

"नहीं तो हमें धोखा देनेके सभी प्रयास छोड़ दो। यदि आप वास्तवमें मुझ पर कृपा करने चाहते हो तो यह राज्यकीय वेश, यह हाथी, घोड़े और सैनिकोंको छोड़ दो। मुझे इन सबसे लुभानेका प्रयास मत करो। यदि आप मेरे पास आना चाहते हो तो गवाले जैसा वेश धारण करो और मेरे साथ वृन्दावनमें चलो।"

कृष्ण लान ब्रजे जाय ए भाव अंतर (चै.

चै. च. मध्य १.५६) मैं कृष्णको लेकर ब्रजमें लौट जाऊँगी। यह भाव गोपियोंके हृदयमें सदा रहा।

"यदि आप मेरे पास आना चाहते हो तो गोवाले जैसे वेश धारण करो! मेरे साथ वहीं यमुनाके तट पर चलो, वहीं कदम्बके वृक्षके नीचे चलो और मेरे साथ वहाँ खड़े रहो तभी मैं मानूँगी की आपने मुझ पर कृपाकी है। नहीं तो मैं समझूँगी यह सब और कुछ नहीं, परन्तु बच्चित करना है।"

"क्या आप मुझे कभी स्मरण करते हैं?
क्या आप समझते हैं कि हम योगी हैं? क्या आप समझते हैं कि स्वांसके व्यामसे, नाना प्रकारके शारीरिक आसन से या आपको ध्यान लगानेसे हम आपको अपने हृदयमें वशीभूत कर सकती हैं? प्रिय सखे, थोड़ा विचार करो, आप हमारे साथ इस प्रकारका व्यवहार क्यों कर रहे हो? आज पूर्ण चन्द्रमा (पूर्णिमा)की रात है, चलिए हम वहीं जमुनाके तट पर चलें।" जैसे ही राधाने 'पूर्णिमा' शब्द उच्चारण किया वह निर शा हो गयीं, यह राधारानीकी अवस्था है।

हम श्रीमति राधीकाको क्या समझें? कुछ क्षणके लिए मैं उनका वर्णन करके भावुक हो गया था। परन्तु हममें वह शक्ति नहीं है कि हम गोपियोंकी कृष्णसे विरह वेदनाको अनुभव कर पायें।

आज बहुत दिनोंके बाद कुरुक्षेत्रमें फिर सूर्य ग्रहण लगा है। सभी जन समुदाय यहाँ उपस्थित हुए हैं। कोई धनकी लालसासे आया है, कोई पुत्र तो कोई पुण्य एकत्रित करने आया ताकि भविष्यमें वह सुख भोग

कर सकें। परन्तु ब्रजवासी, कृष्णको क्षणभर अवलोकन करनेकी लालसासे विरहकी अग्निसे जलते हुए आयें हैं। “कृष्ण यहाँ आएँगे, और वास्तवमें मैं उनको देख पाऊँगा।”

ब्रजवासीयोंको मिलनेकी आकांक्षासे कृष्ण अपने सारथी दारुकाको आदेश देते हैं कि रथको सुन्दरसे, ऐश्वर्यसे सजाओ। रथ घोड़ोसे एंव हाथीयोंसे धिरे हैं। कृष्ण राजकीय वेशमें रथ पर सवार हैं और प्रतीक्षा कर रहे हैं। ब्रजवासी कृष्णके निकट आये उन्होंने कृष्णको अनेक वर्षोंके बाद पहली बार देखा।

कृष्णके पिता नन्द और चाचा उपनन्द बहुत दरसे प्रतिक्षा कर रहे हैं। उन्होंने बहुत कुछ सोचकर रखा है कि कृष्णसे क्या कहेंगे। परन्तु जब कृष्ण उनके सामने उपस्थित हो गये तो अब इन्हे कृष्णसे कहनेके लिए कोई शब्द नहीं मिल रहा है। वह बोले “मेरे पुत्र! गोपाल!” परन्तु इससे आगे कुछ भी उच्चारण नहीं कर पाये। यह शब्द भी अश्रुओंकी बाढ़में लुप्त हो गये। कृष्ण भी अपनेको रोक नहीं पाये। उनके अश्रु उनके कपोलों पर वर्षाकी भाँति गिर रहे हैं। नन्द बाबाने कृष्णाको जानेकी अनुमति दे दी आखिर वह कब तक कृष्णाको अपने नेत्रोंमें रोक सकते थे। नन्दबाबा और कृष्ण एक दूसरेको देखकर क्रन्दनके सिवाय कुछ न कर सकें। उनके अश्रुपात ही उनकी वार्तालाप थी। अब यशोदा माताकी कृष्णसे भेंट करने की बारी है। परन्तु वह भी “प्रिय पुत्र! गोपाल!”के सिवाय कुछ न बोल पायीं।

अब सखाओंकी बारी थी कृष्णको सम्बोधन करनी की। उनकी इच्छा थी कृष्णको शासन

करके कहेंगे “भव्या तुम हमें क्यों भूल गये? क्या तुम्हे कभी भी हमारा समरण नहीं हुआ? परन्तु फिर विचार किया कि कहनैयाको यह सब कहना उचित न होगा, यह सब कहनेकी आवश्यकता ही क्या है? इसलिए कुछ न कह पाये।

अब कृष्णकी राधारानीसे मिलनेकी बारी थी, श्रीराधारानी बोलीं “क्या तुमने कभी मुझे समरण किया?” कृष्ण बोलें “क्या कहतीं हो? निश्चय मैं तुम्हे समरण करता था।” यहीं पर श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी लिखते हैं—राधाजी कहतीं हैं।

अन्येर हृदय-मन, मोर मन-वृन्दावन, ‘मन’ ‘वन’ एक करि’ जानि।

ताहाँ तोमार पादद्वय, कराइ यदि उदय, तबे तोमार पूर्ण कृपा मानि॥

अधिकांश लोगोंके लिए मन तथा हृदय एक हैं, किन्तु मेरा मन कभी भी वृन्दावनसे पृथक नहीं होता। अतएव मैं अपने मन और वृन्दावनको एक मानता हूँ। मेरा मन पहलेसे वृन्दावन है तो क्या आप अपने चरणकमल वहाँ रखेंगे? इसे मैं आपकी पूर्ण कृपा मानूँगा।

“दूसरे लोगोंका मन ऐश्वर्य प्राप्तिकी इच्छासे पूर्ण हो जाता है। वह एकके बाद एक अपनी इच्छाओंको सन्तुष्ट करते रहते हैं। मुझे उनसे कुछ भी मतलब नहीं है। मेरा मन तो सदा वृन्दावनके भावमें विभोर है। यदि आप वास्तवमें मुझ पर कृपा करने चाहते हो तो यह गोपाल वेश धारण करो और मुझे वृन्दावन ले चलो। अपने राज्यकीय वस्त्रों और अलंकारोंको फेंक दो। हम इन

ऐश्वर्यों, हाथियों और सैनिकोंको देखकर जलती हैं। हम यह कभी भी देख नहीं सकते। इन सबको दूर भेज दो और हमारे साथ आए। हम आपको उसी गोपालवेशमें देखना चाहती हैं जो आप गैया-चरानेके समय पहनते थे। तभी हम विश्वास करेंगे कि आपकी हम पर पूर्ण कृपा है।

इतना कहने पर राधारानी क्रन्दन करने लगीं और कहने लगीं “तो आज तुम मुझे योग सिखाने आये हो। योगी लोग अपने प्राण वायुको नियन्त्रन कर शारीरिक व्यामसे तुम्हें अपने हृदयमें ध्यान लगाते हैं। तो क्या अब मुझे तुम्हारे बारेमें सोचने के लिए यह सब करना पड़ेगा? मेरी हर स्वास केवल तुम्हारे लिए क्रन्दन करती है, मैं सर्वत्र केवल तुम्हारे रूपका ही दर्शन करती हूँ। परन्तु क्या मुझे अब यह योग सिखाना पड़ेगा। हम इस योगको भली-भाँती जानती हैं। पहले तुमने उद्घवको हमारे पास भेजा ज्ञानका मार्ग दिखानेके लिए और अब स्वयं हमें इस योगकी शिक्षा दे रहो हो।” इतना कहने पर राधारानी अपनेको रोक न सकीं और जोर-जोर से रोनी लगीं।

तब कृष्णने राधारानीको संतावना देते हुए कहा, “मैंने अनेक असुरका वध कर दिया है, परन्तु अभी भी कुछ बाकि हैं, उनको भी सबक सिखाकर मैं शीघ्रही तुम्हारे पास आऊँगा।” राधारानी किसी भी हालतमें यह प्रस्ताव स्वीकार न कर सकीं। वह अपनी सखीको ‘सहचरी’ सम्बोधित करके कहने लगीं, ‘प्रियः सोऽमं सहचरी’ अर्थात् हे सखी यह वही हैं मेरे प्रियतम कृष्ण। ‘तद इदं

उभयः संगम-सुखं’ अर्थात् यह वही मिलनेका आनन्द है। ‘तथापि अन्तः खेलन-मधुर-मुरली-पञ्चम-जुशे मनो मे कांलिदी पुलिन सर्फयती।’ (चै.चै मध्य १.७६)

“आप वही व्यक्ति हैं जो पहले थे, और मैं भी वही व्यक्ति हूँ जो पहले थी। और यह एक-दूसरेको दर्शन करनेका जो आनन्द है वह भी पहला जैसा ही है परन्तु मुझे वही कालिंदी-पुलिन-विपिन, जमुनाका तट स्मरण हां रहा है, जहाँ आपने पहली बार मेरे मनको हरण किया था, अंतहः-खेलन-मधुर्य-मुरली-पञ्चम-जुशे, मुरली की वह पञ्चम तार। यदि आप वास्तवमें मुझे सन्तुष्ट करना चाहते हो तो मेरे साथ वहीं जमुनाके तट पर चलो। कुछ भी हो परन्तु यह कहना बंद किजिए कि हमें योगी बनना चाहिए या कुछ और करना चाहिए।

राधारानी इस प्रकारसे क्रन्दन करने लगीं कि कृष्ण भी सम्भाल न पाये, उन्होंने राधारानीको संतावना देनेके फिर से प्रयास किया और कहा, “मैंने अनेक असुरोंका विनाश एवं वध किया। अब केवल एक ही रह गया है, उसका भी वधकर तुरन्त तुम्हारे पास आ जाऊँगा।

श्रील कृष्णदास कविराजने कितनी अद्भूत भाषाका प्रयोग किया है। क्योंकि उनके भाव साक्षात् अनुभवसे उदय हुए हैं। हम नहीं जानते कि यह भाव कैसे अनुभव किये जाएं। हमें तो मात्र एक झलक दिखती है। केवल हरिनाम माला हाथमें लेना ही कृष्ण-भजन नहीं है। यह सत्य है, मैं हरिनाम माला हाथमें लिये हूँ परन्तु मेरे विचार कहाँ हैं?

मेरा भजन कहाँ हैं? भजनका रहस्य क्या हैं? श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपने ग्रन्थ भजन रहस्यमें अनेक भजन लिखे हैं। परन्तु हमने इस दुविधामें अभी प्रवेश नहीं किया। यद्यपि हमें अष्टकालिया लीला-स्मरण करनेका निर्देश श्रील प्रभुपादजीसे प्राप्त हुआ है। इसलिए कोई यह धारणा न रखे कि यह सब हमारे परम्परामें नहीं है। जैसे वृन्दावनके कुछ लोग कहते हैं “गोड़ीय मठके लोग सुखे हैं उनके भजनमें डैनीसम नहीं है। दूसरी ओर हम लोग देखते हैं कि वह लोग जो कुछ करते हैं वह केवलमात्र क्षणभरकी भावना है और कुछ नहीं। इससे क्या लाभ है?

तब कैसे वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति सम्भव है? यह हरिनाम जपके फलस्वरूप सम्भव है। हरिनाम करते-करते वह समय आयेगा जब आखोंसे अश्रु बहेंगे। आज मुझे कुछ अनुभव है, परन्तु मैं क्या कर सकता हूँ? वह केवल क्षणभरके लिए है। कितना अच्छा होता यदि यह भावना और अनुभव सर्वकालके लिए कृष्णकी सेवाके लिए होती। परन्तु ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि हमारा हृदय थोड़ा सा पिगलने लगा, हमारी आँखे भी थोड़ी सी भिगने लगीं और हम अपनेको बहुत बड़ा भजनानन्दी समझने लगें। फलस्वरूप हम दूसरोंको नीचे दिखानेकी भावना रखने लगें और यह सोचने लगें कि कोई भी वास्तवीक रूपमें भजन नहीं करता, मेरे सिवाय कोई भी वास्तविक रूपमें हरिनाम नहीं करता। जब ऐसे विचार हमारे मनमें आने लगें तो हमें अपने आपको शासन

करना चाहिए। यह भजन नहीं है।

प्रिय बन्धुओं हरिनामके बिना कृष्ण-भजन सम्भव नहीं है। हरिनामको छोड़ कभी भी सम्भव नहीं है। महाप्रभुजी हरिनामका कितना गुणगान किया है। इसके उपर, हमें गुरुजी की कृपा चाहिए।

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा। तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रुषया यथा॥

प्रिय मित्र! मैं सबका आत्मा हूँ, सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हूँ। मैं गृहस्थके धर्म उपनयन-वेदाध्यनन आदिसे, वानप्रस्थीके धर्म तपस्यासे और सब ओरसे उपरत हो जाना—इस संन्यासीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेवकी सेवा-शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ। (श्रीमद्भागवतम् १०.८०.३४)

यह श्लोक चार आश्रमोंको सम्बोधन करता है। यदि मैं अपने आश्रमको पूर्ण रूपसे पालन करता हूँ तो भी भगवान्‌को सम्पूर्ण आनन्दित नहीं कर सकता। आप पूछ सकते हैं, “तो कैसे कृष्णको सन्तुष्ट कर सकते हैं?” वह कहते हैं, तुश्येयमं सर्व-भूतात्म गुरु शु यथा। “मैं अत्यन्त सन्तुष्ट व आनन्दित तब होता हूँ जब किसीको परिपूर्णरूपसे गुरुकी सेवा करते देखता हैं न कि उसको जो अपने आश्रमको भलीभाँति पालन करता है।”

कृष्ण स्वयं अपने उद्धाहरणसे शिक्षा दे रहे हैं कि गुरु सेवा कैसे की जाती है। वे और उनके मित्रने सारी रात लकड़ीके गठरीको अपने मस्तक पर रखा था। आश्चर्य! हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वयं

भगवान् कृष्णचन्द्र अपने मित्र सुदामासे कह रहे हैं “सुदामा क्या तुम्हें समरण है? एक दिन गुरुमाँ (गुरु पत्नी) ने हमसे कहा, “बालको आश्रममें लकड़ी नहीं है तो मैं कैसे रन्दन करूँगी? तब मैंने कहा था आप चिन्ता मत किनिए हम तुरन्त जाकर लकड़ी की वयवस्था करते हैं। तब हमलोग घने जंगलमें गए और बहुतसी लकड़ीको इकट्ठीकर एक दूसरेके सिर पर रखने लगे। अचानक, कहाँसे घोर काले मेघ आगए और जोरसे वर्षा होने लगी। देखते-देखते सम्पूर्ण वनमें बाढ़ आ गई और हम दोनों एक दूसरेको सावधान कर रहे थे कि लकड़ीयाँको नीचे न रखना नहीं तो वह भीग जाएगी और रन्दन न हो पायेगा। हम दानों उन गठरीयोंको अपने सर पर रख सारी रात भीगते रहे और वर्षा होती रही।”

हम भी शिष्य हैं और हमें भी ऐसा आचरण करना चाहिए। तो क्या इसलिए हम सद्गुरुके पास आएँ हैं कि हम लोग लकड़ीयोंको अपने सिरपर लादें? परन्तु यह तो कृष्ण साक्षाद् रूपमें गुरु सेवा करके दिखा रहे हैं न कि लोगोंको प्रभावित करनेके लिए ऐसा आचरण कर रहे हैं। आज यह दोनों मित्र सारी रात अपने सर पर भारी लकड़ीकी गठरीको लाद कर खड़े हैं और तेज मुस्लाधार वर्षामें भीग रहे हैं तो क्या यह एक साधारण बात है।

इधर आश्रममें गुरु सांदिपनी मुनि और उनकी पत्नी, गरु-पत्नी सारी रात एक पलके लिए भी न विश्राम कर पाये। वह सोच रहीं हैं, “हाय! मैंने इन बालकोंको

लकड़ी लानेके भेजा है। इत्नी देर हो गई है, वह दोनों बहुत कष्टमें होंगे।” मध्य रात्रिमें सांदिपनी मुनि उन बालकोंको ढूढ़नेके लिए निकले और उच्चस्वरमें उन्हे पूकार रहे हैं “कृष्ण कहाँ हो? सुदामा कहाँ हो? हे गोपाल, तुम कहाँ हो? तब उन्होने अपने सामने यह अद्भुत दृश्य देखा, कृष्ण और सुदामा मस्तक पर लकड़ियाँ उठाये भीगे वस्त्रोंमें उनके सामने खड़े हैं। यह दृश्य देखकर गुरुजीका हृदय द्रवीभूत हो गया उनके आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही है, और उनके वक्षःस्थलको भी स्नापित कर रही है। सांदिपनी मुनिने उन शिष्योंकी प्रशंसा करते हुए कहा, मैं और क्या कहूँ? तुमने गुरुसेवाका एक आदर्श दिखाया है, इसलिए मैं तुम्हे आशिर्वाद करता हूँ कि मैंने जो भी तुम्हे सिखाया है वह तुम कभी भी नहीं भुलोगे न इस जन्ममें और न किसी दूसरे जन्ममें।

इसलिए इस प्रकारका भाव स्थिर रहना चाहिए। वह भाव स्थायी होना चाहिए, परन्तु यह भाव स्थिर कब रह सकता है? जब हम निरअपराध होकर हरिनाम करेंगे।

नाम बिना कलि-काले नहीं आर धर्म,
सर्व-मन्त्र-सार-नाम—एइ शास्त्र-मर्म ॥

“कलियुगमें हरिनामको छोड़कर और कोई धर्म नहीं है। हरिनाम ही सभी मन्त्रोंका सार है ऐसा शास्त्र कहते हैं। (चै.चै आदि ७.
७४)

आपके अधिक मन्त्रोंको समरण करनी आवश्यकता नहीं है। परन्तु कुछ विषयोंको सावधानीसे समझनेकी आवश्यकता है, हमारे

मन्त्र, आप उन्हे अच्छेसे उच्चारण किजिए और अपराधोंसे दूर रहें। किन्तु वह केवल हाथमें माला लेनेसे नहीं होगा। बहुतसे व्यक्ति हाथमें माला तो लेते हैं परन्तु साथ-साथ ही व्यर्थकी बाते करते हैं। हमारा उद्देश्य है—अविक्षेपेन साततयां—“बाधा रहित जप करना”। इसलिए जब लोग मुझसे पूछते हैं, “क्या हम कभी भी कृष्णकी लीला समरण नहीं कर सकते। क्या हमें सदाके लिए इस अमृतसे बञ्जित होना पड़ेगा?” उत्तरमें मैं कहता हूँ “हाँ क्यों नहीं तुम सब लीला समरण करो, और दूसरोंको भी इसका उपदेश करो, परन्तु ऐसा करनेसे पहले तुम्हे इसकी किमत देने पड़ेगी। और इसकी किमत केवल हरिनाममें निष्ठा है। यदि तुम्हारी हरिनाममें पूर्ण निष्ठा है तो तुम समरण कर सकते हो। भक्तिरसामृतसिंधु (१.४.१५-१७)में ऐसा लिखा है: अदोः श्रद्धा तताह साधु-संग, साधु-संगके स्तर पर हम गुरुपदाश्रय हैं। तब भजन-क्रिया आरम्भ होगी। (क्रमशः)

श्रीव्यासपूजाके अवसर पर दीन—अकिञ्चनके द्वारा श्रीहरि—गुरु—वैष्णवोंका गुणगान

[ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन
गोस्वामी महाराजजी द्वारा उनकी आविर्भाव
तिथिके उपलक्ष्यमें लिखित प्रबन्ध, वर्ष ४६
संख्या २ पृष्ठ ३४ से आगे]

यस्य देवे परा भक्तिर्था देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥
जिनकी भगवान्‌में पराभक्ति है और वैसी ही वैष्णवगुरुमें है—वह महात्मा अर्थात् महाभागवत है, शास्त्रोंका अर्थ यथार्थ रूपमें उनके हृदयमें ही प्रकाशित होता है। विषय और आश्रयविग्रहके साथ परस्पर अङ्गाङ्गी सम्पर्क है—यही समझना होगा। इसलिए ‘मन्त्राथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः’—ऐसा विचार आया है। विषय और आश्रय तत्त्वके प्रति निष्ठा न रहनेसे सबकुछ गड़बड़ हो जाएगा। विषय विग्रह भगवान्—सर्वेश्वरेश्वर, आश्रयविग्रह श्रीगुरुदेव तद्रूप कोई जीव नहीं हैं—वे सर्वदेवमय हैं—वे ईश्वर हैं। ऐसा विचार न रखनेसे गुरुदेवके प्रति मत्त्यबुद्धि होगी, तब महाविपद आ जाएगी—अपना प्राकृतत्व कभी भी दूर नहीं होगा। इसलिए एक विचार है—‘गुरुदेवतात्मा’। जो गुरुदेवको देवता मानते हैं एवं ‘आत्मा’ अर्थात् प्रिय मानते हैं—वे ही गुरुदेवतात्मा हैं। गुरुदेवतात्मा न होनेसे ‘विश्रम्भेण’ गुरुसेवा नहीं हो सकती। गुरुदेवतात्मा न होनेसे कृष्णभजन नहीं होता।

ताते कृष्ण भजे करे गुरु सेवन।
मायाजाल छुटे पाय श्रीकृष्णचरण ॥
कृष्णभजन और गुरुसेवामें परस्पर ऐसा ओतप्रात् सम्पर्क है।

शास्त्रोंमें विभिन्न प्रकारके गुरुओंके सम्बन्धमें कहा गया है। जैसे—चैत्यगुरु, वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु, भजनशिक्षागुरु, मन्त्रगुरु आदि। चैत्यगुरु—वे भजनानुकूल विवेक प्रदाता हैं। प्रीतिपूर्वक निष्कपट रूपसे भजन करनेकी चित्तवृत्ति जिनमें है, वे उनको ही वैसा—वैसा

यथार्थ बुद्धियोग प्रदान करते हैं। ‘ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुपयान्ति ते।’ साथ ही अन्याभिलाषी जीवके प्रति वह मौन रहते हैं, मायाद्वारा उसको कर्मचक्रमें, जन्ममृत्यु चक्रमें भ्रमण कराते हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृदेशं उर्जुन तिष्ठति।

श्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रास्त्रृढानि मायया॥

जीव जिस समय द्वितीयाभिनवेश त्याग करनेके लिए प्रस्तुत होता है, उस समय वे अन्तर्यामी रूपमें उसके चित्तमें कृष्णभक्तिका विवेक उदय कराते हैं और बाहरमें महन्तस्वरूपमें प्रकाशित होते हैं। तभी वर्त्मप्रदर्शक गुरु, श्रवणगुरु, दीक्षागुरु, भजनशिक्षागुरु आदि क्रमानुसार प्रकाशित होते हैं। श्रील प्रभुपादने कहा था—“आश्रयजातीय गुरुवर्ग विभिन्न मूर्तियोंमें मुङ्गपर दया करनेके लिए उपस्थित हैं—यह दिव्यज्ञान प्रदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश विशेष है।” वर्त्मप्रदर्शक, श्रवणगुरु अनेक बार एक ही व्यक्ति होते हैं। शिक्षागुरुदेव यदि हमको उपदेश न दें—किस प्रकार गुरुपादपद्मका आश्रय करना होगा, किस प्रकार गुरुपादपद्मके साथ व्यवहार करना होगा, तब हमारा मङ्गल नहीं हो सकता। वे दीक्षागुरुकी मर्यादा एवं दीक्षागुरुकी पूजाकी शिक्षा प्रदान करते हैं। सम्बन्ध ज्ञान प्रदाता दीक्षागुरुसे मन्त्र अनुग्रह प्राप्त करना होता है। भजनशिक्षागुरु भजनप्रणालीकी शिक्षा प्रदान करते हैं। दोनों एक ही व्यक्ति हो सकते हैं और कभी वे अलग-अलग भी हो सकते हैं। किन्तु, यह सभी उन दिव्यज्ञानप्रदाता गुरुपादपद्मके ही प्रकाश होते हैं। इसमें कोई प्राकृत विचारसे भेदबुद्धि, असमबुद्धि करनेसे महा-अनर्थ उपस्थित

होता है। गुरुदेवके प्रति मत्त्यबुद्धि दूर न होनेसे विभिन्न भेद विचार आकर उत्पात आरम्भ कर देते हैं। इसमें विशेष सतकंता अवलम्बन न करनेसे दुर्दशा नहीं कटती है। इसलिए कहा गया है—‘श्रीगुरुचरणपद्म केवल भक्तिसद्व, वन्दे मुजि सावधान मते।’

इस विशेष दिनमें मैं अपने गुरुपादपद्मके अतिमत्त्य चरित्रिका ही स्मरण कर रहा हूँ। उनका सर्वप्रधान वैशिष्ट्य है—उनकी असमोर्ध्व गुरुनिष्ठा। ‘गुरुदेवतात्मा’ विषयके वे ज्वलन्त दृष्टान्त (उदाहरण) है। प्रतिक्षण गुरुसेवाके लिए उनकी इतनी उन्मुखता थी कि जो एकमात्र सर्वोत्तम पातिव्रत्य धर्मके साथ ही तुलना हो सकती है। अपने प्राण, देह सब कुछ ही उन्होंने सर्वतोभावेन (पूर्णतः) प्रभुपादके चरणोंमें समर्पण किया था। श्रीरामानुजके शिष्य श्रीकुरेशने जिस प्रकार अपने प्राणोंके विनिमय पर श्रीगुरुसेवकका उज्ज्वल दृष्टान्त रखा था, उसी प्रकार मेरे गुरुपादपद्म थे। उन्होंने प्रभुपादकी अपने प्राणोंको जलाज्जलि देकर भी असुरवृत्तिसम्पन्न लोगोंकी उद्दण्डतासे रक्षा की थी और प्रभुपादने भी वैसी एक लीला प्रकाश कर गुरुपादपद्मके हृदयकी अतुलनीय गुरुनिष्ठाको सबके सामने प्रकाशित किया। महामहोपदेशक, महोपदेशक शिष्यगणोंकी गुरुनिष्ठा निभृत, निगूढ़ सेवामें रत एक उपदेशक पण्डितकी गुरुनिष्ठाके सामने सूर्यके सामने जुगनूके समान है—यही उन्होंने प्रकाशकर उन लोगोंकी गर्व-उद्दण्डताको ध्वंस किया था। तत्त्वसिद्धान्त विचारसे भी उनकी इतनी गुरुनिष्ठा थी, जिससे सभी स्तम्भित हो जाते थे। किसी एक समय किसी तत्त्व-सिद्धान्तको

लेकर प्रभुपादकी विचार-धाराको अतिक्रमण करनेकी चेष्टा होनेपर उन्होंने गर्जन किया था—‘मैं पूर्व गोस्वामियोंको पहचानता नहीं, जानता नहीं। मैं जगद्गुरु श्रील प्रभुपादकी विचारधाराको अभ्रान्त सत्यरूपमें मानता हूँ। मैं प्रभुपादकी दृष्टिसे ही पूर्व गोस्वामियोंको समझने और जाननेकी चेष्टा करूँगा। ‘आचार्यर्ये इङ्ग मत, सेइ मत सारा। आर मत यत यउक छारखार’—यही मेरा विचार है।” तब सभी आश्चर्यपूर्वक उनके विचारोंके प्रति ही नतमस्तक हुए। उनकी इस घटनाने एक विशेष शिक्षाको दर्शाया है। ‘गुरुनिष्ठा’, ‘गुरुभक्ति’ का विचार अनेक क्षेत्रमें अपात्रमें प्रयोग होता है। ‘गुरुब्रुव’ के प्रति निष्ठासे अधःपतन अनिवार्य है। ‘गुरु’ माने जो वास्तव वस्तु हैं, कृष्णवस्तु हैं। विभिन्न अपसम्प्रदायोंमें जो सब तथाकथित गुरु हैं, वे कृष्णस्वरूप नहीं हैं। मैंने पहले ही इसकी आलोचना की है। वहाँ जो निष्ठा, भक्ति है—वह जीवकी अविद्याके कारण ही घटित होती है। अतः वह ‘गुरुनिष्ठा’, ‘गुरुभक्ति’ कहलाने योग्य नहीं हैं। यहाँ प्रभुपादके प्रति गुरुपादपद्मकी जो निष्ठा है, वह उनके प्रभुपादके साथ अन्तरङ्ग सम्बन्धका परिचय है, वास्तव वस्तु सहित अति घनिष्ठ सम्बन्धका ही परिचय है। पूर्व-पूर्व गोस्वामियोंके विचारमें कोई भ्रान्ति नहीं है—यह गुरुपादपद्म निश्चित रूपसे जानते थे। किन्तु उन सब विचारोंमें दुर्बुद्धिग्रस्त जीव अनेक प्रकारकी भूल धारणा कर सकते हैं, किन्तु प्रभुपादका विचार-दर्शन अवलम्बन करनेसे उनके विचार भ्रान्तियोंमें लिप्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं है।

प्रभुपादके साथ सम्बन्धित कोई भी व्यक्तिके

उपस्थित होनेपर—चाहे वह मठवासी, त्यागी, गृहस्थ या कोई साधारण व्यक्ति ही हो—गुरुपादपद्म आनन्दसे गद्गद हो जाते थे। उनकी आन्तरिकता अकपट रूपमें प्रकाशित होती थी। ‘गुरुसेवक हय मान्य आपनारा’ प्रभुपादके साथ किसीका भी किसी रूपमें सेवा-सम्बन्ध रहने पर वे उनके प्रति अपनेको कृतज्ञ मानते थे, ऋणी मानते थे। ऐसा बोध होनेके कारण वे उनके बहुत प्रकारसे आर्थिक सहायता करते थे। कारण, प्रभुपाद एकमात्र उनके हृदयकी ही वस्तु थे, उनसे सम्बन्धित व्यक्तिके साथ ही उनकी समस्त प्रीति थी। दूसरी ओर, प्रभुपादकी सेवाकी छलनामें जिन्होंने उनके प्रति विरुद्धाचारण किया था, उनके प्रति वे ‘वज्रादपि कठोर’ थे। यह तो स्वाभाविक है, क्योंकि सम्बन्धबोध होनेके कारण ही ऐसा हो सकता है। ‘गुरुसेवक हय मान्य आपनारा’। गुरुदेव श्रीराधागोविन्दकी समस्त सेवाके sole custodian सर्वसत्त्वसंरक्षक हैं। श्रीराधागोविन्दकी जितनी प्रकारकी सेवाएँ अनुष्ठित होती हैं, वे गुरुपादपद्मकी ही सेवा है। गुरुदेव कृष्णेन्द्रिय-तोषणके साथ ऐसे adjusted हैं कि कृष्णके सुखविधानमें ही गुरुदेवका आनन्द विधान होता है, उनका आनन्दलाभका अन्य कोई source नहीं है। इसीलिए श्रीकृष्णकी सेवाविधानसे श्रीगुरुदेवकी ही सेवा सम्पादित होती है। इसलिए सभी गुरुदेवके सेवक हैं। उस सेवा-सूत्रमें जो-जो एक क्षणके लिए भी संयुक्त हुए हैं, वे उनके प्रति स्वयंको ऋणी बोध करते हैं, क्योंकि प्रभुपाद एकमात्र उनके हृदयके ही धन थे।

गुरुपादपद्मकी यह असमोर्ध्व गुरुनिष्ठा ही

उनका मुख्य परिचय। उनके अन्यान्य असंख्य बहुत गुण, वैशिष्ट्य, परिचय हैं; वे सब उनके मुख्य परिचयके ही अधीन है। समयाभावके कारण उन सब अतिमर्त्य वैशिष्ट्योंकी आलोचना सम्भव नहीं है। व्यासपूजा माने—गुरुचरणाश्रय, गुरुपादपद्ममें पाद्यार्पण करना। यही मैंने अपने साध्य (सामर्थ्य) के अनुसार सम्पादन करनेका प्रयास किया है। श्रीगुरुपादपद्म अहैतुकी करुणावशतः मेरे प्रति प्रसन्न हों, यही निवेदन है। आप मेरे प्रति आशीर्वाद करें, जिससे श्रीगुरुपादपद्म मेरे प्रति प्रसन्न रहें। अपनी शरीरकी अस्वस्थताके कारण मेरे द्वारा साक्षात् रूपमें आपके सम्मुख उनकी गुणावली कीर्तन न कर सकनेके कारण आप सब मुझे क्षमा करें। 'वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्दुभ्य एव च। पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः।'

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४६ संख्या २ पृष्ठ ४४ से आगे)

—श्रीमान् परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

इस प्रकार सात प्रहर तक प्रभुने अपना महा-ऐश्वर्य प्रकाशकर समस्त भक्तोंको आनन्द प्रदान किया तथा सभीकी मनोकामनाएँ पूर्ण की। परन्तु सबसे अधिक सौभाग्य तो श्रीवास-पण्डितजीका ही है कि जिनके घरमें ब्रह्मा, शिव आदिके लिए भी दुर्लभ ऐसी लीलाएँ हुईं। श्रीवासजीकी तो बात ही क्या उनके घरके दास-दासियोंको भी बिना किसी कठोर साधनके यह महा-सौभाग्य अति सहज रूपमें ही हो गया। इसका एकमात्र कारण है, वैष्णव सेवा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि

समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता होनेसे अथवा शुष्क (भक्ति रहित) ज्ञान-वैराग्यके द्वारा भगवानकी कृपा नहीं पाई जा सकती। भगवानकी निष्कपट कृपा प्राप्त करनेके लिए मात्र एक योग्यता आवश्यक है—उनके प्रति ऐकान्तिक शरणागति। किसी भी जाति, कुल आदिका क्यों न हो, यदि उसकी भगवानके प्रति ऐकान्तिक भक्ति हो, तो भगवान उसे अवश्य ही स्वीकार कर लेते हैं—

व्यावधस्याचरणं ध्रुवस्य च
वयो, विद्यागजेन्द्रस्यका,
कुञ्जायाः किञ्चु नाम रूप—
मधिकं, किन्तत् सुदाम्नो धनं।
वंशः को विदुरस्य, यादव—
पतेस्त्रग्रस्य किं पौरुषं,
भक्त्या तुष्यति केवलं न
च गुणैर्भक्तिप्रियो माधवः॥

अर्थात् व्याध (उस शिकारी) का क्या आचरण था? ध्रुवकी उम्र कितनी थी? कुञ्जाका क्या सौभाग्य था? सुदामा विप्रके पास कितना धन था? विदुरजीका कैसा वंश था? यादव पति उग्रसेनका क्या पौरुष था? जो भगवानने इन सबपर अपार कृपा की। क्योंकि भगवान तो एकमात्र भक्तिके द्वारा ही संतुष्ट होते हैं, जागतिक गुणोंके द्वारा नहीं।

श्रीवासजीके घरमें नित्यानन्दजीका विलास

श्रीवासजीके घरमें नित्यानन्दजी बाल्यभावमें आविष्ट होकर अनेक प्रकारकी लीलाओंके माध्यमसे श्रीवासजी एवं मालिनी इत्यादिको आनन्द सागरमें डुबाते रहते थे। वे श्रीवासजीको बाप! बाप! कहकर पुकारते थे तथा मालिनीजीकी गोदामें बैठकर उनका स्तनपान

करते थे। यद्यपि मालिनीदेवीके स्तनोंका दूध सूख चुका था, परन्तु नित्यानन्दजीके उनकी गोदमें बैठकर उनके स्तनोंको स्पर्श करते ही, उन सूखे हुए स्तनोंसे भी झर-झर दूधकी धारा स्वतः ही प्रवाहित होने लगती। यह देखकर सभी लोग हतप्रभ हो जाते थे। एक दिन प्रभु श्रीगौरसुन्दर नित्यानन्दजीसे प्रीतिपूर्वक कहने लगे—“श्रीपाद नित्यानन्दजी! आप मेरे पीछे यहाँ किसीसे झगड़ा या किसी भी प्रकारकी शरारतें नहीं करेंगे।” यह सुनकर नित्यानन्द प्रभु दोनों कान पकड़ “श्रीकृष्ण” का स्मरण करते हुए कहने लगे—“क्या आप सभीको अपने जैसा समझते हैं? मैं तो कभी किसी प्रकारकी चञ्चलता नहीं करता।

प्रभु—“श्रीपाद मुझे बतानेकी आवश्यकता नहीं है, मैं सब जानता हूँ कि आप कैसे भोले-भाले हैं?

नित्यानन्द—“अच्छा बताइए तो मैंने क्या शरारत की?”

प्रभु—“आप प्रसाद पाते-पाते उसे सारे घरमें फैला देते हैं।

नित्यानन्द—“ऐसा तो पागल करते हैं, मैं क्या आपको पागल दिखाई देता हूँ? वास्तवमें बात यह नहीं है, कुछ और ही है। मैं समझ गया, अब आपलोग मुझे खिलाना नहीं चाहते हैं, इसीलिए जान-बूझकर मेरा दोष निकाल रहे हैं। अच्छी बात है, आप मुझे मत खिलाइए, स्वयं खाइए, परन्तु व्यर्थमें ही मेरी बदनामी तो मत कीजिए।” यह सुनकर प्रभुने प्रेमसे नित्यानन्दको गलेसे लगा लिया तथा उन्हें समझाने लगे—देखिए श्रीपाद ऐसी बात नहीं है, मैं आपकी बदनामी नहीं कर रहा हूँ,

बल्कि आपको बदनामीसे बचा रहा हूँ। क्योंकि आप और मैं दो शरीर एक आत्मा हैं। अतः आपकी बदनामी मेरी बदनामी है। आप बाल्यभावमें आविष्ट होकर सब कुछ भूल जाते हैं। इसीलिए मैं चाहता हूँ कि आप अपने भावोंको सबके सामने प्रकाश न करें।

नित्यानन्द प्रभु एक छोटेसे बच्चेकी भाँति मचलते हुए कहने लगे—“अच्छी बात है, अब ऐसा नहीं करूँगा।” ऐसा कहकर जोरसे खिल-खिलाकर हँसने लगे परन्तु प्रभुको सामने देखकर पुनः बाल्यभावमें आविष्ट हो गये। कपड़ेको सिरपर पगड़ीकी भाँति बाँधकर नग्न होकर आंगनमें यहाँ-वहाँ चञ्चल बच्चेकी भाँति भाग-दौड़ करने लगे। यह देखकर प्रभु मुस्कराते हुए कहने लगे—“श्रीपाद! गृहस्थके घरमें यह उचित नहीं है। अभी आप कह रहे थे कि क्या मैं पागल हूँ? और अभी आपने स्वयं ही अपनी बातको झुठला दिया।” परन्तु नित्यानन्द प्रभुको तो होश ही नहीं है कि मैं कहा हूँ तथा क्या कर रहा हूँ। इसीलिए प्रभु स्वयं उनके पास गये तथा उन्हें पकड़कर वस्त्र धारण करवाये। वे कभी भी अपने हाथसे भोजन नहीं करते थे। वे मालिनीदेवीकी गोदीमें बैठ जाते तथा वे भी वात्सल्यभावमें विभोर होकर उन्हें अपने पुत्रकी भाँति अपने हाथोंसे पुचकारते हुए खिलाती थी। एक दिन आंगनमें रखी हुई एक पीतलकी कटोरीको एक कौआ अपनी चोंचमें पकड़ उड़ गया। तथा उड़ते-उड़ते आँखोंसे ओझल भी हो गया। यह देखकर मालिनीदेवीको बहुत दुःख हुआ क्योंकि उस कटोरीमें वे

कृष्णके लिए घी (भोगके लिए घी) रखती थी। उसी समय वह कौआ फिर वहाँ पर पहुँचा, परन्तु अब उसकी चोंचमें घीकी कटोरी नहीं थी। यह देखकर वह भयभीत होकर रोने लगी। क्योंकि वे जानती थी कि अभी जब पण्डितजी (श्रीवास्त्री) आएँगे तथा उन्हें पता चलेगा कि कौआ भोगकी कटोरी ले गया, तो मुझपर बहुत बिंदेंगे। उसी समय वहाँपर नित्यानन्द प्रभु आ पहुँचे। उन्होंने हँसते हुए मालिनीसे पूछा—“माँ! आप क्यों रो रही है? आपको क्या दुःख है, मुझे बताइए। मैं अभी चुटकी बजाते हुए उस दुःखको ढूकर देता हूँ। मालिनीदेवी—“पुत्र! यह कौआ भगवानके भोगकी कटोरीको उठाकर ले गया था। परन्तु अब यह उसे कहाँ फैंककर आ गया, मालूल नहीं।” यह सुनकर नित्यानन्द प्रभु बोले—“माँ! आप चिन्ता न करें, मैं अभी कटोरी वापस मँगाता हूँ।” ऐसा कहकर वे कौएसे बोले—“अरे कौए! तू जल्दीसे भगवानके भोगकी कटोरीको ले आ।” नित्यानन्द प्रभु समस्त जीवोंके हृदयमें परमात्मारूपसे विराजमान रहते हैं। अतः कोई उनकी बात न माने, ऐसा कैसे हो सकता है। इसीलिए वह कौआ भी प्रभुका आदेश पाकर उड़ गया। कुछ देर बाद जब वापस आया तो उसकी चोंचमें कटोरी थी। उसने उस कटोरीको मालिनीदेवीके सामने रख दिया। यह देखकर मालिनीदेवीके आनन्दकी सीमा न रही। वह नित्यानन्दकी स्तुति करते हुए कहने लगी—“आप तो गुरुकी प्रसन्नताके लिए उनके मरे हुए पुत्रको यमालयसे भी वापस ले आए थे। अतः इस कौएसे आपने

जो यह कटोरी वापस ली, यह आपके लिए कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। द्वापर लीलामें जब कृष्ण-बलराम ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक सान्दीपनि मुनिके पास विद्या अध्ययनके लिए गये थे, तथा उन्होंने लोकशिक्षाके लिए अर्थात् गुरुका महत्व बतानेके लिए चौष्ठ दिनोंमें चौषट्ठि विद्याएँ सीख ली। शिक्षा पूर्ण होनेके पश्चात् जब उन्होंने गुरुजीसे दक्षिणा माँगनेको कहा तो सान्दीपनिको विश्वास था कि ये कोई साधारण बालक नहीं है अतः वे बोले—‘मेरा पुत्र समुद्र स्नानके लिए गया था तथा समुद्रमें डूबकर मर गया था। अतः यदि आपलोग मुझे दक्षिणा देना चाहते हैं, तो मेरा मरा हुआ बच्चा मुझे लाकर दे दो।’ यह सुनकर दोनों भाई रथपर सवार होकर प्रभासतीर्थमें तथा वहाँ समुद्रके पास जाकर उसे आदेश दिया कि वह गुरु-पुत्रको लौटाए। यह सुनकर समुद्र प्रकट होकर बोले—‘प्रभो! आपके गुरु-पुत्रको तो पञ्चजन असुरने मार डाला है।’ इस पर दोनों भाई समुद्रके भीतर पञ्चजन असुरके निवास स्थानपर गये तथा उसका संहार कर डाला। परन्तु वहाँ पर भी गुरुपुत्रको न पाकर दोनों यमलोक पहुँच गये। अपने वहाँ कृष्ण-बलरामका दर्शनकर यमराजजीने दोनोंका बहुत आदर-सत्कार किया। तत्पश्चात् कृष्णके आदेशानुसार गुरुपुत्रको उन्हें प्रदान किया।

आपके मस्तकपर अनन्त ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, परन्तु आपको उन्हें धारण करनेमें लेशमात्र भी परिश्रम वैसे ही नहीं करना पड़ता, जैसे हाथीके मस्तक पर यदि एक सरसोंका दाना रख दिया जाए, तो हाथीको लेशमात्र भी मार

अनुभव नहीं होता। रामलीलामें बनवासके समय आप सदा-सर्वदा राम-सीताकी सेवामें रत रहते थे, परन्तु आपने कभी भी सीताजीके चरणकमलोंसे ऊपर उनके किसी भी अंग पर दृष्टि नहीं डाली। आपके तेजस्वी वाणोंसे ही सीता चार रावण अपने वंशके साथ ही नष्ट हो गया था। आपकी महिमा जानकर पूर्वमें कालिन्दीने भी आपकी स्तुति की थी।

एक समय बलरामजी द्वारकासे माँ यशोदा, नन्दबाबा तथा अन्यान्य ब्रजवासियोंके दर्शनके लिए ब्रजमें आए। वे चैत्र एवं बैशाख ये दो महीने ब्रजमें रहे थे। इस दौरान एक दिन जब वे वरुणके द्वारा भेजी हुई वारुणी पानकर अपनी गोपियोंके साथ विहार कर रहे थे, उस समय उनकी यमुनामें जलक्रीड़ा करनेकी इच्छा हुई। अतः उन्होंने यमुनाजीका आह्वान किया। परन्तु यमुनाजीने उन्हें नशे मत्त जानकर उनकी अवज्ञा कर दी। जिससे वे अति क्रुद्ध हो गये तथा उन्होंने अपने हलके अग्रभागसे यमुनाको खींचना आरम्भ कर दिया। इससे वे भयभीत हो गईं तथा उनके श्रीचरणकमलोंमें गिरकर क्षमा प्रार्थना करने लगीं।

मालिनीदेवीके मुखसे अपनी महिमा सुनकर मालिनीदेवीके इन भावोंको दूर करनेके उद्देश्य नित्यानन्द प्रभु हँसते हुए एक छोटे बालककी भाँति कहने लगे—“माँ! मुझे बहुत भूख लगी है, मुझे कुछ खानेको दो।” उसी क्षण मालिनीदेवीका ऐश्वर्यभाव लुप्त हो गया। वे भूल गयी कि नित्यानन्द प्रभु भगवान हैं। उनके मुख ‘माँ’ सुनकर ही उनके अन्दर वात्सल्यभाव उमड़ आया तथा स्तनोंसे झर-झर

स्वतः ही दूधकी धारा प्रवाहित होने लगी। उस समय प्रभु भी एक अवोध बालककी भाँति मालिनीदेवीका स्तन पान करने लगे। इस प्रकार श्रीवासजीके घरमें आए दिन ऐसी ही अलौकिक मनोहारी लीलाएँ होती थीं।

एक दिन प्रभु विश्वम्भर अपने घरमें लक्ष्मीजीके साथ आनन्दसे विराजमान थे। लक्ष्मीजी उन्हें आनन्दसे मुस्कराते हुए ताम्बुल (पान) तैयार कर प्रदान कर रही थीं तथा प्रभु भी बहुत ही प्रेमसे हँसते-हँसते ताम्बुल ग्रहण कर रहे थे। उस समय घरके भीतरसे शचीमाता इस दृश्यको देखकर आनन्द-समुद्रमें गोते लगा रही थीं। उनकी प्रायः इच्छा दोती थी कि उनका पुत्र एवं पुत्र-बधु एक साथ बैठें। इसलिए प्रभु भी माताकी इच्छा जानकर ऐसी ही लीला करते थे। उसी समय बाल्यभावमें नङ्ग-धरङ्ग नित्यानन्द प्रभु आनन्द-विहळ होकर दौड़ते-दौड़ते आये तथा प्रभुके सामने खड़े हो गये। लक्ष्मीजी तो शर्मके मारे दौड़कर अन्दर भाग गयीं। यह देखकर प्रभु बोले—“श्रीपाद! आप नङ्गे क्यों हो गये?”

नित्यानन्द—हाँ-हाँ!

प्रभु—“आप वस्त्र धारण कीजिए।”

नित्यानन्द—“मैं जा रहा हूँ।”

प्रभु—“आप ऐसा क्यों करते हैं?”

नित्यानन्द—“मैं और नहीं खा सकता।”

प्रभु (मुस्कराते हुए)—“श्रीपाद! मैं आपसे पूछ रहा हूँ तथा आप उत्तर कुछ दे रहे हैं, ऐसा क्यों?

नित्यानन्द (कुछ क्रोधित होकर)“—हाँ हाँ मैं वहाँ दस बार गया था। इसमें मेरा क्या दोष हो गया?”

प्रभु—“श्रीपाद आप कृपाकरके वस्त्र धारण कीजिए।”

नित्यानन्द—“मैं भोजन करूँगा।” ऐसा कहकर आँगनमें यहाँ-वहाँ दौड़ने लगे।

इस प्रकार अपने प्राणनाथको अपने सामने देखकर नित्यानन्द प्रभुको होश (बाह्य ज्ञान) ही नहीं है। प्रभु कुछ कह रहे हैं, वे कुछ और सुन रहे हैं। उन्हें इस प्रकार भावमें आविष्ट देखकर प्रभु विश्वम्भर उठे तथा उन्होंने नित्यानन्दजी पकड़कर स्वयं कपड़े पहनाए। अन्दरसे देख रही शाचीमाता इस दृश्यको देखकर मुस्करा रही थी। नित्यानन्दजीके विषयमें ऐसी घटनाएँ वे प्रायः सुनती थी, परन्तु कभी-कभी उन्हें देखनेका मौका भी मिल जाता था। वे नित्यानन्दजीको अपना पुत्र ही मानती थी। तथा प्रभु विश्वम्भरके समान ही उन्हें स्नेह करती थी। कुछ देर बाद जब नित्यानन्दजीका आवेश दूर हुआ तो लज्जित होकर उन्होंने अपने वस्त्र ठीक किए। उसी समय शाची मैया पाँच सन्देश (मिठाईयाँ) लेकर आई तथा बहुत स्नेहसे नित्यानन्दजीको खानेके लिए दिये। पाँच मिठाईयाँ पाकर नित्यानन्दने एक मिठाई तो खा ली, परन्तु बाँकी के चार मिठाईयाँ दूर फेंक दीं। यह देखकर मैया “हाय, हाय” करते हुए कहने लगी—“नित्यानन्द यह तुमने क्या किया? मैंने खानेके लिए मिठाईयाँ दी, और तुमने फेंक दीं।

नित्यानन्द—“तो आपने एक साथ क्यों दी?”

मैया—“अब तो घरमें एक भी मिठाई नहीं है। अब तुम क्या खाओंगे।”

नित्यानन्द (खिलखिलाकर हँसते हुए)—“मैया! आप घरके अन्दर जाकर देखिये। कुछ-न-कुछ अवश्य होगा।” यह सुनकर शाची मैया जब घरके भीतर गयी तो देखकर दंग रह गयी, कि वे चारो मिठाईयाँ जिन्हें नित्यानन्द प्रभुने बाहर फेंक दिया था, घरमें पड़ी हुई है। यह देखकर वह विचार करने लगी कि मिठाईयाँ तो बाहर कहीं फेंकी परन्तु घरमें कहाँसे आयी। इसी उधेड़ बुनमें उन्होंने नीचेसे मिठाईयाँ उठायीं। मिट्टी साफ करके प्रसन्न होकर जब नित्यानन्दजीको देनेके लिए आई तो उन्होंने देखा कि नित्यानन्द मिठाई खा रहे हैं। यह देखकर उन्होंने आश्चर्यपूर्वक पूछा—“पुत्र! तुम्हें ये मिठाईयाँ किसने दी?”

नित्यानन्द (मुस्कराते हुए)—“जब मैंने आपके द्वारा प्रेमपूर्वक दी हुई मिठाईयाँ फेंक दीं थी, तो आपको बहुत दुःख हुआ। इसलिए मैं उन्हें खोज कर ले आया।” इन आश्चर्यजनक घटनाओंको देखकर शाचीमाता कहने लगी—“नित्यानन्द! तुम कौन हो? ऐसा प्रतीत होता है कि तुम भगवान हो तथा मुझे ठग रहे हो।” यह सुनकर नित्यानन्द प्रभु आविष्ट होकर शाची मैयाके चरणोंको पकड़नेके लिए गये, परन्तु मैया वहाँसे भाग गयीं।

(क्रमशः)

विविध संवाद

प्राच्य तथा पाश्चात्य देशोंमें
श्रीमन्महाप्रभुकी वाणी प्रचार
प्राच्यमें २१ व पाश्चात्यमें २०??
वर्तमान धन्य कलियुगमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा

आचरित एवं प्रचारित श्रीहरिनाम संकीर्तन-धर्मके प्रचारकप्रवर श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादजीके प्रिय परिकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुवरके अनुग्रहीत अस्मदीय शिक्षागुरुदेव ३०विष्णुपाद १०८ श्रीश्रीभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज विपुल सफलताके सहित प्रचार करते-करते वर्तमानमें Hawaii की राजधानी Honolulu में पहुँचे। १५/४ से २०/४/२००२ तक Singapore एवम् आष्ट्रेलिया स्थित Sydney में प्रचार समाप्त कर हावाई के विभिन्न स्थानोंमें प्रचार कर रहे हैं। प्रचारमें विभिन्न विषयोंके होते हुए भी आलोचनाके दो प्रधान विषय नीचे प्रस्तुत किये जा रहे हैं—(१) श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य श्रीरामानुजाचार्यकी आविर्भाव तिथि (२) मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी आविर्भाव तिथि।

श्रीरामानुजाचार्यके अप्राकृत चरित्र एवं शिक्षाके सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजी बोले—सद्गुरु और सद्शिष्यका सम्बन्ध नित्य होता है। सद्शिष्यके हृदयमें श्रीगुरुदेव प्रकट अथवा अप्रकट सभी अवस्थामें नित्यकाल विराज करते हैं, कभी भी परित्याग करके कहीं भी गमन नहीं करते हैं। श्रीलक्ष्मण देशीक (श्रीरामानुजाचार्य) संन्यास ग्रहणके ठीक पहले ही उनके श्रीगुरुदेव श्रीयमुनाचार्य अप्रकट हुए। इस जगतमें साधारण नियम देखा जाता है—जन्मग्रहणके समय मनुष्यमात्रकी ही मुद्दी बन्ध रहती है, जगत छोड़कर जानेके समय दोनों हाथ ही खुले रहते हैं अर्थात् मुष्ठिबद्ध नहीं रहती है। इसीलिए किसी कविने अपने

मनको भजनकी शिक्षा देते हुए, जगतकी अनित्यताको दिखाते हुए कहते हैं—मुद्दी बांधकर आया जगतमें, हाथ पसारे जायेगा, कृष्णनाम तू भजले मनवा भवसागर तर जायेगा। किन्तु श्रीयमुनाचार्यमें इस नियमका व्यतिक्रम देखा जाता है। इस जगतको छोड़नेके बाद भी उनके एक हाथकी तीन अंगुलियाँ बंद थीं। इसको किसीने ध्यानसे नहीं देखा। श्रीरामानुजाचार्यजी संन्यास ग्रहणके निमित्त आगमनके समय रास्तेमें ही यह संवाद सुना, श्रीयमुनाचार्यके अन्यान्य अनुगामीगण उनको अन्तिम संस्कारके लिए ले जा रहे थे, श्रीरामानुजाचार्यने उन्हें प्रार्थना करके श्रीगुरुपदपद्मके अन्तिम दर्शनकी इच्छा प्रकट करने पर उन्होंने दर्शनकी व्यवस्था कर दी। श्रीरामानुजाचार्यने श्रीगुरुदेवकी तीन अंगुलियोंके बन्दके कारण जिज्ञासा करने पर कोई भी उसका उत्तर नहीं दे पाये। इस अवस्था पर श्रीरामानुजाचार्यने तीन प्रतिज्ञा की—(१) मैं अभी संन्यास ग्रहण करूँगा (२) श्रीवेदान्त सूत्रका श्रीभाष्य प्रणयन करूँगा (३) समग्र विश्वमें शुद्ध भक्तिका प्रचार करूँगा। श्रीरामानुजाचार्यकी उपरोक्त तीन प्रतिज्ञा करना समाप्त करते ही एक-एक प्रतिज्ञाके साथ-साथ एक-एक करके तीनों अंगुलियाँ खुल गयीं।

एकबार श्रीरामानुजाचार्यके श्रीगुरुदेव मंत्र प्रदानकर बोले—यह मंत्र जहाँ-तहाँ, हाटमें, माटमें, घाटमें (बजार, खेत, घाट) उच्चारण मत करना। श्रीरामानुजाचार्यने परिप्रश्न किया—इस मंत्रका फल क्या है? श्रीगुरुदेवने कहा वैकुण्ठ गति। किन्तु उच्चस्वरमें उच्चारण करनेसे उच्चारणका अनर्थ होगा।

श्रीरामानुजाचार्यजी श्रीगुरुदेवको प्रणामकर सत्रिकटके जनबहुल इलाकाके चौरांगी पर एक अद्वालिकाके ऊपर आरोहण कर सभीको आह्वान करके उच्चस्वरमें उपरोक्त मंत्रका उपदेश देने लगे। श्रीगुरुदेवको अन्य शिष्योंके द्वारा ज्ञात होनेपर वहाँ उपस्थित होकर श्रीरामानुजको बुलाकर बोले—रामानुज यह तुम क्या कर रहे हो? जानते नहीं इसके द्वारा तुम्हारा अनर्थ होगा। श्रीरामानुजाचार्यने साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामकर निवेदन किया—गुरुदेव मेरा अनर्थ होता है—हो, नरकगति होती है—हो, इसके लिए मैं बिन्दुमात्र भी उद्विग्न नहीं हूँ तथा चिन्ता नहीं करता हूँ। किन्तु आपकी अहैतुकी कृपासे तो इतने लोगोंकी वैकुण्ठगतिकी व्यवस्था हो गयी। श्रीगुरुदेवका हृदय कृपासे द्रवीभूत होकर निस्तब्ध हो गया, श्रीरामानुजाचार्यके प्रति उनकी कृपा और भी वर्द्धित हो गयी। यह प्रसंग श्रवणकर कतिपय भक्तोंने हाथ उठाकर श्रील महाराजजीकी दृष्टि आकर्षण करनेपर श्रील महाराजजीने हाथ उठानेका कारण पूछा।

श्रीलमहाराजजी—आपलोगोंका कोई कुछ वक्तव्य विषय है क्या?

जनैक श्रोता—हाँ गुरुदेव, आपका आदेश होनेपर सबकी तरफसे परिप्रश्न कर सकता हूँ।

श्रीलमहाराजजी—हमारे यहाँ पर इष्टगोष्ठी हो रही है अर्थात् हमारे इष्टदेव वा इष्टवस्तुके सम्बन्धमें आलोचना हो रही है। इसलिए आप निःसंकोच परिप्रश्न कर सकते हैं।

श्रीदीनबन्धु दासाधिकारी—गुरुदेव, दीक्षाके समय तो हमलोगोंको आदेश निर्देश दिया

गया है कि दीक्षा मंत्र पवित्र रूपसे मन-ही-मन जप करनेके लिए, किन्तु श्रीरामानुजाचार्यजी तो आचारवान पुरुष हैं, उन्होंने मंत्रके सम्बन्धमें ऐसा अन्याय अनाचार क्यों किया? हमलोगोंको ऐसा करनेसे दोष क्या है?

श्रीलमहाराजजी—श्रीरामानुजाचार्यको हमारे तुल्य साधारण मनुष्य मत सोचिये। वे साक्षात् अनन्तदेवके अवतार हैं, उनके कार्य-कलापसे ही यह प्रकाशित हुआ है। उनके समस्त कार्य शास्त्रानुमोदित हैं। जगतका जीव उनका अनुगमन करनेपर परम कल्याण लाभ करेगा। आपलोग यदि श्रीरामानुजाचार्यकी तरह मुक्त महापुरुष होकर इस तरह आचरण करेंगे तो दोषावह नहीं होंगे। किन्तु यदि ढोंगी होकर कृत्रिमरूपसे मुक्तका भाव दिखायेंगे तब भावकेलि बाजारमें बिक्री नहीं होगी। जिस प्रकार नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुरका अनुकरण करनेपर ढोंगी ब्राह्मणोंने सपेरोंके हाथ मार खायी थी, उसी प्रकारकी अवस्था आपलोंगोकी होगी, अथवा शिवत्व प्राप्त कर विष-पान करनेसे नीलकण्ठ होंगे और शिवत्वके अभावमें विष-पान करनेसे क्या होगा जानते हैं क्या? बोल-हरि-बोल हो जायेगा।

जनैक श्रोता—स्वामीजी! हमलोंगोने सुना है, आपके गुरुदेव श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीको अनेक श्रीकुरेशका अवतार कहते हैं। इसका रहस्य उद्घाटन करनेसे हमलोगों पर कृपा होगी।

श्रील महाराजजी—श्रीकुरेश श्रीरामानुजाचार्यके एकान्त अनुगत, अन्तरंग सेवक है। एकबार चोलराज द्वितीय कोल---(?)ने रामानुजाचार्यको मारनेका षडयन्त्र रचकर

शास्त्रार्थके लिए आह्वान किया। श्रीकुरेशजी यह अवगत होकर, श्रीगुरुदेवके चरणोंमें प्रार्थना कर उनके संन्यासवेषमें संन्यासी रूपमें सजकर उक्त सभामें उपस्थित हुए एवं शास्त्रार्थमें सभीको पराजित कर दिया। किन्तु उनके पक्षमें समर्थन करनेवाला कोई भी उपस्थित नहीं था। पण्डितगण ताली बजाकर बोलने लगे—हमलोग जीत गये तथा रामानुज हार गये। चोलराज पण्डितगणके परामर्श पर श्रीरामानुज वेशधारी कुरेशकी आँखें निकालकर उसे सभासे भगा दिया। परवर्तीकालमें श्रीकुरेशजी बाहरसे अन्ध होकर भी सदा-सर्वदा श्रीगुरुदेवके बारेमें सोचते-सोचते किसी एक ग्राममें श्रीरामानुजजीका संवाद प्राप्त होनेपर वहाँ जाकर श्रीगुरुदेवको प्रणाम किया। श्रीगुरुदेव भी कृपा परवश होकर शिष्यके मस्तकपर हाथ रखनेके साथ ही साथ श्रीकुरेशजी गुरुकृपासे चक्षुमान हो उठे। इसी प्रकार मेरे गुरुदेव श्रीभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी प्रभुवर, 'प्रभुपाद' श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके एकान्त अन्तरङ्ग परिकर थे। प्रभुपाद जब शुद्धभक्तिका प्रचार कर रहे थे, उस समय उनके प्रचार प्रभावसे स्मार्त ब्राह्मणगण अपने रूपये-पैसे रोजगारका धन्धा बन्द होनेका उपक्रम जानकर प्रमादग्रस्त हो उन्होंने स्थिर किया कि प्रभुपादको प्राणसे मार देनेपर ही वे प्रमादग्रस्त न होकर आमोद-प्रमोदग्रस्त हो सकेंगे। No Prabhupad, No Prachar, न रहेगा बांश न बजेगी बांशुरी। श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमा चलनेके अवसर पर प्रौढ़मायातलामें स्मार्त ब्राह्मणगण पूर्व निर्धारित षड्यन्त्रके अनुसार ईंट, पत्थर, सोड़ा बोतल (Soda Bottle) आदि लेकर आक्रमण

करने पर प्रभुपादके अधिकांश शिष्य प्रभुपादके बारेमें न सोचकर अपने-अपने प्राण बचानेके लिए भाग खड़े हुए। उसी समय मेरे गुरुदेव श्वेतवस्त्रधारी श्रीविनोदविहारी ब्रह्मचारी प्रभुपादको लेकर पासमें किसी एक गृहस्थके घर ले गये एवं प्रभुपादके चरणोंमें पुनः पुनः प्रार्थना कर उनके संन्यास वेशको धारण कर प्रभुपादको अपने श्वेत वस्त्रोंमें ब्रह्मचारी रूपमें सजाकर निरापद मायापुरमें भेज दिया। श्रीकुरेशकी तरह गुरुगतप्राण होकर अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर मेरे गुरुदेवने प्रभुपादकी सेवा की थी। इसलिए श्रीकुरेशकी गुरुसेवाके सहित तुलना करके उनको श्रीकुरेशका अवतार बोला जाता है।

जनैक श्रोता—श्रीगुरुदेव ! श्रीरामानुजाचार्य एवं श्रीलप्रभुपाद दोनों ही मुक्त महापुरुष, फिर अपने रक्षार्थ दूसरेकी सहायता लेनी होती है ? इसका कोई रहस्य है क्या ?

श्रीलमहाराजजी—मुक्त महापुरुषोंकी बात तो दूर, स्वयं भगवान्‌को भी निजरक्षार्थ भक्तगणोंकी सहायता लेनी होती है। भगवान् सदा-सर्वदा अपने प्रिय भक्तका वा भक्तगणका मान बढ़ाना चाहते हैं, किन्तु भक्तगण उनके कृतित्वका समस्त गुण भगवान्‌के ऊपर देकर ही आनन्द लाभ करते हैं।

सदूशिष्य व सदगुरुका सम्बन्ध भी उसी प्रकार समझना होगा। एक तरफ श्रीरामानुजाचार्य और श्रीलप्रभुपाद अपने शिष्योंकी महिमा जगतको दिखानेके लिए लीलाभिनय करते हैं। इस प्रकार लीला प्रकाश न होनेपर जगतका जीव श्रीकुरेश और श्री विनोद विहारीकी गुरुसेवाके दृष्टान्तसे चिरतर वज्ज्वित

हो जाते हैं। पुवोक्त शिष्यगणके सेवाके द्वारा हमें भी शिक्षा लाभ करनी चाहिये कि श्रीगुरुदेवको सन्तुष्ट होनेपर जगतमें असाध्य साधन व असम्भव बोलकर कुछ नहीं रह सकता है। इस सम्बन्धमें एक और बात स्मरण करा देना चाहता हूँ। पूर्व-पूर्व युगमें भी कितने सैकड़ों शिष्य श्रीगुरु-कृपासे जगतमें असाध्य साधन किये हैं। श्रीकृष्ण स्वयं भगवान होकर भी जगतको दिखलाते हैं कि उन्होंने श्रीगुरुकृपासे ही ६४ कला-विद्या केवल ६४ दिनोंमें अर्जन की। अतः श्रीविनोद विहारी ब्रह्मचारी प्रभुवर एवं श्रीकुरेशकी सेवा द्वारा गुरुगत प्राण शिष्यलोग किस तरह अपना जीवन विपदार्थ करके भी सेवा करते हैं एवं श्रीगुरुदेवकी कृपासे उनको जगतकी कोई भी शक्ति दमन नहीं कर सकती है। यह शिक्षा मिलती है। श्रीगुरुकृपासे ही वे भविष्य जगतके लिए Light-post वा आलोकस्तम्भके रूपमें जाज्वल्यमान होते हैं।

श्रीरामनवमी उपलक्ष्यमें श्रील महाराजजीने तीन दिवस व्यापी धर्मसभामें अति सहज, सरल, प्राञ्जल भाषामें मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रकी लीला ऐसे सुन्दर रूपसे परिवेसन की सभीने Pin drop Silence होकर मंत्रमुग्धकी तरह श्रवण की। श्रीरामलीलाके अनेक चरित्रों तथा उनकी शिक्षाओंकी आलोचना होनेपर भी श्रील महाराजजीने नारी चरित्रसे भगवान रामचन्द्रकी विमाता कैकयीके चरित्रकी एक नयी दिशा दर्शन करायी। श्रीरामचन्द्रजीके बन गमनकालमें कैकयीकी अत्यधिक कठोर हृदय देखकर रघुकुलके गुरु श्रीविशिष्ठ ऋषि अत्यधिक क्रोधित होकर अभिशाप दिया—हे

कठोरे! तुमने तो श्रीरामचन्द्रके लिए बनवास माँगा है, कुलवधु सीतादेवीके लिए नहीं। तुम इतनी निष्ठुर हो कि सीतादेवीको भी भिखारिनी रूपमें श्रीरामके साथ अनुगमन करना होगा। नहीं, मेरा आदेश सीतादेवी भिखारिनी वेषमें नहीं जायेगी। समस्त अलंकारसे सुसज्जित होकर ही जायेगी। मेरा आदेश उल्लंघन नहीं होगा। श्रीविशिष्ठ ऋषि बोले—हे कठोरे! आजसे पृथ्वीमें सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र जितने दिन विराजमान रहेंगे, जगतमें कोई भी अपनी पुत्रीका नाम कैकयी नहीं रखेगा। इसीलिए आज तक भारतीय संस्कृतिमें कैकयी नाम और किसीका नहीं सुना जाता है।

श्रीरामचन्द्रको युवराज पदको बदले बनवास भेजनेके पीछे क्या रहस्य है? अथवा इसमें कैकयीका दोष ही क्या है?

आपलोग जानते हैं क्या? मनसंयोगपूर्वक श्रवण कीजिये, करके सिद्धान्त ग्रहण कीजिये। श्रीरामचन्द्रके बनवास रूप कठोर कार्यके लिए देवी कैकयी, भी दोषी नहीं है। विषयवस्तु परिष्कार रूपसे समझा देनेसे समझना सहज होगा। आपलोग सभी जानते हैं कि भगवान कब और क्यों आविर्भूत होते हैं। सर्वजन्यमान्य ग्रन्थ गीतामें स्पष्ट रूपमें ही कहा गया है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तथा परित्राणाय साधुनाम्— इसीलिए श्रीरामचन्द्रजी अवतार भी इसके व्यतिक्रम नहीं हो सकता है। भगवानके इस महान कार्यके लिए देवी कैकयी प्रधान सहायिका थी। कैकयीकी इस लीला-सहायताके बिना यह सम्भव नहीं होता। भगवानकी योगमायाके प्रभावसे यह कोई समझ न

सका। शैशव अवस्थामें श्रीरामचन्द्र कैकयी भवन नामक राजप्रासादमें ही अधिक समय अतिवाहित करते थे। कैकयीके मातृ-स्नेहसे वशीभूत होकर अन्यत्र खेलकूद नहीं करते—यह कहा जाता है।

एकदिन खेलते-खेलते माँ कैकयीकी गोदमें बैठकर अत्यन्त अधिकारके साथ बोले—माँ, मुझे एक दान देना होगा!

कैकयी देवी बोली—बेटा राम! मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकती हूँ। चिन्ता करनेकी कोई बात नहीं है।

बालक राम बोले—माँ, जब मुझे पिताश्री युवराज पदके लिए अभिषिक्त करनेकी व्यवस्था करेंगे, तब तुम मेरे लिए १४ वर्षका वनवास और भाई भरतके लिए राज्य प्रार्थना करना।

श्रीरामकी इस तरहकी हृदयविदारक कण्ठ-वाणी सुनकर कैकयी देवी आँसुभरे नेत्रोंसे क्रन्दन करने लगी।

बालक राम क्रन्दनरता कैकयीकी गोदमें बैठे ही बोल रहे हैं—माँ, तुम्हारे अतिरिक्त यह कार्य और किसीके लिए सम्भव नहीं है। तुमको ही यह हृदयविदारक असाध्य कार्य करना होगा।

श्रीरामकी प्रीतिके लिए कैकयी देवीको यह मर्मान्तक, हृदयविदारक होने पर भी स्वीकार करना पड़ा। उचित समय पर श्रीरामकी प्रीतिविधानके लिए कैकयी देवी महाराज दशरथके निकट वर प्रार्थना कर श्रीरामका कार्य समाप्त किया। भगवान्‌की योगमायाके प्रभावसे कोई भी इसको समझ नहीं पाया। यही कैकयी चरित्रका गूढ़ रहस्य है।

श्रीलमहाराजजीके साथ श्रीपाद माधव

महाराज, श्रीपुण्डरीक ब्रह्मचारी, श्रीब्रजनाथ दासाधिकारी आदि प्रचार कार्यमें सहायता कर रहे हैं। श्रीलमहाराजजीको प्रचार सेवामें सहायता करनेके लिए श्रीपाद भक्तिवेदान्त वन महाराज अप्रैल महीनेके प्रथमसे ही यूरोप महादेशके इंग्लैण्ड, होलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, स्पेन, इटली, ऑस्ट्रिया आदि स्थानोंमें विशेष सफलताके साथ प्रचार कर रहे हैं। श्रीपाद वन महाराजने इसके पहले भी यूरोप और ब्राजीलमें सफलताके साथ प्रचार किया है। श्रीपाद भक्तिवेदान्त अरण्य महाराज और श्रीभक्तिवेदान्त भक्तिसार महाराज कभी युक्तरूपसे तो कभी पृथक् रूपसे ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्डमें प्रचार कार्यमें व्यस्त हैं। श्रीपाद भक्तिवेदान्त आश्रम महाराज ब्राजील और अफ्रीका स्थित नाइजेरियामें प्रचार कार्य सफलताके साथ कर रहे हैं। श्रीपाद राधानाथ ब्रह्मचारी वर्तमान हांगकांगमें प्रचारमें व्यस्त हैं, फिर वे मेकिसकोमें प्रचार कार्य आरम्भ करेंगे। श्रीपाद कृष्णभजन ब्रजवासी फीलिपाइन्स द्वीपसमूहमें प्रचार सेवा कर अमेरिका प्रचारमें लगे हुए हैं। श्रीमती विशाखा देवी अपने दलके साथ अमेरिका एवं श्रीपाद भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज रसियामें प्रचार कार्यमें लगे हुए हैं। श्रीपाद भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज कुछ दिनोंके अन्दर ही न्यूजीलैण्ड, फौजी और आस्ट्रेलिया प्रचारके लिए रवाना होंगे। अधिकांश प्रचारकगण चतुर्मासके पूर्व ही भजनकी श्रेष्ठ भारतभूमिमें प्रत्यावर्तन करेंगे।

अब श्रोतागण प्रश्न कर सकते हैं कि श्रीपाद माधव महाराजने प्रधान शीर्षकके नीचे “प्राच्यमें २१ और पाश्चात्यमें २०” लिखा

है, इसका तात्पर्य क्या है? माधव महाराज क्या भोगवादके देश अमेरिका आदि स्थानोंमें जाकर स्वाभाविक हैं या अस्वाभाविक होकर इस तरह लिखा है! नहीं, नहीं, नहीं। श्रीगौड़ीय गुरुवर्ग, श्रीगौड़ीय परम्परा और वैष्णवगणकी अहैतुकी कृपासे माधव महाराज स्वाभाविक अवस्थामें हैं। पाठकगण अब इसका रहस्य पढ़िये। खगोलविदोंके मतानुसार पृथ्वीमें कुछ रेखाएँ हैं। जैसे Equator Line, Date Line. हमलोग आष्ट्रेलिया स्थित Sydney से २१/४/२००२ तारीखको रवाना होकर दस घण्टे विमान यात्रा कर Hawaii पहुँचे। सुबह ९-३० बजे यात्रा कर १० घण्टेके बाद यानी सन्ध्या ७-३० बजे पहुँचनेकी बात है। समयका अन्तर आष्ट्रेलियासे हावाई ४ घण्टेका। इसलिए २१/४/२००२ तारीखको रात्रि ७-३० + ४ = ११-३० बजे पहुँचनेकी बात है। किन्तु हमलोग २१/४/२००२ तारीखके बदले २०/४/२००२ तारीखको हावाईकी राजधानी पहुँचे। Date Line के लिए एक दिनका अन्तर जो लोग खगोलवित् हैं या भूगोलके सम्बन्धमें आलोचना करते हैं, वे सहज ही समझ जायेंगे। यही शीषकके निम्न अंशका रहस्य है। (क्रमशः)

—त्रिदण्डभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः

हरे
कृष्ण
हरे
कृष्ण
कृष्ण
कृष्ण
हरे
हरे

हरे
राम
हरे
राम
राम
राम
हरे
हरे



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ आषाढ़ मास, सन् २००२, २५ जून—२४ जुलाई

{ संख्या ४

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठक्कुरभक्तिविनोदकृत]

(वर्ष ४६, संख्या ३, पृष्ठ ५१ से आगे)

भक्त्यालापैर्निरवधि तदाद्वैतमुख्या महान्तः प्राप्ता यस्याश्रयमतिशयं कीर्तनाद्यमुरुरारेः।
नित्यानन्दोदयघटनया यो बभूवेशचेष्टः वन्दे गौरं नयनसुखदं दक्षिणं षड्भुजं तम् ॥१९॥
यः कोलरूपधृग्हाते रमणीयमूर्तिगृप्ते कृपाज्च महर्तीं सहसा चकार ।
तं व्यास पूजनविधौ बलदेवभावान् माधवीक्याचनपरं परमं स्मरामि ॥२०॥
अद्वैतचन्द्रविभुना सगणेन भक्त्या नित्यज्च कृष्णमनुना परिपूजितो यः।
श्रीवासमन्दिरनिधिं परिपूर्णतत्त्वं तं श्रीधरादिमहतां शरणं स्मरामि ॥२१॥

श्रीवासपाल्यं यवनं विशोध्य चक्रे सुभक्तं स्वगुणं प्रदशर्य।
 प्रेमा सुमत्तो विषयाद्विरक्तो यस्तं प्रभुं गौरविधुं स्मरामि ॥२२ ॥
 श्रीरामस्तुपृथग्हो भिषजो मुरारे: श्रुत्वा स्तवं र्घुपतेमुर्दमाप यो वै।
 चक्रे कुमङ्गरहितं कृपया मुकुन्दं तं शुद्धभक्तिरसदप्रवरं स्मरामि ॥२३ ॥
 आज्ञापयच्च भगवानवधूतदासौ दानाय गोकुलपतेनर्गरेषु नाम्नाम्।
 सर्वत्रजीवनिचयेषु परावरेषु यस्तं स्मरामि पुरुषं करुणावतारम् ॥२४ ॥
 योऽद्वैतसद्विविचलन् सह चाग्रजेन सन्यासधर्मरहितं धजिनं सुरापम्।
 तत्त्वं विशुद्धमवदललिताख्यपुर्या तं शुद्धभक्तिनिलयं शिवदं स्मरामि ॥२५ ॥
 अद्वैतवादशठताश्रितदेशिकस्य पृष्ठं व्यताडयदहो सहसा हरियः।
 प्रेमापि भक्तिपथगञ्च चकार तं तं मायाहरं सुविमलं सततं स्मरामि ॥२६ ॥

पद्मानुवाद—

[परलोकगत पं मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]

महापुरुष अद्वैत मुख श्रीहरि कीर्तन रङ्ग।
 विविध भक्ति रस आश्रय पायौ परसंग॥
 आये नित्यानन्द जब तब तें ईश्वर रूप।
 प्रकट कियें आश्चर्य इक षड् भुज रूप अनुप ॥१६॥
 करी मुरारीगुप्त पै कृपा क्रोड तनु धार।
 भक्तन हित किये प्रभु सकल भाव विस्तार॥
 व्यास पूर्णिमा के दिवस प्रभु बलराम प्रकाश।
 माध्विका याचन करी मूसल हल शित वास ॥२०॥
 मंदिर मधि श्रीवासके पूरन तत्त्व प्रकाश।
 विष्णुमंच राजे प्रभु कर ऐश्वर्य विलास॥
 निजगण सन अद्वैत प्रभु हिये अधिक सुख लाय।
 कृष्ण मंत्र तें पूजिये गौरचन्द्र युग पाय॥
 श्रीधर ब्राह्मण दरिद्रिके आश्रय गोरा राय।
 खोला बेचत में लियौ कर झगड़ौ अपनाय ॥२१॥
 शुद्ध कियो श्रीवास को यवनभृत्य प्रभु एक।
 निजगुण रूप दिखाय कें दीनो भक्ति विवेक ॥२२॥
 वैद्य मुरारी गुप्त तें राम स्तव सुन लीन।
 धनुष वाण लै रामतनु सुन्दर धरौ नवीन॥

वैद्य मुरारी गुप्त कौ किय कुसंग परिहार।
 भक्ति तत्त्व समझाय कें मायावाद विसार॥२३॥
 नित्यानन्द हरिदास कौ दई आज्ञा निरधार।
 कृष्णनामकौ नगरमें घर-घर करहु प्रचार॥
 अति कृपालु गौराङ्ग प्रभु कीने पतित पुनीत।
 सब जीवन हरिनाम दै यही दया की रीत॥२४॥
 भवन चले अद्वैत के अग्रज कौ संग लीन।
 मार्ग ललितपुर में लखौ सन्यासी अति हीन॥
 बनिता सेवी धर्म धुज मद्यप भ्रष्टाचार।
 प्रभु तत्त्व उपदेश दै तिहि कीयौ उद्धार॥२५॥
 करन लगे अद्वैतप्रभु मायावाद बखान।
 गौरचन्द्रके हाथ सौ चाहत दण्ड विधान॥
 प्रभु तिन मन कौ भाव लखि खैंच अङ्गन में लाय।
 अङ्गन कियौ प्रहार बहु देशिक रहे सिहाय॥
 “मोहि पुकार गोलोक तें पृथ्वी तलमें आन।
 भक्ति गौण कर बैठ घर छोँकत अद्वय ज्ञान॥
 सरस प्रणय को दण्ड धर श्रीअद्वैताचार्य।
 मायावाद छुटायके किये भक्ति पथ आर्य॥२६॥

(क्रमशः)

मायावादी कौन हैं?

—जगद्गुरु अंविष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

जो शुद्ध वैष्णव बननेकी इच्छा रखते हैं,
 उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि वे
 मायावादी न हो पड़ें। श्रीचैतन्य महाप्रभु कहते
 हैं—

प्रभु कहे—मायावादी कृष्ण अपराधी।
 ‘ब्रह्म’, ‘आत्मा’, ‘चैतन्य’ कहे निरवधि॥
 अतएव तार मुखे ना आङ्से कृष्णनाम।
 ‘कृष्णनाम’, कृष्णस्वरूप—दुइत ‘समान’॥
 ‘नाम’, ‘विग्रह’, ‘स्वरूप’—तिन एकरूप।
 तिने ‘भेद’ नाहि, तिन ‘चिदानन्द-रूप’॥

देह—देहीर, नाम—नामीर कृष्ण नाहि ‘भेद’।
 जीवर धर्म—नाम—देह—स्वरूपे ‘विभेद’॥
 अतएव कृष्णेर ‘नाम’, ‘देह’, ‘विलास’।
 प्राकृतेन्द्रिय—ग्राहा नहे, हय स्वप्रकाश॥
 ‘कृष्णनाम’, ‘कृष्णगुण’, ‘कृष्णलीला’ वृन्द।
 कृष्णेर स्वरूप—सम, सब—चिदानन्द॥
 अतएव कृष्णनाम ना आङ्से तार मुखे।
 मायावादी—गण, जाते महा—बहिर्मुखे॥

(चै. च. म. १३ वाँ परिच्छेद
 १२६—१३५, १४३)

मायावादी स्वरूपतः कृष्णके चरणोंमें अपराधी हैं। उनके मतानुसार कृष्णमूर्ति, कृष्णनाम और कृष्णलीला सभी जड़मय हैं या मायिक हैं। 'मायिक' शब्दका अर्थ है-'मायामिश्रित'। मायावादियोंके मतानुसार शुद्धतत्त्व निराकार और निर्विशेष है। आवश्यकता होने पर वही शुद्धतत्त्व मायाको आश्रय करके राम-कृष्णादि जड़ीय शरीरोंको धारण करता है। शुद्धतत्त्वको ब्रह्म, परमात्मा या चैतन्य भी कहते हैं। राम और कृष्णादि मूर्तियाँ जड़ीय हैं। राम-कृष्णादि नाम भी जड़-शब्दोंके ही अन्तर्गत हैं। राम-कृष्ण आदिके विलास भी जड़ाश्रित हैं। उनके मतानुसार जीव और राम-कृष्णादिमें भेद यह है कि जीव कर्मके लिए बाध्य है। परन्तु चैतन्य अपनी इच्छानुसार जड़ शरीर धारण कर जगतमें कार्य करते हैं और पुनः उसे त्याग भी करते हैं। अतएव राम-कृष्णादिके नाम, स्वरूप और लीला—सब कुछ मायिक हैं। साधक जब तक ज्ञान प्राप्त नहीं करते, तब तक राम-कृष्णादिकी उपासना करेंगे। ज्ञान प्राप्त होने पर ब्रह्म, परमात्मा और चैतन्य—केवल इन्होंका जप करेंगे। उस अवस्थामें राम-कृष्णरूप जड़ीय नाम और जड़ीय ध्यानकी आवश्यकता नहीं होती।

इससे यह स्पष्ट है कि मायावादी राम-कृष्णादि भगवत्-स्वरूपोंको शुद्धतत्त्व न मानकर उनकी अपेक्षा हेय समझते हैं। इसीलिए मायावादी कृष्ण-अपराधी हैं। मायावादियोंके मुखसे जो कृष्णनामका उच्चारण होता है, वह कृष्णनाम नहीं है। वह तो कृष्णनामका प्रतिबिम्ब आभासमात्र है। अतएव उसका उच्चारण करके भी मायावादी नामापराधी

वास्तवमें कृष्णनाम क्या है—इसे कहा जा रहा है। कृष्णनाम, कृष्णस्वरूप और कृष्णविग्रह—तीनों एक ही तत्त्व हैं अर्थात् ये तीनों ही सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। ये तीनों ही जड़ातीत, मायातीत और शुद्धतत्त्व हैं। कृष्ण विग्रहकी कान्ति ही विस्तृत होकर ब्रह्मके रूपमें प्रतिभात होती है। मायावादी इस कृष्णकी अङ्गकान्ति रूप ब्रह्मकी ही खोज करते हैं। कृष्णनामका निर्विशेष नामान्तर ही ब्रह्म, आत्मा या चैतन्य है, अर्थात् कृष्णकी अङ्गकान्तिका नाम ही ब्रह्म, आत्मा या चैतन्य है। श्रीकृष्णस्वरूपका एक अंश ही परमात्मा है। मायावादियोंका यह दोष है कि वे यह नहीं जानते कि शुद्धतत्त्व और कृष्णतत्त्व अभिन्न हैं। बद्धजीवके नाम, देह और जीवरूप देही पृथक्-पृथक् हैं। बद्धजीवका नाम और कृष्णादासरूप सिद्ध नाम दोनों भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि बद्धजीवोंमें एक सिद्धतत्त्व और दूसरा मायिक तत्त्व मिश्रित है। कृष्ण-स्वरूपमें ऐसा नहीं है। कृष्णमें ऐसे मिश्रण रहनेकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। श्रीकृष्णने चित्तशक्तिके द्वारा अपने अतीन्द्रिय नाम, रूप और विग्रहको जीवोंके लिए इन्द्रियग्राह्य बनाया है। उन्हें कर्मवश जीवकी भाँति मायाशक्ति अर्थात् जड़मायाका आश्रय लेनेकी आवश्यकता नहीं होती। वे अपनी योगमायाके द्वारा लोककल्याणकारी विविध प्रकारकी लीलाएँ किया करते हैं। उनकी सभी लीलाएँ उनकी इच्छानुसार योगमायाके द्वारा जड़ जगतमें प्रकटित हैं। यह केवल कृष्णकी अविचिन्त्य शक्तिका ही परिचय है। तत्त्वज्ञानरहित निर्बोध

जीव कृष्णाको अपने ही समान दुर्बल समझकर उनमें जड़शक्तिकी क्रियाका आरोप करते हैं। ऐसे जीव शक्तितत्त्वके विषयमें बिलकुल अनभिज्ञ होनेके कारण ऐसा सोचते हैं कि मायाशक्तिकी सहायताके बिना भगवान् जगतमें प्रकट नहीं हो सकते। ऐसे सिद्धान्तको माननेके कारण ही वे मायावादी कहलाते हैं।

वस्तुतः कृष्णनाम, कृष्णदेह और कृष्णविलास नित्य स्वप्रकाश तत्त्व हैं। ये किसी जड़ीय सूर्य, चन्द्र, तारे या अन्य प्रकाशके द्वारा प्रकाशित नहीं हैं, अथवा जड़ेन्द्रिय चक्षु-कर्णादिके द्वारा उन्हें जाना नहीं जा सकता। मनुष्योंकी जड़ इन्द्रियोंके द्वारा भगवान् कृष्णका रूप नहीं देखा जा सकता। उनकी प्राकृत (जड़) जिह्वा भी कृष्णनामका उच्चारण करनेमें असमर्थ है। वे जो देखते या उच्चारण करते हैं, वे सभी जड़तत्त्व ही हैं। परन्तु भक्ति एक इन्द्रियातीत व्यापार है। जीवके चिन्मय स्वरूपमें भक्तिका अधिष्ठान है। जब भक्ति बलवती होकर जीवके चक्षु, कर्ण, नासिका और जिह्वाको अपनी शक्तिके द्वारा विभावित करती है, तब उन-उन इन्द्रियोंमें चित्-शक्ति आविर्भूत होकर चिन्मय इन्द्रियोंको प्रकाशित करती है। तब जिस कृष्णविग्रहका दर्शन होता है तथा जिस कृष्णनामका उच्चारण होता है, वही विग्रह कृष्णका वास्तविक रूप है और वही नाम वास्तविक कृष्णनाम है। मायावादी शुद्धभक्तिरहित होते हैं। वे प्राकृत ज्ञानके सहारे ब्रह्म आदि तत्त्वोंका व्यतिरेकरूपसे अनुशीलन करते हैं। इसलिए अन्वय अनुशीलनद्वारा पायी जानेवाली भक्तिकी कोई भी क्रिया उनमें संभव नहीं है। अतएव

मायावादी कृष्णबहिर्मुख और कृष्णापराधी हैं।

इससे यही समझना चाहिए कि मायावादी लोग साधनकालमें जो श्रीकृष्ण नामादिका श्रवण-कीर्तनादि करते हैं, वह केवल अपराध ही है। उनके कृष्ण कीर्तनमें शुद्धभक्तोंको अनुमोदन नहीं करना चाहिए। क्योंकि मायावादियोंके संसर्गसे नामापराध होनेकी संभावना रहती है। यद्यपि मायावादी लोग कीर्तनमें अश्रु-पुलक तथा और भी दूसरे सात्त्विक भावोंका प्रकाश करते हैं, तथापि वे भावसमूह शुद्ध सात्त्विक भाव नहीं हैं। बल्कि सात्त्विक भावाभास या प्रतिबिम्ब-लक्षणयुक्त अपराध-विशेष ही होते हैं। इसका उदाहरण श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुमें दिया गया है—

वाराणसीनिवासीं कश्चिददयं व्याहरन् हरेश्चरितम्।
यतिगोष्यामुत्पुलकः सिञ्चति गंडद्वयीमस्त्रैः ॥

(भ. र. सि. २/२/४६)

वाराणसीमें निवास करनेवाले संन्यासीगण प्रसिद्ध मायावादी हैं। केवल वे ही मायावादी हैं, ऐसी बात नहीं। उनके मतोंको माननेवाले सारे पञ्चोपासक गृहस्थ भी मायावादी ही हैं। जिन्होंने मायावाद-मतको स्वीकार किया है, वे तो मायावादी हैं ही; साथ ही वैष्णवमंत्रमें दीक्षित होकर भी मायावादके सिद्धान्तोंको ग्रहण करनेवालोंको भी मायावादी ही कहा जाएगा। यहाँ तक कि अपनेको श्रीचैतन्य-महाप्रभुके अन्तरङ्ग कहलानेवाले व्यक्तियोंमें भी कई मायावादी हैं। बाउल, दरवेश आदि भी मायावादी ही हैं।

नामाभास दोषयुक्त अधिकांश व्यक्ति मायावादी कहलाने योग्य हैं। उनमेंसे जो मायावादी हैं, वे अपराधी हैं। जो लोग किसी भी 'वाद' से

सम्बन्धित नहीं हैं, तथा शास्त्रीय शब्दा प्राप्त न होने पर भी विष्णुमंत्रमें दीक्षित हुए हैं, वे छाया-नामाभासी हैं। छाया नामाभासी ही कनिष्ठ वैष्णव कहलाते हैं। जब तक वे निर्मल भगवद्भावको प्राप्त नहीं करते, तब तक वे 'शुद्धवैष्णव' नहीं कहे जा सकते। मध्यम और उत्तम अधिकारी ही शुद्धवैष्णव हैं। कनिष्ठ अधिकारी छाया-नामाभासी हैं। वे भी साधुसङ्गके प्रभावसे शीघ्र ही मध्यम अधिकारको प्राप्त कर लेते हैं। मायावादी प्रतिबिम्ब-नामाभासी होते हैं। अतएव वे भगवानके चरणोंमें अपराधी हैं। ऐसे व्यक्तियोंके लिए शुद्ध वैष्णव बनना बड़ा ही दुष्कर है। वे लोग सात्त्विक भावाभासको जितना भी क्यों न प्रकाश करें, उन्हें कदापि वैष्णव नहीं कहा जा सकता।

मायातीत चिच्छक्तिसम्पन्न भगवत्स्वरूप-विग्रह और नामको एक अखण्ड तत्त्व जानकर ऐसे

तत्त्वमें विश्वासयुक्त वैष्णवोंको भ्रातृवत् स्नेह करते हुए जो वैष्णव-धर्ममें श्रद्धा रखते हैं, उनकी श्रद्धाको ही शास्त्रीय श्रद्धा कहते हैं। जिनकी ऐसी श्रद्धा नहीं हुई है, वे मायावाद-दूषित न होने पर भी शुद्ध-वैष्णव नहीं कहे जा सकते। मायावादमतके माननेवाले सभी अवैष्णव हैं। मायावादियोंके अष्ट-सात्त्विक विकारादि भी व्यर्थ ही हैं। कृष्णनाम करते-करते शुद्धवैष्णवोंकी आँखोंमें थोड़ेसे आँसु ही क्यों न भर आवें, तो वही बांछनीय है।

आजकल इस विषयमें बहुत ही धाँधलीबाजी चल रही है। इसलिए इस विषयको यहाँ पर स्पष्टरूपसे समझानेकी चेष्टा की गई है। वैष्णवोंके लिए पर-चर्चा अनुचित है, अतएव यहाँ पर-चर्चा नहीं की गई है। शुद्धवैष्णवोंको अपने स्थानमें दृढ़ रखनेके उद्देश्यसे ही इस विषयकी विस्तृत आलोचना की गई है।

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. १—भजनके रहस्यको कौन जान सकता है?

उ.—जो श्रीस्वरूप-रूपानुगवर (श्रीस्वरूप-दामोदर एवं श्रीरूप गोस्वामीके अनुगत) श्रीगुरुदेवकी विश्रम्भ भावसे सेवा करता है, केवल वही भजनके गम्भीर रहस्योंको जान सकता है। 'विश्रम्भ' का अर्थ है—सुदृढ़ विश्वास तथा प्रीति अर्थात् श्रीगुरुदेवके प्रति सुदृढ़ विश्वास (मेरे गुरुदेव कोई साधारण मरणशील तथा कर्मफलभोगी मनुष्य नहीं हैं) होना चाहिए तथा इस विश्वासके साथ प्रीतिपूर्वक उनकी सेवा करनी चाहिए। श्रुतिमें वर्णन है—

यस्य देवे पराभक्तिर्था देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

अर्थात् यदि किसीकी भगवान्में जिस प्रकार दृढ़ भक्ति है, ठीक वैसे ही यदि श्रीगुरुदेवके प्रति भी हो, तो उसी महात्माके हृदयमें शास्त्रोंका वास्तविक अर्थ प्रकाशित होता है।

प्र. २—हम कैसे बल पा सकते हैं?

उ.—आदर एवं प्रीतिपूर्वक श्रीगुरुदेवकी सेवाके द्वारा एवं नामकी सेवाके द्वारा हृदयमें प्रचुर मात्रामें भक्तिबल प्राप्त होता है।

प्र. ३—कर्तव्यबुद्धिसे जो कुछ किया जाय, क्या वह भक्ति है?

उ.—कर्तव्यबुद्धि एवं कृतज्ञता आदि ये मनकी वृत्तियाँ हैं, आत्माकी नहीं। कर्तव्यबुद्धिके द्वारा जो भी क्रियाएँ होती हैं, उनका सम्बन्ध मन, बुद्धि तथा अहङ्कारसे होता है। परन्तु भक्तिकी क्रियाओंका सम्बन्ध आत्मासे होता है। अर्थात् कर्तव्यबुद्धिसे किए गए कार्य हमें मानसिक सन्तुष्टि ही प्रदान कर सकते हैं, परन्तु भक्तिकी क्रियाओं (नवविधा भक्ति) का पालन करनेसे आत्मा प्रसन्न होती है। प्रीतिपूर्वक जो कुछ किया जाय, वही शुद्ध भक्ति है, यह शुद्धभक्ति ही आत्माकी वृत्ति अथवा धर्म (स्वभाव) है। परन्तु कर्तव्यबुद्धि मनकी वृत्ति अर्थात् स्वभाव है। कर्तव्यबुद्धिके द्वारा जो कुछ करते हैं, उसमें प्रीति नहीं होती है। इसलिए एकमात्र आत्मधर्म (भक्ति) ही कल्याणका मार्ग है।

प्र. ४—अन्याभिलाष क्या है?

उ.—मैं जब तक इस संसारमें रहूँगा, तब तक विषयोंको भोगता रहूँगा अर्थात् अपनी इन्द्रियोंको ही सन्तुष्ट करता रहूँगा, भगवान्‌की सेवाकी कामनाके अतिरिक्त ऐसी कामनाओंको ही अन्याभिलाष कहते हैं।

प्र. ५—कर्त्ताभिमान कैसे दूर हो सकता है?

उ.—हमें एक घासके तिनकेसे भी अधिक दीन-हीन बनना होगा अर्थात् मैं भगवान्‌का सेवक हूँ इसे अनुभव करना होगा। तभी कर्त्ताभिमान अर्थात् शरीरके प्रति आत्मबुद्धि दूर होगी तथा मैं करनेवाला हूँ—यह मिथ्या अभिमान भी दूर हो जाएगा। तब हम आनन्दपूर्वक हरिनाम कर सकते हैं।

प्र. ६—जीवका कल्याण कब होता है?

उ.—जीव जब सद्गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करता है, तभी वह वास्तव सत्य वस्तु भगवान्‌को जान सकता है। अतः गुरुका सेवक बनकर भगवान्‌की सेवा करने पर ही जीवका कल्याण हो सकता है।

प्र. ७—कृष्ण किसकी प्रार्थना सुनते हैं?

उ.—जो व्यक्ति आन्तरिक श्रद्धासे प्रार्थना करता है—“हे कृष्ण! मैं आपसे अपने सुखके लिए कुछ भी नहीं चाहता। आपकी जैसी इच्छा है, वह मुझे स्वीकार है। यदि उसमें मुझे कष्ट भी होता है, तो वह कष्ट भी मेरे लिए परम सुखदायक ही है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि आप मङ्गलमय हैं। सर्वदा ही आप सभीका कल्याण करनेमें लगे रहते हैं। अतः मेरे लिए आप जो भी व्यवस्था करेंगे, वह मेरे लिए अमङ्गलजनक तो हो ही नहीं सकता। किसी न किसी रूपमें उसीमें मेरा कल्याण छिपा होगा।” कृष्ण केवल अपने ऐसे सेवककी प्रार्थना ही सुनते हैं, अन्य किसीकी नहीं।

प्र. ८—वास्तविक शिष्य कौन है?

उ.—भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने मेरे कल्याणका भार जिनके हाथोंमें सौंप रखा है, यदि मैं उन श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें पूर्णरूपसे शरणागत हो सकूँ, तभी मैं वास्तविक शिष्य कहलाने योग्य होऊँगा। गुरुदेव मेरे कल्याणके लिए जो भी व्यवस्था अथवा आदेश करते हैं, उसे आदरपूर्वक सिर झुकाकर स्वीकार करना ही मेरा कर्तव्य है, यही वास्तविक शिष्यका विचार होता है। जो भोगी बनकर अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा सांसारिक विषयोंको भोगनेमें ही अपने जीवनको नष्ट नहीं करता,

बल्कि समस्त इन्द्रियोंके द्वारा निरन्तर गुरुके आनुगत्यमें भगवान्‌की सेवा करता रहता है, वही वास्तविक शिष्य है। संसारकी सभी वस्तुएँ गुरुकी सेवाके उपकरण हैं अर्थात् गुरुके आनुगत्यमें सभी वस्तुओंसे भगवान्‌की सेवा करनी चाहिए। गुरु अथवा भगवान्‌की सेवाकी वस्तुओंके प्रति भोगबुद्धि करना बहुत ही अमङ्गलजनक है। असली शिष्य प्रतिक्षण इसका अनुभवकर गुरु एवं कृष्णकी सेवाको ही अपना जीवन बना लेता है। वह अन्दर-बाहर सर्वत्र ही गुरु दर्शन करता है। अर्थात् यद्यपि शिष्य स्वयंको लघु अर्थात् दास मानता है, परन्तु उसका दर्शन लघु (भगवान्‌की सेवाकी वस्तुओंके प्रति भोग दृष्टि) नहीं होता है। ऐसा शिष्य सदा-सर्वदा अनुभव करता है कि इस संसारमें श्रीगुरुदेवके सिवा मेरा और कोई नहीं है। उसका एक ही अभिमान होता है कि मैं गुरुदास हूँ तथा उसकी गुरुके प्रति ईश्वर-बुद्धि होती है। वह भलीभाँति जानता है कि गुरुदेव कृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं तथा उनके अभिन्न प्रकाश विग्रह भी हैं। श्रीगुरुदेव युगपत् भक्तिविग्रह तथा भगवत्-विग्रह हैं।

अतः गुरुदास हुए बिना भगवान्‌का दास नहीं हुआ जा सकता। जो गुरुदास बनकर गुरुकी सेवा करते हैं, वे ही असली वैष्णव अथवा असली शिष्य हैं। इनके अतिरिक्त सभी लोग अहङ्कारी एवं विमूढ़ात्मा (मूर्ख) हैं, क्योंकि वे सेवक नहीं बल्कि भोगी बनना चाहते हैं।

प्र. ९—एक ही जन्ममें सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है?

उ.—यदि शिष्य अपनी स्वतन्त्रताको पूर्णरूपसे त्यागकर गुरुकी शरणमें चला जाता है तथा उनके आनुगत्यमें अर्थात् उनके आदेश-निर्देशोंको ठीक ढंगसे पालन करते हुए निष्कपटरूपसे (मुक्ति एवं भुक्तिकी इच्छासे रहित होकर) भगवान्‌का भजन करे, तो उसे एक ही जन्ममें अवश्य ही सिद्धि (प्रेमभक्ति) प्राप्त हो सकती है।

प्र. १०—भगवान्‌को जाननेका उपाय क्या है?

उ.—श्रीगुरुदेवके श्रीमुखसे भगवान्‌की कथाओंको श्रद्धापूर्वक सुनना होगा। गुरुदेवके श्रीचरणकमलोंमें शरणागत हुए बिना भगवान्‌को जाननेका कोई दूसरा उपाय नहीं है। अतः जो श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहण करते हैं, केवल वे ही भगवान्‌को जान सकते हैं।

प्र. ११—सबसे भयङ्कर नामापराध कौन-सा है?

उ.—जो गुरुदेव हमें भगवान्‌के श्रीचरण-कमलोंमें पहुँचानेवाले हैं, उन्हें अपने जैसा ही एक साधारण मनुष्य मान लेना सबसे भयङ्कर नामापराध है। श्रीगुरुदेवको एक मरणशील मनुष्य माननेसे करोड़ों जन्मोंतक भजन करने पर भी हमारा कल्याण नहीं हो सकता। बल्कि हृदयमें अनेक प्रकारकी सांसारिक कामनाएँ उत्पन्न होकर हमें संसार सागरमें डूबो देंगी। श्रीगुरुदेवके अतिरिक्त और कोई नहीं है जो हमें दुसङ्गसे बचा सके। श्रीगुरुदेवके प्रति मनुष्यबुद्धि होनेके कारण ही हम उनके श्रीचरणोंमें आत्मनिवेदन अर्थात् अपनेको समर्पित नहीं कर पा रहे हैं।

(क्रमशः)

तिलक-धारण कैसे करें?

पवित्र आसनपर बैठकर पञ्चपात्रमें गङ्गाजल लेकर उसमें तुलसीपत्र देंगे। यह जल थोड़ा-सा बायें हाथकी हथेली पर लेकर उसमें तुलसी-मृत्तिका घिसेंगे। गङ्गाजलके न रहने पर साधारण शुद्ध जलको पञ्चपात्रमें भरकर उसमें तुलसीपत्र देकर जल-स्पर्श करते हुए गङ्गा आदिका स्मरण करते-करते निम्नलिखित मन्त्रद्वारा तीर्थोंका आवाहन करेंगे—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नमदे सिन्धो कावेरि जलेऽस्मिन् सत्रिधिं कुरु॥

उस जलमें गोपीचन्दन घिसकर एवं उससे केशवादि द्वादश मन्त्रोंसे ललाट आदि द्वादश अङ्गोंमें ऊद्धर्वपुण्ड्र या हरि-मन्दिरकी रचना करेंगे। ऊद्धर्वपुण्ड्रके बीचमें कुछ खाली स्थान होना चाहिए। भौंहोंके मूलसे नीचेकी ओर नासिकाके तीन भागको नासामूल कहते हैं। नासामूलसे आरम्भ करके ललाटके ऊपर केश तक ऊद्धर्वपुण्ड्रकी रचना करेंगे। तिलक-रचनाकालमें द्वादश नाम स्मरण-मन्त्र इस प्रकार है—

ललाटे केशवं ध्यायेन्नारायणमथोदरे।

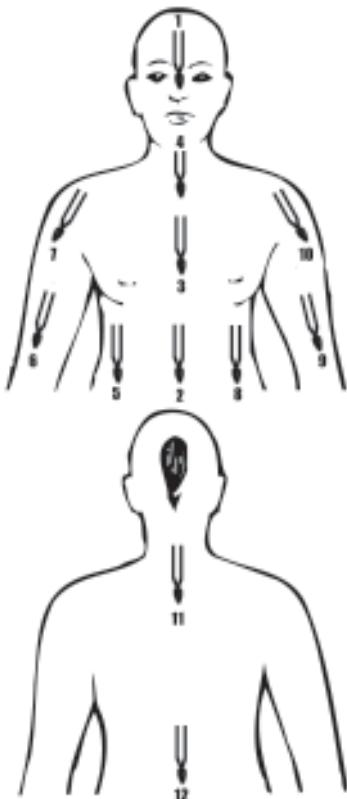
वक्षःस्थले माधवं तु गोविन्दं कण्ठकूपके॥
विष्णुञ्च दक्षिणे कुक्षौ बाहौ च मधुसूदनम्।
त्रिविक्रमं कन्धरे तु वामनं वामपाश्वके॥
श्रीधरं वामबाहौ तु हषीकेशञ्च कन्धरे।
पृष्ठे तु पद्मनाभञ्च कट्टां दामोदरं न्यसेत्॥
तत् प्रक्षालनतोयन्तु वासुदेवाय मूर्ढनी॥

उक्त श्लोकके अनुसार प्रत्येक अङ्ग चित्रके अनुसार स्पर्श करते हुए निम्नलिखित मन्त्रोंका उच्चारण करेंगे—

- (1) ललाटमें—ॐ केशवाय नमः।
- (2) उदर (पेट) में—ॐ नारायणाय नमः।
- (3) वक्षःस्थलमें—ॐ माधवाय नमः।

- (4) कण्ठमें—ॐ गोविन्दाय नमः।
- (5) दक्षिण पाश्वमें—ॐ विष्णवे नमः।
- (6) दक्षिण भुजामें—ॐ मधुसूदनाय नमः।
- (7) दक्षिण स्कन्धमें—ॐ त्रिविक्रमाय नमः।
- (8) वाम (बाँई) पाश्वमें—ॐ वामनाय नमः।
- (9) बार्यी भुजामें—ॐ श्रीधराय नमः।
- (10) बाँई स्कन्धमें—ॐ हषीकेशाय नमः।
- (11) पीठमें—ॐ पद्मनाभाय नमः।
- (12) कटि (कमर) में—ॐ दामोदराय नमः।

अन्तमें हाथ धोकर गोपीचन्दन मिश्रित जल ‘ॐ वासुदेवाय नमः’ मन्त्र उच्चारण करते हुए मस्तकके ऊपर धारण करें।



भगवान् जगन्नाथकी रथयात्रा और नाम भजन

(वर्ष ४६, संख्या ३, पृष्ठ ५९ से आगे)
—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमोद पुरी गोस्वामी महाराज

श्रील कृष्णदास कविराजने कितनी अद्भुत भाषाका प्रयोग किया है। क्योंकि उनके भाव साक्षात् अनुभवसे उदित हुए हैं। हम नहीं जानते कि ये भाव कैसे अनुभव किए जाएँ। हमें तो मात्र एक झलक दीखती है। केवल हरिनाम माला हाथमें लेना ही कृष्ण-भजन नहीं है। यह सत्य है, मैं हरिनाम माला हाथमें लिये हूँ परन्तु मेरे विचार कहाँ हैं? मेरा भजन कहाँ है? भजनका रहस्य क्या है? श्रील भक्तिविनोद ठाकुरने अपने ग्रन्थ भजन रहस्यमें अनेक भजन लिखे हैं। परन्तु हमने इस दुविधामें अभी प्रवेश नहीं किया।

तब कैसे वास्तविक आध्यात्मिक अनुभूति सम्भव है? यह हरिनाम जपके फलस्वरूप सम्भव है। हरिनाम करते-करते वह समय आएगा जब आँखोंसे अश्रु बहेंगे। आज मुझे कुछ अनुभव हुआ है, परन्तु वह भी केवल क्षणभरके लिए। कितना अच्छा होता यदि यह भावना और अनुभव सर्वकालके लिए कृष्णकी सेवाके लिए होती। परन्तु ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि हमारा हृदय थोड़ा-सा पिघलने लगे, हमारी आँखे भी थोड़ी-सी भीगने लगें और हम अपनेको बहुत बड़ा भजनानन्दी समझने लगें जिसके फलस्वरूप हम दूसरोंको नीचा दिखानेकी भावना रखने लगें और यह सोचने लगें कि मेरे सिवाय कोई भी वास्तविक रूपमें भजन अथवा हरिनाम नहीं करता। जब ऐसे विचार हमारे मनमें आने लगें तो हमें अपने आपको शासन करना चाहिए क्योंकि यह भजन नहीं है।

प्रिय बन्धुओ! हरिनामके बिना कृष्ण-भजन

सम्भव नहीं है। महाप्रभुजीने स्वयं हरिनामका कितना गुणगान किया है। परन्तु इसके लिए हमें गुरुजीकी कृपा भी चाहिए।

नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेन वा।

तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा॥

(श्रीमद्भा. १०/८०/३४)

प्रिय मित्र! मैं सबका आत्मा हूँ, सबके हृदयमें अन्तर्यामीरूपसे विराजमान हूँ। मैं गृहस्थके धर्म, उपनयन-वेदाध्यनन आदिसे, वानप्रस्थके धर्म तपस्यासे और सब ओरसे उपरत हो जाना—इस संन्यासीके धर्मसे भी उतना सन्तुष्ट नहीं होता, जितना गुरुदेवकी सेवा-शुश्रूषासे सन्तुष्ट होता हूँ।

यह श्लोक चार आश्रमोंको सम्बोधन करता है। यदि मैं अपने आश्रमका पूर्णरूपसे पालन करता हूँ तो भी भगवान्को सम्पूर्णरूपसे आनन्दित नहीं कर सकता। आप पूछ सकते हैं, “तो कैसे कृष्णको सन्तुष्ट कर सकते हैं?” वे कहते हैं—तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा। “मैं अत्यन्त सन्तुष्ट व आनन्दित तब होता हूँ जब किसीको परिपूर्णरूपसे गुरुकी सेवा करते देखता हूँ; न कि उसको जो अपने आश्रमका भलीभाँति पालन करता है।”

कृष्ण स्वयं अपने उदाहरणसे शिक्षा दे रहे हैं कि गुरुसेवा कैसे की जाती है। उन्होंने और उनके मित्रने सारी रात लकड़ीकी गठरीको अपने मस्तक पर रखा था। आश्चर्य! हम इसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। स्वयं भगवान् कृष्णचन्द्र अपने मित्र सुदामासे कह रहे हैं, “सुदामा क्या तुम्हें स्मरण है? एक दिन गुरुमाँ (गुरु पत्नी) ने हमसे कहा, ‘बालको! आश्रममें

लकड़ी नहीं है। मैं कैसे रन्धन करूँगी?’ तब मैंने कहा था कि आप चिन्ता मत कीजिए, हम तुरन्त जाकर लकड़ीकी व्यवस्था करते हैं। तब हमलोग घने जङ्गलमें गए और ढेर सारी लकड़ियाँ इकट्ठीकर एक दूसरेके सिरपर रखने लगे। अचानक, कहींसे घोर काले मेघ आ गए और जोरसे वर्षा होने लगी। देखते-देखते सम्पूर्ण बनमें बाढ़ आ गई। हम दोनों एक दूसरेको सावधान कर रहे थे कि लकड़ियोंको नीचे मत रखना, नहीं तो वे भीग जाएँगी और रन्धन नहीं हो पाएगा। हम दोनों उन गठरियोंको अपने सिर पर रख सारी रात भीगते रहे और वर्षा होती रही।”

हम भी शिष्य हैं और हमें भी ऐसा आचरण करना चाहिए। तो क्या इसलिए हम सद्गुरुके पास आए हैं कि हम लोग लकड़ियोंको अपने सिरपर लादें? परन्तु यह तो कृष्ण साक्षात् रूपमें गुरुसेवा करके दिखा रहे हैं, न कि लोगोंको प्रभावित करनेके लिए ऐसा आचरण कर रहे हैं। आज दोनों मित्र सारी रात अपने सिर पर भारी लकड़ीकी गठरीको लादकर खड़े हैं और तेज मूसलाधार वर्षामें भीग रहे हैं। क्या यह कोई साधारण बात है?

इधर आश्रममें गुरु सांदीपनि मुनि और उनकी पत्नी सारी रात एक पलके लिए भी विश्राम न कर पाये। उनकी पत्नी सोच रही हैं, “हाय! मैंने इन बालकोंको लकड़ी लाने भेजा है। इतनी देर हो गई है, वे दोनों बहुत कष्टमें होंगे।” मध्य रात्रिमें सांदीपनि मुनि उन बालकोंको ढूँढनेके लिए निकले। वे उच्चस्वरमें उन्हें पुकार रहे हैं—“कृष्ण कहाँ हो? सुदामा कहाँ हो? हे गोपाल, तुम कहाँ हो?” तब उन्होंने अपने सामने यह अद्भुत दृश्य देखा, कृष्ण और सुदामा मस्तक पर गढ़र उठाये भीगे वस्त्रोंमें उनके सामने खड़े हैं। यह दृश्य देखकर गुरुजीका हृदय द्रवीभूत हो गया। उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने

लगी और उनके वक्षःस्थलको भी भिगोने लगी। सांदीपनि मुनिने उन शिष्योंकी प्रशंसा करते हुए कहा, “मैं और क्या कहूँ, तुमने गुरुसेवाका एक आदर्श दिखाया है, इसलिए मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि मैंने जो भी तुम्हें सिखाया है, वह तुम कभी भी नहीं भूलोगे। न इस जन्ममें और न किसी दूसरे जन्ममें।”

इसलिए इस प्रकारका भाव स्थिर रहना चाहिए। वह भाव स्थायी होना चाहिए, परन्तु यह भाव स्थिर कब रह सकता है? जब हम निरपराध होकर हरिनाम करेंगे।

नाम बिना कलि-काले नाहि आर धर्म।

सर्व-मन्त्र-सार नाम—एइ शास्त्र-मर्म॥

(चै. च. आ. ७/७४)

“कलियुगमें हरिनामको छोड़कर और कोई धर्म नहीं है। हरिनाम ही सभी मन्त्रोंका सार है, ऐसा शास्त्र कहते हैं।”

आपको अधिक मन्त्रोंको स्मरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु कुछ विषयोंको सावधानीसे समझनेकी आवश्यकता है। आप उन मन्त्रोंका भलीभाँति उच्चारण करें और अपराधोंसे दूर रहें। किन्तु वह केवल हाथमें माला लेनेसे नहीं होगा। बहुतसे व्यक्ति हाथमें माला तो लेते हैं, परन्तु साथ-साथ ही व्यर्थकी बातें करते हैं। हमारा उद्देश्य है—अविक्षेपन सतत्यं—“बाधारहित जप करना।” इसलिए जब लोग मुझसे पूछते हैं, “क्या हम कभी भी कृष्णकी लीलाका स्मरण नहीं कर सकते? क्या हमें सदाके लिए इस अमृतसे बञ्चित होना पड़ेगा?” उत्तरमें मैं कहता हूँ “हाँ, क्यों नहीं, तुम सब लीला स्मरण करो और दूसरोंको भी इसका उपदेश दो, परन्तु ऐसा करनेसे पहले तुम्हें इसकी कीमत देनी पड़ेगी और इसकी कीमत केवल हरिनाममें निष्ठा है। यदि तुम्हारी हरिनाममें पूर्ण निष्ठा है तो तुम स्मरण कर सकते हो। भक्तिरसामृतसिन्धु

(१/४/१५—१७) में ऐसा लिखा है—आदौ श्रद्धा ततः साधु-संग, साधु-संगके स्तर पर हम गुरुपदाश्रय करते हैं। तब भजन-क्रिया आरम्भ होती है।

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग जे करय॥
साधुसङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन'।
साधनभक्त्ये हय 'सर्वानर्थनिर्वत्तन'॥
अनर्थनिवृत्ति हैले भक्त्ये 'निष्ठा' हय।
निष्ठा हैते श्रवणादे 'रुचि' उपजय॥
रुचि हैते भक्त्ये हय 'आसक्ति' प्रचुरा।
आसक्ति हैते चित्ते जन्मे कृष्ण प्रीत्यङ्कर॥
सेइ 'भाव' गाढ़ हैले धरे 'प्रेम'-नाम।
सेइ प्रेमा—'प्रयोजन' सर्वानन्द-धाम॥

(चै. च. म. २३/९/१३)

"किसी भाग्यसे यदि किसी जीवकी 'कृष्ण' में श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है तो उसीके फलस्वरूप वह साधुसङ्ग व गुरुपदाश्रय करता है। साधुसङ्ग होनेसे श्रवण और कीर्तन द्वारा स्थूल-स्थूल अनर्थ निवृत्त होनेसे श्रद्धा ही अनन्यभक्तिके प्रति 'निष्ठा' रूपमें उदित होती है। निष्ठा ही क्रमसे 'रुचि' हो जाती है। उसी रुचिसे ही बादमें 'आसक्ति' उत्पन्न होती है। आसक्ति निर्मल होने पर कृष्णप्रीतिके अंकुरस्वरूप 'भाव' व 'रति' होती है। वही रति गाढ़ होने पर 'प्रेम' कहलाती है। वही प्रेम ही सर्वानन्द-धामस्वरूप 'प्रयोजन-तत्त्व' है।

इस क्रमको विशेष रूपसे जाननेकी आवश्यकता है। नैष्ठिकी भक्ति क्या है? श्रीलज्जीवगोस्वामीपाद श्रीभक्तिरसामृत सिन्धु ग्रन्थकी टीकामें वर्णन करते

हैं 'अविक्षेपेन सातत्यम्' (१/४/१५)—'व्यवधान रहित स्थिरता' अर्थात् विक्षेपरहित निरन्तरता। मैंने अनुभव किया है कि जब हम हरिनाम स्मरण करनेका प्रयास करते हैं तो नाना प्रकारकी चिन्ताएँ आती और जाती हैं। हम एक कौएको देखते हैं तो उसीकी चिन्ता करनेमें लग जाते हैं और न जाने कितनी जगहों पर हमारा मन चला जाता है? तो स्थिरता कहाँ है? श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर श्रीहरिनाम चिन्तामणिमें लिखते हैं—'कोटि-कोटि नाम किये, परन्तु कृष्ण-प्रेमकी एक बँड भी प्रविष्ट नहीं हुई।' प्रेम ही गाढ़ भाव है। तो वह गाढ़ प्रेम कहाँ है? मुझे तो केवल मात्र संख्या पूर्ण करनी है और कुछ लेना-देना नहीं है। परन्तु नामाचार्य हरिदास ठाकुर क्या करते थे? वे कभी उच्च स्वरसे तो कभी निम्न स्वरसे नाम करते थे। सारी रात हरिनाम करते रहते थे। जब सूर्यका उदय होता तो वे अपने आपसे कहते, 'क्या सूर्यका उदय हो गया है?' कोई नहीं जानता था कि वे कब सोते थे, कब जागते थे। क्या हम उनकी अवस्थाकी चिन्ता कर सकते हैं? इसलिए यह जानना अति आवश्यक है कि नैष्ठिकी भक्ति क्या है? इसलिए मैं कहता हूँ कि आप सभी भजन करें। यदि आप भजन करेंगे तो हो सकता है कि ऐसी भावना आएंगी। परन्तु तब तक अपेक्षा करो जब तक तुम नैष्ठिकी भक्ति प्राप्त नहीं कर लेते और फिर आकर मुझे जिज्ञासा करो। यदि आपमें नैष्ठिकी भक्ति ही नहीं है तो आप कैसे सोच सकते हैं कि ऐसे भाव आपके हृदयमें उदित होंगे? (क्रमशः)

रथारुढो गच्छन् पथि मिलित-भूदेव पटलैः,

दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया,

रथमें बैठकर चलते समय, मार्गमें मिलनेवाले ब्राह्मणसमुदायके द्वारा, पग-पगपर अपनी स्तुतियोंके प्राकट्यको सुनकर, जो दयासे युक्त हो जाते हैं, अतएव जो दयाके सिन्धु एवं समस्त जगत्‌के बन्धु कहलाते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव, श्रीलक्ष्मीदेवीके सहित मेरे नेत्रमार्गके पथिक बन जायँ।

स्तुति प्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः।

जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे॥

श्रेष्ठ धर्ममें निरामिष आहार बाध्यतामूलक है

— ऋंविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज

आजकल संसारमें बहुतसे धर्म प्रचलित हैं। साधारण लोगोंकी दृष्टिमें ये सभी धर्म समान हैं। परन्तु यदि सभी धर्म समान हैं तो उनमें आहार एवं आचार-विचारका भेद क्यों है? इस विषयमें विचार करनेपर स्पष्ट होता है कि सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक आहारके अनुसार धर्म भी भिन्न-भिन्न प्रकारके फल देनेवाले हैं। अतः सभी धर्म एक समान कभी भी नहीं हो सकते। सत्त्व, रज एवं तम मायाके इन तीन गुणोंके अनुसार धर्म भी अवश्य ही सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिकरूपमें उत्कृष्ट-अपकृष्ट भाववाले होते हैं। मायाके इन तीनों गुणोंके प्रभावसे मुक्त होकर गुणातीत होना ही धर्मकी श्रेष्ठता है।

अतः मांस-मछलीका भक्षण, मदिरापान तथा स्त्रीसङ्ग आदिमें आसक्त धर्म कभी भी गुणातीत धर्मकी मर्यादाको प्राप्त नहीं कर सकता है। तीनों गुणोंसे अतीत होनेके लिए सात्त्विक, राजसिक, तामसिक आहार-विहार अवश्य ही परित्याग करने योग्य हैं—

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ धृवा सृतिः
सृतिर्लब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥

एकमात्र वैष्णवधर्म अथवा सनातनधर्ममें ही निरामिष आहार, मदिरापान तथा स्त्री-सम्पोगका सम्पूर्णरूपसे परित्याग करना आवश्यक है।

पिछले गङ्गासागर मेलाके समय किसी मिशनके एक संन्यास-वेशधारी व्यक्तिने जब एक गृहस्थ वैष्णवके छोटेसे पुत्रके गलेमें तुलसीमाला तथा उसे निरामिष भोजी देखा तो वह कहने लगा—“यदि यह बालक इतनी छोटीसी उम्रमें आमिष भोजन न करे, तो यह कभी भी हृष्ट-पुष्ट नहीं हो सकता। अतः यह किस प्रकार किसीकी सेवाकर

सकता है?” फिर वह अपने ही मठके एक गृहस्थके हृष्ट-पुष्ट पुत्रको दिखाते हुए बोला— देखो, यह बालक कितना बलशाली है, क्योंकि यह आमिष (मांस-मछली) भोजी है। और आपलोग अपने बच्चोंको साग-पत्ते खिलाकर उनका सर्वनाश कर रहे हैं—‘नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः।’ अर्थात् बलहीन व्यक्ति भगवानको प्राप्त नहीं कर सकता। आपलोगोंको इसे समझना चाहिए।”

ऐसे लोग शारीरिक बलके द्वारा ही भगवान्‌को प्राप्त करना चाहते हैं। उनके विचारसे पहलवान लोग ही भगवान्‌को प्राप्त करेंगे तथा निरामिष आहार भगवत्-प्राप्तिके लिए उपयोगी नहीं है। परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान स्पष्टरूपसे घोषणा कर रहा है कि निरामिष आहार शरीरके लिए विशेष उपयोगी है। बम्बईके हिन्दुजा आदि अस्पतालोंमें निरामिष आहार आवश्यक है। गीतामें भी वर्णन है—

उद्धर्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अथो गच्छन्ति तामसाः ॥

(गीता १४/१८)

सात्त्विक गुणवाले व्यक्तिकी उद्धर्वगति होती है अर्थात् वह गुणातीत अवस्थाको प्राप्त करनेके योग्य होता है, रजोगुणवाला व्यक्ति बीचमें रहता है तथा तमोगुणी हीनगतिको प्राप्त होता है। यदि कभी सिद्ध-महापुरुषके आचरणमें किसी प्रकारका व्यभिचार भी देखा जाय तो एक साधकको भूलकर भी उसका आचरण नहीं करना चाहिए। “तेजीयसां न दोषाय वहेः सर्वभुजो यथा।” अर्थात् समर्थवान व्यक्तिको दोष नहीं लगता, जैसे अग्नि सभी वस्तुएँ भक्षण करनेपर भी पवित्र ही रहती

है, उसी प्रकार महापुरुषके आचरणमें किसी प्रकारका व्यभिचार दीखने पर भी वे सर्वदा पवित्र ही होते हैं। इस आचरणके अनुसार सनातनधर्म अथवा वैष्णवधर्म सभी धर्मोंका शिरोमणि है। अन्य सभी धर्म आचरणके अनुसार उसके सोपान स्वरूप हैं।

“लोके व्यवायामिषमद्यसेवा”—इस श्लोकपर विचार करनेपर देखा जाता है कि अत्यन्त भोगोंमें आसक्त व्यक्तिको भोगोंसे (दुराचारसे) हटानेके लिए ही शास्त्रोंमें ऐसी व्यवस्था दी गई है। परन्तु यह विधि नहीं है। अपनी विवाहित पत्नीके साथ ही सङ्ग करनेका उपदेश केवल उसकी भोग-प्रवृत्तिको दूर करनेके लिए दिया गया है। यह उपदेश किसीको भोगोंमें लगानेके लिए विधिस्वरूप नहीं है। स्त्रीसम्भोग, आमिषभोजन तथा मादक-द्रव्यसेवन कभी भी मङ्गलजनक नहीं हैं। वैष्णव अथवा सनातनधर्मका पालन करनेवालोंके लिए यह अत्यन्त हानिकारक तथा विरुद्ध आचरण है। अतः जिन धर्मोंमें ऐसे आचरणोंका अनुमोदन किया जाता है, ऐसे धर्म उन्नत वैष्णव धर्मकी समानता नहीं कर सकते। इसलिए सनातन धर्म ही श्रेष्ठ फल (प्रेमभक्ति) प्रदान करनेमें समर्थ है, दूसरे धर्म नहीं। अतः प्रेमभक्ति प्राप्तिके इच्छुक व्यक्तिको इस स्त्री-सङ्ग, आमिषभोजन तथा मादक द्रव्यका सेवन अवश्य ही परित्याग करना चाहिए।

पारमार्थिक विचारकी तो बात ही क्या, यदि लौकिक विचारसे भी देखा जाय तो सेव्यकी सेवा करनेके लिए सेवकको सेव्यकी रुचिके अनुकूल चलना होता है। सेव्यकी जैसी रुचि हो तथा जैसे उसे आनन्द प्राप्त हो, यदि सेवक वैसा ही न करे तो उसे सेवासे बजित हो जाना पड़ता है।

सभी धर्मों एवं सम्प्रदायोंमें वेशभूषा तथा आचार-विचारकी भिन्नता होती है। जैसे मुसलमान धर्ममें दाढ़ी तथा लूँगी, सिख धर्ममें सिरमें केशबन्धन, दाढ़ी-मूँछ तथा हाथमें कड़ा इत्यादि,

इसाई धर्ममें क्रासचिह्न धारण किया जाता है, उसी प्रकार भागवत अथवा सनातनधर्म (वैष्णवधर्म) में सिरपर शिखा, गलेमें तुलसीमाला, तिलक धारण तथा निरामिष भोजन अति आवश्यक है। इन वस्तुओंमें दोष देखना मूर्खता ही है।

वेद आदि सनातन धर्म-शास्त्रोंमें मनुष्य-जन्म प्राप्तकर बाल्यकालसे ही भागवतधर्म अर्थात् भगवान्‌की सेवा करनेका उपदेश दिया गया है।

कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह।

दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यधृवमर्थदम्॥

कौमार अवस्था अथवा पाँच वर्षकी आयुसे ही भगवतधर्मका पालन करना चाहिए अर्थात् भगवान्‌की सेवा करनी चाहिए। क्योंकि इस जीवनका कोई भरोसा नहीं है, कभी भी किसी भी क्षण यह नष्ट हो सकता है। परन्तु मनुष्य-जन्मके अतिरिक्त किसी भी जन्ममें भगवान्‌का भजन सम्भव नहीं है। अतः ज्ञान होते ही तुरन्त इस धर्म (भक्ति) का पालन करनेमें बुद्धिमानी है। मायाबद्ध जीव अपनी इन्द्रियोंके द्वारा भोगकी इच्छाओंको पूर्ण करनेमें ही लगे रहते हैं। यह भोग-प्रवृत्ति ही भगवान्‌की सेवाके विपरीत है। अतः इसका परित्याग करना अति आवश्यक है। इस भोग-प्रवृत्तिका परित्याग किए बिना परमार्थमार्गमें सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती। भोगोंका परिणाम दुःख ही है तथा यह भक्तिके प्रतिकूल है, अनुकूल नहीं। भगवान्‌ने स्वयं गीतामें कहा है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।

आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५/२२)

तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।

पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

(गीता. ३/४१)

अर्थात् हे अर्जुन! तुम सर्वप्रथम अपनी इन्द्रियोंको वशमें करके ज्ञान-विज्ञानको नाश करनेवाले

इस पापरूप भोगप्रवृत्तिका परित्याग करो।

अतः इस भोगप्रवृत्ति कामको पाप बताया गया है। इसको परित्याग किए बिना धर्मका पालन नहीं हो सकता। जिन धर्मोंमें इस भोग प्रवृत्तिको त्याग करनेकी विधि नहीं हो, वे धर्म कभी भी कल्याणकारी नहीं हो सकते। परन्तु सनातनधर्म सर्वश्रेष्ठ है। इसीलिए इसमें इस भोग प्रवृत्तिको त्यागनेकी विधि है।

भोगप्रवृत्तिको त्यागकर सेवाप्रवृत्तिमें प्रतिष्ठित होनेका नाम ही साधन है। प्राकृत तथा अप्राकृत सभी वस्तुएँ भगवानके भोगके लिए ही हैं। अतः भगवान्‌के भोगकी वस्तुओंके प्रति हमें भोग बुद्धि नहीं करनी चाहिए। इसे जब तक परित्याग नहीं किया जाय, तब तक जीवकी बद्ध अवस्था नष्ट नहीं हो सकती। यही बहिर्मुखता है—

कृष्ण बहिर्मुख हड्ड्या भोग-वाज्ञा करे।
निकटस्थ माया तारे जापाटिया धरे॥
आमि नित्य कृष्ण दास इङ्कथा भुले।
मायार नफर हड्ड्या चिर दिन बुले॥

अर्थात् कृष्णसेवासे विमुख होकर जीव जैसे ही विषयोंको भोगनेकी इच्छा करता है, वैसे ही निकटमें ही स्थित माया उसे झापटकर दबोच लेती है। मैं कृष्णका नित्यदास हूँ, इसे भूलकर ही जीव मायाका दास होकर चिरकालके लिए इस संसारमें घूमता रहता है।

परन्तु साधु एवं गुरुकी कृपासे ही ऐसी दुबुद्धि दूर हो जाती है, असाधु एवं भोगी व्यक्तियोंके संगसे नहीं। यही शास्त्रोंका प्रधान उपदेश है।

महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्ग्रिसङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता विमन्यवः सुह्वदः साधवो ये॥

(भा. ५/५/२)

अर्थात् पण्डितलोग वैष्णव-सेवाको संसारसे मुक्ति एवं भक्तिका द्वार तथा स्त्रीसङ्गीके सङ्गको नरकका द्वार कहते हैं। अतः आमिष (मांस-मछली-अण्डे) तथा मदिरा इत्यादि परित्यागकर भगवत्रिष्ठ भक्तोंका आश्रय ग्रहण करना ही श्रेष्ठधर्मका पालन करना है।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्री परमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष ४६, संख्या ३, पृष्ठ ६६ से आगे)

श्रीमहाप्रभुके द्वारा नित्यानन्दकी महिमाका गान

इस प्रकार नित्यानन्दप्रभु प्रायः सब समय कृष्णप्रेमके समुद्रमें ढूबे रहते थे। उनकी क्रियाएँ सर्वदा ही एक अबोध बालककी भाँति होती थी। किसीको भी देखते तो बालककी भाँति हँसते हुए अत्यन्त मधुर वाणीसे उससे बातें करने लगते तथा अपने आप ही गाना गाकर नृत्य करने लगते। वर्षाके समय गङ्गा जब लबालब भरी रहती तथा उसमें भयङ्कर लहरें उठ रही होती थीं एवं बड़े भयङ्कर मगरमच्छ उसमें तैरते रहते तो ये सबके देखते ही देखते झट उसमें कूद पड़ते

तथा अनन्तदेव (शेषनाग) के भावमें तैरने लगते। यह देखकर किनारे पर खड़े लोगोंमें हाहाकार मच जाता क्योंकि वे नित्यानन्दके प्रभावको नहीं जानते थे। वे तो भगवानकी मायासे मोहित होनेके कारण उन्हें एक साधारण मनुष्य ही समझते थे। कभी-कभी तो वे जब आनन्दसे मूर्च्छित हो जाते थे तो तीन-चार दिन तक मूर्च्छित ही पड़े रहते थे। एकदिन वे बाल्यभावमें आविष्ट होकर दिग्म्बरवेश धारण कर अर्थात् वस्त्ररहित अवस्थामें दौड़ते-दौड़ते प्रभु विश्वम्भरके पास आये। उस समय आनन्दसे

उनका शरीर पुलकित हो रहा था तथा उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उनके मुखसे निरन्तर एक ही वाक्य निकल रहा था—मेरे प्रभु नदिया (नवद्वीप) के निमाई पण्डित हैं, मेरे प्रभु नदियाके निमाई पण्डित हैं। उनकी ऐसी अद्भुत अवस्था देखकर प्रभु उनके भावको समझकर मुस्कराने लगे। उन्होंने जल्दीसे उन्हें अपने सिरपर बाँधनेवाला कपड़ा पहना दिया। परन्तु नित्यानन्दप्रभु थे कि उन्हें कुछ ज्ञान नहीं कि क्या हो रहा है। वे तो बस एकटक प्रभुको निहारते हुए हँसते ही जा रहे थे।

प्रभुने आज स्वयं अपने हाथोंसे उनके श्रीअङ्गमें दिव्य चन्दनका लेप किया तथा उन्हें दिव्य माला पहनाई। तत्पश्चात् उन्हें अपने सामने बैठनेके लिए एक आसन प्रदान किया। उन्हें उस आसन पर विराजमान कराकर प्रभु उनकी स्तुति करने लगे—“आपका नाम नित्यानन्द है, उसीके अनुरूप आपका स्वरूप भी नित्यानन्दस्वरूप ही है। आप तो साक्षात् बलराम ही हैं। आपका भ्रमण, भोजन तथा आपका व्यवहार सभी नित्यानन्दस्वरूप अर्थात् नित्यकालके लिए भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाला है। आपके स्वरूपको समझनेका सामर्थ्य मनुष्यमें कहाँ है? आप जहाँ भी रहते हैं, कृष्ण भी वहाँ रहते हैं।” श्रीगौरसुन्दरके प्रेममें आविष्ट होकर श्रीनित्यानन्द प्रभु चुपचाप बैठे हुए थे। श्रीगौरसुन्दर उनसे बोले—“हे श्रीपाद नित्यानन्द! आप मुझे अपना एक कौपीन दीजिए।” ऐसा कहकर प्रभु स्वयं उनका एक कौपीन ले आए तथा उसके अनेक छोटे-छोटे टुकड़े किए। उन टुकड़ोंको सभी वैष्णवोंमें बाँटते हुए कहने लगे—“सभी लोग इस कौपीनके टुकड़ोंको अपने सिर पर बाँध लें। यह कोई साधारण वस्तु नहीं है। बड़े-बड़े योगीश्वर भी इसे ग्रहण करना चाहते हैं, परन्तु उन्हें भी यह प्राप्त नहीं होता। ध्यानपूर्वक सुनें! नित्यानन्दजीकी कृपासे ही कृष्णभक्ति

प्राप्त होती है। क्योंकि नित्यानन्द प्रभु कृष्णकी पूर्ण शक्ति हैं। अर्थात् कृष्णके सेवकोंमें सर्वप्रधान हैं। यद्यपि ये विष्णुतत्त्व हैं, परन्तु फिर भी ये और कोई नहीं—कृष्णके ही द्वितीय प्रकाश हैं। (कृष्णके द्वितीय प्रकाश बलदेवजी हैं तथा श्रीगौरसुन्दरके द्वितीय प्रकाश श्रीनित्यानन्द प्रभु हैं।) फिर भी इनके अन्दर एक ही अभिमान है कि मैं कृष्णका सेवक हूँ। ये आसन, आभूषण, पादुका, चामर, पंखा इत्यादि अनेक स्वरूपोंसे कृष्णकी सेवा करते हैं। यहाँ तक कि श्रीमती राधाजीकी छोटी बहिनके रूपमें भी मधुर रससे कृष्णकी सेवा करते हैं। नित्यानन्दजीकी लीलाओंको समझना वेदोंके लिए भी असम्भव है। ये जीवमात्रके पालक, रक्षक तथा परमबन्धु हैं। इनकी समस्त क्रियाएँ कृष्णरससे ओतप्रोत रहती हैं। इनकी सेवा करनेसे अवश्य ही कृष्णभक्ति होती है। अतः आप सभी लोग श्रद्धापूर्वक इनके कौपीनके टुकड़ोंको अपने सिरमें बाँधें तथा अपने-अपने घरमें जाकर इसकी पूजा करें।”

प्रभुका आदेश पाकर सभी वैष्णवोंने उन टुकड़ोंको श्रद्धापूर्वक अपने-अपने सिरमें बाँध लिया। प्रभु फिर कहने लगे—“हे वैष्णववृन्द! आप सभी लोग नित्यानन्दका चरणामृत पान करें, जिससे अवश्य ही आप लोगोंको कृष्णकी भक्ति प्राप्त हो जाएगी, इसमें लेशामात्र भी सन्देह नहीं है।” आदेश पाते ही सभी लोग नित्यानन्दजीके श्रीचरणकमलोंका प्रक्षालन कर (धोकर) उनका चरणामृत पान करने लगे। किसीने पाँच बार तो किसीने दस बार पिया, परन्तु फिर भी उनकी सन्तुष्टि नहीं हो रही थी। श्रीगौरसुन्दर बैठकर स्वयं ही चरणामृत बाँट रहे थे। उस चरणामृतको पानकर भक्तोंकी अद्भुत अवस्था हो गई। सभी लोग मत्त होकर हरिबोल-हरिबोल कहते हुए कीर्तन करने लगे तथा नृत्य करते हुए कहने लगे—आज हमारा जीवन धन्य हो गया। इस

दुर्लभ चरणामृतको पानकर हमारा मायाबन्धन कट गया तथा हम कृष्णके दास बन गए हैं। वैष्णवोंको इस प्रकार आनन्दसे विहङ्ग होकर नृत्य करते देख श्रीगौरसुन्दर भी आविष्ट हो गए तथा हुँकार करते हुए वे भी नृत्य करने लगे। उसी समय नित्यानन्दप्रभु भी झटसे आसनसे उठकर खड़े हो गए तथा प्रभुके साथ मिलकर नृत्य करने लगे। अब सभी वैष्णव आनन्दसे दोनों प्रभुओंको घेरकर कीर्तन करने लगे तथा मध्यमें दोनों प्रभु (श्रीगौरसुन्दर, नित्यानन्दप्रभु) आनन्दसे नृत्य करने लगे। बहुत समय तक इसी प्रकार नृत्य होता रहा। बहुत देरके बाद दोनों प्रभुओंका आवेश दूर हो गया तथा प्रभु सभी वैष्णवोंको साथ लेकर बैठ गए। उसी समय तीन बार तालियाँ बजाते हुए प्रभु कहने लगे—“जो इन नित्यानन्दप्रभुकी श्रद्धापूर्वक सेवा करेगा, वास्तवमें वही मेरी सेवा होगी। इनके चरणकमल ब्रह्मा, शिवके लिए भी दुर्लभ हैं। इनके प्रति यदि किसीका लेशमात्र भी द्वेष रहेगा तो भक्त होनेपर भी वह मेरा प्रिय नहीं हो सकता। इनके शरीरकी हवा भी यदि किसीको स्पर्श करती है, तो कृष्ण उसे कभी भी नहीं टुकराते।” यह सुनकर सभी वैष्णव लोग दोनोंकी जय-जयकार करने लगे।

श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं हरिदास ठाकुरका प्रचारके लिए जाना

एकदिन श्रीगौरसुन्दर श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं हरिदास ठाकुरको आदेश देते हुए कहने लगे—“हे नित्यानन्द! हे हरिदास! मैं तुम दोनोंको आदेश देता हूँ कि तुम दोनों घर-घर जाकर प्रचार करो। तुम दोनों, लोगोंसे यही भिक्षा माँगना कि आप लोग कृष्ण-कृष्ण बोलिए, कृष्णका भजन कीजिए तथा कृष्णके विषयमें ही शिक्षा ग्रहण कीजिए। इसके अतिरिक्त न तो तुम किसीके देने पर भी कुछ

अन्य वस्तुएँ भिक्षामें ग्रहण करोगे, और न ही कृष्णनाम कीर्तन एवं कृष्णकी सेवाकी शिक्षाके अतिरिक्त अन्य प्रकारकी शिक्षा दोगे। इस प्रकार दिनभर प्रचारके बाद शामको तुम मेरे पास आना तथा प्रचारमें होनेवाली सभी बातें मुझे बताना। यदि कोई दुष्ट तुम्हें भिक्षा नहीं देगा अर्थात् कृष्ण-कृष्ण नहीं बोलेगा, तो मैं हाथमें चक्र लेकर उसका सिर काट डालूँगा। प्रभुका आदेश सुनकर सभी वैष्णव खुशीसे झूम उठे। प्रभुका आदेश शिरोधार्य कर वे दोनों तुरन्त चल पड़े। इस प्रकारसे घर-घर जाकर लोगोंको प्रभुका आदेश सुनाने लगे—“आपलोग कृष्ण-कृष्ण बोलिए तथा कृष्णका ही भजन कीजिए, क्योंकि वास्तवमें कृष्ण ही सबके प्राणस्वरूप हैं, वे ही जीवमात्रके वास्तविक धन हैं तथा वे ही जीवमात्रके परमबन्धु हैं। इस जगतमें जिन्हें हम बन्धु मानते हैं, वास्तवमें वे सब स्वार्थी हैं। जब तक हमसे उनका किसी भी प्रकारका स्वार्थ पूरा हो सकता है, तब तक वे हमसे प्रीति करते हैं। परन्तु जिस दिन उनकी हमसे स्वार्थपूर्तिकी आशा समाप्त हो जाती है अर्थात् हम इस योग्य नहीं रह जाते कि उनकी इच्छाओंको पूरा सकें, उसी दिन वे हमसे मँह मोड़ लेते हैं तथा उनकी प्रीति एक क्षणमें ही समाप्त हो जाती है। परन्तु ठीक इसके विपरीत यदि कोई जानते हुए अथवा अनजान अवस्थामें भी एक क्षणके लिए भी कृष्णकी सेवा कर देता है अथवा एकबार भी उनका नाम ले लेता है तो भगवान् उसे कभी भी नहीं छोड़ते। अतः आपलोग ऐसे परम दयालु कृष्णका ही भजन करें। उनके श्रीमुखसे ये सब उपदेश सुनकर तथा दोनोंका सुन्दर संन्यासीवेश देखकर सज्जन लोग तो प्रसन्न होकर उन्हें अनेक प्रकारकी वस्तुएँ भिक्षामें देने लगते। परन्तु वे बोलते—“हमें ये सब चीजें नहीं चाहिए, हमें यही

भिक्षा चाहिए कि आप कृष्ण-कृष्ण बोलिए तथा कृष्णका भजन कीजिए।” यह सुनकर वे सज्जनलोग तो प्रसन्न होकर कहते—“अच्छी बात है, हम अवश्य ही कृष्णका कीर्तन करेंगे तथा उनका भजन करेंगे।” परन्तु दुष्ट स्वभाववाले लोग इन दोनोंको देखकर कहने लगते—“देखनेमें तो तुम दोनों बहुत ही सुन्दर हो। फिर तुम इस निमाई पण्डितके चक्करमें कैसे फँस गए? वह स्वयं तो पागल हो ही गया है तथा अब तुम दोनोंको भी उसने पागल कर दिया है। दुष्टोंका संग करनेका यही फल होता है। और अब तुम दोनों हम लोगोंको भी पागल बनाने आ गए हो! लगता है यह निमाई सारे नवद्वीपवासियोंको पागल बनाकर ही छोड़ेगा। इस प्रकार अनेक प्रकारके लोग अनेक प्रकारकी बातें सुनाने लगे। जो लोग श्रीवास्त्रीके घरमें प्रभु श्रीगौरसुन्दरके कीर्तनमें जा नहीं पाते थे, ये दोनों जब उनके घरमें जाते थे, तो वे लोग गाली-गलौज करते हुए कहने लगते—“अरे भाइयो! लगता है ये दोनों किसी डाकूके गुप्तचर हैं तथा अभी दिनमें संन्यासी वेश धारणकर यह पता लगानेके लिए आए हैं कि किस घरमें अधिक माल है तथा किस घरके लोग कहीं बाहर गए हैं अथवा किस घरमें केवल नियाँ ही हैं। फिर रात्रिके समय डाकुओंका दल यहाँ आकर डकैती डालेगा। अतः इन दोनों दुष्टोंको मार-मारकर यहाँ दूर भगा दो।”

यह सुनकर श्रीनित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर मुस्कराते हुए वहाँसे आगे निकल जाते। इस प्रकार प्रतिदिन दिनभर घर-घर प्रचारकर सन्ध्याके समय प्रभुके पास जाकर सारी बातें उन्हें सुनाते।

जगाई माधाईका उद्धार

नवद्वीपमें ही दो भाई रहते थे, जिनका नाम जगाई एवं माधाई था। वे दोनों ही बड़े दुर्दन्त

थे। ऐसा कोई पाप कार्य नहीं था, जो वे नहीं करते हों। परन्तु उन दोनोंने कभी वैष्णवोंकी निन्दा अथवा वैष्णवोंके चरणोंमें अपराध नहीं किया था। एक दिन नित्यानन्द प्रभु तथा हरिदास ठाकुर प्रचार करनेके लिए जिस मार्गसे जा रहे थे, उसी रास्तेमें इन दोनोंने अपना डेरा डाल रखा था। दोनों शराबके नशे धुत थे। उन्हें अपने शरीरकी सुध-बुध भी नहीं थी। कभी वे दोनों प्रेमसे गले मिल रहे थे तो कभी एक दूसरेको गन्दी-गन्दी गालियाँ बक रहे थे तथा कभी एक दूसरेकी पिटाई भी कर रहे थे। उनकी ऐसी दुर्दशा देखकर परम दयालु नित्यानन्दजीने लोगोंसे पूछा—“ये दोनों कौन हैं? किस जातिके हैं तथा इनकी ऐसी दुर्गति कैसी हुई?”

यह सुनकर लोगोंने बताया—“महात्माजी! ये दोनों जातिसे तो ब्राह्मण हैं। इनका वंश बहुत ही निष्कलङ्क था। इनके वंशकी कीर्ति सारे नवद्वीपमें फैली हुई थी। इनके वंशमें बड़े ही आदर्शवादी पुरुषोंने जन्म ग्रहण किया। स्वयं इनके माता-पिता भी बड़े ही आदर्शवादी, आचरणशील थे। परन्तु दुर्भाग्यसे ऐसे उच्च वंशमें जन्म ग्रहण करके भी बचपनसे ही ये लोग दुष्टोंके सङ्गमें पड़ गए, जिससे इनके ब्राह्मणके संस्कार ढक गए तथा ये दोनों पाप कर्मोंमें लिप्त हो गए। इनके ऐसे कुकर्मोंसे दुःखी होकर घरवालोंने भी इन्हें घरसे बाहर निकाल दिया। अब तो ये बिल्कुल स्वतन्त्र हो गए हैं। इसलिए जो इनके मनमें आता है, वही करते हैं। ऐसा कोई कुकर्म नहीं है, जो ये नहीं करते हैं। चोरी-डकैती करना, दूसरोंके घरोंमें आग देना, किसीकी हत्या कर देना, दूसरोंकी नियोंका हरण कर लेना तो इनके लिए तो साधारण-सी बात है। सारे नवद्वीपमें इनका आतङ्क छाया हुआ है। सभी लोग भयभीत रहते हैं कि न जाने कब ये दोनों दुष्ट उनके घरोंमें

आग लगा दें, अथवा घरकी स्थियोंको उठाकर ले जाएँ अथवा किसीकी हत्या कर दें। भयके कारण लोग शामके बाद गङ्गास्नानके लिए भी नहीं जाते तथा न ही किसी अन्य कामसे घरसे बाहर निकलते हैं। यदि निकलते भी हैं तो बीस-तीस लोगोंका झुण्ड बनाकर, अकेले नहीं। बेचारी स्थियाँ तो दिनमें भी घरसे बाहर निकलनेमें डरती हैं कि न जाने कब इन दुष्टोंकी कुटृष्टि उन पर पड़ जाय तथा उन्हें अपनी लज्जा बचानी मुश्किल हो जाए।” यह सुनकर दयालु नित्यानन्दप्रभुको उन दोनों पर बहुत दया आ गई। वे इन दोनों ब्राह्मण बालकोंके उद्धारके विषयमें सोचने लगे। उन्होंने मन ही मन विचार किया कि मेरे प्रभु श्रीगौरसुन्दर पापियोंका उद्धार करनेके लिए ही इस धराधाम पर अवतरित हुए हैं। अतः इन दोनोंसे बड़ा पापी जगतमें और

कौन हो सकता है? अतः उन्होंने संकल्प किया कि यदि मेरे प्रभु इन दोनोंका उद्धार कर दें अर्थात् इनके चित्तको बदल दें। आज किस प्रकार ये दोनों शराबके नशे मत्त होकर देहकी सुध-बुध खो बैठे हैं, उसी प्रकार यदि ये कृष्णानामरस पान करके अपनी सुध-बुध खो बैठें, आजतक इनका स्पर्श अथवा दर्शनसे ही अपनेको अपवित्र मानकर जो लोग पवित्र होनेके लिए वस्त्रसहित गङ्गास्नान करते हैं, यदि वे लोग ही कल इनका दर्शनकर अपनेको परम पवित्र तथा धन्यातिधन्य समझें, तभी मैं अपने आपको चैतन्यका दास समझूँगा। इस तरह जो पापी लोग अभी तक मेरे प्रभुकी महिमा न जानकर उनका उपहास करते हैं तथा अपमान करते हैं, ये सब देखकर उनका मुँह बन्द हो जाएगा तथा वे भी मेरे प्रभुके दास हो जाएँगे। (क्रमशः)

विविध संवाद

श्रीलम्हाराजजी Hawaii द्वीपसमूहमें प्रचार समाप्त करके Houston में १७-५ से २३-५-०२ तक, Mexico की राजधानी पृथ्वीकी सबसे अधिक जनसंख्या वाली महानगरी है। Mexico city एवं Curnavaca में २५-५ से २९-५ तक तथा Badger में ३०-५ से ६-६-०२ तक प्रचार सेवा करके अभी Boiseमें प्रचार सेवामें व्यस्त हैं। नीचे कुछ मुख्य संवाद दिये गए हैं।

Houston में सात दिनके कार्यक्रममें उल्लेखका विषय है कि गीता आश्रम द्वारा आयोजित Sixth National Geeta Conference में श्रीलम्हाराजजीने अपना योगदान दिया। तीन दिनके इस आयोजनमें पृथ्वीके विभिन्न देशोंके विशेष करके अमेरिका महादेशके विभिन्न प्रान्तोंके वक्ताओंने योगदान दिया था। प्रत्येक वक्ताके लिए ४५ मिनटका समय निर्धारित था। गीता कांफ्रेन्स

कमिटीने प्रत्येक वक्ताओंके लिए अलग-अलग विषय निर्धारित कर दिया था। श्रील महाराजके लिए “Geeta—The Dispeller of Fear” विषय निर्धारित था। श्रीलम्हाराजजीके प्रवेशमात्रसे ही सभामें परिवर्तन हो आया। श्रील महाराजजीने दौ-सौ से अधिक भक्तोंको लेकर सभामें प्रवेश किया। सभामें उपस्थित सभीने खड़े होकर श्रीलम्हाराजजीका अभिवादन किया। बादमें प्रधान आयोजकने और वर्तमान गीता आश्रमके प्रधानने अलग-अलग रूपसे फोन पर बताया कि इस सभामें अनेक वक्ताओंका समागम होने पर भी आज तक किसीको इस प्रकार सम्मानित नहीं किया गया था।

श्रीलम्हाराजजीने मङ्गलाचरण करके भारत और विदेशके ६०० से अधिक गीता आश्रमोंके प्रतिष्ठाता श्रीहरिहरजी महाराजके साथ अपने

व्यक्तिगत सम्बन्धोंका वर्णन किया। श्रीहरिहर महाराज प्रत्येक वर्ष श्रील महाराजजीको मथुरामें भाषणके लिए निमन्त्रण करते थे और श्रीलमहाराजजीने कभी भी उनका निमन्त्रण अस्वीकार नहीं किया।

गीताके सम्बन्धमें श्रील महाराजजीने बतलाया कि गीता भक्तिका खजाना है। जिसने गीताजीका अध्ययन कर लिया है, समस्त शास्त्रोंका अध्ययन उसका हो जाता है और वह श्रीमद्भागवतका अनुशीलन करनेका अधिकार प्राप्त कर लेता है। श्रीगीताजीका अध्ययन और अध्यापनसे अधिक और कोई सुख नहीं है। इसलिए कहा गया है ‘तत् प्रसादात् पराशान्ति’। गीता किसको बोला गया है? जिसे गान किया जाता है या स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने अपने श्रीमुखसे जिसका गान किया है। अब प्रश्न हो सकता है कि श्रीकृष्ण कौन हैं? स्वयं श्रीकृष्णने पहलेसे ही इसका उत्तर दे दिया है। ‘मत्तः परतरं’, ‘अनन्याश्चिन्तयतो मां’, ‘येऽप्यनन्यदेवता’, ‘मामेव’, ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं’, ‘मन्मना भव मद्भक्तो’, ‘मां नमस्करु’ आदि श्लोकोंके मत्तः पर, मामेव, मां, मामेकं आदि शब्दोंके द्वारा श्रीकृष्णने स्वयं अपनी भगवत्ताका प्रतिपादन किया है। इससे पहले और बादमें किसी भी भगवद् अवतारने अपनी भगवत्ताका प्रत्यक्ष रूपसे प्रतिपादन नहीं किया है।

श्रीगीताको ‘Dispeller of Fear’ कहा गया है। इसको विस्तृत रूपसे जाननेसे पहले यह जानना आवश्यक है कि भयका कारण क्या है? भयके कारणके सम्बन्धमें पुराण-सप्तांश-शिरोमणि श्रीमद्भागवत (११/२/३७) में कहा गया है—

भयं द्वितीयाभिनिवेशतः स्यादी—
शातपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो बुध आभजेत् तं
भक्तज्ञैकयेशं गुरुदेवतात्मा ॥

हमें सबसे पहले जानना होगा कि हम ये स्थूल और सूक्ष्म शरीर नहीं हैं। हम सभी

श्रीकृष्णके नित्य दास हैं। इस कृष्णादासताको भूलकर स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीरमें आसक्त होना ही भयका कारण है। पिछले साल ११ सितम्बरको वर्ल्ड ट्रेड सेन्टरके ध्वंस होनेका यही मुख्य कारण है। गीतामें कहा गया है—‘जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः’। जिसका जन्म है उसकी मृत्यु भी अवश्य है। जड़ शरीरका जन्म है तो मृत्यु भी अवश्य होगी। किन्तु आत्मा जन्म-मृत्युसे अतीत है। कृष्णादास्यको भूलकर मायाका दास होनेसे प्रत्येक पग पर भय अवश्य ही रहेगा। भयसे छुटकारा पानेका उपाय है कि सदगुरुके चरणोंका आश्रय करके श्रीगुरुदेवको अपना प्रिय आत्मा समझकर निष्कपट चित्तसे भगवान्का भजन करना। गीतामें ‘सर्वधर्मान् परित्यज्य’ आदि श्लोकोंमें शरणागतिके द्वारा यही कहा गया है। शरणागत होनेसे शरणागतका किसी भी प्रकारका भय नहीं रहता है। दूसरे युगकी बात ही क्या, कलियुग जो कि कलहका मूल है, कलहं लाति इति कलि, इस कलियुगमें भगवत्रामका आश्रय लेनेसे भय भयभीत होकर भाग जाता है। इसलिए कहा गया है—‘यद्विभेति स्वयं भयं। भगवत्रामका आश्रयकर विभिन्न युगोंमें अनेक व्यक्ति महान हुए हैं जिन्होंने भगवान्को प्रेम-रज्जु द्वारा सदाके लिए बाँध लिया है। ‘यद्विभेति स्वयं भयं’ को सुनकर अनेक लोग आश्चर्यचकित हो गए।

एक श्रोताने हाथ उठाकर पूछा—स्वामीजी! आपने जो बताया कि भय भयभीत होकर भाग जाता है—इसका कोई उदाहरण है अथवा शास्त्रमें ऐसा कहा गया है?

श्रील महाराजजी—हमारे भारतीय वेदादि शास्त्र सभी विज्ञान संबलित है। आधुनिक जड़ विज्ञान अन्धा है जो अच्छे-बुरेका विचार नहीं रखता है। भारतीय वेद-पुराणोंका पूर्णरूपसे आनुगत्य करके ही विज्ञान सम्पूर्ण रूपसे सफल होगा। यदि ऐसा नहीं है तो असफल रहेगा। सबसे पहले मैं सत्ययुगका उदाहरण दे रहा हूँ। आप

लोग अजामिलकी कथा जानते हैं? जगतमें सबसे अधिक भय मृत्युसे होता है। अजामिल भगवान्‌का नाम उच्चारणके द्वारा मृत्युके भयसे छुटकारा पाकर भगवान्‌का भजन करके अन्तमें भगवान्‌के धामको प्राप्त कर गए।

श्रोता—त्रेतायुग और अन्य युगोंका क्या कोई उदाहरण हैं?

श्रील महाराजजी—मेरा जो निर्धारित समय है, वह समाप्त हो रहा है; नहीं तो समस्त युगोंके उदाहरण देकर समझा सकता था।

सभा परिचालक समितिके एक सदस्यने श्रील महाराजजीके लिए पन्द्रह मिनटका समय बढ़ा दिया। १५ मिनटका समय बढ़ाने पर सभामें उपस्थित सभीने ताली बजाकर समर्थन किया।

श्रीलमहाराजजी—अब मैं संक्षेपमें त्रेतायुगका उदाहरण दे रहा हूँ। आप सभी महर्षि वाल्मीकि की कथा जानते हैं। जिन्होने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रके आविर्भावसे पहले रामायण महाकाव्यकी रचना की थी। वह पूर्व जीवनमें रत्नाकर डकैत थे। परन्तु देवर्षि नारदजीकी अहैतुकी कृपासे वे डकैत होते हुए भी सभीके पूज्यनीय व सम्मानीय होकर महर्षि वाल्मीकिके नामसे विख्यात हो गए। इन्होंने इतने अधिक पाप कर्म किए थे कि भगवान्‌के परम मंगलमय नाम उच्चारण नहीं कर पाए। अपने किए हुए पाप कर्मके भयावह परिणामको श्रीनारदजीकी कृपासे अनुभवकर वे छठपट करने लगे। बादमें उन्हींकी कृपासे पृथ्वीके सबसे अधिक भय—मृत्युभयसे छुटकारा पाकर वे जगतके पूर्य बन गए। इसलिए कहा गया है—‘उलटा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥’ यदि कोई व्यक्ति या राष्ट्र भयसे छुटकारा पाना चाहते हैं तो अवश्य ही श्रीभगवान्‌के नामका आश्रय करना पड़ेगा। इसको छोड़कर और कोई दूसरा उपाय नहीं है, नहीं है।

इसको सुनकर सभी लोग बड़े उत्साहित होकर जोर-जोरसे ताली बजाने लगे और भाषणको

दो मिनट तक रोकना पड़ा।

श्रोता—श्रील स्वामीजी! द्वापर युगका उदाहरण देकर कृतार्थ कीजिए।

श्रील महाराजजी—आप सब लोग जानते हैं कि वैदिक संस्कृतिके अनुसार लज्जा और पातिव्रत्य स्त्रीका भूषण है और मानी व्यक्तिका अपमान मृत्युतुल्य है। महाभारत काव्यमें इस प्रकारका एक चरित्र है—द्रौपदी। ये एक ओर पतिव्रता स्त्री हैं तो दूसरी ओर विशेष रूपसे माननीय हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्णने मय दानवके द्वारा पाण्डवोंके लिए एक अद्भुत महल तैयार करवा कर युधिष्ठिर महाराजके द्वारा दुर्योर्धनको आमंत्रित किया। इस राजमहलमें स्थलके स्थानपर जल और जलके स्थान पर स्थल, अग्निमें बर्फ और बर्फमें अग्नि, कृत्रिममें स्वाभाविक और स्वाभाविकमें कृत्रिमका भ्रम होता था। दुर्योर्धनको लिए भी यह नियम लागू था। दुर्योर्धनकी ऐसी स्थिति देखकर द्रौपदीदेवी कपड़ेसे मुख ढककर उपहासकर बोलीं—‘जैसा पिता वैसा पुत्र। अर्थात् अन्धेका पुत्र अन्धा।’ इसी व्यंगोक्तिके लिए द्रौपदीदेवीका वस्त्रहरण और बादमें महाभारत युद्ध हुआ। वस्त्रहरणके समय द्रौपदीदेवी दूसरा कोई उपाय न देखकर कातर स्वरसे हाथ उठाकर बोलीं—‘हे गोविन्द राखो शरण अब तो जीवन हारी।’ द्रौपदीके कातर स्वरको सुनकर श्रीकृष्णने वस्त्ररूपमें द्रौपदीके सारे अङ्गोंको ढक दिया। दस हजार हाथियोंके बल वाला दुःशासन भी थककर बैठ गया। परन्तु द्रौपदीको वस्त्रहीन नहीं कर सका। भगवान्‌के नामका उच्चारण करनेसे माननीय द्रौपदीदेवीने मृत्युके समान अपमानसे रक्षा पा ली और लज्जाकी रक्षा भी हो गयी।

एक रसिक श्रोता—स्वामीजी! कलियुगका एक उदाहरण देनेसे अच्छा होगा।

श्रील महाराजजी—दूसरे युगोंकी अपेक्षा कलियुगमें असंख्य उदाहरण हैं। मनुष्योंकी तो बात ही क्या? मनुष्यसे नीच प्राणियोंने भी भगवान्‌के

नामोंका श्रवणकर मृत्युभयसे छुटकारा पा लिया है। प्रेम पुरुषोत्तम श्रीशचीनन्दन गौरहरि झाड़िखण्ड वनमें जाते समय प्रेमाविष्ट होकर भगवत्रामोंका उच्चारण कर रहे थे। इन नामोंका श्रवणकर शेर, बाघ, हिरन, खरगोश आदि खाद्य-खादकोंका सम्बन्ध भूलकर परस्पर मुख चुम्बन करते हुए श्रीमन्-महाप्रभुका अनुगमन कर रहे थे। भगवत्रामका श्रवणकर ये जानवर भी मृत्युभयसे मुक्त हो गए। मृत्युका भय सबसे बड़ा भय है। इसलिए कोई मरना नहीं चाहता। इस कारणसे ही इस पृथ्वी पर इतने चिकित्सक तथा असंख्य चिकित्सालय दिखाई पड़ते हैं। सभी दीर्घ काल तक जीवित रहना चाहते हैं। इसलिए किसी कविने लिखा है—‘मरिते चाहिना आमि सुन्दर भुवने। मानवेर माझे आमि बाँचिबारे चाइ।’ आपलोग अपनी-अपनी बात सोचकर देखिए। आपलोग मृत्युभयसे व्यथित

होकर इधर-उधर भटक कर समय बीता रहे थे। परन्तु आज आपलोग अपनी वर्तमान अवस्थाका अतीतके साथ तुलना कर देखिए। In the past all most all you were hippy. But by chanting the holy name, now you became happy. यह सुनकर पूरी सभा करतालिकी ध्वनिसे गूँज उठी।

बादमें Geeta Conference Committee ने अनेक बार फोन करके धन्यवाद अर्पण किया था। विशेषकर कमिटीके प्रधान बारंबार प्रबल उत्कण्ठाके साथ श्रीलमहाराजजीकी अगली विदेश-यात्राकी सूचीके बारेमें पुछ रहे थे। क्योंकि छः मास पहलेसे ही कार्यसूचीके बारेमें अवगत होनेसे वे अमेरिकाके किसी स्थान पर 7th Geeta Conference का आयोजनकर श्रील-महाराजजीकी वक्तृताकी व्यवस्था करेंगे।



हवाईमें समुद्रके किनारे श्रीलमहाराजजी श्रीब्रजनाथ प्रभु और श्रीवृन्दावनचन्द्र प्रभुके साथ

श्रीपाद माधव महाराजजीके साथ ग्रन्थ प्रकाशनके सम्बन्धमें गम्भीर आलोचनारत श्रीलमहाराजजी

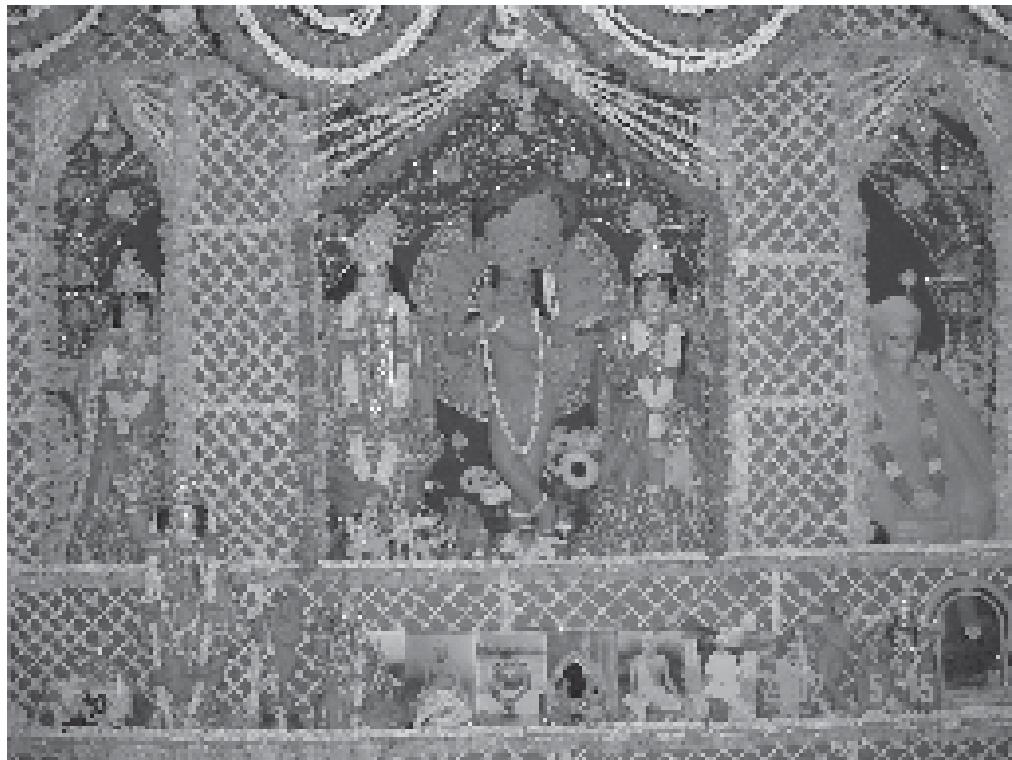




हवाई समुद्र कूलमें ग्रन्थ अनुवाद
कार्यरत श्रीलमहाराजजी



चन्दनोत्सवके दिन श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठमें श्रीगौर-राधा-विनोदविहारीजीका अनुपम शृङ्खर



चन्दनोत्सवके दिन वृन्दावनस्थित श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठमें फूल बंगलाका दृश्य



श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठमें चन्दनचर्चित श्रीविनोदविहारीजी

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः प्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्रं । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ श्रावण मास, सन् २००२, २५ जुलाई—२२ अगस्त

{ संख्या ५

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

(श्रीश्रीलठाक्कुरभक्तिविनोदकृत)

(वर्ष ४६, संख्या ४, पृष्ठ ७५ से आगे)

श्रीरूपधृभग्जनसागारमग्ननृभ्यो
स्वां दर्शयन् विजयमुद्धरति स्म भूतिं तं सर्वशक्तिविभवाश्रयणं स्मरामि ॥२७॥
निद्रात्यागः स्नपनमशनं गोदुमादौ विहारो ग्रामे-ग्रामे विचरणमहो कीर्तनञ्चात्पनिद्रा।
यामे-यामे क्रमनियमतो यस्य भक्तैर्भूवुस्तं गौराङ्गं भजनसुखदं हष्टयाहं स्मरामि ॥२८॥
यो वै संकीर्तनपरिकरैः श्रीनिवासादिसङ्घैस्तत्रत्यानां पतितजगदानन्दमुख्यद्विजानाम्।
दुर्वृत्तानां हृदयविवरं प्रेमपूर्णं चकार तं गौराङ्गं पतितशरणं प्रेमसिन्धुं स्मरामि ॥२९॥

भावावेशोनिखिलसुजनान् शिक्षयामास भक्तिं तेषां दोषान् सदयहृदयो मार्जयामास सक्षात्।
 भक्तिव्याख्यां सुजनसमितौ यो मुकुन्दश्चकार तं गौराङ्गं स्वजनकलुषक्षान्तिमूर्तिं स्मरामि ॥३०॥
 यो वै संकीर्तनसुखरिपुं चान्दकाजीं विशेष्य लास्योल्लासैर्नगरनिचये कृष्णगीतं चकार।
 वारंवारं कलिमदहरं श्रीनवद्वीपधान्मि तं गौराङ्गं नटनविवशं दीर्घबाहुं स्मरामि ॥३१॥
 गङ्गादासो मुररिपुभिषक् श्रीधरः शुक्लवस्त्रः सर्वे यस्य प्रणतिनिरताः प्रेमपूर्णा बभूवः।
 यस्योच्छिष्टाशनसुरतिका श्रीलनारायणी च तं गौराङ्गं परमपुरुषं दिव्यमूर्तिं स्मरामि ॥३२॥
 श्रीवासस्य प्रणयविवशस्तस्य सूनोर्गतासे-र्वक्त्रातत्त्वं परमशुभदं श्रावयामास तस्मै।
 तद्वासेभ्योऽपि च शुभमतिं दत्तवान् यः परात्मा बद्दे गौरं कुहकरहितं जीवनिस्तारकं तम् ॥३३॥
 गोपीभावात् परमविवशो दण्डहस्तः परेशो वादासक्तानतिजडमतीन् ताडयामास मूढान्।
 तस्माते यत् प्रतिभट्टया वैरभावानतन्वन् तं गौराङ्गं विमुखकदने दिव्यसिंहं स्मरामि ॥३४॥

अनुवाद—

[परलोकगत पं मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]
 भवन चन्द्रशेखर महालक्ष्मी तनु प्रभु धार।
 भक्तन प्यायो स्तन्य पय वत्सलता विस्तार॥
 अक्षर लेखक विजय कौ रत्न बाहुदरसाय।
 प्रभु वैभव मय कृपा कर तुरत लियो अपनाय ॥२७॥
 निद्रात्याग स्नपन पुनि गोदूम आदि विहार।
 ग्राम-ग्राममें विचरवो संकीर्तन रस सार॥
 दिव्य भाव भक्तन भये क्रमते सकल अमन्द।
 अष्टयाम पाये यही प्रभुजन परम आनन्द ॥२८॥
 जगदानन्द प्रमुख द्विज पतित किये उद्धार।
 कीर्तन परिकर श्रीनिवासादि भक्त सङ्घद्वार॥
 प्रभु निज भावावेश तें सुजनन भक्ति सिखाय।
 हृदय दोष मार्जन किये कृष्ण प्रेम रस पाय ॥२९॥
 निज सुजननकी समितिमें कीयौ भक्ति बखान।
 ऐसे करुणामय हरि करौ भक्ति रस पान॥
 नदिया वीथिनमें भयौ हरिसंकीर्तन शोर।
 पाखण्डी हरि विमुखजन हीये मत्सर घोर ॥३०॥
 सबन जाय नालिश करी यह काजी के पास।
 “होत उपद्रव जगतमें हुइ है देश विनास ॥”
 सुनत तुरत काजी उठी अपने दल बल संग।
 हरिकीर्तन वारन कियौ फोरे झाझ मृदंग॥
 नगर कीर्तन प्रभु कियौ लै निज परिकर संग।
 मत भये नागर सकल काजी गृह किय भंग।
 शुद्ध कियौ प्रभु ‘चांद-काजी’ भक्त बनाय॥

सुर दुर्लभ हरि भक्ति प्रभु यवनन हुइ लुटाय ॥
 नृत्य गन हरि कीरतन नदिया नगर मझार।
 लक्षन दीपक बालकै कियौ प्रभु प्रचार ॥
 नाम ब्रह्म सब नगर में छायौ वारंवार।
 नृत्य विवश गौरांग प्रभु किये जीव भवपार ॥३१ ॥
 मुररिपु गंगादास श्रीधर शुक्लाम्बर आप।
 भये प्रेम पूरन सबै प्रभु पद प्रणति प्रताप ॥
 प्रभु पावर उच्छिष्टके कण नारायणी पाय।
 अश्रुपुलक रोमांच युत भई भक्ति अधिकाय ॥३२ ॥
 प्रणय विवश श्रीवासके मृत मृत वचन सुनाय।
 जीव जन्म संसार कौ तत्त्व दियौ समझाय ॥३३ ॥
 गोपी भावन विवश प्रभु दण्ड हस्त उठि धाय।
 जड़ मति मूढ़ विवाद प्रभु पर दीने ताड़ भगाय ॥
 ते मूरख प्रतिकूल है कियौ वैर विस्तार।
 याही छल प्रभु विमुख जन कदन कियौ बहुबार ॥३४ ॥

(क्रमशः)

माला और तिलक-धारणकी नित्यता

—जगद्गुरु अँविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

वैष्णव लोग तुलसीकी माला और तिलक धारणका विशेष रूपसे आदर करते हैं। वे यह जानते हैं कि इसमें धृणा करनेकी कोई बात नहीं है, अधिकन्तु यह भगवत्-दासत्वका चिह्नस्वरूप है। हम जिनका दासत्व स्वीकार करते हैं, उनका दिया हुआ चिह्न हमारे लिए धारण करना आवश्यक होता है। जैसे अदालतके चपरासियोंके लिए अपनी-अपनी अदालतोंका चपरास धारण करना आवश्यक होता है, वैसे ही वैष्णवजन माला और तिलकरूप वैष्णव चिह्नोंको धारण करते हैं। जिन भगवान्‌का दासत्व हमने स्वीकार किया है, उनके द्वारा प्रदत्त चिह्नको धारण नहीं करनेसे उनकी अवहेला करनी हो जाती है, अतएव जिस धर्मको ग्रहण किया जाता है, उस धर्मके आनुसङ्गिक विषयोंको अवश्य ग्रहण करना चाहिए। किन्तु अधिकांश व्यक्ति यह नहीं समझते। वे लोग वैष्णवोंके माला-तिलकको देखकर नाक-भौं सिकोड़ते

हैं। इस माला-तिलक धारणके लिए ही बहुतसे व्यक्ति वैष्णव-धर्मको असभ्य जनोचित धर्म कहनेमें संकोच नहीं करते। जो माला-तिलक जनसाधारणके लिए इतनी धृणाका विषय है, शम्नोंमें इसके सम्बन्धमें क्या कहा गया है, यह जानना आवश्यक है। पद्मपुराणमें कहते हैं—
 यज्ञो दानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्।
 व्यर्थं भवति तत्सर्वमूर्द्धवपुण्ड्रं बिना कृतम्॥

तात्पर्य यह है कि जो लोग ऊर्द्धवपुण्ड्र (नाकसे लेकर ललाट तक ऊर्द्धवरूपसे जिस तिलकको लगाया जाता है, उसे ऊर्द्धवपुण्ड्र कहते हैं) नहीं करते, परन्तु यज्ञ, दान तप, होम, पितृतर्पण अर्थात् धर्मके लिए दूसरे सभी अनुष्ठान करते हैं, उनका वह सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। पद्मपुराणमें नारदजीने भी कहा है—
 यच्छरीरं मनुष्याणामूर्द्धवपुण्ड्रं बिना कृतम्।
 द्रष्टव्यं नैव तत्त्वात् श्मशान-सदृशं भवत्॥

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्रहित शरीरका दर्शन नहीं करना चाहिए, वह श्मशानकी तरह परित्याग करने योग्य है। स्कन्दपुराणमें कार्तिक माहात्म्यके प्रसङ्गमें कहा गया है—

ऊर्ध्वपुण्ड्र-मृदा शुभ्रो ललाटे यस्य दृश्यते।
चण्डालोऽपि विशुद्धात्मा याति ब्रह्म-सनातनम् ॥

अर्थात् जिनके मस्तकमें मृण्मय सफेद ऊर्ध्वपुण्ड्र देखा जाता है, वे चण्डाल होने पर भी पवित्र हैं। वे सनातन परब्रह्म स्वरूप भगवान्को पा लेते हैं।

अन्यत्र कहा गया है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थिता लक्ष्मीरूर्ध्वपुण्ड्रे स्थितं यशः।
ऊर्ध्वपुण्ड्रे स्थिता मुक्तिरूर्ध्वपुण्ड्रे स्थितो हरिः ॥
(स्कन्दपुराण, कार्तिक-प्रसङ्ग)

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्रमें लक्ष्मीजी निवास करती हैं, ऊर्ध्वपुण्ड्रमें ही कीर्तिकी स्थिति है, ऊर्ध्वपुण्ड्रमें ही भुक्ति है, और यह हरिका निवास-स्थान है। अतएव ऊर्ध्वपुण्ड्र (तिलक) कभी भी निन्दनीय या घृणा योग्य नहीं है। यह सब प्रकारके मङ्गलोंका कारण है। अतएव धर्मार्थी और मङ्गलकामी व्यक्तिमात्रको ही ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करना चाहिए। ब्रह्माण्ड-पुराणमें ऊर्ध्वपुण्ड्रके और भी गुण बतलाए गए हैं—

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मत्त्यो म्रियते यत्र कुत्रिचित्।
श्वपाकोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी व्यक्ति जिस स्थानमें जिस किसी प्रकारसे क्यों नहीं देहका त्याग न करें, वे चण्डाल होने पर भी विमानके द्वारा भगवान्के धाममें पहुँचकर आनन्दसे वहाँ निवास करते हैं। भगवान् कहते हैं—

ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मत्त्यो गृहे यस्यान्नमश्नुते।
तदा विशत् कुलं तस्य नरकादुद्धराम्यहम् ॥

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाला व्यक्ति जिनके घर पर भोजन करते हैं, मैं उनके बीस पीढ़ियोंके पुरुषोंका नरकसे उद्धार करता हूँ। जिस ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण करनेवाले व्यक्तिद्वारा घरमें भोजन करनेसे बीस पुरुष नरकसे मुक्त

होते हैं, वह ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी व्यक्ति कितना पवित्र होगा और वह ऊर्ध्वपुण्ड्र कितना महान गुण है, उसे कहा नहीं जा सकता। यदि हमें शास्त्रकी बातोंमें विश्वास है, तब तो ऊर्ध्वपुण्ड्र कभी भी उपेक्षणीय नहीं, प्रत्युत परम आदरणीय, वरणीय और मङ्गलपूर्ण है।

अब माला-धारणके विषयमें शास्त्र क्या कहते हैं, यह भी जानना चाहिए। गरुडपुराणमें कहते हैं—

धारयन्ति न ये मालां हृतुकाः पापबुद्धयः।
नरकान्न निवर्त्तन्ते दग्धो कोपाग्निना हरेः ॥

अर्थात् जो सब पापबुद्धयुक्त तार्किक व्यक्ति माला धारणा नहीं करते, वे हरिके कोपाग्निसे दग्ध होते हैं और वे नरकसे कभी लौटते नहीं।

विष्णुधर्मोत्तरमें भगवान् कहते हैं—

तुलसीकाष्ठ मालाञ्च एष्ठस्थं वहते तु यः।
अप्यशौचाद्यनाचारो मामेवैति न संशयः ॥

अर्थात् जो व्यक्ति तुलसीकाष्ठ निर्मित माला गलेमें धारण करते हैं, वे आचारभ्रष्ट अपवित्र होने पर भी मुझे प्राप्त होंगे—इस विषयमें सन्देह नहीं है।

इस तरह शास्त्र माला-तिलक धारणका अनुमोदन करते हैं और ऐसा न करने पर नरककी आशंका किए हैं। जब मनुष्यमात्र ही अपने-अपने धर्म शास्त्रके आदेशानुसार चलते हैं, तब माला और तिलक कैसे उपेक्षणीय हो सकते हैं?

इस लेखमें शास्त्रोंसे जो सब प्रमाण दिए गए हैं, उनसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि माला-तिलक जीवका अशेष कल्याण करते हैं। सभी शास्त्र ग्रन्थोंमें इसी तरहके कई प्रमाण पाए जाते हैं। बाहुल्यके भयसे और अधिक प्रमाण यहाँ उद्धृत नहीं हुए हैं। आशा है कि सनातन धर्मके मानने वाले हिन्दु लोग हिन्दु शास्त्रके आदेशका उल्लंघन नहीं करेंगे अथवा माला-तिलकधारी व्यक्तिको देखकर घृणा नहीं करेंगे और इस तरह अपने पापके बोझेको बढ़ने न देंगे।

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

(वर्ष ४६, संख्या ४, पृष्ठ ८० से आगे)

प्र. १२—आचार्य क्या करते हैं?

उ.—आचार्य भगवान्‌के संवादवाहक होते हैं। वे वैकुण्ठके संवादको हमतक पहुँचाते हैं। परन्तु गुरुके मुखसे निकलने वाले वैकुण्ठके संवादको केवल सेवोन्मुख कर्णके द्वारा ही सुना जा सकता है अर्थात् पूर्णरूपसे शरणागत होनेपर ही वैकुण्ठके संवादको समझा जा सकता है। वैकुण्ठके लोगोंके अलावा और कोई भी वैकुण्ठकी बातोंको ठीक-ठीक नहीं बता सकता। जिसने कभी कलकत्ता देखा है, केवल उसीसे कलकत्ताके विषयमें सुनना चाहिए। क्योंकि वही व्यक्ति कलकत्ताके विषयमें ठीक-ठीक जानकारी दे सकता है।

प्र. १३—संन्यास किसे कहते हैं?

उ.—निरन्तर हरिभजन ही वास्तविक संन्यास है। भगवान्‌के भक्त भुक्ति एवं मुक्तिसे संन्यास लेते हैं। अर्थात् वे भुक्ति अर्थात् भेगकी कामनाओंको तथा मुक्तिकी कामनाको पूर्णरूपसे परित्यागकर भक्तिदेवीके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करते हैं।

प्र. १४—साधुका क्या काम है?

उ.—चौबीस घण्टेमेंसे चौबीस घण्टे भगवान्‌के सम्पर्कमें रहना ही साधुका काम है तथा ऐसे साधुके श्रीमुखसे हरिकथा सुननेसे अवश्य ही भगवान्‌के प्रति दृढ़ विश्वास होगा तथा भगवान्‌की सेवाकी इच्छा जागृत होगी। साधु बननेके लिए ही साधुका सङ्ग करना होगा। शरणागत होकर साधुसङ्ग करने पर समस्त प्रकारकी परेशनियाँ अवश्य ही नष्ट हो जाएँगी। क्योंकि निष्कपटरूपसे शरणमें आए हुएको निर्भय, निश्चिन्त तथा सुखी करना ही साधुका काम है। संसारके बहिर्मुख लोगोंको भगवान्‌की ओर मोड़ना ही साधुका प्रधान एवं एकमात्र कार्य है तथा यही जीवोंके प्रति वास्तविक दया है। यदि वास्तवमें ही ऐसे साधुका सङ्ग किया जाए तो अवश्य ही मङ्गल होता है। साधुसङ्गका तात्पर्य केवल उनके साथ

रहना, खाना-पीना अथवा सोना नहीं है, बल्कि अपने पाण्डित्यका अभिमान, उच्च कुलका अभिमान, धनका अभिमान तथा सौन्दर्य इत्यादिका अभिमान त्यागकर दीन-हीन भावसे उनके पास जाकर उनसे हरिकथा सुननी चाहिए तथा उनके उपदेशोंके अनुसार आचरण भी करना चाहिए। हमारे जैसे बद्ध जीवोंका उद्धार करनेके लिए ही साधु इस जगतमें आते हैं। अतः हमारे जैसे बद्धजीवोंको मायाके फंदेसे बचाना ही उनका काम है।

प्र. १५—कैसे विचार ग्रहण करने पर कल्याण होगा?

उ.—संसारको भगवान्‌के सेवकके रूपमें देखने पर और किसी प्रकारका दुःख नहीं रहता। अपनी स्वतन्त्राको त्यागकर निष्कपटरूपसे शरणागत होकर भगवान्‌का भजन करनेसे एक जन्ममें ही भगवत् प्राप्ति हो सकती है। जो भगवान्‌का दर्शन करा सकते हैं, जो २४ घण्टे भगवान्‌की सेवा करते रहते हैं, ऐसे साधुओंके मुखसे ही भगवान्‌की कथाएँ सुननी चाहिए। तभी मङ्गल हो सकता है।

भक्तलोग भक्ति-नेत्रोंके द्वारा श्यामसुन्दर कृष्णका हृदयमें ही दर्शन करते हैं। ऐसे भक्तकी कृपा होने पर हम भी अपने हृदयमें भगवान्‌का दर्शन कर सकते हैं। अतः हमें और समय नष्ट न कर निरन्तर भगवान्‌की सेवामें लग जाना चाहिए। परन्तु सेवा सत्सङ्गमें ही रहकर करनी चाहिए। सदा-सर्वदा साधुओंके सङ्गमें रहनेसे ही सेवाकी रुचि बढ़ती है। भगवान् निष्कपटरूपसे शरणमें आए हुए भक्तकी समस्त इच्छाएँ पूर्ण करते हैं। ‘कृष्ण सङ्ग सत्य करे, जेइ मागे भृत्य।’ अर्थात् भक्त कृष्णसे जो भी माँगता है, भगवान् उसकी बातको सत्य कर देते हैं। हमें आश्रय प्रदानकर हमारी रक्षा करनेकी क्षमता केवल भगवान्‌में ही है, इसके अतिरिक्त और किसीमें नहीं, ऐसा दृढ़ विश्वास होने पर ही हम निर्भय, निश्चिन्त, सुखी

एवं सफल हो सकते हैं। यदि किसीको दृढ़ विश्वास हो जाय कि कृष्ण ही कल्याण करनेवाले हैं, तो उसका कल्याण निश्चित है। वास्तवमें भगवान्‌के श्रीचरणोंमें शरणागत होनेपर जैसा महाकल्याण होता है, उसको भाषाके द्वारा प्रकट करना असम्भव है।

प्र. १६—क्या श्रीविग्रह साक्षात् भगवान् हैं?

उ.—अवश्य ही। कृष्णके श्रीविग्रह साक्षात् कृष्ण ही हैं। स्वयं महाप्रभु बोले—‘प्रतिमा नहे तुमि साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन।’ अर्थात् आप विग्रह नहीं हैं, साक्षात् ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर ही हैं। श्रीविग्रह भगवान्‌के अर्चावतार हैं। भक्तके हृदयके देवता ही बाहर श्रीमूर्तिके रूपमें प्रकाशित होते हैं।

प्र. १७—गुरु कहाँ मिलेंगे?

उ.—कृष्ण अत्यन्त करुणामय हैं। अतः करुणाकर वे जिसे तुम्हारे गुरुके रूपमें भेजेंगे, वे ही महान्तगुरु (दीक्षागुरु) के रूपमें तुम्हारे सामने प्रकाशित होंगे। भगवान्‌की कृपासे गुरु मिलते हैं तथा गुरुकी कृपासे भगवान् मिलते हैं। अपने-अपने भाग्यके अनुसार ही गुरु मिलते हैं। भगवान् सर्वज्ञ हैं। अतः वे विभिन्न लोगोंकी विभिन्न चित्तवृत्तिके अनुसार वैसे ही गुरुको भेजते हैं। जो भगवान्‌की निष्कपट कृपा चाहते हैं अर्थात् केवल भगवान्‌की सेवा चाहते हैं तथा अपने आत्मकल्याणके लिए पूर्णरूपसे भगवान्‌के ऊपर निर्भर हैं, ऐसे सरल तथा निष्कपट व्यक्ति पर प्रसन्न होकर उस पर कृपा करनेके लिए वे स्वयं ही गुरुके रूपमें प्रकट होते हैं। शास्त्रोंमें जहाँ पर भी गुरुको भगवान्‌का स्वरूप बताया गया है, वहाँ पर ऐसे गुरुको ही समझना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो भगवान्‌की सेवा नहीं चाहते, बल्कि सांसारिक वस्तुएँ या भुक्ति एवं मुक्ति चाहते हैं, ऐसे कपटी लोगोंकी चित्तवृत्तिके अनुसार भगवान्‌की माया ही उनके निकट ऐसे ही कपटी (अवैष्णव) गुरुको भेज देती हैं। निष्कपट व्यक्ति कभी भी पथभ्रष्ट नहीं होता। भगवान् स्वयं उसे पथभ्रष्ट होनेसे बचाते हैं। अर्थात् शीघ्र ही किसी न किसी

प्रकार उसे सद्गुरुसे मिला देते हैं।

प्र. १८—क्या साधुसङ्ग सब समय करना चाहिए?

उ.—सदा-सर्वदा साधुसङ्ग करना चाहिए। क्योंकि सत्सङ्गके बिना हमारे जैसे दुर्बलवित्त व्यक्ति किसी भी प्रकारसे नहीं बच सकते। जब तक हम सत्सङ्गमें रहेंगे, तब तक हमारे हृदयमें एक ही भाव रहेगा कि मैं भगवान्‌का दास हूँ, संसारकी सभी वस्तुएँ भगवान्‌की सेवाके लिए हैं। अतः भगवान्‌की सेवा करना ही मेरा एकमात्र कर्तव्य है। परन्तु जैसे ही हम सत्सङ्गसे दूर हट जाते हैं, वैसे ही हमारे अन्दर स्वयं प्रभु होनेकी दुर्बुद्धि आ जाती है तथा उस समय हम संसारकी प्रत्येक वस्तुओंको अपनी भोगकी वस्तुके रूपमें देखने लगते हैं। अतः सब समय गुरु एवं वैष्णवोंकी आजाका पालन नहीं करनेसे भयङ्कर विपत्तियोंमें पड़ना पड़ता है। क्योंकि गुरु-वैष्णवोंका आदेश पालन करनेका अर्थ है—हम गुरु एवं वैष्णवोंके आश्रयमें हैं। परन्तु जैसे ही हम अपने आश्रयको त्याग देते हैं, वैसे ही पासमें खड़ी माया हमें दबोच लेती है तथा हमें चिरकालके लिए उसका नौकर बनकर घूमना पड़ता है।

प्र. १९—संसारसे हमारा उद्धार कैसे होगा?

उ.—भगवान्‌की कृपाके अतिरिक्त किसी भी प्रकारसे कभी भी किसीका भी उद्धार सम्भव नहीं है। जिस दिन जीव भूल जाता है कि हम भगवान्‌के खरीदे हुए दास हैं, उसी क्षण उसे मायाका दास होना पड़ता है। अर्थात् जीव सब समय दास ही रहता है। शुद्ध अवस्थामें वह भगवान्‌का दास तथा बद्ध अवस्थामें मायाका दास होता है। भगवान्‌की सेवा ही भक्ति तथा सांसारिक भोगोंकी इच्छा ही अभक्ति अथवा संसार है। इस दुःखमय एवं सर्वनाशक संसारसे बचनेका एकमात्र उपाय है—प्रणिपात, परिप्रश्न एवं सेवावृत्तिके साथ गुरु एवं वैष्णवोंसे कृष्णकी कथाओंको सुनना। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति इस संसारसे बचना चाहता है तो उसे गुरु-वैष्णवोंके पास जाकर अति नम्र होकर उनसे हरिकथा सुननी चाहिए

तथा अपनी सेवाप्रवृत्तिके द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए। वास्तवमें ही यदि कोई प्रीतिपूर्वक हरिकथा सुने तो उसकी संसार करनेकी इच्छा अवश्य ही पूर्णरूपसे नष्ट हो जाती है।

प्र. २०—क्या हम भी शिष्य कर सकते हैं?

उ.—जब तक कोई शुद्ध भक्त अर्थात् मुक्त न हो जाए, तब तक उसे शिष्य नहीं बनाने चाहिए। पहले सद्गुरुके श्रीचरणोंका आश्रय लेकर स्वयं शिष्य बनना चाहिए। उनके श्रीमुखसे हरिकथा सुनकर उसीके अनुसार आचरण भी करना चाहिए। तब दीनतापूर्वक हरिनाम कीर्तन करते-करते स्वयं भी गुरु बनना चाहिए। गुरु होनेका अर्थ है—कृष्णभक्त होना तथा अपनी समस्त इन्द्रियोंके द्वारा नित्य-निरन्तर कृष्णकी सेवा करना। शिष्य बनाने ही होंगे, ऐसी बात नहीं है। फिर भी भगवान्‌की इच्छा होनेपर शुद्धभक्त (मुक्तपुरुष) लोगोंके कल्याणके लिए दूसरोंको उपदेश देते हैं। परन्तु इसमें उनका अपना किसी भी प्रकारका स्वार्थ नहीं होता। अर्थात् वे शिष्य इसलिए नहीं करते कि शिष्य मेरी सेवा करेगा, मुझे धन-सम्पत्ति देगा या अधिक शिष्य होनेसे मेरा सम्मान बढ़ेगा। बल्कि लघु (संसारमें आसक्त भोगी व्यक्ति) को गुरु (श्रेष्ठ) बनाना, बहिमुख व्यक्तिको उन्मुख करना तथा सभीको कृष्णभक्त बनाना ही उनका एकमात्र उद्देश्य होता है। जब कोई कृष्णभजन आरम्भ कर देता है, तो यह देखकर उन्हें बहुत प्रसन्नता होती है।

प्र. २१—क्या गुरु कृष्णधनके धनी हैं?

उ.—हाँ। सारे जगतके मालिक भगवान् हैं, परन्तु उनके भी मालिक हैं—श्रीगुरुदेव। भगवान् श्रीकृष्ण श्रीगुरुदेवकी सम्पत्ति है। क्योंकि अपनी सेवाके द्वारा उन्होंने कृष्णको वशीभूत कर लिया है। उनकी इच्छाके बिना भगवान् किसी पर भी कृपा नहीं करते। इसलिए यदि कोई भगवान्‌का दर्शन या उनकी सेवा चाहता है तो उसे अवश्य ही गुरुकी शरणमें जाना पड़ता है। गुरुकी कृपाके बिना कृष्णकी कृपा या उनका दर्शन सम्भव नहीं है।

प्र. २२—भगवान्‌का दर्शन करनेका अर्थ क्या है?

उ.—भगवद् दर्शनका अर्थ है—२४ घण्टेमेंसे २४ घण्टे भगवान्‌की सेवा करना। आत्मधर्ममें अर्थात् अपने नित्यस्वरूपमें प्रतिष्ठित हुए बिना ऐसा सम्भव नहीं है। परन्तु गुरुकी कृपासे भजन करने पर भजनके प्रभावसे ही अन्दर तथा बाहर सर्वत्र ही कृष्णकी ही स्फूर्ति होती है, यही वास्तवमें भगवान्‌का दर्शन है।

प्र. २३—अन्तर्दर्शनकी क्या विशेष आवश्यकता है?

उ.—अवश्य ही। जगतकी वस्तुओंको अपने भोगकी वस्तुओंके रूपमें देखना ही बहिर्दर्शन है। यही माया दर्शन है। अतः इसका परित्याग करना आवश्यक है। परन्तु जब तक अन्तर्दर्शन अर्थात् भगवान्‌का दर्शन नहीं हो जाता, तब तक बहिर्दर्शन तो होगा ही। अर्थात् जब तक भगवान्‌की कुछ-कुछ अनुभूति नहीं हो जाती, तब तक संसारकी वस्तुओंके प्रति भोग बुद्धि दूर नहीं हो सकती। जैसे—लिफाफेके भीतर आई हुई चिढ़ीके विषयमें जाननेके लिए उत्कण्ठा होने पर लिफाफेको अच्छी तरहसे देखनेका समय भी नहीं होता कि लिफाफा अच्छा है या घटिया। उस समय एक ही चीज ध्यानमें रहती है कि चिढ़ीमें क्या लिखा है? ठीक इसी प्रकार संसारको भगवान्‌के सेवकके रूपमें देखने पर बाह्य अथवा मायाका दर्शन नहीं होता। संसारमें सर्वत्र ही भगवान् विराजमान हैं। प्रत्येक जीवके हृदयमें भगवान्‌का निवास स्थान है। मेरे हृदयमें भी वे विराजमान हैं, केवल मुझे सेवाका अवसर प्रदान करनेके लिए। यदि ऐसा विचार किसीके हृदयमें उदित हो जाए तो उसे सर्वत्र ही अपने इष्टका ही दर्शन होगा। तब कहीं जाकर उसका बहिर्दर्शन, लघुदर्शन या भोग्य दर्शन दूर होगा और तभी उसे सारा संसार सुखमय प्रतीत होगा। अर्थात् ऐसी अवस्था उपस्थित होने पर संसारमें उसका कोई भी शत्रु नहीं रहेगा तथा वह काम-क्रोध आदि शत्रुओंसे मुक्त होकर आनन्दपूर्वक रह सकता है।

(क्रमशः)

श्रीजगन्नाथजीका प्राकट्य

—श्रीपुरन्दर दास ब्रह्मचारी

नीलमाधवका प्राकट्य

श्रीजगन्नाथजीके प्राकट्य (प्रकट) के विषयमें अनेक कथाएँ एवं शास्त्रीय प्रमाण मिलते हैं। उत्कलभाषा (उड़िया भाषा) में रचित “देउल तोला” नामक पुस्तकमें जगन्नाथजीके प्रकट होनेके विषयमें एक कथा वर्णित है—ब्रह्माजीके प्रथम परार्थमें पतितोंका उद्धार करनेके लिए भगवान् श्रीनीलमाधव मूर्तिरूपमें शंखक्षेत्र अथवा नीलाचल (श्रीजगन्नाथपुरी) में अवतीर्ण हुए। उस समय मालवदेशके अवन्ती नगरमें श्रीइन्द्रद्युम्न नामक एक सूर्यवंशी राजा राज्य करते थे। वे भगवान्‌के परम भक्त थे। वे सदा-सर्वदा भगवान्‌का दर्शनके लिए व्याकुल रहते थे। एक दिन भगवान्‌के द्वारा प्रेरित एक परम वैष्णव राजा इन्द्रद्युम्नकी सभामें उपस्थित हुए। इन्द्रद्युम्नने उनका बहुत आदर किया तथा उनसे हरिकथा सुनने लगे। कथा बोलते-बोलते उन्होंने भगवान् नीलमाधवके विषयमें राजाको बताया। यह सुनकर इन्द्रद्युम्नको बहुत आनन्द हुआ तथा उन्होंने सभी दिशाओंमें नीलमाधवको खोजनेके लिए ब्राह्मणोंको भेज दिया। परन्तु कुछ दिन बाद ही सभी ब्राह्मण खाली हाथ (असफल होकर) लौटे, जिनका नाम विद्यापति था। वे घूमते-घूमते एक ऐसे देशमें पहुँच गए, जहाँ शबर नामक जंगली जातिके लोग रहते थे।

वहाँ पहुँचकर वे ‘विश्वावसु’ नामके एक शबरके घरमें उपस्थित हुए। उस समय घरमें विश्वावसुकी एक परम सुन्दरी कन्या अकेली थी। उसका नाम ललिता था। कुछ ही देर बाद उस घरका मालिक विश्वावसु वापस आ गया। उसने अपने घरमें एक ब्राह्मण अतिथिको देखा तो बहुत आनन्दित हुआ। उसने अपनी कन्याको विद्यापतिकी सेवामें नियुक्त कर दिया। तत्पश्चात् जब विद्यापतिको वहाँ पर रहते हुए कुछ दिन

बीत गए तो एक दिन उसके सौन्दर्य एवं गुणोंसे मोहित होकर विश्वावसुने उनसे अपनी कन्यासे विवाह करनेके लिए बहुत आग्रह किया। विद्यापति उनके आग्रहको ठुकरा नहीं पाए तथा उन्होंने उसकी कन्या ललितासे विवाह कर लिया। इस प्रकार वहाँ पर रहते हुए उन्होंने देखा कि प्रतिदिन रात्रिके समय शबर कहाँ बाहर चला जाता है तथा दूसरे दिन दोपहरके समय वापस लौटता है। उस समय उसके शरीरसे कर्पूर, कस्तुरी एवं चन्दन आदिकी दिव्य सुगन्ध आती थी। यह देखकर एकदिन विद्यापतिने अपनी पत्नी ललितासे इस विषयमें पूछा तो उसने बता दिया कि मेरे पिताजी रोज रातको भगवान् नीलमाधवकी सेवा करने जाते हैं।

इतने दिनोंके बाद भगवान् नीलमाधवके विषयमें जानकर उनकी प्रसन्नताकी सीमा न रही। अब वे नीलमाधवका दर्शन करनेके लिए बहुत उत्कण्ठित हो गए। अतः एक दिन उन्होंने अपनी पत्नीसे कहा कि तुम जैसे भी हो, अपने पितासे कहकर मुझे नीलमाधवका दर्शन करवाओ। उनका दर्शन करनेके लिए मेरा मन छटपटा रहा है। पतिकी ऐसी उत्कण्ठा देखकर ललिताका हृदय भी द्रवित हो गया। अतः उसने बहुत मुश्किलसे इसके लिए अपने पिताको मनाया। पुत्रीके आग्रहको विश्वावसु ठुकरा न सका। अतः वह इस शर्त पर विद्यापतिको नीलमाधवजीके पास ले जानेके लिए तैयार हुआ कि आते समय एवं जाते समय उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी जाएगी। इस प्रकार विश्वावसु विद्यापतिकी आँखोंमें पट्टी बाँध नीलमाधवका दर्शन कराने ले गया। परन्तु घरसे निकलनेसे पहले ही उसकी पत्नी ललिताने उसके कपड़ेके आँचलमें कुछ सरसोंके दाने बाँध दिए थे। वे सावधानीसे उन दानोंको रास्तेमें फेंकते हुए जा रहे थे। जब वे दोनों नीलमाधवके

सामने पहुँचे, तो विश्वावसुने उनके आँखोंकी पट्टी खोल दी। नीलमाधवके अद्भुत श्रीविग्रहका दर्शन कर विद्यापति आनन्दित होकर नृत्य तथा कीर्तन करने लगे। शबर विद्यापतिको वहीं पर छोड़कर स्वयं पूजाके लिए पुष्प एवं फल इत्यादि लानेके लिए जङ्गलमें चले गए। उसी समय उस राजपुरोहितने देखा कि एक वृक्षके नीचे एक अति सुन्दर कुण्ड था तथा उस वृक्षके ऊपर एक कौआ बैठा-बैठा सो रहा था। अकस्मात् वह कौआ उस कुण्डमें गिर पड़ा तथा उसने प्राण त्याग कर दिए। परन्तु आश्चर्यकी बात यह है कि प्राण त्याग करते ही उसका चतुर्भुज रूप हो गया तथा वह वैकुण्ठको चला गया। यह देखकर उन्होंने भी उस वृक्षपर चढ़कर उस कुण्डमें गिरकर प्राण त्याग करनेकी इच्छा की। परन्तु उसी समय आकाशवाणी हुई—“हे ब्राह्मण! तुमने नीलमाधवका दर्शन किए हैं। अब तुम पहले जाकर इन्द्रद्युम्नको इस विषयमें बताओ।”

यह सुनकर उन्होंने अपना विचार त्याग दिया। उसी समय विश्वावसु पूजाकी वस्तुएँ लेकर आ गया तथा उसने भगवान्की पूजा आरम्भ की। तब भगवान् ने उससे कहा—“विश्वावसु! मैंने इतने दिनों तेरे द्वारा दिए हुए फूल एवं फल इत्यादि ग्रहण किए, अब मैं अपने परमभक्त राजा इन्द्रद्युम्नकी राजसेवाको भी ग्रहण करना चाहता हूँ।”

यह सुनकर वह शबर यह सोचकर बहुत दुःखी हो गया कि मैं अब नीलमाधवकी पूजासे वञ्चित हो जाऊँगा। इसलिए उसने अपने दामाद विद्यापतिको बन्दी बना लिया। बादमें पुत्रीके बार-बार प्रार्थना करने पर उसने ब्राह्मणको मुक्त कर दिया। तब ब्राह्मणने राजा इन्द्रद्युम्नको भगवान् नीलमाधवके विषयमें जानकारी दी। यह सुनकर राजा तुरन्त अपनी सेनाके साथ नीलमाधवको लानेके लिए चल पड़े। अब तक विद्यापतिके द्वारा फेंके गए सरसोंके दानोंसे पौधे निकल आए थे, जो उनका मार्ग दर्शन कर रहे थे। परन्तु

वहाँ जाकर राजाको नीलमाधवका दर्शन नहीं हुआ। अतः उसने क्रोधित होकर अपने सैनिकोंके द्वारा शबर (विश्वावसु) को बन्दी बना लिया तथा उसके राज्यको चारों ओरसे घेर लिया। उसी समय राजाके लिए आकाशवाणी हुई—“हे राजन! शबरको छोड़ दो, तथा नीलाद्रि (नील पर्वत) के ऊपर एक मन्दिरका निर्माण करवाओ। तुम वहीं पर दारु ब्रह्म (काष्ठविग्रह) के रूपमें मेरा दर्शन कर पाओगे। नीलमाधवरूपमें तुम्हें मेरा दर्शन नहीं होगा।”

यह सुनकर इन्द्रद्युम्नने शबरको मुक्त कर दिया तथा वापस अपनी राजधानीमें आ गए। उन्होंने मन्दिर बनवानेके लिए ‘बउल’ नामक स्थानसे पत्थर मँगवाकर नीलाचल, जिसका आकार एक शंख जैसा है, इसलिए इसका नाम श्रीशंखक्षेत्र भी है, उसके नाभि (मध्यस्थान) में एक विशाल मन्दिर बनवाया। वह मन्दिर जमीनके नीचे ६० फुट तथा जमीनसे बाहर १२० फुट ऊँचा था। मन्दिरके ऊपर एक कलश तथा कलशके ऊपर एक चक्र स्थापित किया गया। इसके बाद सम्पूर्ण मन्दिर सोनेसे मढ़ दिया गया। मन्दिरका कार्य पूर्ण होनेके बाद राजा इन्द्रद्युम्न ब्रह्माजीके हाथोंसे मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवानेके लिए उन्हें लानेके लिए ब्रह्माजीके लोक (ब्रह्मलोक) में उपस्थित हुए। परन्तु किसी कारणवश उन्हें कुछ समय ब्रह्माजीकी प्रतीक्षा करनी पड़ी। इसबीच इधर पृथ्वी लोकमें हजारों वर्ष बीत गए, जिसके फलस्वरूप वह मन्दिर बालुसे ढक गया था तथा वहाँ अनेक राजा राज्य करके चले गए थे। अन्तमें गालमाधव नामके एक राजाने बालुको हटवाकर नीचेसे खुदवाकर उस मन्दिरको बाहर निकलवाया। जब राजा इन्द्रद्युम्न ब्रह्माजीके साथ वापस अपने राज्यमें पहुँचे, तो देखा कि वहाँका राजा तो कोई और ही है। उसके अपने बन्धु-बान्धवों एवं कर्मचारियों इत्यादिका कुछ पता ही नहीं था तथा उस राजाने उस मन्दिर पर भी अपना अधिकार कर लिया था। यह देखकर

जब राजा इन्द्रद्युम्न उसके पास गए तथा उसे बताया कि यह मन्दिर मेरा है तो वह इसे माननेको तैयार नहीं हुआ। परन्तु मन्दिरके निकटमें ही बरगदका एक कल्पवृक्ष था। उस पर 'भुषण्ड' काक (कौआ) कितने ही युगोंसे 'रामनाम' जप रहे थे। उन्होंने वहाँ पर घटने वाली समस्त घटनाओंको प्रत्यक्ष देखा था। अतः उन्होंने बताया कि मन्दिरका निर्माण वास्तवमें राजा इन्द्रद्युम्नने ही किया था। परन्तु जब इनकी अनुपस्थितिमें यह बालुसे ढक गया था, तब बहुत समयके बाद राजा गालमाधवने उस बालुको हटवाकर इस मन्दिरको बाहर निकलवाया। यह सुनकर ब्रह्माजीने राजा गालमाधवको झूठ बोलनेके कारण मन्दिरके बाहर इन्द्रद्युम्न सरोवरके पश्चिम दिशामें रहनेका आदेश दिया। अब जब राजा इन्द्रद्युम्नने ब्रह्माजीसे मन्दिरकी प्रतिष्ठाके लिए प्रार्थना की तो ब्रह्माजी बोले—“यह स्थान भगवान्‌की स्वरूपशक्तिके द्वारा प्रकाशित है तथा यहाँ पर भगवान् भी स्वतः प्रकाशित हैं। इसलिए इनकी प्रतिष्ठा करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है, क्योंकि भगवान् जगन्नाथ तथा उनका यह धाम इस जड़ जगतमें उनकी कृपासे ही प्रकाशित है। तब भी मैं आपका मन रखनेके लिए इस मन्दिरके शिखर पर एक ध्वजा (झण्डा) बाँध देता हूँ। जो भी व्यक्ति दूरसे ही इसे देखकर दण्डवत् प्रणाम करेगा, वह सहजरूपमें ही मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

श्रीदारुब्रह्मके रूपमें प्राकट्य

नीलमाधवका दर्शन न कर पानेके कारण राजा इन्द्रद्युम्न बहुत दुःखी हो गए। उन्होंने अनशन व्रत धारणकर प्राण त्यागनेका संकल्प कर लिया। अतः वे कुशकी शय्या बिछाकर उसपर लेट गए। तब श्रीजगन्नाथजीने उन्हें स्वप्नमें आदेश दिया—“हे राजन्! तुम चिन्ता मत करो। समुद्रके 'वाङ्किमुहान' अर्थात् चक्रतीर्थके निकट मैं दारुब्रह्मके रूपमें बहते-बहते उपस्थित होऊँगा।”

यह सुनकर दूसरे दिन जब राजा मन्त्रियों एवं अन्यान्य लोगोंके साथ उस स्थानपर पहुँचे

तो उन्होंने वहाँ पर एक बहुत बड़ी लकड़ीको (दारुब्रह्म) देखा। उस पर शंख, चक्र, गदा, पद्म आदि चिह्न अंकित थे। राजाने उसे उठानेके लिए बहुतसे बलवान लोगोंको लगाया, परन्तु वे दारुब्रह्म टससे मस नहीं हुए। अन्तमें जगन्नाथजीने ही स्वप्नमें आदेश दिया—“हे राजन्! मेरे पूर्व सेवक विश्वावसु जो मेरे नीलमाधवस्वरूपकी सेवा करता था, उसे यहाँ बुलवाओ तथा मेरे लिए सोनेका रथ मँगवाओ।”

राजाने आदेशानुसार विश्वावसुको बुलवाया तथा एक उत्तम सोनेका रथ मँगवाया। तब उस दारुब्रह्मको विश्वावसुने एक ओरसे तथा विद्यापतिने दूसरी ओरसे पकड़ा। उस समय चारों ओरसे सभी हरिनाम संकीर्तन करने लगे तथा राजाने दारुब्रह्मके श्रीचरणोंको पकड़कर उनसे रथपर विराजमान होनेके लिए निवेदन किया तो वे सहजरूपमें ही रथमें विराजमान हो गए। इस प्रकार उन्हें लेकर राजा निर्दिष्ट स्थानपर ले गए तथा वहाँ पहुँचकर ब्रह्माजीने उस स्थानपर यज्ञ आरम्भ किया। अब इन्द्रद्युम्न महाराजने दारुब्रह्मको मूर्तिरूपमें प्रकट करनेके लिए बहुतसे अतिनिपुण कारीगरोंको बुलवाया। किन्तु उनमेंसे कोई भी दारुब्रह्मको स्पर्श ही न कर पाए। उनके सभी औजार टुकड़े-टुकड़े हो गए। अन्तमें एक दिन एक वृद्ध कारीगर राजाके पास आया तथा बोला—“मैं श्रीविग्रह बना सकता हूँ। परन्तु शर्त यह है कि मैं बन्द कमरेमें २० दिनों तक विग्रह बनाऊँगा। इस बीच कोई भी दरवाजा नहीं खोलेगा।” यह सुनकर राजाने कारीगरको आदेश प्रदान कर दिया तथा उस वृद्ध कारीगरके उपदेशानुसार वहाँ पर उपस्थित अन्य सभी कारीगरोंको तीन रथ बनानेमें लगा दिया। तब वे वृद्ध कारीगर दारुब्रह्मके मन्दिरके भीतर ले गए तथा द्वार बन्द कर दिया।

किन्तु अभी एक सप्ताह ही बीता था कि मन्दिरके अन्दर किसी प्रकारकी आवाज न सुनकर राजा उत्कण्ठित हो गए। मन्त्रियोंके

बार-बार निषेध करने पर भी महारानीके परामर्शसे राजाने बलपूर्वक अपने हाथोंसे ही द्वार खोल दिया। परन्तु आश्चर्य, मन्दिरके भीतर वह वृद्ध कारीगर नहीं था। केवल दारुब्रह्म तीन मूर्तियोंके रूपमें प्रकटित थे। जब उन्होंने और निकट जाकर दर्शन किया तो पाया कि अभी उन श्रीमूर्तियोंके हाथोंकी अंगुलियाँ तथा श्रीचरणकमल तैयार नहीं हुए थे। उनके विद्वानमंत्री कहने लगे कि वह कारीगर और कोई नहीं, स्वयं जगन्नाथजी ही थे। राजाकी भूलके कारण ही उन्होंने स्वयंको इन रूपोंमें प्रकटित किया है। तब राजाने स्वयंको बहुत बड़ा अपराधी जानकर शरीरत्याग करनेका संकल्प किया। परन्तु ठीक आधीरातके समय श्रीजगन्नाथजीने राजाको स्वन्दमें आदेश दिया—“हे राजन्! मैं इसी दारुब्रह्मके रूपमें नीलाचलमें स्थित हूँ। मेरा नाम पुरुषोत्तम है। मैं इस धराधाममें अपने धामके साथ अर्चावतारके रूपमें अवतरित होता हूँ। यद्यपि मेरे प्राकृत हाथ-पैर नहीं हैं, परन्तु दिव्य हस्त एवं पद आदिके द्वारा भक्तोंके द्वारा दिए हुए वस्तुओंको प्रेमपूर्वक ग्रहण करता हूँ। इसके अतिरिक्त वेदोंमें मेरी प्रतिज्ञा है कि मैं जगत-कल्याणके लिए सर्वत्र ही विचरण करता हूँ, अपनी इस प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिए तथा तुमने जो अपनी प्रतिज्ञा भंग की, उस विषयमें एक लीलामाधुरी प्रकट करनेके लिए मैं इस स्वरूपमें प्रकटित हुआ हूँ। परन्तु मेरे प्रेमी भक्त सदा-सर्वदा मुझे श्यामसुन्दर स्वरूपमें दर्शन करते हैं—‘प्रेमाङ्गनच्छुरित भक्ति विलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।’ फिर भी यदि तुम्हारी इच्छा ऐश्वर्य भावसे मेरी सेवा करनेकी है, तो तुम कभी-कभी स्वर्णनिर्मित या रौप्यनिर्मित (चाँदीके द्वारा निर्मित) हस्त-पदकमलके द्वारा मेरा शृङ्खला कर सकते हो। परन्तु एक बातका सर्वदा ही स्मरण रखना कि मेरा श्रीअङ्ग भूषणोंका भूषणस्वरूप है अर्थात् मेरा श्रीअङ्ग आभूषणोंकी शोभाको भी बढ़ानेवाला है।”

स्वन्दमें भगवान् जगन्नाथजीका दर्शन कर एवं उनकी वाणीको श्रवणकर राजा कृतार्थ हो गए। उन्होंने भगवान्से प्रार्थना की—“हे प्रभो! जिस कारीगरने इन श्रीविग्रहोंको प्रकट किया, उसीके वंशधर युग-युगोंतक जीवित रहकर तीन रथोंका निर्माण करें।” यह सुनकर श्रीजगन्नाथजी हँसते हुए बोले—“राजन्! ऐसा ही होगा।” तत्पश्चात् जगन्नाथजी राजासे बोले—“जो विश्वावसु नीलमाधवके रूपमें मेरी सेवा करता था, उसीके वंशधर युग-युगोंतक मेरी सेवा करेंगे तथा उनका नाम ‘दयिता’ होगा। विद्यापतिकी ब्राह्मण पत्नीके गर्भसे उत्पन्न वंशधर मेरा अर्चन करेंगे तथा उसकी शबर जातिकी पत्नी ललितासे उत्पन्न सन्तान मेरे लिए रसोई बनाएँगे, उनका नाम ‘सूर्यार’ (सूपकार) होगा।”

यह सुनकर राजा इन्द्रद्युम्नने भगवान्से प्रार्थना की—“हे प्रभो! आप मुझे एक वरदान दीजिए कि प्रतिदिन एक प्रहर अर्थात् मात्र तीन घण्टे आपके मन्दिरका द्वार बन्द रहेगा तथा बाकी समय जगतके वासियोंके दर्शनके लिए खुला रहेगा। इसके अतिरिक्त सारा दिन आप भोजन करते रहेंगे तथा आपके हस्तकमल कभी न सूखेंगे।” यह सुनकर जगन्नाथ तथास्तु कहकर बोले—“राजन्! तुम अपने लिए भी कुछ वर माँगो।” यह सुनकर राजा बोले—“प्रभो! मैं यही वर चाहता हूँ कि मेरा सारा वंश ही समाप्त हो जाय, जिससे भविष्यमें कोई भी आपके मन्दिरको अपनी सम्पत्ति न समझे।” जगन्नाथजीने भी प्रसन्न होकर तथास्तु कहकर उन्हें वरदान दे दिया।

श्रीरथयात्रा

रथयात्राका उत्सव पुरुषोत्तम धामका एक प्रधान उत्सव है। इसका नाम नवयात्रा, गुण्डचायात्रा, नन्दघोषयात्रा, पतितपावन यात्रा भी है। श्रीजगन्नाथजीने महाराजा इन्द्रद्युम्नको आदेश दिया था—“आषाढ़ मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें सुभद्राके साथ मुझे एवं बलरामको रथमें बैठाकर नवयात्रा उत्सव मनाना। जहाँसे मैं आविर्भूत हुआ तथा जहाँ पर तुमने सहस्र अश्वमेध यज्ञ किए, उस

गुण्डचा मन्दिरमें मुझे ले जाना।” तबसे प्रतिवर्ष आषाढ़ मासकी शुक्ला द्वितीया तिथिमें यह रथयात्रा महोत्सव मनाया जाता है, जिसका दर्शन करनेके लिए दूर-दूरसे हजारों लोग आते हैं। स्वयं श्रीचैतन्य महाप्रभु संन्यास ग्रहणकर जब पुरीमें उपस्थित हुए तो रथयात्राके समय अपने हजारों भक्तोंको साथ लेकर वे भी रथयात्रा महोत्सवमें सम्मिलित हुए, जिसका श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थमें अपूर्ण ढंगसे वर्णन मिलता है।

बहुत दिनोंके बाद कुरुक्षेत्रमें कृष्णसे मिलनेके बाद गोपियोंकी जो अवस्था हुई, उन्हीं भावोंमें आविष्ट होकर महाप्रभु श्रीगौरसुन्दर श्रीराधिकाजीके भावमें आविष्ट होकर कृष्णसे निवेदन कर रहे हैं—‘हे कृष्ण! आज वर्षों बाद आपसे मिल रही हूँ। परन्तु फिर भी मेरा मन उतना प्रसन्न नहीं है क्योंकि वृन्दावनमें आप गोपवेशमें रहते थे। वहाँ आपके अधरों पर वंशी सुशोभित होती थी, आपके गलेमें अनेक प्रकारके बनफूलोंसे बनी

माला होती थी। सिर पर मोरपंख चराचर प्राणियोंके मनको हर लेता था। परन्तु यहाँ सब विपरीत है। यहाँ पर आपका राजवेश है। आपने सिरपर हीरे-मोतियोंसे जड़ा हुआ मुकुट धारण किया है तथा शरीर पर अनेकों बहुमूल्य आभूषण धारण किए हैं। यहाँ पर न तो आपके हाथोंमें वंशी है, न सिर पर मोरमुकुट और न ही गलेमें बनफूलकी माला। अतः वृन्दावनमें आपका दर्शन पाकर मुझे जैसा सुख मिलता था, यहाँ पर उसका एक अंश भी नहीं मिल रहा है। यदि आप मुझे प्रसन्न देखना चाहते हैं तथा मुझपर कृपा करना चाहते हैं तो हमारे साथ वृन्दावनमें ही चलिए।” उनका यह निवेदन मानो कृष्णने स्वीकार कर लिया। अतः वे अति प्रसन्न होकर अपनी समस्त सखियोंके साथ मिलकर अपने प्राणनाथको रथमें बिठाकर नीलाचलरूप कुरुक्षेत्रसे सुन्दराचल (गुण्डचा मन्दिर) रूप वृन्दावनको ले जा रहे हैं।

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष ४६, संख्या ४, पृष्ठ ९१ से आगे)

यह सोचकर श्रीनित्यानन्दप्रभु हरिदासजीसे बोले—“हरिदासजी! देखिए तो, इन दोनोंकी कैसी दुर्गति हो रही है। ब्राह्मणकुलमें जन्म ग्रहणकर भी ये दोनों ऐसे भयङ्कर पाप कर रहे हैं। इस तरहसे तो इन दोनोंको नरककी यातना भोग करनी पड़ेगी। हरिदास! जब आपको मुसलमानोंने मारते-मारते बाइस बाजारोंमें घुमाया, उस समय भी आपके हृदयमें उनके प्रति लेशमात्र भी क्रोध उत्पन्न नहीं हुआ। बल्कि उस समय आप मन ही मन भगवान्से उनके कल्याणके लिए प्रार्थना कर रहे थे। अतः यदि आप मन ही मन भी किसीके कल्याणके विषयमें सोचते हैं तो अवश्य ही उसका उद्धार हो जाता है। इसलिए यदि आप एक बार भी इन दोनोंके उद्धारके लिए संकल्प

करेंगे, तो भगवान् आपके संकल्पको पूर्ण करनेके लिए अवश्य ही इनका उद्धार करेंगे। इस प्रकार सारा जगत हमारे प्रभुके प्रभावको देखेगा। श्रीमद्भगवत्में वर्णन है कि अजामिल नामक महापापीका उद्धार हुआ था, परन्तु आज सभी लोग प्रत्यक्षरूपसे प्रभुकी अद्भुत महिमाका दर्शन करेंगे।”

यद्यपि नित्यानन्दप्रभु हरिदासजीसे ऐसी बात कर रहे थे, परन्तु हरिदास नित्यानन्दजीकी महिमा अच्छी तरह जानते थे। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था कि जब इनकी शुभ दृष्टि उन दोनों पापियों पर पड़ गई है, तो इनका उद्धार शीघ्र ही होनेवाला है। यह सोचकर बोले—‘हे महाशय! आपकी इच्छा प्रभुकी इच्छा है अर्थात् जब

आपकी इन दोनोंके उद्घारकी इच्छा हुई है तो अवश्य ही श्रीगौरसुन्दरकी भी यही इच्छा है।” यह सुनकर नित्यानन्दप्रभुने हँसते हुए उन्हें अपने गलेसे लगा लिया तथा अत्यन्त कोमलतापूर्वक कहने लगे—“हम दोनों ही प्रभुके जिस आदेशको लेकर धूम रहे हैं, चलें वह आदेश इन दोनों शराबियोंको भी सुनाते हैं। क्योंकि हम दोनों प्रचारक हैं। इसलिए यह हमारा तो कर्तव्य ही है तथा प्रभुका उपदेश भी है कि हम सभीके पास जाएँ तथा उन्हें कृष्णभजनका उपदेश सुनाएँ। उस पर भी ऐसे पापियोंको विशेषरूपसे। प्रभुका आदेश सुनाना हमारा काम है, फिर कोई उसे पालन करे या न करे, उस पर निर्भर है।” ऐसा विचारकर ये दोनों उन शराबियोंकी ओर चल पड़े। इन दोनोंको उन दुष्टोंकी ओर जाते देखकर आस-पासके सज्जन पुरुषोंने इन्हें मना किया कि आप दोनों वहाँ मत जाइए। क्योंकि ये दोनों दुष्ट हैं। यदि इन्होंने आपलोगोंको पकड़ लिया, तो जानसे मार डालेंगे। हम तो भयके कारण इनसे बहुत दूर रहते हैं। परन्तु आप दोनों कैसे साहसी हैं जो इनके पास जाकर साक्षात् मृत्युको बुला रहे हों। आप यह मत सोचिए कि आपको साधु मानकर ये छोड़ देंगे। जो गोहत्या, ब्राह्मणहत्या जैसे अनगिनत पाप कर चुके हैं, उनके लिए साधुवेशका क्या महत्त्व हो सकता है!” परन्तु लोगोंके लाख मना करने पर भी ये दोनों माने नहीं तथा ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहते हुए कौतूहलपूर्वक उन दोनोंके इतने निकट चले गए कि वे आसानीसे इनकी बात सुन पाएँ। वहाँ जाकर जोर-जोरसे उन दोनोंको प्रभुका आदेश सुनाने लगे—“कृष्ण बोलो तथा कृष्णका भजन करो। क्योंकि कृष्ण ही माता-पिता-धन- सम्पत्ति सभी कुछ हैं। तुम लोगों पर कृपा करनेके लिए ही यहाँ कृष्णका अवतार हुआ है। अतः अब तुम दोनों समस्त प्रकार पापकर्मोंको छोड़कर ऐसे परम दयालु कृष्णका भजन करो।”

यह सुनकर उन दोनोंने सिर उठाकर देखा

तो सामने इन दोनोंको देखकर क्रोधके कारण उनकी आँखोंसे अंगारे बरसने लगे। गुस्सेमें खड़े होकर वे दोनों ‘पकड़ो-पकड़ो’ कहते हुए इन दोनोंको पकड़नेके लिए दौड़े। उन्हें अपनी ओर आते देखकर हरिदास तथा नित्यानन्द दोनों ही जल्दीसे वहाँसे भाग लिए। परन्तु वे दोनों भी वहाँ पर रुके नहीं, बल्कि तेजीसे इनके पीछे भागने लगे। यह देखकर तो ये दोनों डरके मारे और भी तेजीसे दौड़ने लगे। उन दोनों पापियोंको इन दो साधुओंके पीछे दौड़ते देखकर आस-पासके सज्जन लोग दुःखी होकर परस्पर एक दूसरेसे कहने लगे—“हमने पहले ही कहा था कि वे पापी हैं, उनके पास मत जाना। परन्तु ये माने नहीं। अब आज इनकी मृत्यु निश्चित है।” इसलिए वे सभी भगवान्को पुकारने लगे—“हे कृष्ण ! इन दोनों साधुओंकी रक्षा कीजिए।” परन्तु पाषण्डियोंको यह देखकर अपार आनन्द हो रहा था। वे जोर-जोरसे हँसते हुए कहने लगे—“अच्छा हुआ, भगवान् ने इन दोनों ढोंगियोंको अच्छी तरहसे सबक सिखा दिया।” उधर आगे-आगे दोनों प्रभु दौड़ रहे थे तथा उनके पीछे-पीछे नशेमें लड़खड़ाते हुए ये दोनों दुष्ट। दौड़ते-दौड़ते नित्यानन्दप्रभु परिहासपूर्वक कहने लगे—“हमारे उपदेश सुनकर तो ये अच्छे वैष्णव बन गए हैं जो हमारे प्राण लेने पर उतारु हो गए हैं। आज यदि इनके हाथोंसे हम बच जाएँ तो समझो कि हमने सब पा लिया।” यह सुनकर हरिदास कुछ बिगड़कर कहने लगे—“अब यह सब बोलनेसे क्या लाभ है ? आपकी उत्पाती बुद्धिसे ही आज हमारी अकाल मृत्यु होनेवाली है। पहले तो कुछ सोचा नहीं, सीधे चल पड़े ऐसे शराबियोंको कृष्णभक्तिका उपदेश देने। अच्छा हुआ, अब उसीका दण्ड भोग कीजिए।” ऐसे परस्पर प्रेमकलह करते-करते वे दोनों आगे-आगे दौड़ रहे थे। उनके पीछे-पीछे ये दोनों शराबी गालियाँ बकते हुए दौड़ रहे थे। यद्यपि वे दोनों दुष्ट नशेमें थे तथा उनका शरीर भी भारी था, परन्तु फिर भी

वे तेजीसे उन दोनोंको पकड़नेके लिए दौड़ रहे थे तथा कह रहे थे—“जरा रुको तो सही। आज हम तुम्हें बताते हैं कि जगाइ तथा माधाईसे मजाक करनेका क्या फल होता है।” यह सुनकर ये दोनों प्रभु भयभीत होकर ‘हे कृष्ण! हे गोविन्द! रक्षा करें, रक्षा करें’ कहकर पुकारने लगे। दौड़ते-दौड़ते हरिदासजी कहने लगे—“मैं और भाग नहीं सकता। न जाने आज मेरी ऐसी दुबुद्धि क्यों हुई कि मैं जान-बूझकर इस चञ्चलके साथ इन दुष्टोंके पास चला गया। एक बार कालयवनके हाथोंसे (मुसलमान काजीके हाथोंसे) कृष्णने मेरी रक्षा की, परन्तु आज इस चञ्चलके कारण फिर मेरे प्राण जानेवाले हैं।” यह सुनकर नित्यानन्दप्रभु कुछ प्रणयरोषपूर्वक कहने लगे—“मैं चञ्चल नहीं हूँ। चञ्चल आपके प्रभु हैं। जरा विचार तो कीजिए कि ब्राह्मण होकर भी वे ऐसे आदेश प्रदान करते हैं, मानो कोई राजा हों। उर्होंका आदेश पालन करनेके लिए घर-घर धूम रहा हूँ। परन्तु उनका आदेश तो कोई मानता नहीं, उल्टा हमें चोर-डकैत अथवा ढोंगी बताते हुए लोग मारने आते हैं। अब आप ही बताइए हम क्या करें? प्रभुका आदेश पालन न करें तो सर्वनाश हेता है, करें तो यह फल मिलता है और आप हैं कि अपने प्रभुका दोष नहीं देख रहे हैं, सारा दोष मेरा ही देख रहे हैं।”

इस प्रकार वे दोनों आनन्दकलह करते हुए प्रभुके घरकी ओर दौड़ रहे थे। नशेमें होनेके कारण वे दुष्ट कुछ थक गए तथा कुछ पीछे रहे गए। अतः वे इन दोनोंको देख नहीं पाए कि ये किस ओर गए। वे दोनों वहीं पर खड़े होकर गाली-गलौज करते हुए आपसमें ही मार-पीट करने लगे। बहुत आगे निकल जानेके बाद दोनों प्रभुओंने पीछे मुड़कर देखा तो उन्हें कहीं भी वे दुष्ट दिखाई नहीं दिए। अतः दोनों ही आनन्दसे प्रभुसे मिलनेके लिए चल पड़े। उस समय प्रभु वैष्णवमण्डलीके मध्य विराजमान होकर कृष्णकी

कथाओंका वर्णन कर रहे थे तथा वैष्णववृन्द आनन्दसे उस कथामृतका पान कर रहे थे। उसी वक्त ये दोनों वहाँ पर पहुँच गए तथा प्रभुको इस घटनाके विषयमें बताने लगे—“प्रभो! आज तो हमने एक अपूर्व घटना देखी। दो ब्राह्मण शराबके नशेमें मत्त होकर आपसमें ही मारा-मारी तथा गाली-गलौज कर रहे थे, जब हमने उनकी ऐसी अवस्था देखी तो हमें दया आ गई। इसलिए हमलोग उन्हें समझानेके लिए अर्थात् आपका उपदेश सुनानेके लिए उनके पास चले गए। जैसे ही हमने कहा ‘तुम कृष्ण-कृष्ण बोलो’, वे दोनों बिगड़ गए तथा हमें मारनेके लिए हमारे पीछे पड़ गए। भगवान्‌की विशेष कृपासे ही आज हमारे प्राण बच गए।”

प्रभु—“वे दोनों कौन हैं तथा ब्राह्मण होकर ऐसे घोर पाप कर्म क्यों कर रहे हैं?” यह सुनकर पासमें ही बैठे हुए गङ्गादास तथा श्रीवासजी बताने लगे—“प्रभो! उन दोनोंका नाम जगाइ-माधाइ है। दोनों ही ब्राह्मण हैं। परन्तु दुष्टोंके सङ्गमें पड़ जानेके कारण उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई तथा बचपनसे ही उन्होंने मदिरापान करना शुरू कर दिया है। सारा नवद्वीप उन दोनोंसे भयभीत रहता है। ऐसा कोई घर नहीं है, जहाँ उन्होंने चोरी न की हो। इसके अतिरिक्त जितने प्रकारके घोर पाप कार्य वे करते हैं, उनका वर्णन करना भी मुश्किल है। प्रभो! आपको अधिक क्या बताएँ, आप भी तो ये सब जानते ही हैं।”

प्रभो—“हाँ-हाँ। मैं उन दोनों दुष्टोंको जानता हूँ। यदि वे यहाँ आ गए तो मैं उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा।”

नित्यानन्द (मुस्कुराते हुए)—आप उनके टुकड़े करें या न करें, परन्तु इतना निश्चित है कि जबतक वे दोनों यहाँ रहेंगे, तबतक हमलोग प्रचार करने नहीं जाएँगे। यहाँ बैठे-बैठे तो आप बहुत वाहवाही दिखाते हैं, पहले उन दोनों दुष्टोंके मुखसे ‘गोविन्द’ नाम बुलवाइए, तब आपकी महिमा मार्ने। स्वभावसे ही धर्मिक

व्यक्तिसे भजन करवाना कोई बड़ी बात नहीं है। यदि आप भक्ति प्रदानकर उन दोनों दुष्टोंका उद्धार करेंगे तभी मैं स्वीकार करूँगा कि आपका नाम पतितपावन है। क्योंकि मेरा उद्धारकर आपकी जैसी ख्याति हुई, उससे सैकड़ों गुना ख्याति उन दोनोंके उद्धारसे होगी।”

प्रभु (हँसते हुए)—“श्रीपाद नित्यानन्द! उनका उद्धार तो तभी हो गया था, जब आपको उन पर दया आई तथा उन दोनोंके कल्याणकी चिन्ता हुई। क्योंकि आप जिसके भी कल्याणकी चिन्ता करते हैं, स्वयं कृष्ण उनका उद्धार कर देते हैं।”

प्रभुके मुखसे ये बातें सुनकर वैष्णवोंको अपार आनन्द हुआ। उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था कि दोनों दुष्टोंका उद्धार प्रभु अवश्य ही करेंगे। अतः सभी लोग जोर-जोरसे हरिनाम संकीर्तन करने लगे। वहाँसे हरिदास ठाकुर श्रीअद्वैताचार्यजीके पास पहुँचे तथा उनसे बोले—“प्रभु श्रीगौरसुन्दर उस चञ्चलके साथ प्रचारके लिए मुझे भेजते हैं। मैं जाता हूँ एक ओर तो वह जाता है दूसरी ओर। वर्षाके दिनोंमें जब गङ्गा लबालब भरी रहती है, उस समय उसमें बड़े भयङ्कर मगरमच्छ तैरते रहते हैं। उन्हें तैरते हुए देखकर वह चञ्चल डर-भय छोड़कर गङ्गामें कूद पड़ता है। भयके कारण मेरा हृदय काँप उठता है। अतः किनारे पर खड़े-खड़े मैं चिल्लाता रहता हूँ, परन्तु उसे तो इससे कोई मतलब ही नहीं। वह तो गङ्गामें इस पारसे उस पार आनन्दसे तैरता रहता है। फिर जब किनारे पर आते हैं तो छोटे-छोटे बच्चोंको गङ्गाके घाटपर देखकर मारनेके लिए दौड़ते हैं। बच्चे रोते-चिल्लाते हुए घरकी ओर भाग जाते हैं। उसी समय उनके माता-पिता हाथोंमें डंडे लेकर क्रोधित होकर मारने आते हैं। तब मैं बहुत मुश्किलसे उनके आगे हाथ जोड़कर उनसे क्षमा माँगकर उन्हें वापस भेजता हूँ। और जब रास्तेमें कहीं किसी ग्वालेको दूध-दही-घी इत्यादि बेचनेके

लिए जाते हुए देखता है, तो जबरदस्ती उससे छीनकर भाग जाता है जिससे क्रोधित होकर सभी ग्वाले मिलकर मुझे मारने आते हैं। आचार्यजी! यह तो कुछ भी नहीं, कभी वह ऐसा कर्म भी कर देता है कि बताते हुए भी लज्जा आती है। रास्तेमें जब कभी किसी किशोरी (लड़की) को अकेले देखता है तो उससे कहता है—‘तू क्या मुझसे विवाह करेगी?’ रास्तेमें किसी सांड़ (बैल) को देखता है तो झट उछलकर उसके पीठपर बैठ जाता है तथा कहता है कि मैं शिव हूँ, मैं शिव हूँ। दूसरोंकी गायोंका दूध भी दूहकर पी जाता है और जब मैं आपका नाम लेकर उसे डराता हूँ तो जोर-जोरसे हँसते हुए कहता है—‘अरे! तेरा अद्वैत क्या करेगा मेरा? मेरे प्रभु श्रीगौरसुन्दर हैं, अतः कोई मेरा बाल भी बांका नहीं कर सकता। इतनी घटनाएँ होते हुए भी आज तक प्रभुसे मैंने कुछ भी नहीं कहा। परन्तु आज ऐसी घटना घटी कि बहुत भाग्यसे हमारे प्राण बचे। रास्तेमें दो दुष्ट शराबी नशेमें धुत्त होकर बैठे हुए थे। बस उन्हें देखकर चल पड़े उन्हें भक्त बनाने। फिर क्या था, वे ऐसे भक्त बने कि क्रोधित होकर हमें मारनेके लिए दौड़े। यह तो आपकी ही कृपा थी कि जो मैं आज आपके सामने खड़ा हूँ।’ यह सुनकर अद्वैताचार्य हँसते हुए कहने लगे—“हरिदास! इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। नशेड़ीसे नशेड़ीका ही सङ्ग होता है। वे दोनों तो नशेड़ी हैं ही, और वह नित्यानन्द भी नशेड़ी है। अर्थात् नित्यानन्द हरिनामरस पाकर मत्त हैं, तथा ये दोनों मदिरा पानकर मत्त हैं। इसलिए ये तीनों ही नशेड़ी हैं। मुझे विश्वास है कि एक दिन यह नित्यानन्द सारे संसारको ही नशेड़ी (मतवाला) बना देगा। क्योंकि मैं उसे अच्छी तरहसे जानता हूँ। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो देखना, अधिक नहीं, मात्र दो-तीन दिनके भीतर ही वह उन शराबियोंको हमारी गोष्ठी (वैष्णव सभा) के बीचमें ले आएगा। फिर वे दोनों तथा ये दोनों निमाई तथा

निताई—चारों ही मिलकर एक साथ नशेमें प्रमत्त होकर नाचेंगे। अर्थात् अभी तक वे शराबके नशेमें देहकी सुध-बुध खोकर प्रमत्त हैं, परन्तु अब नित्यानन्दकी कृपासे भक्तिरस पानकर शरीरकी सुध-बुध खोकर दोनों प्रभुओंके साथमें मिलकर नृत्य करेंगे। इस प्रकार ये दोनों उन शराबियोंके

साथ नृत्यकर सब बराबर कर देंगे। इसलिए तुम और मैं यदि अपने वैष्णवधर्मको बचाना चाहते हैं तो हमें यहाँसे भाग जाना चाहिए।”

यह सुनकर हरिदासजीको पूर्ण विश्वास हो गया कि अवश्य ही वे दोनों शराबी वैष्णवमण्डलीके बीचमें दीन-हीन होकर नृत्य करेंगे। (क्रमशः)

ठाकुर श्रील बिल्वमङ्गल

दक्षिण भारतमें कृष्णवेण्वा नदीके पश्चिमी तट पर एक समृद्धशाली गाँवमें कुलीन ब्राह्मण वंशमें श्रीबिल्वमङ्गल ठाकुरका शुभ आविर्भाव हुआ। ये बचपनसे ही सुपण्डित, गम्भीर एवं धैर्यवान् थे। इनके पिताका नाम रामदास था।

कृष्णवेण्वा नदीके पूरब तटपर एक नगर था। वहाँ ‘चिन्तामणि’ नामकी एक वेश्या रहती थी। वह वाद्य-नृत्य-गान आदिमें अति निपुणा तथा परम रूपवती थी। कालक्रमसे किसी कार्यवशतः श्रीबिल्वमङ्गल उस नगरमें गए और वहाँ एक सामुहिक समारोहमें उस वेश्याका नृत्यगान देखा। पूर्व जन्मकी दुर्वासनाके कारण ये उसे देखते ही मुग्ध हो गए। ये भी ब्रह्मतेजयुक्त, नवयौवनपूर्ण, अति रूपवान् युवक थे। इसलिए चिन्तामणि भी इन पर लट्टू हो गई और उसने इधर-उधर समारोहोंमें आना-जाना बन्द कर दिया। इस प्रकार बिल्वमङ्गल ठाकुर वेश्याके मोहमें पड़कर कामासक्त हो गए और वे भी किसी और कार्यमें ध्यान न देकर हर समय वेश्याका संग एवं चिन्तन करने लगे। कुछ समय बाद इनके पिताश्री परलोक सिधार गए। इन्होंने उनके श्राद्धका विशाल आयोजन किया। उस आयोजनमें बहुत देशोंसे बड़े-बड़े विद्वान उपस्थित हुए। श्राद्ध-सभामें शास्त्रविचार, स्तव-स्तोत्र, वन्दना, गीता-महाभारतकी व्याख्या होने लगी। हजार-हजार गरीब, दीन-दुःखियोंने आकर भोजन किया। पुरोहितगण यज्ञमें स्वाहा-स्वधा बोलकर अग्निमें घी डालने लगे। अग्निदेवकी धधकती लपकती जिह्वा चारों ओर फैलने लगी।

इसके पश्चात् ब्राह्मणमण्डली भोजनके लिए बैठी। ब्राह्मणोंका आधा भोजन हुआ था, तभी बिल्वमङ्गलको चिन्तामणिकी याद सताने लगी और वे ब्राह्मणोंकी सेवामें सेवकोंको नियुक्तकर स्वयं तुरन्त पूरी-कचौरी, मालपुआ और जो भी अच्छे-अच्छे पकवान थे, सभीको एक वस्त्रमें बाँधकर उस पोटलीको कन्धेपर लटकाकर चिन्तामणिके घरकी दिशामें दौड़ पड़े। उनको और बाह्यज्ञान नहीं रहा। ऐसी है, मायाकी मार।

जब वे कृष्णवेण्वा नदीके तटपर पहुँचे तबतक सन्ध्या हो चली, सूर्यदेवने रक्तिम आकार धारण कर लिया, अचानक जीवोंकी आयु हरण करके सूर्यदेव छिप गए। दुर्भाग्यवश उसी समय आकाशमें घनघोर काली घटाएँ छा गई। अकस्मात् जोरसे बिजली चमकने लगी, औंधी-तूफानके साथ बारिश और ओलावृष्टि होने लगी। हवाके तीव्र वेगसे चारों तरफ पेड़ जड़से उखड़कर गिरने लगे। बादलोंकी घड़धड़ाहटसे सबके प्राण काँप उठे। किन्तु बिल्वमङ्गल ठाकुरको इन सबकी बिलकुल भी ध्यान नहीं था क्योंकि वे पूरी तरह चिन्तामणिमें ही आविष्ट थे। वे पकवानोंकी पोटलीको यत्नपूर्वक बगलमें दबाकर नदीके तटपर उपस्थित हुए, किन्तु उन्होंने देखा कि वहाँ पर एक भी नौका नहीं है। तीव्र औंधी तूफानकी वजहसे सब नाववाले वहाँसे जा चुके थे और ऐसेमें सूर्य भी छिप चुका था। अब नदी कैसे पार किया जाए? ठाकुर सोचने लगे। किन्तु कोई उपाय नहीं सूझा। उसी समय देखते हैं कि

एक लकड़ीका बड़ा-सा टुकड़ा जैसा कोई वस्तु उनकी तरफ तेरते-तैरते आ रहा है और वे 'जय भगवान्, तुम्हारी कैसी दया!' बोलकर उसके ऊपर चढ़ गए। नदीकी उछलती लहरोंमें वे जीवनकी जरा भी परवाह न कर बड़ी कठिनाईसे उस पार आज तुम्हारे पिताका श्राद्ध है और फिर ऐसे भीषण औंधी-तूफानमें इधर क्या मरने आए हो?"

ठाकुर चिन्तामणिके दरवाजे पर पहुँच कर देखते हैं—दरवाजा अन्दरसे बंद है, चारों तरफ ऊँची दीवार, अन्दर जानेका कोई दूसरा रास्ता नहीं। वे जोर-जोरसे 'चिन्तामणि! चिन्तामणि' पुकारने लगे और दरवाजेको जोर-जोरसे पीटने लगे। किन्तु मूसलाधार बारिशकी आवाजके सामने इनकी आवाजकी एक न चली। उसी समय क्या देखते हैं कि दीवारके ऊपरसे नीचेकी तरफ एक रस्सी लटक रही है। ठाकुर खुशीसे उछलकर 'जय भगवान्' बोलकर रस्सीके सहरे दीवारके ऊपर चढ़ने लगे। उस समय तक औंधी-तूफान-बारिश-ओलावृष्टि आदिके कारण उनका सिर चकराने लगा तथा शरीर शिथिल पड़ गया। वे बाह्यज्ञानरहित होकर घरके औंगनमें जोरदार आवाजके साथ गिर पड़े। अन्दर चिन्तामणिने अपने कमरेमें जब आवाज सुनी तो दासीको बुलाकर बोली, "जल्दी बाहर जाकर देखो, ये आवाज कहाँसे आई?" दासीने बाहर आकर एक मरा हुआ जैसा शरीर पड़ा हुआ देखा, देखते ही वह चीख उठी—'ठाकुरानी! ठाकुरानी! जल्दी इधर आओ। एक मुर्दा जैसा इधर पड़ा है।' यह सुनकर चिन्तामणि तेजीसे दौड़कर आई। उसने देखा, सचमुच ही एक मरा हुआ व्यक्ति पड़ा है। साहस करके उसने उस शरीरके पास जाकर दिया-बत्तीसे देखा कि ये तो बिल्वमङ्गल ठाकुर हैं। तब अन्दर जाकर चिन्तामणि और उसकी दासी आग जलाकर ठाकुरके पूरे शरीरको गर्मी देने लगीं, भीगे कपड़े उतारकर सूखे कपड़े पहनाए। इस प्रकार सेवा करनेके पश्चात् ठाकुरको होश आया। वे सोई-सी औंखोंसे चिन्तामणिको देखते हुए धीरे-धीरे बोलने लगे—'चिन्तामणि! मैं कहाँ हूँ?'

चिन्तामणि व्यंगपूर्वक कहने लगी—'अरे ठाकुर!

चिन्तामणिने उसके द्वारा लाई गई पोटलीको खोलकर देखा कि उसमें अनेक प्रकारकी मिठाईयाँ एवं पकवान भरे हुए हैं। चिन्तामणि आश्चर्यचकित रह गई। इस प्रकार कुछ समय बीत गया। चिन्तामणिने गरम दूध पीलाकर ठाकुरको स्वस्थ किया। तबतक आकाश साफ हो गया था, चाँदनीसे चारों तरफ बातावरण प्रकाशित हो गया था। चिन्तामणि ठाकुरसे बोली—'तुम इस प्रकारकी भयानक स्थितिमें किस प्रकार यहाँ आए?' ठाकुरने पूरी बात बतायी। सुनकर चिन्तामणि बोली—'चलो देखें कि दीवार पर कहाँ रस्सी लटक रही है?' रस्सी देखकर वह काँप उठी क्योंकि वह रस्सी न होकर एक बड़ा लम्बा साँप दीवारके एक गड्ढेमें मुँह डालकर लटका हुआ था। उसके बाद नदीके टटपर जाकर उसने देखा कि वह लकड़ी नहीं बल्कि एक मृत व्यक्तिका शरीर जो तैर रहा था। इसलिए बिल्वमङ्गल ठाकुरके शरीरसे दुर्गन्ध आ रही थी। चिन्तामणिने उनको पुनः सुगन्धित तैल लगाकर गरम जलसे स्नान कराया।

ये सब देखनेके बाद चिन्तामणिने भर्त्सनापूर्वक ठाकुरसे कहा कि—'ठाकुर! तुम्हारा मुझसे प्रेम, स्नेह, प्रीति है—यह सत्य है। तुम ही सच्चे प्रेमी हो। लेकिन तुमने अपना यह प्रेम गलत जगह सौंप दिया है। मैं अति धृणित वेश्या एवं पतिता हूँ। मेरी छायाको स्पर्श करनेके बाद सत्पुरुष स्नान करके शुद्ध होते हैं। तुम तो श्रेष्ठ कुलीन ब्राह्मण हो, फिर भी गिर रहे हो। यह तुम्हारा प्रेम यदि भगवान्के चरणोंमें लगा होता तो तुम्हारा जीवन सार्थक हो जाता।'

चिन्तामणिके द्वारा इस प्रकार उपदेश सुनकर बिल्वमङ्गल ठाकुरको अचानक भगवान्की कृपासे

ज्ञान उदित हुआ। फिर वे इस रात इन्द्रिय-तर्पणमें रत न होकर श्रीकृष्ण-लीला कीर्तनमें पूरी रात बिताकर सुबह चिन्तामणिको गुरु मानकर प्रणामपूर्वक व्याकुल चित्तसे श्रीधाम वृन्दावनकी तरफ 'हा श्यामसुन्दर! हा श्यामसुन्दर! तुम कहाँ हो?'—उच्च स्वरसे पुकारते हुए चल पड़े। पूर्व जन्मके शुभ संस्कार उस समय जाग उठे। वे शेर, बाघ, भालू, साँप आदिसे भरे हुए जंगलोंको निडर होकर पार करते हुए श्रीधाम वृन्दावनकी ओर बढ़ने लगे। रास्तेमें एक सरोवरमें पानी पीनेके लिए वे गए। तब देखते हैं कि एक परम सुन्दरी नवयौवना जल भरनेके लिए उधर आई। ठाकुर बिल्वमङ्गल उस सुन्दरीके रूपलावण्यको देखकर पुनः मोहित हो गए। क्योंकि भक्तिपथमें कोटि कट्टक स्वरूप बहुत प्रकारके विपत्तियाँ आकर बिघ्न डालती हैं और भगवान् भी स्वयं कृपा करके कठिन परीक्षा लेते हैं। उनकी कृपा होने पर ही जीव उनकी इस दुस्तर मायाको पार कर पाते हैं। जब वह युवती पानी लेकर जाने लगी तो ठाकुर भी उसके पीछे-पीछे चल दिए। उसने देखा कि एक पुरुष मेरे पीछे आ रहा है तो डरकर धूंघट डालकर मुखको ढक लिया और अपने घरमें प्रवेश कर गई। अन्दर जाकर उसने अपने पतिको सारी घटना बताई।

उसका पति बड़ा धार्मिक था। उसने बाहर आकर बिल्वमङ्गलको देखा। उनको ब्राह्मण जानकर उनकी चरणधूलि ली एवं हाथ जोड़कर विनयपूर्वक बोले—“आज मेरा परम सौभाग्य है कि आप जैसे ब्राह्मण अतिथि हमारे द्वारपर खड़े हैं। कृपया आदेश दें कि हम आपकी क्या सेवा कर सकते हैं।”

तब बिल्वमङ्गल ठाकुर उस बनियाको बोले—“तुम्हारी पत्नीको आज रात मेरी सेवामें नियुक्त कर दो, यही मेरी इच्छा है।”

बनिया कुछ आश्चर्यचकित होकर बोला—“हे ठाकुर! आप फल, दूध इत्यादि भोजन करके इस सुन्दर कोमल शश्या पर शयन कीजिए। मैं

अन्दर जाकर अपनी पत्नीको आपकी इच्छा-पूर्तिके लिए आदेश देता हूँ।”

बनिया अन्दर जाकर अपनी पत्नीको सम्बोधन कर बोला—“मैं तुम्हारा पति हूँ। मेरी आज्ञाका पालन करनेसे तुमको किसी प्रकारका दोष नहीं होगा। पतिकी आज्ञा पालन करनेसे पत्नीका सतीत्व अटूट रहता है। तुम अनेक प्रकारके आभूषण तथा सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर इस ब्राह्मणदेवताकी अभिलाषा पूर्ण करो।”

बनियाकी पत्नी पतिकी आज्ञानुसार सुन्दर सजकर बिल्वमङ्गल ठाकुरके पास आई और प्रणाम करनेके बाद हाथ जोड़कर उनके सम्मुख खड़ी रही। यह सब देखकर ठाकुरको वैराग्य जाग उठा। वे बनिया-पत्नीको सम्बोधन कर बोलने लगे—“हे माता! आप अपने जूँड़में लगे दोनों लोहेके काँटों (जो केशबन्धनके लिए व्यवहृत होते हैं) को मुझे प्रदान करो।”

यह सुनते ही बनियक-पत्नीने दोनों काँटें निकालकर जैसे ही बिल्वमङ्गलको दिए, वैसे ही बिल्वमङ्गल ठाकुरने दोनों काँटोंसे अपनी दोनों आँखें एकसाथ फोड़ डालीं। ठाकुरकी आँखोंसे अविरत रक्तधारा बहने लगी। वे उसकी परवाह न कर तीव्र गतिसे हे वृन्दावनचन्द्र! तुम कहाँ हो?’ बोलते हुए वृन्दावनकी तरफ पुनः चल पड़े।

कई दिनोंके बाद वे वृन्दावन पहुँचे। आहार, निद्रा त्यागकर वे एकान्त भावसे कातर स्वरसे श्रीकृष्णाको पुकारने लगे।

भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण इस करुण पुकारको सुनकर क्या रुक सकते हैं? बिल्वमङ्गल अस्थे होकर उनको ढूँढते हुए जब गिरने ही वाले थे, उसी समय भगवान् बालकृष्णने उनके हाथ पकड़ लिए। भगवान्के करकमलोंका स्पर्श-सुख अनुभवकर उनके आनन्दकी सीमा न रही। रोमाञ्च, कम्प, हर्ष इत्यादि अष्टसात्त्विक भावसमूह उनके शरीरमें प्रकट हो गए। वे आनन्दसे भरकर रोने लगे। उसी समय बालकृष्णने अपने हाथ हटा लिए। उससे बिल्वमङ्गल दुःखी होकर कृष्णके उद्देश्यसे

बोलने लगे—

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलाकृष्ण किमद्वृतम्।
हृदयाद्यदि नियसि पौरुषं गणयामि ते॥
दोहा—

बाँह छुड़ाये जात हो निबल जानिकै मोहिं।
हरदय से जब जाओगे सबल बदाँगो तोहिं॥

अर्थात्—हे दयाल ठाकुर! मेरेसे हाथ बलपूर्वक छुड़ाकर जाते हो—इसमें क्या आश्चर्यकी बात है? यदि मेरे हृदयसे तुम जा सको तो मानूँगा कि तुम वास्तवमें वीर हो।

तब बालकृष्णने अपने करकमलोंसे ठाकुरकी दोनों आँखोंको स्पर्श किया। स्पर्श करते ही ठाकुर अपनी आँखोंसे अपने सामने अपने इष्टदेवको देखकर सुमधुर स्वरसे उनकी वन्दना करने लगे—

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभोर्मधुरं मधुरं वदनं मधुरम्।
मधुगन्धि मृदुस्मित मेतदहो मधुरं मधुरं मधुरम्॥

यह बोलकर बिल्वमङ्गल ठाकुर प्रेमभरी आँखोंसे श्रीकृष्णको निहारते हुए मूर्छ्छत हो गए। श्रीभगवान्‌के करकमलोंके पुनः स्पर्शसे उनको बाह्यज्ञान हुआ। कालक्रमसे वे सिद्ध दशामें पहुँचे। वे किस तरह अद्वैतमतका परित्यागकर कृष्ण-सेवाके माधुर्य द्वारा आकृष्ट हुए, इसका वर्णन उन्होंने स्वरचित इस श्लोकमें किया है—
अद्वैतवीथी पथिकैरूपास्याः स्वानन्द सिंहासनलब्धीक्षाः।
हठेन केनापि वयं शठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

अर्थात् अद्वैतपथके पथिकों द्वारा सेवित और आत्मानन्दके सिंहासन पर आरूढ़ होकर भी मैं गोपीलम्पट कृष्णनामके किसी शठ द्वारा बलपूर्वक उनकी दासी बनाई गई हूँ।

इन्होंने 'कृष्णकर्णामृत' नामक एक प्रसिद्ध ग्रन्थकी रचना की, इसलिए इनका नाम 'लीलाशुक' पड़ा।

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे, अनुवादक—श्रीहरिदास ब्रह्मचारी)

विदेश प्रचार संवाद

(गताङ्कसे आगे)

अपनी प्रचार यात्राके अगले चरणमें मदीय शिक्षागुरुपादपद्म अङ्गिष्ठापाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीने बोइस (Boise) से पहले दो दिन Sanfrancisco में प्रचार किया। इसके अतिरिक्त Chicago, West Virginia स्थित New Vrindavan, Lake Washington, New Jersey आदि स्थानों पर प्रचार सेवा समाप्त करके २४/६/२००२ को Holland (यूरोप) में पहुँचे। श्रीलमहाराजजीने सर्वप्रथम Holland से ही ५ मई १९९६ से सर्वप्रथम पाश्चात्य देशोंमें प्रचार प्रारम्भ किया था। अमेरिकामें प्रचारका प्रधान-प्रधान आलोच्य विषय रहा—समस्त प्रकारकी लौकिक सुख-सुविधा होने पर भी भजनकी क्या आवश्यकता है? भक्ति किसे कहते हैं? भक्ति कैसी होती है? उत्तमा भक्तिके क्या क्या लक्षण हैं? भक्त कितने प्रकारके होते

हैं और उसका विशद विवरण तथा राय रामानन्द संवादके कुछ अंश।

श्रीपाद भक्तिवेदान्त वन महाराजने Holland के अनेक शहर, इंग्लैंडमें लण्डन, बर्मिंघम, जर्सी, जर्मनीके बर्लिन, अस्ट्रियाकी राजधानी विएना, इटलीके रोम, मिलन, सार्डिनिआ, स्पेनके माद्रीद, फ्रांसके प्यारिस आदि स्थानों पर विशेष सफलतापूर्वक प्रचार करके श्रीलमहाराजजीके साथ हालैण्डमें योगदान किया। वे १५/७/२००२ को भारत पहुँच गए हैं। श्रीपाद भक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज फिजी द्वीपमें सफलतापूर्वक प्रचार करके अभी New Zealand में प्रचार कार्य कर रहे हैं। वहाँ पर प्रचार करके वे २१/७/२००२ को पुण्यभूमि, साधनमय क्षेत्र, भगवान्‌की आविर्भाव भूमि भारतवर्षमें प्रत्यावर्तन करेंगे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त भक्तिसार अरण्य महाराज और श्रीपाद भक्तिवेदान्त भक्तिसार

महाराजने अमेरिकाके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करके श्रीलमहाराजजीके साथ Lake Washington में योगदान किया। बादमें उन्होंने अमेरिकाके North Carolina, Miami, Alachua में प्रचार करके U. K. में फिरसे योगदान किया। वे Israel, Germany आदि स्थानों पर प्रचार करके झूलन-यात्रासे पहले भारतमें प्रत्यावर्तन करेंगे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त आश्रम महाराज रथयात्राके बाद अफ्रीकाके विभिन्न स्थानों पर प्रचारके लिए जाएँगे। श्रीमती श्यामारानी दीदी अमेरिकाके विभिन्न स्थानोंमें प्रचार करनेके उपरान्त यूरोपमें प्रचार कार्यमें व्यस्त होनेके कारण श्रीलरुप गोस्वामीके तिरोभावसे पहले भारतमें प्रत्यावर्तन करेंगी। श्रीपाद भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज आस्ट्रेलियामें, श्रीपाद ज्ञानदास प्रभु मलेशियामें, श्रीमती विशाखा दीदी अमेरिकामें प्रचार कार्यमें व्यस्त हैं। सभी अपनी-अपनी पार्टी सहित ऊर्जा ब्रतके पहले साधन भूमि भारतवर्षमें प्रत्यावर्तन करके पारमार्थिक ऊर्जा प्राप्त करके पुनः श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भावके समय श्रीधाम नवद्वीप परिक्रमामें योगदान करेंगे। उनमेंसे कोई प्राच्य और कोई-कोई पाश्चात्य देशोंमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रचारके लिए जाएँगे।

अमेरिकामें प्रचारके दौरान श्रीलमहाराजजीने पाँच प्रकारके भक्तोंकी आलोचना करते हुए कहा कि षड् गोस्वामियोंके अग्रगण्य श्रीलसनातन गोस्वामीपादने स्वरचित एवं प्रथम गोस्वामी-ग्रन्थ श्रीबृहद्बागवतामृतमें (१) ज्ञानी भक्त, (२) शुद्ध भक्त, (३) प्रेमी भक्त, (४) प्रेमपर भक्त, (५) प्रेमातुर भक्तोंकी विशद आलोचना की है। परवर्ती कालके समस्त गोस्वामी ग्रन्थ एवं गौड़ीय गुरुवर्गके अन्यान्य ग्रन्थ श्रीबृहद्बागवतामृतको आधार करके ही रचित किए गए हैं। इस ग्रन्थमें श्रीलसनातन गोस्वामीपादने एक ओर भक्तोंके तारतम्यके अनुसार भगवान्‌के प्रकाशके तारतम्य और दूसरी ओर भगवान्‌के प्रकाशके तारतम्यके अनुसार भक्तोंके तारतम्यको दर्शाया है। पूर्वोक्त पाँच प्रकारके

भक्तोंमें श्रीचतुःसन, श्रीप्रह्लाद महाराज और श्रीभीष्म पितामह ज्ञानी भक्त हैं। श्रीअम्बरीष महाराज शुद्ध भक्त हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीके सेवक हनुमान प्रेमी भक्त हैं। द्वारिकाधीश भगवान् श्रीकृष्णके परिकर पाँच पाण्डव और द्रौपदी देवी प्रेमपर भक्त हैं। श्रीकृष्णके मन्त्री, दयित, सखा, उपदेष्टा श्रीउद्धवजी प्रेमातुर भक्तके रूपमें जाने जाते हैं। भक्त भगवान्‌के कितने प्रिय है, इसे श्रीलमहाराजजीने शुद्ध भक्त श्रीअम्बरीष महाराजके चरितके माध्यमसे प्रकाशित किया। श्रीअम्बरीष महाराजने भक्तिकी रक्षा हेतु भगवद् चरणामृतके सेवन द्वारा एकादशीके ब्रतका पालन किया। महायोगी दुर्वासा योगके प्रभावसे यह जानकर निमेषमात्रमें वहाँ पर उपस्थित हुए और अम्बरीषका भस्म करनेके लिए कृत्या राक्षसीकी सृष्टि की। भगवान्‌का सुदर्शन चक्र तत्क्षणात् वहाँ पर उपस्थित होकर कृत्याको ध्वंस करके दुर्वासाकी ओर बढ़ने पर ऋषिवर सुदर्शनके तापसे प्राणरक्षा हेतु चौदह भुवनोंमें सर्वोच्च लोक सत्यलोकमें गए। श्रीब्रह्माजीके महायोगी दुर्वासाको शरण देनेमें अक्षम होने पर ऋषिवर शिवलोकमें गए। श्रीशिवलोकमें जाकर वे 'ओ पिता ! त्राहि माम् ! त्राहि माम् !' अर्थात् 'सुदर्शनके तीव्र तापसे मेरी रक्षा करो, मेरी रक्षा करो' पुकारने लगे।

श्रीशिवजी—तुम मेरे पास क्यों आए हो? अभी इसी क्षण यहाँसे चले जाओ, मैं असहाय हूँ, तुम्हारी सहायता करनेमें असमर्थ हूँ। तुम्हारी इस दुर्दशाका कारण शुद्ध वैष्णवोंकी अवमानना करना है। मैं वैष्णव अपराधसे भय करता हूँ। तुम्हें शरण देनेसे सुदर्शन चक्र मुझे भी अभी ध्वंस कर डालेगा। हे वत्स ! तुम बिना देरी किए भगवान् विष्णुकी शरण लो। सुदर्शन चक्र उनका ही है। वे तुम्हारी सहायता कर सकते हैं।

श्रीदुर्वासा ऋषि—(विष्णुके पास जाकर) हे ब्रह्मण्य देव ! ब्राह्मणोंके रक्षक ! अपने सुदर्शन चक्रके तीव्र तापसे रक्षा कीजिए। रक्षा कीजिए।

भगवान् श्रीनारायण—हे ऋषिवर ! आपकी

रक्षा करनेमें मैं असमर्थ हूँ। असहाय हूँ।

अहं भक्त पराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

मैं भक्तोंका प्रिय हूँ, अपने भक्तोंकी भक्ति द्वारा सम्पूर्ण रूपसे वशीभूत हूँ। यद्यपि ब्रह्मा, शिव आदि देवता सम्पूर्ण रूपसे मेरे अधीन हैं, तथापि मैं स्वयं भी स्वतन्त्र नहीं हूँ। मेरे द्वारा आपकी रक्षा करनेसे मेरे भक्तगण असन्तुष्ट हो जाएँगे। भक्तोंको असन्तुष्ट करना मेरे सामर्थ्यसे बाहरकी बात है।

श्रीदुर्वासा ऋषि—यह कैसे सम्भव हो सकता है? आप स्वयं भगवान् होकर भी स्वतन्त्र नहीं हैं। आप सब प्रकारसे भक्तोंके अधीन हैं। यह कैसे सम्भव हो सकता है?

भगवान् श्रीनारायण—यही मेरा स्वभाव है। यदि कोई भक्त भजन करते-करते सम्पूर्ण रूपसे मेरी शरण ग्रहण करता है तो मेरा हृदय भी उस भक्तके लिए द्रवीभूत हो जाता है एवं मैं उसके अधीन हो जाता हूँ।

श्रीदुर्वासा ऋषि—हे भगवान्! आप तो इतने दयालु हैं कि किसीका भी दुःख देखनेसे आपका हृदय द्रवीभूत हो जाता है। मैं अभी दयनीय अवस्थामें हूँ। आपके शरणागत हुआ हूँ। तथापि मेरे लिए आपका हृदय द्रवीभूत क्यों नहीं हो रहा?

श्रीभगवान्—हे ऋषि! समझनेका प्रयास करो। मेरा मन मेरे पास नहीं है, इसलिए मैं तुम्हारी दुरावस्थाकी चिन्ता नहीं कर पा रहा हूँ। मेरे भक्तोंने उसको चोरी कर लिया है। मैं किस प्रकार दया कर सकता हूँ? मैं भक्तोंकी सेवा द्वारा अधिकृत, वशीभूत हो गया हूँ। वे सदैव मेरी सेवा करते हैं। उनकी सेवा द्वारा सन्तुष्ट होकर मेरे द्वारा यदि उनको कुछ प्रतिदान या वर देना चाहने पर भी वे मेरी सेवाके अतिरिक्त कुछ भी प्रार्थना नहीं करते, इससे मैं उनका और भी अधिक ऋणी हो जाता हूँ। उनके नहीं चाहने पर भी मैं सर्वार्पेक्षा मूल्यवान् वस्तु—मेरा हृदय उनको

दे देता हूँ।

हे दुर्वासा! आप अच्छेसे समझ लो कि मेरी समस्त कृपा ही भक्तके हृदयमें सञ्चारित होती है। यदि वे किसी पर भी कृपा करनेकी इच्छा करते हैं तो मैं उनकी इच्छाको पूर्ण करता हूँ। कोई मेरे भक्तोंके प्रति जैसा व्यवहार करते हैं, मैं भी उनके प्रति वैसा ही व्यवहार करता हूँ। आपने कृत्या राक्षसीकी सृष्टि करके मेरे प्रिय महाराज अम्बरीषको ध्वंस करना चाहा था। उसको विपत्तिमें डालकर तुमने बहुत बड़ी भूल की है। अम्बरीष महाराज मेरे लिए अखिल भोग त्याग करके अखिल चेष्टापरायण हुए हैं। तुमने अब तक मेरी सेवाके लिए क्या प्रयास किया है? अखिल भोग त्याग और अखिल चेष्टापरायण तो बहुत दूरकी बात है, क्या तुम थोड़ा-सा भी त्याग और चेष्टापरायण हुए हो? आप अपने आपको ब्रह्मर्षि और अत्यधिक महान् समझते हो और दूसरी ओर महाराज अम्बरीष सर्वगुणसम्पन्न होनेपर भी अपने आपको दीन-हीन-पतित समझते हैं। आप स्वयं ही विचार करके बताइए कि ऐसी अवस्थामें सुदर्शन चक्रसे मैं आपकी कैसे रक्षा कर सकता हूँ?

श्रीदुर्वासा ऋषि—हे ब्रह्मण्य देव! ब्राह्मणोंको सम्मान देना तो आपका स्वभाव है और फिर मैं तो साधारण श्रेणीका ब्राह्मण भी नहीं हूँ, उच्च श्रेणीका हूँ। देवादिदेव महादेवके अंशसे उत्पन्न हूँ। आपके मेरे तत्त्वको सम्पूर्ण रूपसे जानने पर भी अकारण एवं अपने स्वभावके विपरीत व्यवहार करके मेरी अवहेलना क्यों कर रहे हैं, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।

भगवान् श्रीनारायण—हाँ! हाँ! मैं आपकी उपेक्षा कर रहा हूँ। आप क्या समझते हैं कि आपके लिए मैं अपने भक्तोंको त्याग दूँ? मेरे भक्तोंके शत्रुओंकी मैं कभी भी रक्षा नहीं कर सकता। आपके बारम्बार अनुरोध करनेपर भी भक्तोंके विरुद्ध आचरण करनेमें मैं कभी भी समर्थ नहीं हूँ। हे ब्राह्मण! महाराज अम्बरीष मेरे

लिए ही अपने स्वार्थको त्यागकर सम्पूर्ण रूपसे शरणागत हुए हैं और आपने मेरे लिए क्या किया है?

श्रीदुर्वासा ऋषि—भगवन्! मैं उच्च श्रेणीका ब्राह्मण हूँ और आप ब्रह्मण्य देव हैं अर्थात् ब्राह्मणोंके पालक और रक्षाकर्ता हैं। परन्तु एक क्षत्रिय राजा अम्बरीष महाराजकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। उसने आपके लिए क्या किया है?

भगवान् श्रीनारायण—आप नहीं जानते हैं कि मेरे शरणागत भक्त अपनी रक्षाके लिए कोई प्रयास ही नहीं करते। आपने कृत्या राक्षसीकी सृष्टि करके महाराज अम्बरीषको जलाकर भस्म करनेकी इच्छा करने पर भी उसने अपनी रक्षाके लिए कोई भी प्रयास नहीं किया। उसकी इतनी क्षमता है कि वह स्वयं जिस किसी भी विपत्तिसे अपनी रक्षा करके तत्क्षणात् आपको सजा दे सकता था। किन्तु मेरे शरणागत होनेके कारण उसने कुछ भी नहीं किया। मैं आपको अभी इसी समय सजा दे सकता था, किन्तु मेरा प्रिय भक्त अम्बरीषने तुम्हारी रक्षाके लिए प्रार्थना की है, इसलिए मैं आपको सजा नहीं दे पा रहा हूँ। आप अपनेको आत्माराम, आप्तकाम समझते हैं, तथापि सुदर्शन चक्रके भयसे प्राण रक्षा हेतु चारों ओर दौड़ रहे हैं। ब्रह्मा, शिव आदि देवताओंके भी शरणागत हुए हैं। और मेरे भक्त Not at all fearful, but always cheerful! हे ऋषि! आप समझ लीजिए एवं संसार भी जान ले कि मैं योगीवत्सल भगवान् नहीं हूँ, मैं तो केवल भक्तवत्सल भगवान् हूँ और यही सर्वप्रेक्षा महदगुण है।

श्रीदुर्वासा ऋषि—कौन अधिक गुरुत्वपूर्ण है? एकादशी व्रतका समयानुसार पारण करना अथवा ब्राह्मणोंको यथायोग्य सम्मान करना।

भगवान् श्रीनारायण—आपके निर्थक प्रश्नोंका उत्तर देनेका समय मेरे पास नहीं है। अम्बरीष महाराजके पास जाओ। वे आपके प्रश्नका उत्तर यथायोग्य दे पाएँगे। वे इस विषयमें मुझसे अधिक जानते हैं।

श्रीदुर्वासा ऋषि—अम्बरीष महाराज क्या कुछ देर और अपेक्षा नहीं कर सकता था? मुझे भोजन कराके एकादशी व्रतका पारण नहीं कर सकता था?

भगवान् श्रीनारायण (कुछ क्रोधित होकर)—मैंने तो पहले ही आपसे कहा है कि आपके निर्थक प्रश्नोंके उत्तर देनेके लिए वास्तवमें मेरे पास समय नहीं है। अम्बरीष महाराजका क्या दोष हुआ है? उसने कुछ खाया है क्या? उसने क्या अन्याय किया है? उसने तो कुछ खाया ही नहीं है। केवल मात्र मेरा चरणमृत ही पान किया है। महापण्डित दुर्वासाजी! आपमें इतना भी सामर्थ्य नहीं कि इतनी छोटी-सी बातको भी समझ सको। एकादशीका निर्जला उपवास करके व्रत भङ्ग व पारण हेतु एक बूँद चरणमृतका सेवन करना कभी भी खानेमें गिनती नहीं किया जा सकता।

श्रीदुर्वासा ऋषि—हे ब्रह्मण्य देव! मैं तो ब्राह्मण हूँ और आप तो केवल मेरे ही दोषोंको देख रहे हैं। अम्बरीष महाराजके दोषोंको भी देखिए। मैं साधारणतः किसीका भी निमन्त्रण स्वीकार नहीं करता हूँ। अम्बरीष महाराज ब्राह्मणोंका सम्मान करते हैं, इसलिए मैंने उनका निमन्त्रण स्वीकार किया है। उसने मेरेसे पहले खाकर मेरी अवमानना की है। आप उसके दोषको क्यों नहीं देखते? वह अपनेको बुद्धिमान और चतुर समझता है। चतुराई पूर्वक ही मुझे भोजन करानेसे पहले उसने जलपान किया है।

भगवान् श्रीनारायण—आप अम्बरीष महाराजके पास जाकर इन प्रश्नोंका उत्तर पूछिए। उसने तो केवल वेद आदि श्रुति शास्त्रोंके नियमका पालन किया है। एकादशी व्रत पालन एवं पारण हेतु जो शास्त्रोंकी आज्ञा है, उसने उसीका पालन किया है। जिससे भक्ति नष्ट न हो, उसके लिए एवं मेरी प्रीति हेतु जो करणीय है, उसने वही किया। अतः बिना विलम्ब किए तुम महाराज अम्बरीषके पास जाओ। पैरमें कँटा लगनेमें क्या वह कन्धेसे बाहर निकलता है?

महर्षि दुर्वासा—मैं कैसे उनके पास जाऊँ? वे तो मेरे प्रति अत्यन्त क्रोधित होंगे।

भगवान् श्रीनारायण—आप जाइए। समदर्शी होनेके कारण वे कभी भी क्रुद्ध नहीं हो सकते। मेरे भक्तोंका एक महान् गुण है कि दूसरोंके द्वारा किए गए द्रोह आचरणोंको साथ ही साथ भूल जाते हैं। किन्तु दूसरोंके द्वारा किए गए सामान्य उपकारको कभी भी नहीं भूलते।

भगवान्‌के द्वारा अभय प्रदान किए जाने पर दुर्वासाजीके महाराज अम्बरीषके पास जाने पर महाराज अम्बरीषने कहा—हे महर्षि! मुझे क्षमा कर दीजिए। मेरे कारण ही आपको भूखा, प्यासा होकर चारों तरफ घूमना पड़ रहा है।

श्रीदुर्वासा ऋषि—हे राजन! अपराध तो मैंने किया है। आप मुझे क्षमा कीजिए एवं सुदर्शन चक्रके असहनीय तापसे मेरी रक्षा कीजिए। आपकी कृपाके अतिरिक्त सुदर्शनसे मेरी रक्षाका और कोई उपाय नहीं है।

अम्बरीष महाराजजीकी प्रार्थनासे चक्र अन्तर्हित हो गए और दुर्वासा ऋषिजी चक्रसे मुक्त होकर कहने लगे कि आज ही मैंने भक्तोंकी महिमाको समझा। मेरे अपराध करने पर भी भक्तने मेरे कल्याणके लिए ही प्रार्थना की है।

श्रीअम्बरीष महाराजके चरितसे यह शिक्षा मिलती है कि वैष्णव अपराधीको भगवान् भी क्षमा नहीं करते। भगवान् अघटन-घटन-पटीयसी शक्तिके अधिकारी होकर भी अपने भक्तोंकी अवमानना सहन नहीं करते। अतएव हमें सदैव वैष्णव-अपराधसे दूर रहना चाहिए। वैष्णवोंको प्रिय लगनेवाले कार्य करने होंगे, तभी हम भगवद् कृपा प्राप्त कर पाएँगे।

श्रीलमहाराज द्वारा यूरोप महादेशके Holland, France, England में विभिन्न विषयों पर आलोचना करने पर भी प्रधान आलोच्य विषय थे—सप्तम गोस्वामी ॐविष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुरका अवदान, गुणिडचा मन्दिर मार्जन, रथ-यात्रा प्रसङ्ग। रथ-यात्रामें सबसे अधिक आकर्षणीय

विषय था—इंग्लैण्डके द्वितीय बड़े शहर बर्मिंघमके कर्पोरेशन आफिसके ठीक सामने ही श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे आयोजित विशाल रथ-यात्रा। श्रीलमहाराजीने इतनी सुन्दर परिचालना की कि जिससे ऐसा लग रहा था कि जैसे समितिके प्रधान मठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ (श्रीनवद्वीप धाममें) में रथयात्रा हो रही है। पाँच सौसे भी अधिक लोगोंने रथयात्रा और धर्म-सभामें योगदान किया। पुण्यभूमि भारतवर्षके बाहर किसी धार्मिक अनुष्ठानमें इतने लोगोंका इकट्ठा होना प्रायः असम्भव होता है, इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। धर्मसभामें विशेष आकर्षणीय एवं गुरुत्वपूर्ण था—स्वागत समारोह एवं सर्वोपरि श्रीलमहाराजजीकी मधुर व हृदयस्पर्शी रसायन हरिकथा।

सर्वप्रथम Birmingham Corporation के Deputy Mayor—Jim Whorwood ने माल्यार्पण एवं कुछ उपहार दान करके श्रीलमहाराजजीका स्वागत किया। Mr. Jim Whorwood के बाद श्रीओमप्रकाश शर्मा, President, National Council of Hindu Temple in United Kingdom ने माल्यार्पण द्वारा श्रीलमहाराजजीका स्वागत किया। अन्तमें बर्मिंघम स्थित Indian Counsulate General—Mr. Sapra ने श्रीलमहाराजजीको माल्यार्पण एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी प्रशंसा करके गौड़ीय मठोंका गुणगान करते हुए स्वागत किया। पूर्वोक्त तीन माननीय व्यक्तियोंने धर्मसभाके अन्तमें संकीर्तनमें हाथ उठाकर वैष्णवों सहित कुछ देर तक नृत्य-कीर्तन किया। तीनोंने ही विशेष रूपसे अनुरोध किया है कि वे अपने पद पर रहे या नहीं रहे, श्रीलमहाराजजी जब भी बर्मिंघम आएँ तो उनको सूचना दी जाए। वे साक्षात् करनेके लिए अवश्य ही आएँगे। श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके पक्षसे अनुरूप आश्वासन वाक्य प्रदान किए गए हैं। अन्तमें जयध्वनि देकर सभाका कार्य समाप्त हुआ।

वैष्णव दासानुदास
त्रिदण्डभिक्षु भक्तिवेदान्त माधव

विरह-संवाद

नित्यलीलाप्रविष्ट ३५विष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर 'प्रभुपाद' के चरणाश्रित पूज्यपाद श्रीकेशव प्रभु, श्रीधाम जगन्नाथपुरी स्थित श्रीचैतन्य गौड़ीय मठमें ६ जुलाई २००२, शनिवार, आषाढ़ कृष्ण योगिनी एकादशीके दिन प्रातः ९-४५ बजे अप्रकट हो गए।

३५विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीको उनकी विदेश प्रचार यात्राके दौरान लण्डनमें यह दुःखद संवाद प्राप्त हुआ। इस विरह संवेदनामें श्रीलमहाराजजी द्वारा श्रीचैतन्य मठके पूज्यपाद श्रील भारती महाराजजीको प्रेषित ई-मेल पत्र।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः

लण्डन (इंग्लैण्ड)
०८ जुलाई, २००२

श्रीश्रीवैष्णवचरणोमें दण्डवत्पूर्विकेयम्

पूज्यपाद भारती महाराज ! अनुग्रहपूर्वक दासाधमका साष्टांग दण्डवत्पूर्विकेयम्
लिए प्रार्थना है।

विशेष बात यह है कि कल श्रीधामपुरीसे पूज्यपाद केशव प्रभुके परलोक गमनका दुसंवाद प्राप्त हुआ। सुनकर हम सभी लोग बड़े दुःखित हुए। वे परम वैष्णव थे। उन्होंने श्रीलप्रभुपादकी प्रचुर सेवा की थी तथा ३५ विष्णुपाद श्रीलमाधव महाराजकीकी भी प्रचुर सेवा की थी। आसाम अंचलमें प्रचारका अधिकांश श्रेय उनको है। हम सभीके ऊपर उनकी बड़ी कृपा रहती थी। आज उन जैसे वैष्णवके संगसे वर्चित होनेके कारण हम सभी दुःखी हैं। वे हम लोगों पर प्रचुर कृपा करें कि हम लोग भी उन्हींके समान निष्कपट होकर श्रीश्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी प्रीतिपूर्वक सेवा कर सकें।

इति—

प्रणत दासाधम
श्रीभक्तिवेदान्त नारायण

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्णण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५१ भाद्रपद मास, सन् २००२, २३ अगस्त—२१ सितम्बर

{ संख्या ६

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुरभक्तिविनोदकृत]

(वर्ष ४६, संख्या ५, पृष्ठ ९९ से आगे)

तेषां पापप्रशमनमतिः कण्टके माघमासे लोकेशाक्षिप्रमवयसि यः केशवान्न्यासलिङ्गम्।
लेभे लोके परमविदुषां पूजनीयो वरेण्यस्तं चैतन्यं कच्चिरहितं दण्डहस्तं स्मरामि ॥३५॥
त्यक्त्वा गेहं स्वजनसहितं श्रीनवद्वीपभूमौ नित्यानन्दप्रणयवशगः कृष्णचैतन्यचन्द्रः।
भ्रामं भ्रामं नगरमगमच्छान्तिपूर्वं पुरं यस्तं गौराङ्गं ब्रजजिगमिषाविष्टमूर्तिं स्मरामि ॥३६॥
तत्रानीता त्वजितजननी हर्षशोकाकुला सा भिक्षां दत्त्वा कतिपयदिवा पालयामास सूनुम्।
भक्त्या यस्तद्विधिमनुसरन् क्षेत्रयात्रां चकार तं गौराङ्गं भ्रमणकुशलं न्यासिराजं स्मरामि ॥३७॥

नित्यानन्दो विबुधजगदानन्ददामोदरौ च लीलागाने परमनिपुणो दत्तसूनमुकुन्दः ।
 एते भक्ताश्चरणमधुपा येन सार्द्धं प्रचेलुस्तं गौराङ्गं प्रणतपटलं प्रेष्ठमूर्ति स्मरामि ॥३८ ॥
 त्यक्त्वा गङ्गातटजनपदांश्चाम्बुलिङ्गं महेशमोद्रे देशे रमणविपिने क्षीरचौरं च वीक्ष्य ।
 श्रीगोपालं कटकनगरे यो ददर्शात्मरूपं तं गौराङ्गं स्वभजनपरं भक्तमूर्ति स्मरामि ॥३९ ॥
 एकाम्राख्ये पशुपतिवने रुद्रलिङ्गं प्रणम्य यातः कापोतकशिवपुरं स्वस्य दण्डं विहाय ।
 नित्यानन्दस्तु तदवसरे यस्य दण्डं बभञ्ज तं गौराङ्गं कपटमनुजं भक्तभक्तं स्मरामि ॥४० ॥
 भग्ने दण्डे कपटकुपितस्तान् विहाय स्ववर्गानेको नीलाचलपतिपुरं प्राप्य तूर्णं प्रभुर्यः ।
 भावावेशं परममगमत् कृष्णरूपं विलोक्य तं गौराङ्गं पुरटवपुषं न्यस्तदण्डं स्मरामि ॥४१ ॥
 भावास्वादप्रकटसमये सार्वभौमस्य सेवा तस्यानर्थान् प्रकृतिविपुलान् नाशयामास सर्वान् ।
 तस्माद् यस्य प्रबलकृपया वैष्णवोऽभूत् स चापि तं वेदार्थप्रचरणविधौ तत्त्वमूर्ति स्मरामि ॥४२ ॥

पद्मानुवाद

[परलोकगत पं. मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]

तिनके पाप प्रशमहित नगर कण्टोआ जाय ।
 वयस वरस चौबीसमें माघ पंचमी पाय ॥
 केशव भारतिके निकट लीयौ प्रभु संन्यास ।
 जग पूजित धारन कियौ दण्ड गेरुआ बास ॥
 नाम 'कृष्णचैतन्य' कर करुआ मुख हरिनाम ।
 अलक शिखा प्रभु शीस तें कीने अन्तर धान ॥३५ ॥
 अधिक आव आवेश प्रभु वृन्दावन चलि जाय ।
 नित्यानन्द कौशल बडे राखे तहीं फिराय ॥
 भ्रमे राढ़ में तीन दिन प्रभु बिना जल अन्न ।
 भानुसुताके भाव 'सुर सरिता' परस प्रसन्न ॥
 आचारज अद्वैतके भवन शान्तिपुर लाय ।
 बैठारे चैतन्य प्रभु नित्यानन्द सुख पाय ॥३६ ॥
 प्रभु जननी आई तहीं आकुल आनन्द शोक ।
 भई भीर भारी जुरे देखन कोटिक लोक ॥
 जननी भिक्षा दई राख कछुक दिन पास ।
 आज्ञा सुत कौ दई माँ श्रीनीलाचल वास ॥३७ ॥
 पण्डित जगदानन्द दामोदर नित्यानन्द ।
 चार भक्त प्रभु संग चले गायक प्रवन मुकुन्द ॥३८ ॥
 तज गंगा तट जान पद छत्रभोग में जाय ।
 अम्बुलिंग शिवके दरस कीये अति सुख पाय ॥
 क्षीर चोर श्रीगोपीनाथ 'रमण बन' माँहि ।
 लखे जाय 'गोपाल' पुन कटक नगर सर साँहि ॥३९ ॥

एक आम्र पशुपति विपिन जाय रुद्र शिर नाय।
 गये 'कपोतेश्वर' दरश भक्तन दण्ड गहाय॥
 तहँ श्रीनित्यानन्द प्रभु कियौ दण्ड सो भङ्ग।
 दियो विसर्जन नदीमें को जानत यह रङ्ग॥४०॥
 दण्ड भङ्ग तें कुपित प्रभु सब सङ्गिन तज दीन।
 नीलाचल कौं दौड़ प्रभु इकले चले प्रवीन॥
 भयौ भाव आवेश अति लखि नीलाचल चन्द।
 दौरे आलिङ्गन करत गिरे मूरछा छन्द॥४१॥
 सेवे सार्वभौम तहँ पथराये निजगेह।
 परिचरया करिवे लगे प्रतिदिन परम सनेह॥
 भेंटे भट्टाचार्य के सब कुतर्क हरिराय।
 किये वैष्णव परम सो 'श्रुतिशिर' अर्थ बुझाय॥
 वेद अर्थ वर्णन कियौ नास सकल भ्रमजाल।
 आप वेद कर्ता प्रभु चिदूधन रूप विशाल॥४२॥

(क्रमशः)

प्रश्नोत्तर

गौड़ीय पूर्वचार्योंका वैशिष्ट्य

* चार सात्वत वैष्णव-सम्प्रदायके चार आचार्य कौन हैं?

"श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और श्रीनिम्बादित्य—ये चार वैष्णव आचार्य हैं। और जितने भी वैष्णवाचार्य हुए हैं, वे इन्हीं चारों आचार्योंमें से किसी-न-किसी एक आचार्यके अनुगत हैं। श्रीरामानुज विशिष्टाद्वैतवादी हैं, श्रीमध्व शुद्धाद्वैतवादी हैं, श्रीविष्णुस्वामी शुद्धाद्वैतवादी हैं तथा श्रीनिम्बादित्य द्वैताद्वैतवादी हैं।"

—'श्रीनिम्बादित्याचार्य', सज्जनतोषणी ७/७

* श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्द, श्रीअद्वैत, श्रीरूप, श्रीसनातन और श्रीजीव आदि गोस्वामियोंके ऊपर कौन-कौनसे कार्यका भार दिया था?

"श्रीगौरसुन्दरने श्रीनित्यानन्द-प्रभु और श्रीअद्वैत-

—जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर प्रभुको श्रीनाम-माहात्म्य प्रचार करनेकी आज्ञा और शक्ति प्रदान की थी। श्रीसनातन गोस्वामीको वैधी-भक्तिका तथा वैधीभक्ति और रागभक्तिके पारस्परिक सम्बन्धका प्रचार करनेकी आज्ञा दी थी। इसके अतिरिक्त गोकुलके प्रकटाप्रकट सम्बन्धका निर्णय करनेके लिए भी सनातन गोस्वामीको आज्ञा दी थी। श्रीरूप गोस्वामीको उन्होंने रस-तत्त्व प्रकाश करनेकी आज्ञा और शक्ति दी थी। श्रीनित्यानन्द-प्रभु और श्रीसनातन गोस्वामीके द्वारा श्रीजीव गोस्वामीको सम्बन्ध, अधिधेय और प्रयोजनतत्त्व निर्णय करनेकी शक्ति दी थी।"

—जैव-धर्म, ३९ अध्याय

* श्रीस्वरूपदामोदर प्रभुके ऊपर क्या भार

था?

“श्रीमन्महाप्रभुने श्रीस्वरूपदामोदरको रसमयी उपासनाका प्रचार करनेके लिए आज्ञा दी थी। श्रीमन्महाप्रभुकी इस आज्ञाकी पूर्तिके लिए उन्होंने दो भागोंमें कड़चाओं (संस्कृतके फुटकर श्लोक, जिन्हें वे समय-समय पर श्रीमन्महाप्रभुजीके उद्गारों, भावों तथा उपदेशोंको हृदयङ्गमकर लिख डालते थे) की रचना की है। कड़चाके एक भागमें उन्होंने रसोपासनाकी अन्तःपद्धतिका तथा दूसरे भागमें बहिःपद्धतिको लिखा। उनमेंसे अन्तःपद्धति—श्रीरघुनाथदास गोस्वामीको कण्ठस्थ करवायी थी, जो श्रीरघुनाथदास गोस्वामीके ग्रन्थोंमें पर्यवसित हुई है तथा बहिःपद्धति श्रीमद्वक्रेश्वर गोस्वामीको अर्पण की थी।”

—जैवधर्म, ३९ अध्याय

★ श्रीरायरामानन्दके प्रति रस-विस्तारके लिए दिए गए भारको किसने सम्पत्र किया है?

“श्रीमन्महाप्रभुजीने रायरामानन्दको रसका विस्तार करनेके लिए जो भार दिया था, उसे उन्होंने श्रीरूपगोस्वामीके द्वारा ही सम्पत्र करवाया है।”

—जैवधर्म, ३९ अध्याय

★ गौड़ीय आचार्योंके सेनापति कौन हैं?

“श्रीसनातन गोस्वामी ही हमारे गौड़ीय वैष्णवोंके सेनापति हैं।”

—तात्पर्यानुवाद, वृहद्भागवतामृतम् २/१/१४

★ वैष्णव-जगत श्रीसनातन गोस्वामीका चिरऋणी क्यों है?

“श्रीश्रीमन्महाप्रभुने श्रीसनातन गोस्वामीके अन्दर सम्पूर्ण शक्तिका संचार करके श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेके लिए उन्हें वाराणसीसे ब्रजमण्डलमें भेजा था। सनातन गोस्वामी महाप्रभुजीकी शक्ति-संचारसे प्रेमानन्दमें विभोर होकर वृन्दावनमें आए तथा दूसरे-दूसरे भक्तोंके साथ मिलकर लुप्ततीर्थोंका उद्धार किया, श्रीविग्रहोंको प्रकट किया तथा श्रीमन्महाप्रभुके उपदेशानुसार

भगवद्भक्ति-प्रतिपाद्य अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना की। पाठको! श्रीसनातन गोस्वामीके निकट सम्पूर्ण वैष्णव जगत चिरऋणी है और रहेगा।”

—श्रीसनातन गोस्वामी प्रभु, स. तो. २/७

★ श्रीरूप गोस्वामीका आचार-प्रचार क्या है?

“श्रीरूप गोस्वामीने जिस दिन श्रीनवद्वीपचन्द्र श्रीश्रीशचीनन्दन महाप्रभुजीका नाम सुना, उसी दिनसे वे श्रीमन्महाप्रभुजीके दर्शनके लिए पागल-से हो गए। स्वभक्त-तत्त्वज्ञ-सर्वान्तर्यामी श्रीचैतन्यदेवने श्रीरूपके अन्तरकी बात जानकर श्रीवृन्दावन-गमनके समय रास्तेमें रामकेलि ग्राममें उपस्थित होकर श्रीरूपको दर्शन दिया। श्रीमन्महाप्रभुका दर्शनकर श्रीरूप अपना जीवन सफल मानकर आनन्द सागरमें निमग्न हो गए। नित्यमुक्त कृष्णभक्तोंको मायादेवी कभी भी बाँध नहीं सकती। थोड़े ही दिनोंमें श्रीरूपने विषय-सुखको लात मार करके महावैराग्यपूर्वक प्रयाग-तीर्थमें श्रीमन्महाप्रभुके चरणप्रान्तमें अपनेको समर्पित कर दिया। महाप्रभुजीने कृपापूर्वक श्रीरूपके अन्दर शक्ति-संचार कर रसतत्त्वका उपदेश देकर श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेके लिए वहाँ भेजा। श्रीमन्महाप्रभुकी आज्ञाको शिरोधार्य करके श्रीरूप वृन्दावन पहुँचे तथा वहाँ दूसरे-दूसरे भक्तोंके साथ मिलकर उन्होंने ब्रजमण्डलके लुप्त तीर्थोंका उद्धार किया तथा श्रीमूर्तिकी सेवा प्रकट की। तदनन्तर उन्होंने पाप-तापाच्छादित अखिल जीवोंके कल्याणके लिए श्रीमन्महाप्रभुके निकट उपदेशके रूपमें प्राप्त भगवद्भक्ति-तत्त्वसे परिपूर्ण भक्तिरसामृत-सिन्धु, लघुभागवतामृत, हंसदूत, उद्धवसंदेश, कृष्ण-जन्मतिथि-विधि, लघु और वृहद् राधाकृष्ण गणोद्देशदीपिका, स्तवमाला, विद्यधमाधव, ललितमाधव, दानकेलिकामुदी, उज्ज्वलनीलमणि, प्रयुक्ताच्य (आख्यात) चन्द्रिका, मथुरा-महिमा, पद्मावली, नाटक-चन्द्रिका आदि अनेक ग्रन्थोंकी रचना

की। पतितपावन गौराङ्गदेवने रूप-सनातन द्वारा दैन्य, स्वरूपदामोदर द्वारा निरपेक्षता, ब्रह्म हरिदास द्वारा सहिष्णुता और राय रामानन्द द्वारा जितेन्द्रियता-धर्मका प्रचार करवाया है। किसी-किसी भक्तने अपनी लेखनीमें व्यक्त किया है कि श्रीमहाप्रभुने श्रीरूपके द्वारा लीला-तत्त्वका, श्रीसनातनके द्वारा भक्ति-तत्त्वका, ब्रह्महरिदासके द्वारा नाम-तत्त्वका और राय रामानन्दके द्वारा प्रेम-तत्त्वका प्रचार करवाया है। जैसा भी हो इस विषयमें हमें कुछ भी आपत्ति नहीं है। परन्तु खेदका विषय यह है कि नेड़ा-नेड़ी, बाउल, कर्त्तारभजा, रसिक-शेखर, सहजिया आदि कुसम्प्रदायके लोग झूठ-मूठ इन महात्माओंको अपने-अपने मतका आचार्य बतलाते और प्रचार करते हैं, जिससे जनसाधारणके हृदयमें श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित परम-पवित्र वैष्णव धर्मके प्रति क्रमशः ध्रुम और अश्रद्धा बढ़ रही है।”

—श्रीरूपगोस्वामी प्रभु, स. तो. २/८

* श्रीरूपगोस्वामीके सिद्धान्त क्या सर्वत्र आदरणीय हैं?

“श्रीरूपगोस्वामीने सर्वत्र ही शास्त्र-प्रमाण देकर सुयुक्तियोंके साथ अपने सिद्धान्तोंकी प्रतिष्ठा की है। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायके लोगोंको श्रीरूप गोस्वामीके कुछ सिद्धान्त ठीक नहीं जँचते। फिर भी जो लोग शुद्धसत्त्वको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे उपासना-पद्धतिको अपनाते हैं, इनको श्रीरूप गोस्वामीके सिद्धान्त बड़े अच्छे लगते हैं।”

—श्रीलघुभागवतामृत समालोचना, स. तो. ११/३

* श्रीरघुनाथदास गोस्वामी प्रभुको श्रीरूपानुग क्यों कहा जाता है?

“श्चीनन्दन गौरहरिने स्वयं भगवान होकर भी संन्यास वेश ग्रहण करके नीलाचलपुरीमें स्वरूपदामोदर तथा रायरामानन्द आदि प्रेमी भक्तोंको राधाभावमें विभावित होकर प्रेमके जिस निगूँड़ तत्त्वकी शिक्षा

दी थी तथा उन भक्तोंके साथ जिस प्रेमरस-निर्यासका आस्वादन किया था, उसी निगूँड़ तत्त्वोंकी शिक्षा देकर श्रीरघुनाथदासको श्रीरूप गोस्वामीके पास वृन्दावनमें भेज दिया। श्रीमन्महाप्रभुके आज्ञानुसार श्रीदास गोस्वामीने ब्रजमें उपस्थित होकर श्रीरूपके साथ उनके आनुगत्यमें श्रीराधाकृष्णका भजन किया है तथा जीव-कल्याणके लिए ‘मनःशिक्षा’ का प्रकाश किया है।”

—श्रीमनःशिक्षा ५ वाँ श्लोक

* श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामी प्रभुके प्रति महाप्रभुने कौन-सा भार अर्पण किया था?

“श्रीभागवत-माहात्म्यका प्रचार करनेका भार ही श्रीरघुनाथ भट्ट गोस्वामीके ऊपर अर्पित था।”

—जैव-धर्म, ३९ अध्याय

* श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामीके ऊपर क्या भार दिया गया था?

“शुद्ध शृङ्गार-रसको कोई विकृत न कर सके तथा वैधी भक्तिके प्रति कोई अकारण ही अश्रद्धा न करे—इसकी व्यवस्था करनेका भार श्रीगोपाल-भट्ट गोस्वामीको दिया गया था।”

—जैव-धर्म, ३१ अध्याय

* श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके ऊपर क्या भार था?

“ब्रजरसानुराग-मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ उपासना-मार्ग यही जगतको बतलानेका भार श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीको अर्पण किया गया था।”

—जैव-धर्म, अध्याय ३९

* सार्वभौम भट्टाचार्यके ऊपर कौनसा भार था?

“विशुद्ध तत्त्वका प्रचार करनेका भार सार्वभौमके ऊपर था। उन्होंने वह भार अपने किसी शिष्य द्वारा श्रीजीवगोस्वामी पर सौंपा था।”

—जैव-धर्म, अध्याय ३९

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

(वर्ष ४६, संख्या ५, पृष्ठ १०३ से आगे)

प्र. २४—क्या हम अपनी रक्षा स्वयं कर सकते हैं?

उ.—कदापि नहीं। मैं अपनी रक्षा स्वयं कर सकता हूँ, ऐसा विचार अभक्त या असुरका ही होता है। हृदयमें ऐसे विचार उठने पर विपत्ति निश्चित है। कृष्ण ही मेरी रक्षा करनेवाले हैं, अतः मुझे किसका भय है? भक्त प्रह्लादकी भाँति ऐसा विचार ही ग्रहण करने योग्य है। भगवानकी कथाओंसे उदासीन होनेपर तथा भगवानके ऊपर निर्भरता कम होनेपर ही ऐसे अनेक प्रकारके कुविचार तथा अहङ्कार आकर हमें विपत्तिमें डाल देते हैं।

प्र. २५—किसका उद्धार होता है?

उ.—जैसे ही हम भगवानकी सेवा छोड़ देते हैं, वैसे ही अनेक प्रकारकी कुचिन्ताएँ या भोगबुद्धि आकर हमें ग्रास कर लेती हैं। परमकरुणामय श्रीकृष्ण इस विपत्तिसे हमारी रक्षा करनेके लिए सदा-सर्वदा तैयार रहते हैं। किन्तु यदि हम उनपर पूर्णरूपसे निर्भर न हों अर्थात् हमें यदि दृढ़ विश्वास न हो कि कृष्ण ही हमारी रक्षा करनेवाले हैं, तो हमारी रक्षा किस प्रकार हो सकती है? कृष्ण गुरुके रूपमें जीवोंकी रक्षा करते हैं। कृष्णकी कृपाकी मूर्ति ही गुरु हैं। कृष्णके प्रतिनिधिके रूपमें गुरुदेव जीवोंका संसारसे उद्धारकर उन्हें कृष्णके निकट ले जानेके लिए इस संसारमें आते हैं। जो भाग्यवान व्यक्ति इसे समझकर गुरुकी कृपाको आदरपूर्वक ग्रहण करते हैं, केवल वे ही इस दुःखमय संसारसे पार होकर परमशान्तिमय स्थान भगवानके धामको जा सकते हैं।

प्र. २६—हमारा मङ्गल कैसे होगा?

उ.—यदि सौभाग्यसे एकबार भी किसीको यह ज्ञान या अनुभूति हो जाए कि कृष्ण ही मेरे प्रभु हैं तथा मैं कृष्णका नित्यदास हूँ, तो उसके समस्त प्रकारके अमङ्गल जलकर राख हो जाते हैं तथा समस्त प्रकारके मङ्गल उसके हाथमें आ जाते हैं।

प्र. २७—कल्याणका मार्ग क्या है?

उ.—दुःख तथा सुखमें भगवानके श्रीचरणोंमें शरणागति ही कल्याणका एकमात्र मार्ग है। कृष्ण ही हमारी रक्षा करनेवाले हैं, ऐसे दृढ़ विश्वासका नाम ही शरणागति है। यदि इस शरणागति अथवा दृढ़ विश्वासको त्यागकर हम अपनी रक्षा स्वयं करनेकी चेष्टा करें अर्थात् स्वयं ही रक्षाकर्त्ता बन जाएँ तो सर्वनाश निश्चित है। सब प्रकारसे कृष्णके ऊपर निर्भर होनेपर ही कल्याण होता है। अन्यथा जन्म-जन्मान्तरों तक दुःख ही दुःख भोगने पड़ते हैं। आश्रितवत्सल भगवान् अपनी शरणमें आए हुए भक्तका सारा भार (दायित्व) ग्रहण कर लेते हैं। अतः हमें तो बस भगवानके आश्रित होना है अर्थात् उनकी शरणमें जाना है, बाकी दायित्व भगवानका है।

प्र. २८—भक्त कौन है?

उ.—जो कृष्णके सुखके लिए अपने सुखको त्याग देते हैं, जो कृष्णके सुखके लिए समस्त प्रकारके भोगोंको त्यागकर नित्य-निरन्तर उनकी सेवामें नियुक्त रहते हैं, वे ही भक्त हैं। ऐसे भक्तोंका ही कल्याण होता है। कृष्णको सुख देनेकी प्रवृत्ति (इच्छा) ही भक्ति है। स्वसुखकामी होकर स्वयं सुखी रहँगा, ऐसी प्रवृत्ति ही अभक्ति है। यही दुःखोंका मुख्य कारण है।

स्वयं कृष्ण सजकर अर्थात् संसारी होकर

स्त्रीसंग कर्हुँगा, यह अभक्तोंका विचार है। हमें ऐसे अभक्तोंके आदर्शोंको नहीं, बल्कि भक्तोंके आदर्शोंको ग्रहण करना चाहिए। तभी हमारा कल्याण हो सकता है। यदि हम अपनेको सदा-सर्वदा भगवानकी सेवामें न लगाए रखें, तो या तो हम भोगी हो जाएँगे या त्यागी। परन्तु भक्त नहीं हो पाएँगे।

प्र. २९—भगवानके दर्शनका पथ क्या है?

उ.—श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें सेवोन्मुख होकर कृष्णकी कृपाकी अपेक्षा ही भगवानके दर्शनका मार्ग है। Transparent (पारदर्शी) गुरुके बीचसे ही भगवानका दर्शन होता है तथा शुद्धभक्तिमार्ग ही भगवद्वर्षनका पथ है।

प्र. ३०—हम कृष्णकी सेवा कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

उ.—मुक्त हुए बिना कृष्णकी सेवामें अधिकार प्राप्त नहीं होता। जो अपना सर्वस्व भगवानको दे देते हैं, वे ही मुक्त होते हैं। भगवानको अपना सर्वस्व न देना ही बद्धता अथवा कृष्णविमुखता है। मुक्तपुरुष अपना सर्वस्व देकर भी कृष्णकी सेवा करते हैं। उनकी सभी चेष्टाएँ केवल कृष्णके सुखके लिए ही होती है। परन्तु गुरुकी कृपाके बिना भगवानको अपना सर्वस्व देना तथा मुक्त होना भी असंभव है। क्योंकि कृष्ण श्रीगुरुदेवके हृदयके धन हैं। अतः यदि वे किसीको कृष्णको न दें तो वह किसी भी साधनके द्वारा कृष्णको प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिए गुरुदेवकी सेवाके बिना कृष्णकी सेवामें कभी भी अधिकार नहीं मिलता। हमें गुरुका दास बनकर कृष्णकी सेवा करनी होगी, तभी हमें कृष्णकी सेवा प्राप्त हो सकती है। जो गुरुका आनुगत्य तथा गुरुसेवा नहीं करता, उसके लिए कृष्णसेवा प्राप्त करना असंभव है।

प्र. ३१—हम क्या नामके सेवक हैं?

उ.—अवश्य ही। आत्मस्वरूपमें, कार्ष्ण-

स्वरूपमें या स्वरूप अवस्था (शुद्धस्वरूप) में कृष्णकी सेवाको छोड़कर हमारा और कोई कार्य नहीं है। कृष्णका नाम ही कृष्ण है। अतः कृष्णनामकी सेवा ही कृष्णसेवा है।

जैसे ही हम कृष्णकी सेवा या नामकी सेवाको भूल जाते हैं, उसी समय स्वरूप-विस्मृत होनेके कारण (मैं कृष्णदास हूँ, इसे भूलकर) मायाके फंदेमें पड़कर हमें विभिन्न प्रकारके कष्ट उठाने पड़ते हैं। जब गुरुकी कृपासे हमारा सम्बन्धज्ञान उदित होता है, तब हम जान पाते हैं कि हम कृष्णके नित्यदास हैं तथा जगतकी सभी वस्तुएँ कृष्णकी सेवाके लिए ही हैं।

जो संसारसे मुक्त होकर नित्यकालके लिए सुखी होना चाहते हैं, उन्हें सदा-सर्वदा कृष्णनामसंकीर्तन करना चाहिए, यही महाप्रभुका उपदेश है। इसीलिए भक्तलोग स्वयंको नामके सेवकके रूपमें जानते हैं तथा जगतके प्रत्येक जीवको कृष्णका भोग्य (सेवक) तथा जगतकी प्रत्येक वस्तुओंको कृष्णकी सेवाके उपकरणके रूपमें जानते हैं।

श्रीकृष्णनाम अखिलरसामृतसिन्धु हैं। श्रीकृष्णनाम सच्चिदानन्दविग्रह हैं। श्रीकृष्णके श्यामसुन्दर, यशोदानन्दन इत्यादि अनेक नाम हैं।

अखिलरसामृतमूर्ति कृष्णनामकी सेवा ही साक्षात् कृष्णसेवा है। इसीलिए भक्तवृन्द श्रीनामसंकीर्तनके द्वारा ही सर्वदा कृष्णकी सेवा करते हुए गुरु एवं कृष्ण दोनोंको ही प्रसन्न करते हैं।

प्र. ३२—कृष्णकी पूर्णकृपा प्राप्त करनेका उपाय क्या है?

उ.—श्रीवार्षभानवी (श्रीमतीराधिकाजी) के गणोंमें अर्थात् श्रीरूपगोस्वामीके गणों (परिकरों) में गिनती होनेपर ही कृष्णकी पूर्णकृपा प्राप्त की जा सकती है। श्रीरूपानुगावर (श्रीरूप- गोस्वामीके अनुगत) श्रीगुरुदेवकी चरणधूलि अथवा उनका सेवक होनेपर ही वह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है। इसलिए

हममेंसे प्रत्येकको तृणादपि सुनीच अर्थात् एक तिनकेसे भी अधिक दीन-हीन होना चाहिए। जिसके पास जो कुछ भी है, उसे त्यागकर अपनेको गुरुका सेवक अथवा नामका सेवक मानना ही तृणादपि सुनीचता है।

प्र. ३३—गुरु कौन हो सकता है?

उ.—जो स्वयंको वैष्णव मानता है, वह branded अवैष्णव है। जो अपनेको गुरु या श्रेष्ठ मानते हैं, वे गुरु होनेके योग्य नहीं हैं। जो अपनेको शिष्यका शिष्य मानते हैं, केवल वे ही गुरु होनेके योग्य हैं। जिनकी गुरुके प्रति भगवानकी जैसी ही दृढ़ भक्ति है, ऐसे गुरुनिष्ठ भक्त ही गुरुका कार्य करनेमें समर्थ हैं।

प्र. ३४—क्या कृष्णकी सेवाके अतिरिक्त जीवोंका और कोई कार्य नहीं है? हम सेवा कैसे पा सकते हैं?

उ.—कृष्णकी सेवाके अतिरिक्त कृष्णके नित्यदास जीवोंका अन्य कोई कर्तव्य नहीं है। जिनकी भगवान एवं गुरुदेवके प्रति अचला श्रद्धा है, केवल उन्होंके हृदयमें परमार्थ विषयक सत्यवाक्य प्रकाशित होते हैं।

जिस दिन हमें यह उपलब्ध होगी कि सेवाविग्रह श्रीगुरुदेव श्रीचैतन्यमहाप्रभुसे अभिन्न हैं, उसी दिन हम श्रीगौरसुन्दरकी सेवा प्राप्त कर सकते हैं। उसी दिन हम श्रीराधागोविन्दजीकी निर्भृत सेवाका सौभाग्य प्राप्त कर सकते हैं। जिस दिन हमें उपलब्ध होगी कि महान्तगुरु (दोक्षा गुरु) श्रीचैतन्यमहाप्रभुके निजजन हैं, उसी दिन श्रीराधागोविन्दकी लीलाकथाँ हमारे शुद्ध निर्मल हृदयमें स्फुरित होंगी।

प्र. ३५—वैष्णवदर्शनको कैसे समझा जा सकता है?

उ.—मनुष्य कितना ही बड़ा विद्वान् या पण्डित क्यों न हो जाए, परन्तु अपनी चेष्टाके

द्वारा वैष्णवदर्शनको नहीं समझ सकता। जिसका चरित्र ही वैष्णवदर्शनस्वरूप हो चुका है अर्थात् जिसके जीवनकी प्रत्येक चेष्टा वैष्णवदर्शनके अनुसार ही होती है, ऐसे आचार्यकी शरणमें जाए बिना वैष्णवदर्शनकी बातोंको समझना असंभव है। जैसा कि गीतामें भी कहा है—

तद्विद्वि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

अर्थात् शरणागति, परिप्रश्न (जिज्ञासा), सेवाकी भावना—यदि किसीके पास ये तीनों गुण हों, तो वह वैष्णवदर्शनकी बातोंको समझ सकता है। जो व्यक्ति इन तीन प्रकारकी दक्षिणाओंको लेकर आचार्यके निकट उपस्थित होते हैं, केवल उन्हें ही वैष्णवदर्शनके अध्यापक (आचार्य) वैष्णवदर्शनकी बातोंको समझाते हैं। वैष्णवदर्शनके अध्यापक केवल इस तीन प्रकारकी दक्षिणाको ही चाहते हैं। उन्हें किसी भी प्रकारकी जागतिक दक्षिणाका लोभ नहीं होता अर्थात् वैष्णवदर्शनके अध्यापक (वैष्णव आचार्य) किसीको उपदेश देनेसे पहले यह देखते हैं कि उसके पास ये तीन गुण हैं या नहीं।

प्र. ३६—क्या महाप्रभुका उपकार ही सर्वश्रेष्ठ उपकार है?

उ.—हाँ, अवश्य ही। श्रीचैतन्य महाप्रभु एवं उनके भक्तोंके जैसा सर्वश्रेष्ठ उपकारी आजतक न हुआ है, न भविष्यमें होगा। जगतमें जितने भी प्रकारके उपकार हो सकते हैं, वास्तवमें वे सभी उपकारके नाम पर महा-अपकार ही हैं, परन्तु महाप्रभु एवं उनके भक्तोंका उपकार वास्तवमें ही नित्य परम हितकारी है। वह उपकार दस-बीस दिनोंके लिए नहीं है। वह उपकार तात्कालिक उपकार नहीं है कि जो कुछ समय तक तो उपकार करे, परन्तु उसके बाद अपकार (अहित) करे।

जगतमें जितने भी प्रकारके उपकार हो सकते हैं, उनके द्वारा एकका तो हित होता है, परन्तु दूसरेका अहित होता है। जैसे—यदि कोई अपने देश या देशवासियोंका हित (उपकार) करना चाहता है, तो उस समय उसके द्वारा दूसरे देशका अहित अनिवार्य है। यदि कोई व्यक्ति किसी पर उपकार करनेके लिए अर्थात् उसको सुख देनेके लिए घोड़गाड़ी (ताँगा) में बैठा देता है, तो उस समय उस व्यक्तिको तो सुख होता है, परन्तु घोड़ेको कष्ट होता है। इस प्रकार उसने जो उपकार किया, उसके द्वारा उस व्यक्तिका तो उपकार हुआ, परन्तु घोड़ेका अपकार हुआ। इस प्रकारकी लोकवज्ञनामूलक उपकारकी बात महाप्रभु तथा उनके भक्तवृन्द नहीं करते।

उन्होंने ऐसे उपकारकी बात कही है अर्थात् ऐसी वस्तु दान की है, जिसके द्वारा सभीका सर्वदा ही समस्त अवस्थाओंमें कल्याण ही होता है। यह उपकार किसी व्यक्तिविशेषका नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्वब्रह्माण्डका उपकार है। अतः संकीर्ण सम्प्रदायके लोगोंके उपकारकी तरह महाप्रभु एवं उनके भक्तलोग नाशवान उपकार नहीं करते।

महाप्रभुने जो उपकार किया है, उसके द्वारा कभी भी किसीका भी अहित नहीं हो सकता। इसीलिए महाप्रभुकी दया अमन्दोदया दया कहलाती है अर्थात् उनकी दया किसीका भी मन्द (अहित) उत्पन्न नहीं करती। इसीलिए महाप्रभुको महावदान्य तथा उनके भक्तोंको महा-महावदान्य कहा गया है। यह बात काल्पनिक नहीं है, काव्यसाहित्यकी बात नहीं, बल्कि यही सबसे बड़ा सत्य है।

महाप्रभुकी दया ही परिपूर्ण दया है। इसके अतिरिक्त जितने प्रकारकी दया हो सकती है, वह सब अपूर्ण एवं वज्जनामयी हैं। भगवान् मत्स्यदेव, कूर्मदेव, वराहदेव, रामचन्द्र, यहाँ तक कि स्वयं कृष्णने भी केवल अपने शरणमें आए हुए व्यक्तिके ऊपर ही कृपा की, परन्तु विरोधियोंका संहार ही किया। परन्तु श्रीचैतन्यमहाप्रभुने तो विरोधियोंके ऊपर भी कृपा की। जैसे—काजी एवं बौद्ध आचार्य प्रभुके विरोधी होनेपर भी प्रभुने उनपर बिना किसी संकोचके कृपा की। रामके उपासक रामायतगणको भी उन्होंने शुद्ध वैष्णव बना दिया था। (क्रमशः)

(अनुवादक—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी)

झूलन गीत

झूला झूलें राधा दामोदर वृन्दावन में।
कैसी छायी हरियाली आली कुञ्जन में॥
इत नन्द को दुलारो, उत भानु की दुलारी।
जोड़ी लागे अति प्यारी, बसी नैनन में॥
यमुना के कूल पहरि सुरंग दुकूल।
कैसे खिल रहे फूल, आली कदमन में॥
गौर श्याम रंग, धन दामिनी के संग।
भयी अंखियाँ अपंग, छवि भरी मन में॥
राधे मुख ओर, नैन श्याम के चकोर।
व्रज गोपीन प्रेम डोर, लागी चरणन में॥

नन्दके लालाको बधाई

जियो श्याम लाला जियो श्याम लाला।
पीली तेरी पगड़ी रंग काला ॥
गोकुल में आये नन्दलाला।
गोपियों से पढ़ गया अब पाला ॥
मत रो कान्हा ऊवाँ ऊवाँ।
समझावै सुनन्दा बुआ ॥
खीर जलेबी पूड़ी लड्डू पूआ।
यशोमती धर आनन्द हुआ ॥
चरमर चरमर करे पलना।
ब्रजवासी गायें जियो ललना ॥

भगवान् जगन्नाथकी रथयात्रा और नाम भजन

(वर्ष ४६, संख्या ४, पृष्ठ ८४ से आगे)

—नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिप्रमाद
पुरी गोस्वामी महाराज

नैष्ठिकी भक्तिके लक्षण श्रीमद्भागवतमें इस प्रकार कहे गए हैं—

तदा रजस्तमोभावाः कामलोभादयश्च ये।

चेत् एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति॥

जब नैष्ठिकी भक्ति उदित होती है, तब रजोगुण और तमोगुणके भाव—काम और लोभादि शान्त हो जाते हैं और चित्त इनसे रहित होकर सत्त्वगुणमें स्थित एवं निर्मल हो जाता है। और यदि हम इस स्तर तक नहीं पहुँच पाए, तब हम अष्ट सत्त्विक भाव जैसे किसी विकारको कैसे प्राप्त कर सकते हैं?

हमारा लक्ष्य क्या है? इसको स्पष्ट रूपसे बतानेके लिए कि हमारा लक्ष्य क्या है, श्रील प्रभुपादने कार्तिक मासमें हमें अष्ट-कालीय-लीला-स्मरणका सूत्र रूपमें वर्णन किया।

श्रील प्रभुपादने कहा कि अष्ट-कालीय-लीला-स्मरण करो। परन्तु पहले हरिनाम करो। सर्वप्रथम श्रीहरिनाममें थोड़ी निष्ठा तो आने दो। ‘अविक्षेपेन सातत्यम्’ उस स्तरको आने दो, जहाँ पर मन स्थिर और विक्षेप आदिसे रहित हो जाता है। मैं तो केवल विक्षेप ही देखता हूँ, मन इधर-उधर भागता है। दूसरी ओर, यदि भगवानकी लीलाओंका चिन्तन करनेसे कुछ लाभ होता है, तब यह और बात है। परन्तु यदि हमारा चित्त प्रतिक्षण अन्य विषयोंकी चिन्ता करता है, तो फिर इन लीलाओंका स्मरण करनेकी वास्तविक उत्कण्ठा कैसे उत्पन्न हो सकती है? इसलिए जब मेरे शिष्य दुःखी होकर पूछते हैं—“महाराज! क्या हम इस भावरहित स्थितिमें ही सब समय भजन

करेंगे?” मैं उनको उत्तर देता हूँ—“यदि तुम नैष्ठिकी भक्तिकी स्थितिमें पहुँच चुके हो तो फिर तुम जैसा चाहो, वैसा कर सकते हो। और तुम दूसरोंको भी इस मार्गके विषयमें बता सकते हो। परन्तु यदि तुम स्वयं ही नैष्ठिकी-भक्तिके स्तर तक नहीं पहुँचे हो, तो फिर दूसरेको कैसे उपदेश दे सकते हो? और इस स्थिति तक पहुँचनेके लिए श्रीहरिनामके अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।”

ऐसा नहीं हो सकता कि हरिनामके बिना ही किसीके चित्त रूपी दर्पणका मार्जन हो जाए। जब श्रीहरिनाममें दृढ़ता आ जाए और हृदयमें नैष्ठिकी-भक्ति उत्पन्न हो जाए, फिर और प्रश्न करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हें समझमें आ रहा है कि मैं क्या कहना चाहता हूँ? क्या अभी भी तुम मुझसे कहोगे कि हमें ‘कृष्ण-लीलामृतका पान करनेकी आवश्यकता है?’ श्रीकृष्ण-लीलाका स्मरण करनेसे पूर्व तुम्हारे चित्तरूपी दर्पणका एक स्तर तक मार्जन हो जाना आवश्यक है। जब तक हृदय काम, क्रोध, लोभ आदिसे भरा हुआ है, तब तक कोई कैसे इन दिव्य लीलाओंको अनुभव कर सकता है? क्या तुम शुद्ध सत्त्वकी स्थितिमें पहुँच गए हो? इसलिए श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—‘तदा रजस्तमोभावाः’। इस पर अच्छी प्रकारसे विचार करो। क्या तुमने इस पर्याकरो सुना है?

श्रद्धाः शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।

कृष्ण भक्ति कैले सर्व कर्म कृत हय॥

(चै. च. मध्य २२/५२)

कृष्णकी भक्ति करनेसे सभी कर्म करना हो जाता है—इस सुदृढ़ निश्चयात्मक विश्वासको भक्तिमें अधिकार देनी वाली ‘श्रद्धा’ कहा जाता है।

इसीसे भक्तिमें दृढ़ता आती है। जब हृदयमें ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हो जाएगी, तभी भक्तोंका संग सम्भव है। इसी साधुसंगके फलस्वरूप तुम शुद्ध भक्तोंका आश्रय ग्रहण करोगे। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरने साधु-संगको दो प्रकारका बताया है। एक साधुसंग श्रद्धासे प्रारम्भ होकर पारमार्थिक संगकी ओर जाता है। ऐसा भजन क्रिया द्वारा होता है। यह संग श्रवण, कीर्तन आदि द्वारा होता है।

कोन भाग्ये कोन जीवेर 'श्रद्धा' यदि हय।
तबे सेइ जीव 'साधुसङ्ग' ये करय॥
साधुसङ्ग हैते हय 'श्रवण-कीर्तन'।
साधनभक्त्ये हय 'सर्वानन्धनिवर्तन'॥
अनर्थ निवृत्ति हैले भक्त्ये 'निष्ठा' हय।
निष्ठा हैते श्रवणाद्ये 'रुचि' उपजय॥

(चै. च. मध्य २३/९-११)

भक्ति-उन्मुखी सुकृतिके बलसे किसी जीवकी यदि अनन्य भक्तिके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है, तब वह जीव शुद्ध भक्तरूप साधुओंका संग करता है। उसी साधुसंगसे श्रवण-कीर्तन होता है। श्रवण और कीर्तन जितने परिमाणमें होता है, साधन-भक्तिसे उसी परिमाणमें ही सभी अनर्थोंसे निवृत्ति होती है। श्रद्धा उदय होनेके साथ ही साथ श्रवण और कीर्तन द्वारा स्थूल-स्थूल अनर्थोंकी निवृत्ति होने पर श्रद्धा ही अनन्य भक्तिमें ‘निष्ठा’ के रूपमें उदित होती है। फिर निष्ठा ही क्रमानुसार ‘रुचि’ में परिवर्तित हो जाती है।

जब भक्त जातरुचिके स्तर पर पहुँचता है, तब वह कुछ सात्त्विक भावोंका अनुभव करता है। जैसे कि नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होना

इत्यादि। श्रीमद्भागवत (२/३/२४) में कहा गया है—

तदश्मसारं हृदयं वतेदं, यदगृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः।
न विक्रियेताथ यदा विकारो, नेत्रे जलं गात्रस्त्वेषु हर्षः॥

सूतजी! हरिनाम ग्रहण करने पर भी जिसका हृदय द्रवीभूत नहीं होता, नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित नहीं होती एवं रोम-रोम आनन्दसे पुलकित नहीं होता, उसका हृदय पाषाणके समान कठोर है।

अपराध—फले मम, चित्त भेल बज्र—सम

तुया नामे ना लभे विकार।

हताश हर्या हरि, तब नाम उच्च करि

बड़ दुःखे डाकि बार—बार॥

(गीतावली, शिक्षाष्टक ६)

अपराधोंके फलस्वरूप मेरा चित्त बज्रके समान कठोर हो गया है, इसलिए श्रीहरिनाम ग्रहण करते समय मेरे हृदयमें किसी भावका उदय नहीं होता। इसलिए हे हरि! मैं हताश होकर आपके नामोंका बार-बार उच्च स्वरसे दुःखपूर्वक गान करता हूँ।

इसलिए यदि नाम करते हुए हृदयमें विकार उत्पन्न नहीं होते तो कुछ न कुछ व्यथा तो हृदयमें होनी ही चाहिए। क्या कभी तुम्हरे मनमें ऐसा विचार आता है?

दीन—दयामय करुणा—निदान

भाव—बिन्दु देइ राखह पराण।

कबे तुया नाम उच्चारणे मार

नयने झरिके दर—दर लार॥

(गीतावली, शिक्षाष्टक ६)

हे भगवान्! आप तो दीनों पर दया करनेवाले हैं। करुणाके सागर हैं। मुझे भावके सागरका एक बिन्दु मात्र देकर प्राण दान कीजिए। कब आपका नाम उच्चारण करते हुए मेरे नयनोंसे अश्रुओंकी धारा बहेगी?

(क्रमशः)

गीताका सार

[अँविष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके द्वारा अमेरिकाके हूस्टनमें गीता सभामें १७ मई २००२ को प्रदत्त भाषण]

मैं सर्वप्रथम अपने परमार्थतम गुरुदेव हुई।
नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद श्रीश्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीको कोटि-कोटि दण्डवत् प्रणाम करता हूँ। मैं एक अयोग्य व्यक्ति हूँ। आपलोगोंने मुझे बहुत सम्मान देकर इस विद्वत् सभामें बैठाया है, इसलिए मैं आपलोगोंको भूरि-भूरि धन्यवाद देता हूँ।

I think that all of you understand your mother tongue Hindi. I request you to train your children in their mother tongue so that they can understand and speak in Hindi.

प्रायः पचास वर्ष पहलेकी बात है। मुझे गीता जयन्तीके अवसर पर गीता आश्रम, मथुरासे निमन्त्रण मिला। मैं जब उस सभामें उपस्थित हुआ, तो श्रीहरिहर स्वामीने मुझे अपने विचार प्रकट करनेके लिए कहा। उन्हें हरिहर बाबा भी कहा जाता था। यद्यपि उस समय वे अत्यन्त वृद्ध थे, तथापि उनके भाषणको सुनकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि वे गम्भीर विचारक हैं। वहाँ पर नित्यप्रति गीताके बारहवें अध्यायका पाठ अवश्य होता था। यह अध्याय गीताका सार है।

उस समय उन्होंने मथुरासे गीता-आश्रमका प्रारम्भ किया था। अम्बरीष टीलाके पास उनका आश्रम था। गीताका प्रचार करना भक्तिका सर्वश्रेष्ठ कार्य है। मैं समझता हूँ कि उन्होंने विश्वमें ५००-६०० केन्द्र खोले हैं। मैं विश्वमें लगभग सर्वत्र गया, गीता-आश्रम किसी न किसी रूपमें हर जगह देखा और देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता

अभी हमारी यहाँकी एक बेटीने भक्तिके सम्बन्धमें बहुत ही अच्छा बोला। गीता आखिर है क्या? भक्तिका खजाना है।

यह गीता उपनिषद है। Geeta is the essence of all upnishads, vedantas and all Indian literatures. यदि गीताको पढ़ लिया तो अन्यान्य सब शास्त्र पढ़ लिये और भागवत पढ़नेकी योग्यता प्राप्त हो गई, यह निश्चित है। क्योंकि गीता अध्ययनके बिना भागवतको समझना असम्भव है।

कृष्णने इसका गान किया, इसलिए इसे गीता कहते हैं। वेदोंके सार भागका नाम वेदान्त (वेदका अन्त भाग) कहलाता है। गीता वेदान्तका सार है। इसलिए सर्वत्र इसे गीतोपनिषद कहा गया है। कृष्णको क्या जरूरत थी यह गीता सुनानेकी? व्यासदेवजीको भी इसको लिखनेकी? व्यासजीने इसके पहले वेदान्त लिखा, वेदोंके चार विभाग किए। तब महाभारत लिखा। महाभारतमें यह २५ से ४२ वें अध्याय तक है।

गीताके वक्ता ये कृष्ण कौन हैं? व्यासजीने किस रूपमें इनको प्रस्तुत किया? श्रीकृष्ण कह रहे हैं—

मतः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय।

अर्थात् मुझसे बढ़कर और कोई परतत्व नहीं है। यदि गीताको समझना है तो ऐसा मत समझें कि गीताके वक्ता और परब्रह्म अलग-अलग हैं।

कुछ लोगोंका विचार है कि वे निराकार हैं। उनका रूप नहीं है। Some people think

that our supreme personality of Godhead Krishna has no form at all, no attribute. वे निर्विशेष, निर्गुण, निरजन, अनादि, अनन्त हैं। कृष्ण कहते हैं कि ऐसा मत सोचो कि मेरे अतिरिक्त और दूसरा कोई परतत्त्व है।

ब्रह्म उनके चरणोंसे निकलनेवाली ज्योति है। वह निर्विशेष है। जैसे सूर्यसे जो किरणें निकलती हैं, वे निर्विशेष हो सकती हैं। तो भी उससे धूप आती है, प्रकाश होता है। उसको भी निर्विशेष नहीं कह सकते। इसलिए कृष्ण निर्विशेष नहीं, सविशेष परतत्त्व हैं।

दैवी ह्योषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥
(गीता ७/१४)

वे ऊँगली दिखाकर कह रहे हैं—I am the supreme lord. जो मेरा शरणागत होता है, केवल वही मायाको पार कर सकता है।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
(गीता १८/६६)

'माम् एक' ऊँगली दिखाकर अर्जुनसे कह रहे हैं—मैं ही हूँ। वे तीन बार 'मामेक' कहते हैं। यदि किस चीजको सही बतलाना हो तो त्रिसत्य (Threefold) करना होता है। इसलिए गीताको समझनेके लिए पहले यह समझना होगा कि Krishna is the supreme personality of Godhead. Everything comes from him. यहाँ तक कि राम या नृसिंह, भगवानके अन्यान्य अवतार भी अलग-अलग नहीं हैं। वे एकमें ही हैं, कृष्णमें ही हैं, जैसे पूर्ण चन्द्रमें समस्त कलाएँ हैं।

कोई कह सकता है कि वे निराकार हैं, परब्रह्म हैं और राम या कृष्णके रूपमें आते हैं। यह गलत बात है। गुणसे निर्गुण होता है। निर्गुणसे गुण नहीं। निर्गुणमें 'नि' उपाधि है। गुण नहीं रहे तो निर्गुण नहीं होगा। आकार नहीं होता

तो निराकार शब्द नहीं बनता। इसलिए भगवानका रूप और आकार है। हमारे हिन्दु शास्त्रोंकी तो बात छोड़िए। Christianity की जो Bible है, उसमें भी कहा गया है—God created man after his own image. यदि उनका अपना ही image नहीं है, If he has no form, no attribute, no quality—nothing, तो उन्होंने मनुष्योंको अपने समान बनाया, ऐसा कैसे सम्भव हो सकता था? इसलिए कृष्णका रूप है। यदि Jesus Christ अपने God को पिता मानते हैं तो God का जैसा रूप होगा, पुत्रका भी वैसा रूप होगा। उनका रूप नहीं होगा तो पुत्रका मनुष्य रूप कैसे होगा?

अर्जुनने कहा 'शिष्यस्ते माम्'—मैं आपका शिष्य हो गया, आप जो कहेंगे, वही करूँगा। इसलिए गीताको यदि समझना है, तो कृष्णको भगवान समझना पड़ेगा। इसलिए शरणागति (surrender) को गीताको सार बतलाया गया—'मामेकं शरणं व्रज'। मेरी ही शरणमें आओ। यदि शरणागति हो गयी तो शरणागतको किस चीजकी आकांक्षा रह गई? उसे किस चीजका भय रहेगा? नहीं रह सकती है। यदि वे ही creator हैं इस चराचर विश्वके, उनकी ही इच्छासे सब कुछ नियन्त्रित होता है, फिर उनको surrender कर दिया तो अब किस चीजकी फिक्र रही? किसी चीजकी चिन्ता नहीं रह सकती। सब भार उनके ऊपर दे दिया। बड़ा सुन्दर श्लोक उन्होंने कहा है—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जना पर्युपासते।
तेषां सततयुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

यदि सम्पूर्णरूपसे अनन्य होकर उनके शरणागत हो जाएँ, उनका चिन्तन करें तो वे अपने कन्धे और सिर पर भार ढोकर आपके पास पहुँचा देंगे। तो फिर क्या चिन्ता रही? कोई चिन्ताकी बात नहीं।

किसीको इस श्लोक पर शंका हुई तो श्रीकृष्णने इसे प्रमाणित कर दिखलाया। बड़ी लम्बी कथा है इसकी।

इस संसारमें हमलोग क्यों आए? आनेका कारण गीता या हमारे समस्त वैदिक शास्त्र बताते हैं—

भयं द्वितीयाभिनवेशतः
स्यादीशादपेतस्य विपर्ययोऽस्मृतिः।
तन्माययातो ब्रुध आभज्ञत्
तं भक्त्यैक्येण गुरुदेवतात्मा ॥

(श्रीमद्भा. ११/२/३७)

इस भयका कारण क्या है? सांसारिक विषयोंमें प्रवेश। यह विश्व (जड़ जगत) सृष्टिका केवल चौथा भाग है। बाकी चिज्जगत है, जिसे हम वैकुण्ठ यो गोलोक वृन्दावन कहते हैं। वहाँ पर दुःखकी छाया भी नहीं है। असलमें हमलोग भगवानके अंश हैं। ‘ममैवांशो’ की घोषणा की कृष्णने। जीव मेरा अंश है। किन्तु जीवने भगवानका स्मरण छोड़ दिया। इसलिए दण्डस्वरूप मायाने जीवको इस जेलखानेमें भेजा है। इस जेलखानेमें यदि सुखकी कोई आशा करता है तो वह निरा मूर्ख ही है। इस जेलमें हथकड़ी (handcuff) और बेड़ी लगा दी आसक्तिकी, ‘मैं और मेरा’ की। हम शरीर नहीं हैं, किन्तु हमने मान लिया कि ‘मैं शरीर हूँ।

ये पास-पड़ोसी, हमारे relatives जिसको हम समझते हैं, वे तो रक्त और हाड़-मांसके प्यादे हैं। वस्तुतः वे जो हैं, वह उनके अन्दर है। वह है—part and parcel of that supreme lord. He is totally above the all worldly things. आसक्ति बुरी नहीं है। यह एक अमूल्य रत्न है। इसे भगवानको देनी चाहिए। जिसने इस आसक्तिको भगवानको नहीं दिया, वह इसे कहीं न कहीं तो लगायेगा। यदि वह इस संसारमें लगी तो भयका कारण हो गई।

यदि भगवानमें लग गई तो वह मोक्षका और अत्यन्त सुखका कारण भी बन जाएगी। इसलिए भयका कारण है—आत्मीय स्वजन, शरीर, सम्पत्ति आदि जागतिक चीजोंके लिए हमारी आसक्ति। जेलखानेमें हमलोग पड़े हुए हैं। इन्हीं चीजोंमें आसक्त हो रहे हैं। प्रभुको तो छोड़ दिया, फिर दुःख क्यों नहीं होगा? डरकी बातको हम प्रधानता नहीं देते। इस संसारमें रहनेसे डर जरूर रहेगा। जिसको भगवानसे सम्पर्क नहीं है, उन लोगोंके लिए। इसको कोई हटा नहीं सकता।

निर्भयता या निर्दर होनेको हम प्रधानता नहीं देते हैं। प्रधानता देते हैं कि उस भगवानको भूल गए जिनको नहीं भूलना था। इसलिए गीतामें अनेक जगहों पर बताया है कि जबतक भगवानका आश्रय ग्रहण नहीं करेंगे तबतक शान्ति और सुख नहीं हो सकता है। शान्ति और सुखकी जरूरत है। सांसारिक विषयोंसे आप निर्भय हुए कि नहीं हुए? हम जिएँगे, जबतक जिएँगे निर्भय होकर जिएँगे। इस बातकी प्रधानता नहीं है। प्रधानता किस चीजकी है? जिसके हम part and parcel हैं, उनसे प्रेम करनेकी। हमारे अन्दर किसी न किसी रूपमें प्रेम है। इस प्रेमका सदुपयोग हो। I think that Krishna is love and love is Krishna. कृष्ण ही love हैं। राम भी यद्यपि कृष्ण ही हैं, किन्तु कृष्ण जैसे गोपियोंके लिए कहते हैं ‘न पारयेऽहं’ अर्थात् तुम्हारे ऋणको मैं लाखों जन्मोंमें भी पूरा नहीं कर सकता, तुम अपने सौजन्यसे हमें क्षमा कर दो, वैसा राम नहीं कह सकते। प्रेमके आगे भगवान भी झुक जाते हैं। जहाँ प्रेम नहीं है, भगवान नहीं झुकते। We can't control anyone by power, but with love and affection everyone can be controlled. कृष्णने यहीं चीज दिखलाया।

कभी वनवासके समय सीताजीके चरणोंमें

काँटा गड़ गया। राम उसे निकालना चाहते थे, उन्होंने निकालने नहीं दिया। अपने आप जैसे-तैसे निकाला, उनको छूने नहीं दिया। परन्तु कृष्ण यह बहाना ढूँढते हैं कि कैसे मैं राधाजीके पैर छू लूँ। यह है प्रेम। भगवानने हमें प्रेम किसी न किसी रूपमें दिया है। इसको संसारमें मत लागाओ नहीं तो भय जरूर होगा। कोई भी हटा नहीं सकता है इसको। इसलिए, डरनेकी बात नहीं, भगवानके प्रति जहाँ प्रेम आया, डर अपने आप डरकर भाग जाएगा। भगवानका नाम सुननेसे ही भय भी भयभीत होकर सदाके लिए भाग जाएगा। इस चीजको समझना चाहिए। इसलिए गीता यही कहती है कि जो लोग अपने जीवनमें भगवानका नाम करते हैं, फिर उसको किसी प्रकारका भय नहीं रहता। ‘स शान्तिमधिगच्छति’—वही शान्तिको प्राप्त हो सकता है। इसलिए भगवानसे प्रेम करना सीखें।

एक बात और इस प्रसङ्गमें कहना चाहता हूँ। गीताको लोग बहुत पढ़ते हैं। बहुतसे लोग पढ़ते हैं। विश्वमें कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ गीताके प्रति आदर नहीं है, विशेषकर हमारे भारतीय सम्प्रदायमें सर्वत्र ही गीताका आदर देखा जाता है। किन्तु कुछ लोग गीताको इस रूपमें लेते हैं कि ‘अर्जुनने कृष्णसे जो यह सारा ज्ञान लाभ किया, वह सब सुननेके बाद प्रणाम किया और युद्ध आरम्भ कर दिया। इसलिए गीताका यह purport है कि हम अपना कर्म करें।’ ऐसे लोगोंका विचार है कि गीताका तात्पर्य कर्मसे है। कुछ लोग कहते हैं कि ऐसा नहीं है, अपने अधिकारके अनुसार ये शिक्षाएँ हैं। हर मनुष्य कर्म करनेके लिए बाध्य है। गीताका यह उद्देश्य नहीं है। गीतामें कहीं कर्मकी बात नहीं, कर्मयोगकी बात आई है। कर्मयोग और कर्ममें बहुत अन्तर है। जिन कर्मोंका योग भगवानसे है, उन्हें कर्मयोग कहते हैं। जिन कर्मोंको भक्तिसे भगवानको

दिया गया है, उसी कर्मका गीतामें वर्णन हुआ है।

यदि ऐसा नहीं करेंगे तो क्या होगा? कर्मबन्धनमें बँधना पड़ेगा। दुःख भोगना पड़ेगा, भय जरूर रहेगा। सब ओर भय ही भय नजर आएगा। जैसे पीलिया रोगवालेको सर्वत्र पीला दिखता है, ऐसे ही आपको भी सर्वत्र भय ही भय दिखेगा, कहीं निर्भय नहीं रह सकते।

इसलिए कर्मयोग और कर्म एक नहीं है। ज्ञान किसको कहते हैं? भगवानका कोई आकार नहीं है, मैं उसमें मिल जाऊँगा, जिसमें भक्ति नामक कोई चीज नहीं है, उसको ज्ञान कहा गया। किन्तु गीतामें ऐसा नहीं कहा गया है, वहाँ सर्वत्र ज्ञानयोगकी बात है, जो भगवानके प्रति प्रपत्तिसम्पन्न है। ‘बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते’ जो ज्ञानी हैं, वे सब समय जन्म-जन्मान्तर मेरे प्रति शरणागति ग्रहण कर मेरा भजन करते हैं। योगी कौन? ‘योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना’। इसलिए गीतामें जो कुछ भी कहा गया है, योगी, कर्मी, ज्ञानी, तपस्वी सब भक्तिसे सम्बन्धित कहा गया। जिन कर्मोंमें भगवानका सम्बन्ध नहीं है, जिस ज्ञानसे भगवानका सम्बन्ध नहीं है, जिस योगसे भगवानका सम्बन्ध नहीं है, वह बन्धनका कारण है। गीतामें ऐसे कर्म, ज्ञान, योगको लक्ष्य नहीं किया गया है। सबका भक्तिसे सम्बन्ध है। इसलिए गीतामें भक्तिके लिए कहा है।

मैंने यह बतलाया कि कर्म और कर्मयोग, ज्ञान और ज्ञानयोग—ये एक चीज नहीं हैं। जिन कर्मोंसे भगवानका सम्बन्ध नहीं है, वे ही कर्मके नामसे बतलाए गए हैं। गीताके प्रारम्भमें तृतीय अध्यायमें श्रीकृष्णने बतलाया—

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

अपने कर्मोंका योग भगवानसे करो। मैं खाता हूँ, पीता हूँ, आपके लिए। ‘पत्रं पुष्पं फलं

तोयं’, ‘यत्करोषि यदश्नासि’ इत्यादि बतलाया गया है। जो कुछ करते हो, मेरे लिए करो तो यह हो गया कर्मयोग। यह भगवानसे आपका सम्बन्ध (योग) कराकर आपको संसारसे निवृत्त करा देगा और उनके चरणोंमें प्रेम दे देगा और आप सुखी हो जाएँगे, एकदम निर्भय हो जाएँगे। इसी तरहसे ज्ञानको भी समझें। यह क्या है? यह एक संसार है। यह आमका पेड़ है। यह ज्ञान है। इस जगतमें ज्ञानके बिना हम नहीं रह सकते। किन्तु जिस ज्ञानसे भगवानका सम्बन्ध नहीं है, वह व्यर्थ है। सबके मूल उद्गम भगवान हैं। इसलिए हम सभी एक परिवारके हैं। अभी स्वामीजीका भी भाषण सुना होगा। ईसाई, क्रिश्चन, बौद्ध शरीरसे सम्बन्धित हैं। आत्मासे उनका सम्बन्ध नहीं है। जिन कर्म, ज्ञान, योगका भगवानसे सम्बन्ध नहीं है, उनका गीतासे सम्बन्ध नहीं है। गीतामें बतलाया गया—ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग। एक बात और समझिए। ये तीनों योग अलग-अलग नहीं हैं। जब भगवानसे योग हम आरम्भ करते हैं तो जो पहला योग होता है, उसका नाम है कर्मयोग। अपने कर्मोंको भी भगवानसे सम्बन्धित करें। जब उसका दूसरा भाग आता है, जब ज्ञान होने लग गया, तब उसका नाम होता है ज्ञानयोग। और थोड़ा बढ़ने पर जब भगवानसे प्रेम होने लग जाएगा तो उसे कहते हैं प्रेमयोग या भक्तियोग। ये तीनों चीजें अलग-अलग नहीं हैं। आजकल तो हम देखते हैं, चारों तरफ जहाँ जाओ, मैदानोंमें योग हो रहा है। क्या योग हो रहा है? उठक-बैठक, दण्ड, इधर-उधर हाथ फैलाना। इसमें योग कहाँ है? एक वस्तुसे दूसरी वस्तुका योग कराएँगे तभी तो योग होगा। इसलिए आजकल जगतमें यह जो चल रहा है, यह खूब सस्ता माल चल रहा है। इसका कुछ भी मूल्य नहीं है, very cheap. This is actually no yoga, only exercise. जो परतत्त्व

हैं, उनसे हमारा योग हट गया है। विश्वमें सर्वत्र गीताका आदर है। परन्तु विचारकगण अपने-अपने दृष्टिकोणसे इसकी व्याख्या करते हैं। क्या वे कृष्णको भगवान मानते हैं? क्या वे अर्जुनकी भाँति उनको देखते हैं? गीताके उपदेशको ठीकसे समझकर पालन करनेकी चेष्टा करते हैं? यदि नहीं, तो उनके विचारोंका कोई मूल्य नहीं है। यदि वे गीताके उपदेशोंको समझना चाहते हैं, तो उन्हें पहले कृष्णको भगवान मानना पड़ेगा और मानकर फिर उनके प्रति शरणागत होना पड़ेगा। जहाँ शरणागति भगवानके प्रति आई, वहाँ भय नामका कोई शब्द नहीं रहेगा। हमलोग निर्भय हो जाएँगे। अभी बेटीने बतलाया, ५००-६०० वर्ष हुए मीराको देखें। अधिक दूर जानेकी जरूरत नहीं है। मीराजीको देखें, विषका प्याला दिया, चरणमृत मानकर उसे पी लिया। सर्प भेजा, तो उन्होंने उसकी माला पहन ली। प्रह्लाद महाराजजीको आपलोग जानते ही हैं। कैसे निर्भय थे। कितनी यातनाएँ सहते थे। पिताने उन्हें कितनी-कितनी यातनाएँ दीं। आगमें जलाया, पत्थर पर फेंका, समुद्रमें गिराया। जब भगवान रक्षक हैं तो कौन मार सकता है? द्रौपदीका उदाहरण भी दिया। इसलिए मेरा यह विचार है तथा शास्त्रोंका यही निष्कर्ष है कि जैसे भी अवस्थामें आप हैं, भगवानके प्रति शरणागत हों। उनका नाम लीजिए। एक दमड़ीका खर्च नहीं है। चलते-फिरते, उठते-बैठते, छोंकते, गिरते हुए, फिसलते हुए भी यदि भगवानके नामका स्मरण कर लिया, भय अपने आप भागेगा। आपको भगानेकी जरूरत नहीं होगी। ताली बजाने पर जैसे चिड़िया भाग जाती है, ऐसे ही भय एकदम दूर हो जाएगा। इसलिए ‘हरेनाम हरेनाम हरेनामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।’ त्रिसत्य, यहाँ पर भी कहते हैं। इस कलियुगमें योगमें, तक्षमें मत जाओ। पागल हो जाओगे। बहुतसे लोगोंको

हमने देखा है, योग-योग करते हैं, और योग करते-करते पागल हो जाते हैं। उधर मत जाएँ। कर्ममें मत जाएँ। वे साँप बिछूकी तरह डरेंगे। कर्मयोगकी तरफ चलें, ज्ञानयोगकी तरफ चलें, भक्तियोगकी तरफ चलें। थोड़ी-सी हरिनाममें शरणागति नहीं आती है, ठीक है, पीछे आ जाएगी। पहले हरिनाम तो करें। चलते-फिरते, उठते-बैठते हरिनाम किया जा सकता है। यदि भूलसे भी राम नाम आ गया या कोई भी नाम आ गया, कल्याण ही हो गया। इसलिए हमारे शास्त्रोंमें वेदोंसे ले करके जितने भी शास्त्र हैं, सबमें भगवानके नामकी महिमा है। इसलिए आप लोगोंसे यही प्रार्थना है कि अभीसे हरिनाम करना प्रारम्भ कर दें, कलकी प्रतीक्षा न करें।

वाल्मीकिजीने कितनी हत्याएँ कीं, ऋषियों और ब्राह्मणोंको मारकर सैकड़ों कुँएँ भर दिए। नारदजीने कहा कि राम नाम करो। वाल्मीकिजीने कहा—यह तो आता नहीं। नारदजीने कहा—मरा-मरा सारा जीवन किया है। अच्छा तो यही करो। तो

मरा-मरा क्या हो गया? ‘उल्टा नाम जपत जग जाना। बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना।’ इसीसे बाल्मीकिजी भविष्यको और सब कुछ जाननेवाले बन गए। किसीको छू दिया तो वह भी ब्रह्मके समान बन गया। तुलसीदासजी कहते हैं कि मैं जड़ था, कामी था और जिस डाल पर मैं बैठता था, उसीको काट रहा था। पर आज राम नामकी बदौलत मेरी कैसी स्थिति हो गई! मैं भी निरा गंवार ही था। गुरुजीने कहा कि नाम जप करो, तो वही किया। आज इस स्थितिमें हूँ कि सभी लोग आदर करते हैं। मैं जानता हूँ कि मुझमें कोई गुण नहीं है। यदि कोई गुण है तो भगवानके नाम ही का और गुरु और वैष्णवोंकी शरणागतिका। इसलिए आपलोग भगवानका नाम करेंगे और जिस दिनसे आरम्भ कर देंगे, देख लेंगे कि आप निर्भय हो गए। यदि भगवानके चरणोंमें आसक्ति चली गई तो संसारकी सब आसक्ति छूट जाएगी। यही गीता और सब शास्त्रोंका सार है। (संग्रह—श्रीपद्मनाभ दास)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

जगाई-माधाई का उद्धार

(वर्ष ४६, संख्या ५, पृष्ठ ११२ से आगे)

—श्रीपद्मेश्वरी दास ब्रह्मचारी

श्रीगौरसुन्दर जिस घाटपर रोज स्नान करते थे, दूसरे दिन भाष्यसे वे दोनों भी धूमते-धूमते उसी घाटपर आ गए तथा वहीं पर उन्होंने अपना अड्डा जमा लिया। यह देखकर सभी लोग भयभीत हो गए। सन्ध्याके पश्चात् कोई भी गङ्गास्नानको नहीं जाता था। यदि जाते भी थे तो दस-बीस लोगोंका झुण्ड बनाकर।

क्योंकि वह घाट प्रभुके घरके बिल्कुल पासमें था, इसलिए सारी रात वे कीर्तन सुनते थे। कीर्तनमें मृदङ्ग, करताल इत्यादिकी मधुर

ध्वनि सुनकर वे आनन्दसे शराबके नशेमें खूब नाचते थे तथा खूब शराब पीते थे। जब प्रभु गङ्गास्नानके लिए जाते तो दोनों दुष्ट प्रभुसे कहते—“निमाई पण्डित! हमलोग मङ्गलचण्डी गीत (देवी जागरण) करना चाहते हैं। तुम्हारे पास तो अच्छे-अच्छे गायक हैं, इसलिए तुम उन लोगोंसे करवाओ। उसके लिए जितना भी खर्च आएगा सब हम देंगे।” उन दुष्टोंको देखकर प्रभु चुपचाप निकल जाते थे। एक दिन सन्ध्याके समय चञ्चल नित्यानन्द यहाँ-वहाँ धूमते उसी तरफ

आ गए। उन्हें देखकर वे दोनों गरजते हुए बोले—“कौन है रे?”

नित्यानन्द—“मैं प्रभुके घर जा रहा हूँ।”

जगाई-माधाइ—“क्या नाम है तेरा?”

नित्यानन्द—“मेरा नाम अवधूत है।” इस प्रकार वे उन पाषण्डियोंके साथ बाल्यभावमें आविष्ट होकर बातचीत करने लगे। वास्तवमें उनकी इच्छा थी कि आज ही इनका उद्धार करना है। परन्तु उनके मुखसे अवधूत नाम सुनकर वे दोनों ही बिगड़ गए। उसी समय माधाइने क्रोधित होकर एक मटकी नित्यानन्दप्रभुके सिरपर दे मारी जिससे मटकी टुकड़े-टुकड़े हो गई तथा उनके सिरसे खूनकी धारा बहने लगी। परन्तु नित्यानन्दप्रभु भगवान्‌का स्मरण करने लगे। जैसे माधाइने दोबारा मारनेकी चेष्टा की तो जगाईको दया आ गई तथा उसने माधाईका हाथ पकड़ लिया तथा बोला—“माधाई! तुमने यह अच्छा नहीं किया। यह तो एक भ्रमण करनेवाला साधु है। इसे मारकर तुम्हारा भला नहीं हो सकता।” आस-पास जो लोग इस घटनाको देख रहे थे, वे दौड़े-दौड़े गए तथा प्रभुको सब हाल सुनाया। यह सुनकर प्रभु अपने परिकरोंको साथ लेकर जल्दीसे वहाँ पहुँचे। वहाँ पहुँचकर देखा कि नित्यानन्दजीके सिरसे खूनकी धारा बह रही हैं, परन्तु वे हँस रहे हैं। यह देखकर प्रभुने अपना धैर्य खो दिया तथा क्रोधित होकर ‘चक्र-चक्र’ कहकर पुकारने लगे। उसी समय चक्र वहाँ पर उपस्थित हो गया। जगाई तथा माधाईने उस चक्रको स्पष्टरूपसे देखा। यह देखकर वे दोनों तथा वहाँ पर उपस्थित सभी वैष्णव भयभीत हो गए। उसी समय नित्यानन्दजीने प्रार्थना की—“हे प्रभो! मारा तो मुझे माधाईने, परन्तु जगाईने तो मुझे बचाया है। और फिर यह रक्त तो ऐसे ही निकल गया है, मुझे लेशमात्र भी कष्ट नहीं हो रहा है। हे प्रभो! मैं आपसे इन दोनोंका जीवन भिक्षामें माँगता हूँ। अतः इन दोनोंके प्राण मुझे भिक्षा देकर आप शान्त हो

जाएँ।” जब प्रभुने सुना कि जगाईने नित्यानन्दको बचाया तो प्रभुने जगाईको गलेसे लगा लिया तथा कहने लगे—“जगाई! कृष्ण तुम्हारे ऊपर कृपा करें। तुमने मेरे प्राणस्वरूप नित्यानन्दकी रक्षाकर मुझे खरीद लिया है। तुम्हारी जो भी इच्छा हो, माँग लो। आजसे तुम मेरे प्रिय भक्त हो।” जगाईके लिए वरदान सुनकर वैष्णववृन्द जय-जयकार करने लगे। जैसे प्रभुने कहा ‘तुम्हें प्रेमभक्ति प्राप्त हो’, उसी क्षण वह प्रेममें आविष्ट होकर मूर्च्छित हो गया। प्रभु बोले—“जगाई, उठो! मेरा दर्शन करो।” यह सुनते ही जैसे ही उसने आँखें खोलीं तो सामने शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किए हुए श्रीश्रीगौरसुन्दरको खड़े हुए देखा। यह देखते ही रोते-रोते जगाईने प्रभुके श्रीचरणोंको अपने छातीसे चिपका लिया। जगाई पर कृपा देखकर माधाईका हृदय भी बदल गया। वह भी रोते-रोते प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ा तथा कहने लगा—“हे प्रभो! पाप तो हम दोनोंने एक साथ किया। फिर आप उसके ऊपर कृपा कर रहे हैं, मुझ पर नहीं। ऐसा क्यों? प्रभो! आप मुझपर भी कृपा करें। मैं सदा-सर्वदा आपका नाम गान करूँगा। क्योंकि मेरा उद्धार करनेकी शक्ति आपके अतिरिक्त और किसीमें भी नहीं है।” यह सुनकर प्रभु रोषपूर्वक कहने लगे—“अरे दुष्ट! तुमने नित्यानन्दके सिरसे खून बहाया है। तेरा उद्धार किसी जन्ममें भी संभव नहीं है।

माधाई—“प्रभो! आप जो कह रहे हैं, यह उचित नहीं है। क्योंकि आपका तो स्वभाव ही है कि जो एक बार आपकी शरणमें आ जाता है, आप उसे स्वीकार कर लेते हैं। यदि ऐसा नहीं है, तो जिन असुरोंने आपके शरीरको बाणोंसे लहूलुहान कर दिया था, आपने उनका भी उद्धार क्यों किया? फिर इस समय आप अपने स्वभावको क्यों छोड़ रहे हैं?

प्रभु—“उन लोगोंकी अपेक्षा तेरा अपराध कई गुण भयङ्कर है। क्योंकि उन लोगोंने मुझे कष्ट पहुँचाया, परन्तु तुमने मेरे प्रिय नित्यानन्दजीको

कष्ट पहुँचाया। नित्यानन्द मुझे अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा है।”

माधाई (प्रभुके चरणोंमें गिरकर)—“हे प्रभो! यदि ऐसा है तो बताइए मेरा उद्धार कैसे होगा? आप तो वैद्यशिरोमणि हैं तथा भवरोगको नष्ट करनेमें माहिर हैं। अतः हे प्रभो! मैं समझ गया हूँ कि आप अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंके नाथ हैं। अतः आप कृपा करके मेरा भवरोग दूर कीजिए।”

प्रभु—“माधाई! तूने जिनके चरणोंमें अपराध किया, उनके चरणोंको पकड़ो। वे ही तेरा उद्धार कर सकते हो।” यह सुनकर माधाई झटसे नित्यानन्दजीके चरणोंमें गिर पड़ा। यह देखकर प्रभु कहने लगे—“नित्यानन्द! यह आपकी शरणमें आया है। इसलिए इस पर कृपा करना उचित है। क्योंकि इसने आपके ही सिरसे खूनकी धारा बहाई है, अतः आप ही इसे क्षमा भी कर सकते हैं।”

नित्यानन्द—“प्रभो! यदि मैंने किसी भी जन्ममें कुछ भी सुकृति की हो, मैं उसको इस माधाईको देता हूँ। प्रभो! आप कपट छोड़िए तथा अपने इस माधाई पर कृपा कीजिए।”

प्रभु—“यदि तुमने इसे क्षमा कर दिया है तो एकबार इसे गलेसे लगाओ।” यह सुनते ही नित्यानन्दजीने माधाईको गलेसे लगा लिया, जिससे उसका माया-बन्धन छिन्न-भिन्न हो गया। प्रभु बोले—“तुम दोनोंने आज तक जितने पाप किए थे, वे सब मैंने ले लिए हैं। परन्तु अब तुम दोनों कान पकड़ लो कि कभी भी किसी भी प्रकारका पाप नहीं करोगे। इस प्रकार तुम अति प्रिय रहोगे तथा तुम दोनोंके मुखसे ही मैं भोजन करूँगा। तुम्हारे शरीरमें मेरा अवतार भी होगा” यह सुनकर वे दोनों मूर्छित हो गए। अतः प्रभुने अपने परिकरोंसे कहा कि इन्हें उठाकर मेरे घर ले चलो, आज इनके साथ हम सभी कीर्तन करेंगे। आज मैं इन्हें ऐसी वस्तु प्रदान करूँगा कि जो ब्रह्मा-शिवके लिए भी दुर्लभ है तथा इन्हें संसारमें सर्वोत्तम बना दूँगा। अभी तक

इनका स्पर्श अथवा दर्शनकर जो अपनेको अपवित्र मानकर गङ्गास्नान करते थे, वे ही अब इनका दर्शनकर अपनेको धन्यातिधन्य मानेंगे। क्योंकि नित्यानन्दकी प्रतिज्ञा कभी भी असत्य नहीं हो सकती। तब सभी लोग उन दोनोंको प्रभुके घरके भीतर ले गए तथा द्वार बन्द कर दिया गया। एक भी विजातीय व्यक्तिको अन्दर नहीं आने दिया गया। घरके भीतर प्रभु श्रीगौरसुन्दर सिंहासन पर विराजमान थे। उनके दोनों ओर श्रीनित्यानन्दप्रभु एवं गदाधरपणिडत सुशोभित हो रहे थे। उनके सामने अद्वैताचार्य विराजमान थे। चारों ओरसे वैष्णवमण्डलीने उन्हें धेरा हुआ था। उसी समय जगाई-माधाईकी मूर्छा दूर हो गई। वे प्रभुका दर्शनकर आनन्दसे रोते-रोते उनकी स्तुति करने लगे—“हे प्रभो! भागवतमें वर्णन है कि अजामिल एक पापी था। अन्तमें उसने नारायण-नारायण पुकारा तो आपने उसका उद्धार कर दिया। इसमें आपकी कोई विशेष महिमा नहीं है, क्योंकि उसने तो साधारण पाप किए थे। परन्तु मैंने तो आपके द्वितीय स्वरूप नित्यानन्दके ही सिरसे खून बहा दिया। फिर भी आपने हमारा उद्धार कर दिया। अतः हमारे जैसे महापापियोंके उद्धार करनेसे ही आपकी महिमा अधिक प्रकाशित हुई है।” यह सुनकर प्रभु समस्त वैष्णवोंसे बोले—“ये दोनों अब शराबी नहीं रहे, परम वैष्णव हो गए हैं। अतः आप सभी लोग इन दोनों पर कृपा करें कि किसी भी जन्ममें ये मुझे न भूलें। यदि जान-अनजानमें इन दोनोंसे आपके चरणोंमें अपराध हो गया हो, तो आपलोग क्षमा करेंगे।” प्रभुके मुखसे यह सुनकर वे दोनों सभी वैष्णवोंके चरणोंको पकड़कर उनसे क्षमा प्रार्थना करने लगे। सभी वैष्णवोंने उन्हें आशीर्वाद प्रदान किया, जिससे वे दोनों निरपराध हो गए। तब प्रभु कहने लगे—“जगाई-माधाई! अब तुम दोनों मेरे दास बन गए हो। अतः तुम्हें किसी प्रकारकी चिन्ताकी आवश्यकता नहीं है। अब तुम्हारे शरीरमें एक भी पाप नहीं है। तुम दोनोंके जितने भी पाप थे,

उन्हें मैंने ग्रहण कर लिया है। यदि तुम लोगोंको विश्वास न हो तो यह देखो” इतना कहते ही प्रभुका शरीर काला पड़ गया। प्रभु कहने लगे—“मेरे शरीरका रङ्ग जो तुम काला देख रहे हो, यह सब तुम दोनोंका पाप हैं। अब सभी लोग कीर्तन करो, जिससे ये पाप, पापी तथा वैष्णवोंकी निन्दा करनेवालोंके शरीरमें चला जाएगा।” यह सुनकर सभी लोग आनन्दसे कीर्तन करने लगे। कुछ देर बाद प्रभुका शरीर पहले जैसा ही हो गया। प्रभु बोले—“अब इन दोनोंको कोई भी पापी मत समझना, क्योंकि इनके समस्त पापोंको

मैंने जला डाला है। मैं सबको आदेश देता हूँ कि जो इन्हें भोजन कराएगा, वही मेरा प्रिय होगा।” यह सुनकर सभी वैष्णववृन्द ‘जय-जयकार’ करने लगे। प्रभु कहने लगे—“चलो, हम सभी गङ्गाजीके चरणोंमें जाते हैं।” यह सुनकर सभी लोग गङ्गामें जाकर आनन्दसे जलक्रीड़ा करने लगे। बहुत समय तक आनन्दसे जलक्रीड़ा करनेके बाद प्रभुने सभीको माला एवं चन्दन धारण करवाया। उन्होंने जगाई-माधाईको स्वयं अपने गलेकी माला पहनाई तथा उन दोनोंको वैष्णवोंके हाथोंमें अर्पणकर सबको विदा किया।

(क्रमशः)

श्रीपरमानन्द पुरीका कूप

—श्रीहरिदास ब्रह्मचारी

यह पवित्र कूप (कुँआ) पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ मन्दिरके पश्चिमी रास्तेके कुछ दूर पुलिस स्टेशनके पास स्थित है। श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने इसका निर्देश किया है। इस कूपकी बड़ी अद्भुत लीला है। श्रील गुरुदेव (३०विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी) गत वर्ष श्रीपुरुषोत्तम मासमें पुरीधाम परिक्रमाके समय यहाँ पर पधारे थे तथा उनके श्रीमुखसे इसकी महिमा श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

कृष्णलीलामें श्रीपरमानन्द पुरी कृष्णके प्रिय मित्र उद्धव थे एवं गौर-लीलामें ये परमानन्द पुरीके रूपमें आविर्भूत हुए। ये श्रीलमाधवेन्द्रपुरी पादके शिष्य तथा श्रीईश्वरपुरी पाद (श्रीमन्महाप्रभुके गुरुदेव) के गुरुभाई थे। श्रीजगन्नाथपुरीमें एक दिन श्रीमन्महाप्रभु संकीर्तन करते हुए भक्त मंडलीके साथ परमानन्द पुरीजीके भजन-कुटी पर पधारे एवं उनके पास आकर बैठ गए। परमानन्द पुरीसे महाप्रभुकी बहुत प्रीति थी, जैसे कृष्णलीलामें कृष्ण और अर्जुनकी। दोनोंमें परस्पर कृष्णलीला आलोचना होने लगी और दोनों आनन्द-सागरमें गोते लगाने लगे। परमानन्द पुरीके यहाँ वह कूप

था जिसका जल ठीक नहीं था। अन्तर्यामी महाप्रभु यह बात जानते थे। इसलिए महाप्रभु पुरी गोसाईसे स्वयं पूछने लगे कि आपके कूपका जल कैसा है, मैं सुनना चाहता हूँ। पुरीजी बोले—“वह तो बहुत अभागा कूप है। उसका जल कीचड़ जैसा है।” यह सुनकर महाप्रभु हाय-हाय करने लगे और बोले, “जगन्नाथदेव क्या कंजूस हो गए हैं? क्योंकि पुरीजीके कूपका जल स्पर्श करनेसे बड़से बड़ा पापीका भी उद्धार हो जाएगा। इसलिए जगन्नाथदेवकी मायासे कूपका जल नष्ट हो गया ताकि कोई पी न सके।” यह बोलकर महाप्रभु उठ खड़े हुए और दोनों भुजाएँ उठाकर कहने लगे—“हे जगन्नाथदेव! मुझे यह वर प्रदान कीजिए कि भगवती गंगा जो कि पातालमें है, उसे आज्ञा कीजिए कि इस कूपमें प्रवेश करे।” सब भक्तलोग महाप्रभुके श्रीमुखसे यह सुनकर जोरसे हरिध्वनि करने लगे। फिर कुछ देर बाद महाप्रभु अपने वासस्थानको चले गए। भक्तलोग भी जाकर विश्राम करने लगे। उसी समय गंगादेवीने महाप्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य कर पूर्णरूपसे कूपके भीतर प्रवेश किया। प्रातःकाल भक्तलोगोंने यह अद्भुत दृश्य देखा कि कूप

निर्मल जलसे परिपूर्ण है। यह आश्चर्य देखकर भक्तलोग हरध्वनि करने लगे एवं परमानन्द पुरीजी आनन्दके कारण मूर्छित हो गए। कूपमें गंगाका प्रवेश जानकर सब लोग उसकी परिक्रमा करने लगे। यह सुनकर महाप्रभु भी वहाँ आए और कूपमें निर्मल जल देखकर बहुत आनन्दित होकर कहने लगे—“सब भक्तलोग ध्यानसे सुने। इस कूपका जल जो भी पीएगा अथवा स्नान करेगा उसको गंगास्नानका फल मिलेगा तथा साथ-साथ उसको परम निर्मल कृष्णभक्ति भी होगी।” सब भक्तलोग महाप्रभुके श्रीमुखसे यह

सुनकर हरिध्वनि करने लगे। फिर महाप्रभुने पुरी गोसाईके उस कूपके दिव्य जलको पान किया एवं स्नान किया। महाप्रभु बोले—“मैं पृथ्वी पर केवल पुरी गोसाईके प्रेमके कारण हूँ। पुरी गोसाई और मेरेमें बिलकुल भी भेद नहीं है। पुरी गोसाईको देखने मात्रसे जीव श्रीकृष्णका प्रेम-पात्र हो जाता है।” भगवान इस प्रकार भक्तोंकी महिमाको बढ़ाते हैं। फिर भी मूढ़ व्यक्ति ऐसे प्रभुका भजन नहीं करते।

भज गौराङ्गं भज गौराङ्गं भज गौराङ्गेर नाम रे।
जेह जन गौराङ्गं भजे से हय आमार प्राण रे॥

लौल्यमपि मूल्यमेकम्

[लेक वाशिंगटन, न्यू वृन्दावनमें हरि कथा (२००२) — एक रिपोर्ट]

वसन्त ऋतुको मंगलमय माना जाता है, क्योंकि शरद ऋतुकी शीतलताके बाद वह एक नए जीवनका संचार करती है। इस वर्ष उत्तरी अमेरिकाके लिए वसन्त ऋतु और भी मंगलमय थी, क्योंकि परमपूजनीय श्रील भक्तिवेदान्त नारायण महाराजजी यहाँ पधारे। हमारे रूपानुग गुरुवर्गकी इच्छा पूर्ण करते हुए उन्होंने सुमधुर हरिकथा एवं अपने आध्यात्मिक संगसे मेक्सिको सिटी, बेजर, सन फ्रान्सिसको, ह्यूस्टन, वेस्ट वर्जीनिया एवं न्यूयार्कमें हजारों भक्तोंकी भक्तिलता (जीवन) को पुष्ट किया। उनकी इस यात्राका अन्तिम पड़ाव था—जून १३ से जून २३ तक न्यू-वृन्दावन (वेस्ट वर्जीनिया) एवं लेक वाशिंगटन (न्यूयार्क) में।

न्यू-वृन्दावन

जून १३ को श्रीलमहाराजजी श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज (इस्कान) के एक पुराने शिष्य, तुलसी प्रभुके घरपर पधारे (तुलसी प्रभुके घर वेस्ट वर्जीनियाके रम्य पहाड़ोंमें स्थित है)। ठिठुरती ठंडके बावजूद भी अनेक भक्तोंने उनका स्वागत किया एवं चरण-प्रक्षालन और गुरुपूजा की। फिर श्रीलमहाराजजीने श्रील स्वामी महाराजके एक अन्य प्राचीन शिष्य अद्वैत प्रभुको १९७० के दशकमें

श्रील स्वामी महाराजकी न्यू-वृन्दावनकी यात्राओंका वर्णन करनेके लिए कहा। किन्तु भावोंके उफानके कारण अद्वैत प्रभु कुछ बोल नहीं पाए। उनके भावोंको देखते हुए श्रीलमहाराजजी बोले—“जैसे आप रो रहे हैं, उसी प्रकार अन्त समयमें श्रीस्वामी महाराजजी भी रो रहे थे। अपने हाथमें मेरा हाथ पकड़कर उन्होंने कहा—‘मैंने बहुत शिष्य एकत्रित कर लिये हैं। अब आप इन्हें वैष्णव बनाएँ।’ मैंने उनसे प्रण किया कि उनकी आज्ञाका पालन करूँगा। वे मेरे सबसे प्रिय मित्र, मेरे शिक्षा गुरु एवं मेरे गुरुदेवके गुरुभाई थे।” फिर श्रीलमहाराजजीने श्रीस्वामीजीके सन्यास ग्रहणकी कथाका वर्णन किया। वे बोले, “सन्यास उत्सवके समय मैं मुख्य पुजारी था। मैंने उनका दण्ड बनाया। उनको कौपीन पहनना सिखाया। उनके संग मैं नई दिल्लीके कृष्ण मन्दिरमें आया। वे बोले—‘थे सब ग्रन्थ मुझे भेज देंगे।’ उनकी आज्ञाके अनुसार मैंने वे ग्रन्थ न्यूयार्क भेजे। वे मुझे कई पत्र लिखते, अनेकानेक विषय पूछने अथवा वस्तुएँ मँगवानेके लिए। उन्हें मथुराके पेड़ बहुत प्रिय थे। अपने गुरुदेवकी अज्ञाके पालन हेतु उन्होंने सम्पूर्ण विश्वमें प्रचार किया, कई

मन्दिर स्थापित किए एवं अनेक ग्रन्थ लिखे। यदि वे आज होते तो कई अन्य ग्रन्थोंकी रचना करते, जो अब मैं कर रहा हूँ। वे बहुत दयालु हैं कि यह सेवा उन्होंने मेरे लिए छोड़ दी।”

न्यू वृन्दावनकी तीन दिवसीय यात्रामें श्रीलमहाराजजीने सायं काल शिक्षाष्टकके पहले श्लोक पर प्रवचन किया। उन्होंने कहा कि स्वयं महाप्रभु रायरामानन्द एवं स्वरूपदामोदरके संग गम्भीरामें शिक्षाष्टकके आठ श्लोकोंका आस्वादन करते थे। ये श्लोक, जिनका श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने ‘शिक्षाष्टक’ ग्रन्थमें वर्णन किया है, वेदोंका सार हैं एवं इनके कई गूढ़ अर्थ हैं। फिर श्रीलमहाराजजीने प्रथम श्लोकानुसार हरिनाम कीर्तनके सात मङ्गलमय फलोंका वर्णन किया। तत्पश्चात् उन्होंने पूछा, “अनेक व्यक्ति स्वामीजीके आनुगत्यमें (प्रभावसे) कृष्णभक्तिमें आए एवं हरिनाम करने लगे। परन्तु वे श्रद्धा खो बैठे। क्यों?” उन्होंने समझाया कि श्रद्धा दो प्रकारकी होती है, लौकिकी एवं आध्यात्मिकी। आध्यात्मिकी श्रद्धा भी दो प्रकारकी होती है—शास्त्र अवधारणामयी श्रद्धा एवं लोभमयी श्रद्धा। इनमेंसे पहली प्रकारकी श्रद्धा शास्त्रानुशासनसे होती है एवं इस तथ्य पर आधारित होती है कि मैं कृष्णका क्षुद्र दास हूँ। यदि मैं भक्तिके नियमोंका पालन नहीं करूँगा तो मुझे कष्ट मिलेगा (दण्ड मिलेगा)। परन्तु लोभमयी श्रद्धा शुद्ध, रसिक वैष्णवोंसे रसमयी कृष्णकथा श्रवण करनेसे उत्पन्न होती है एवं साधकके हृदयमें ब्रज-भक्तोंके आनुगत्यमें कृष्ण सेवा करनेका लोभ पैदा करती है। परन्तु यदि साधक नित्य उत्तम वैष्णवोंका संग नहीं करता है तो ये दोनों प्रकारकी श्रद्धाएँ क्षीण हो जाती हैं। श्रद्धा श्रीमती राधिकाकी शक्ति—भक्तिका एक अणु अंश है। भक्ति एक शक्ति ही नहीं अपितु व्यक्तिविशेष है। यदि साधक वैष्णवों अथवा वैष्णव शिष्टाचारका आदर न करे तो भक्तिदेवी लुप्त हो जाती हैं।

हरिनाम भी भक्तोंके संग एवं आनुगत्यमें ही विधिपूर्वक करना चाहिए। तभी शिक्षाष्टकके इस श्लोकमें वर्णित सात फल प्राप्त होंगे। सुन्दर

कीर्तन व नृत्यसे एवं हरिकथासे कोई दूसरोंको प्रभावित कर सकता है, परन्तु साधु-संग एवं वैष्णवानुगत्यके बिना यह प्रदर्शन सहजिया है।

एक भक्तने पूछा, “हम क्या करें जिससे हमारी श्रद्धा कमजोर न पड़े?”

श्रीलमहाराजजीने उत्तर दिया, “साधु-संग, साधु-संग, साधु-संग एवं हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम साधु-संगमें। परन्तु यह संग ऐसे साधुके साथ होना चाहिए जो सब सन्देह दूर कर कृष्णभक्ति प्रदान कर सके। ऐसे साधु जगतमें दुर्लभ हैं।”

न्यू वृन्दावनमें श्रीलमहाराजजी अपने शिष्यों सहित वह घर देखने गए जहाँ श्रीलस्वामी महाराजजी प्रारम्भिक दिनोंमें रहते थे। श्रीलमहाराजजीने श्रीलस्वामी महाराजके साथ अपने सम्बन्धका वर्णन करते हुए कहा कि स्वामीजीने उनसे निवेदन किया था कि मैं अपने हाथ उन्हें समाधि दूँ। अपने कई गुरु भाइयों और ज्येष्ठ शिष्योंके होते हुए भी श्रीलस्वामी महाराजने श्रीलमहाराजजीको यह सेवा दी।

इसके बाद महाराजजी एवं भक्तगण पुरातन मन्दिरसे कुछ मील दूर स्थित ‘स्वर्ण-महल’ (पैलेस ऑफ गोल्ड) गए। अपनी मेज पर बैठ कर लिखते हुए स्वामीजीकी मूर्तिको देखकर श्रीलमहाराजजी बोले, “स्वामीजी! आप क्या लिख रहे हैं? आप आँख उठाकर देखेंगे नहीं कि कौन आपके दर्शनके लिए आया है?”

श्रीपाद माधव महाराज हँसकर बोले—“श्रीलमहाराजजी! ये बिलकुल आपके जैसे हैं। जब वे लिखते हैं तो नहीं चाहते कि कोई उन्हें (disturb) तंग करे।” इसके बाद सब महलके अन्दर कक्षमें गए, जहाँ सुन्दर कीर्तनके साथ श्रीलमहाराजजीने श्रीलस्वामी महाराजजीको पुष्प-हार पहनाया।

न्यू वृन्दावनकी यात्रा समाप्ति पर श्रील-महाराजजीने कहा कि वे इस यात्रासे स्वामीजीकी चरण-रज प्राप्तकर एवं भक्तोंसे मिलकर प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हैं।

लेक वॉशिंगटन

लेक वॉशिंगटन न्यूयॉर्क राज्यमें न्यूयॉर्क शहरसे दो घंटेकी दूरी पर केटस्किल एवं पोकोनो पहाड़ोंके सङ्गम-स्थान पर स्थित है। श्रीलमहाराजजी जून १६ को मध्याहके समय यहाँ पहुँचे। देश-विदेशसे ३०० से भी अधिक भक्त उनका प्रेममय आशीर्वाद प्राप्त करने एवं अद्भुत रसमयी हरिकथा श्रवण करनेके लिए यहाँ एकत्रित थे। लेक वॉशिंगटनके सुरम्य वातावरणको देखकर एकत्रित भक्तोंके हृदयमें शुद्ध भाव स्थापित करने हेतु श्रीलमहाराजजी बोले—‘यह लेक (झील) के किनारे अति सुन्दर प्राकृतिक स्थान है जो वृन्दावनमें यमुना तट एवं गिरिराजजीका स्मरण दिला रहा है। आप सभीको यह निश्चित जान लेना चाहिए कि यह जगत सुखालयम् नहीं है, केवल एक मूढ़ व्यक्ति ही इसे सुखालयम् कहेगा। हम मायाके कारागारमें बद्ध होकर अत्यधिक कष्ट पा रहे हैं। पूर्वाचार्योंके मार्गका अनुसरण करनेका प्रयत्न करें।’

श्रीलमहाराजजी फिर पांच तथ्य बोले जो उन्होंने लेक वॉशिंगटनमें अपनी प्रवचनोंमें कई बार दोहराए—

(१) यह जगत मेरा स्थायी घर नहीं है—यह सुखालयम् नहीं है।

(२) मैं कैसे प्रसन्न हो सकता हूँ?

(३) वह ‘मैं’ कौन है जो प्रसन्न होना चाहता

है एवं नित्य, चिन्मय सुख क्या है?

(४) मेरे जीवनका लक्ष्य क्या है?

(५) उस लक्ष्यको प्राप्त करनेका साधन क्या है?

उन्होंने कहा कि एक सुदृढ़ आधार तैयार करने हेतु इन सब सिद्धान्तोंको समझना अत्यावश्यक है। तभी हम सिद्ध-स्वरूपकी अनुभूति कर सकते हैं। हमें अपरिपक्व अवस्थामें नहीं पूछना चाहिए, ‘गुरुदेव, मेरा सिद्ध-स्वरूप क्या है?’

श्रीलमहाराजजीने समझाया कि श्रीचैतन्य महाप्रभुकी एक मुख्य देन है—शक्ति परिणामवादका प्रतिपादन। वास्तव वस्तु भगवान स्वयं अपनी विभिन्न शक्तियोंमें परिणत नहीं होते। कृष्णकी इच्छासे उनकी शक्ति इस जगत एवं जीवोंकी रचना करती है (शक्तिपरिणाम वाद)। यद्यपि ये सब सिद्धान्त अचिन्त्य हैं, तथापि गुरु-परम्पराके आनुगत्यमें हम इन्हें समझ सकते हैं।

श्रीमद्वगवद्गीता ४/३४—

तद्विद्वि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।

उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

‘हे अर्जुन! तुम तत्त्वको जाननेवाले ज्ञानी पुरुषोंको भली प्रकार दण्डवत् प्रणामकर तथा सेवा और निष्कपट भावसे प्रश्न कर उस ज्ञानको जानो। तत्त्वदर्शी ज्ञानीण तुम्हारे दण्डवत्-प्रणाम, परिप्रश्न और सेवावृत्तिसे सन्तुष्ट होकर कृपापूर्वक तुम्हें उस ज्ञानका उपदेश करेंगे।’

(क्रमशः)

श्रीव्रजमण्डल परिक्रमा—२००२

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, मथुरा (ph) ०५६५-५०२३३४

१५ अक्टूबर मंगलवार (दशमी) रंगेश्वर, कृष्णापुरी आदि।

१६ अक्टूबर बुधवार (एकादशी) मथुरा परिक्रमा, जन्मस्थान, दीर्घविष्णु, मथुरादेवी।

१७ अक्टूबर वृहस्पतिवार (महाद्वादशी व्रत) शामको डैम्पियर नगर।

१८ अक्टूबर शुक्रवार (द्वादशी) श्रीपद्मनाभ, श्रीवराहदेव, श्रीद्वारकाधीश आदि।

१९ अक्टूबर शनिवार (त्रयोदशी) सबेरे मथुराके बाकी दर्शनीय स्थान, सायंकाल वृन्दावन पहुँचकर निवास।

२० अक्टूबर रविवार (चतुर्दशी) विश्राम।

२१ अक्टूबर सोमवार (वृन्दावनमें) श्रीशरदपूर्णिमा, कार्तिकव्रत आरम्भ, केशीघाटमें परिक्रमाका संकल्प,

		श्रीश्रीमद्भक्तिप्रशान केशव गोस्वामी महाराजजीका विरह महोत्सव।
२२	अक्टूबर मंगलवार	(प्रतिपदा) कालीय दह, श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती भजन कुटीर और समाधि, श्रीसनातन गोस्वामीका भजन कुटीर, श्रीमदनमोहन, दानगली।
२३	अक्टूबर बुधवार	(द्वितीया) सेवाकुञ्ज, श्रीराधादामोदर, इमलीतला, श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठ, शृङ्गरवट, निधुवन, श्रीराधारमण, श्रीगोकुलानन्द, श्रीश्यामसुन्दर।
२४	अक्टूबर वृहस्पतिवार (तृतीया)	श्रीगोपीनाथ, धीरसमीर, वंशीवट, गोपीश्वर महादेव, श्रीगोविन्ददेवजी, वनखण्ड।
२५	अक्टूबर शुक्रवार	(चतुर्थी) हरिकथा और विश्राम।
बस द्वारा	२६ अक्टूबर शनिवार	(पंचमी) (वृन्दावनसे) मधुवन, तालवन, कुमुदवन, बहुलावन।
बस द्वारा	२७ अक्टूबर रविवार	(षष्ठी) (वृन्दावनसे) भद्रवन, भाण्डीरवन, मानसरोवर, लौहवन। कृष्णापुरीमें भंडारा।
बस द्वारा	२८ अक्टूबर सोमवार	(सप्तमी) (वृन्दावनसे) दाऊजी, ब्रह्माण्डघाट, महावन गोकुल, जुगोत्स्ना गाँवमें हरिकथा और प्रसाद-सेवा, रावल।
	२९ अक्टूबर मंगलवार	(अष्टमी) बेलवन, शृंगार वट आदि।
	३० अक्टूबर बुधवार	(नवमी) पूज्यपाद श्रीलभक्तिरक्षक श्रीधर महाराजजीका आविर्भाव। श्रीवृन्दावनकी परिक्रमा।
	३१ अक्टूबर वृहस्पतिवार (दशमी)	विश्राम।
बस द्वारा	१ नवम्बर शुक्रवार	(एकादशी) वृन्दावनसे पैंठा, चन्द्रसरोवरसे होकर गोवर्द्धन, श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठमें वास।
	२ नवम्बर शनिवार	(द्वादशी) श्रीहरिदेव, ब्रह्मकुण्ड, चक्कलेश्वर महादेव, मुखारविन्द, सनातन गोस्वामीकी भजन कुटी आदि।
	३ नवम्बर रविवार	(त्रयोदशी) गोवर्द्धन परिक्रमा—दानघाटी, आन्धौर, गोविन्दकुण्ड, पूछरी, सुरभीकुण्ड, जर्तीपुरा।
	४ नवम्बर सोमवार	(अमावस्या) दोपावली, दानघाटीमें अन्नकूट।
	५ नवम्बर मंगलवार	(प्रतिपदा) राधाकुण्ड परिक्रमा, उद्धवकुण्ड, गिरिराज मन्दिरमें अन्नकूट, कुसुम सरोवर।
बस द्वारा	६ नवम्बर बुधवार	(द्वितीया) गुलाल कुण्ड, गाँठाली, बहेज, डीग, आदिबद्री होकर गोवर्द्धन।
	७ नवम्बर वृहस्पतिवार (तृतीया)	गोवर्द्धनसे बरसाना, मोदीभवन बरसानामें निवास। रास्तेमें सूर्यकुण्ड, कमईके दर्शन।
	८ नवम्बर शुक्रवार	(चतुर्थी) श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीका तिरोभाव महोत्सव। मोदीभवन बरसाना।
	९ नवम्बर शनिवार	(पंचमी) श्रील भक्तिश्रीरूप सिद्धान्ती महाराजजीका आविर्भाव महोत्सव, गढ़रवन परिक्रमा।
बस द्वारा	१० नवम्बर रविवार	(षष्ठी) काम्यवन, वृन्दादेवी, गोविन्दजी, कामेश्वर, पञ्चपाण्डव, विमलाकुण्ड, पिछल पहाड़ी, व्योमासुरीकी गुफा, भोजन थाली, चरण पहाड़ी।
	११ नवम्बर सोमवार	(सप्तमी) पीलीपोखर, ऊँचागाँव, सखीगिरि पर्वत।
बस द्वारा	१२ नवम्बर मंगलवार	(गोपाल्यमी) बरसानासे नन्दांव, मार्गमें प्रेमसरोवर, संकेत, उद्धवक्यारी, ललिताकुण्ड, नन्दभवन।
बस द्वारा	१३ नवम्बर बुधवार	(नवमी) कोकिलावन, जावट, बैठान, चरण पहाड़ी, कोसी, बरसाना।
बस द्वारा	१४ नवम्बर वृहस्पतिवार (दशमी)	चरण पहाड़ी, पावन सरोवर, टेर कदम्ब, बरसाना।
बस द्वारा	१५ नवम्बर शुक्रवार	(एकादशी) बरसानासे खदीरवन, रामघाट, विहारवन, चौरघाट, वत्सवन, गरुडगोविन्दसे होकर वृन्दावन।
	१६ नवम्बर शनिवार	(पक्षवर्द्धनी महाद्वादशी व्रत) श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजका तिरोभाव।
	१७ नवम्बर रविवार	(त्रयोदशी) श्रीब्रह्महृद, अन्नकूट घाट, भातराल, यज्ञ-पत्नी स्थान।
	१८ नवम्बर सोमवार	(चतुर्दशी) हरिकथा और विश्राम।
	१९ नवम्बर मंगलवार	(पूर्णिमा) वैष्णव होम, ऊर्जाव्रत समापन।
	२१ नवम्बर वृहस्पतिवार (द्वितीया)	श्रीदुर्वाषा ऋषि गौड़ीय आश्रम दर्शन।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्मद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्णण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ आश्विन मास, सन् २००२, २२ सितम्बर—२१ अक्टूबर

{ संख्या ७

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुरभक्तिविनोदकृतम्]

(वर्ष ४६, संख्या ६, पृष्ठ १२३ से आगे)

तत्रोषित्वा कतिपयदिवा दाक्षिणात्यं जगाम कूर्मक्षेत्रे गदविरहितं वासुदेवं चकार।
रामानन्दे विजयनगरे प्रेमसिन्धुं ददौ यस्तं गौराङ्गं जनसुखकरं तीर्थमूर्तिं स्मरामि ॥४३॥
देशे देशे सुजननिचये प्रेमविस्तारयन् यो रङ्गक्षेत्रे कतिपयदिवा भट्टपल्यामवात्सीत्।
भद्राचार्यान् परमकृपया कृष्णभक्तांश्चकार तं गोपालालयसुखनिधिं गौरमूर्तिं स्मरामि ॥४४॥
बौद्धान् जैनान् भजनरहितान् तत्त्ववादाहतांश्च मायावादहृदनिपतितां शुद्धभक्तिप्रचारैः।
सर्वाश्चैतान् भजनकुशलान् यश्चकारात्मशक्त्या वन्देऽहं तं बहुमतधियां पावनं गौरचन्द्रम् ॥४५॥

दत्त्वानन्दं कलिमलहरं दक्षिणात्येभ्य ईशो नीत्वा ग्रन्थौ भजनविषयौ कृष्णदासेन सार्वम्।
आलालेशालयपथगतं नीलशैलं ययौ यस्तं गौराङ्गः प्रमुदितमतिं भक्तपालं स्मरामि ॥४६॥
काशीमिश्रद्विजवरगृहे शुद्धचामीकराभो वासञ्चक्रे स्वजननिकरैर्यः स्वरूपप्रधानैः।
नामानन्दं सकल समये सर्वजीवाय योऽदात् तं गौराङ्गः स्वजनसहितं फुल्लमूर्तिं स्मरामि ॥४७॥
नीलागेशो रथमधिगते वैष्णवैर्यस्तदग्रे नृत्यन् गायन् हरिगुणगणं प्लावयामास सर्वान्।
प्रेम्नौद्वीयान् गजपतिमुखान् सेवकान् शुद्धभक्तांस्तं गौराङ्गः स्वसुखजलधिं भावमूर्तिं स्मरामि ॥४८॥
ओद्रदेशाद् ययौ गौडं सीमायामुत्कलस्य यः हित्वौद्रपाश्वर्दां देवस्तं स्मरामि शचीसुतम् ॥४९॥
श्रीवासं वासुदेवञ्च राघवं स्व-स्व-मन्दिरे दृष्ट्वा शन्तिपुरं यातो यस्तं गौरं स्मराम्यहम् ॥५०॥
श्रीविद्यानगरं गच्छन् विद्यावाचस्पतेर्गृहम् कुलियायां नवद्वीपे ययौ यस्तमहं भजे ॥५१॥

पद्यानुवाद

[परलोकगत पं. मधुसूदनदास गोस्वामी कृत]
कछु दिन पुरी निवास कर दक्षिण यात्रा कीन।
कूर्म क्षेत्र में ‘वासु’ को ‘गद’ हर कियो नवीन॥
रामानन्द सों मिले प्रभु ‘विद्यानगर’ मझार।
प्रश्नोत्तर छल तत्त्वनिज दरसायौ रससार ॥४३॥
तीरथ छल देसन कियौ भक्ति प्रेम निस्तार।
तीरथ मूरत आप प्रभु पातकि जन निस्तार॥
रङ्ग क्षेत्रमें जाय प्रभु कीनौं ‘चातुरमास’।
भट्ठ पल्लीमें जाय कैं वेङ्कटभट्ठ गृहवास॥
भट्ठ अचारज सब किये कृष्ण भक्त तत्काल।
निज परिकर लखि शिष्य किय बालक ‘भट्ठगोपाल’ ॥४४॥
बौद्ध, जैन अरु तत्त्व हत, जे जन भजन विहीन।
पड़े मोहके गर्तमें मायावादी दीन॥
कापालिक अरु पाशुपत, कीये सब उद्धार।
सबन कृष्ण भक्ति दई आत्म शुद्धि विस्तार ॥४५॥
दियौ दक्षिणी जनन कौं कलिमलहर आनन्द।
कञ्चन मूरत गौर प्रभु जै जै नदिया चन्द॥
दक्षिणते ये ग्रन्थ दो लाये श्रीप्रभु सङ्ग।
‘ब्रह्म सहिता’, ‘कृष्ण करणामृत’ सहित उमङ्ग॥
लखि अलालनाथहि प्रभु कृष्णदास संग लीन।
पुनि प्रयान नीलाद्रि कहं याही पथ सौं कीन ॥४६॥

द्विजवर काशीमिश्रके आलय गौर निवास।
 कियौ स्वरूपप्रमुख निजजन सह अधिक हुलास॥
 श्रीहरिनाम अनन्द प्रभु वितरत आठौ जाम।
 होत परम कल्यान सब जीवन पूर्ण काम॥४७॥
 श्रीनीलाचल चन्द्र जब रथ आरोहन कीन।
 प्रेम विवश श्रीगौरहरि उलझौ प्रेम नवीन॥
 निज जन वैष्णव संप्रदा सकल लई प्रभु संग।
 नृत्य गान आगौ करत वाढ़ी प्रेम तरंग॥
 सकल जगत प्लावन कियौ प्रेम भक्तिकी धार।
 ओढ़ भक्त गजपति नृपति प्रमुख कृपा विस्तार॥
 निज जन सुख जलनिधि प्रभु सर्व भाव तनु आप।
 सुरदुर्लभ हरिभक्ति दैं हरौ जीव सन्ताप॥४८॥
 उत्कल तज प्रभु शचीसुत कीनौ गौड़ प्रयान।
 वासुदेव, श्रीवास, राघव भेटे निज स्थान॥
 कर प्रयान श्रीशान्तिपुर 'कुलिया' 'नदिया' जाय।
 विद्यावाचस्पति लखे विद्यानगर जाय॥४९—५१॥

(क्रमशः)

प्रश्नोत्तर

गौड़ीय पूर्वाचार्योंका वैशिष्ट्य

—जगद्गुरु श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

[वर्ष ४६, संख्या ६, पृष्ठ १२५ से आगे]

★ श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायके तत्त्वाचार्य कौन निकट समस्त भक्ति-शास्त्रोंका अध्ययन किया हैं?

"श्रीजीव गोस्वामी ही हमारे तत्त्वाचार्य हैं; अतएव वे श्रीरूप सनातनके शासनगर्भमें सदासर्वदा वर्तमान हैं।"

★ श्रीश्रीजीव गोस्वामीजीका वैशिष्ट्य क्या है?

"श्रीश्रीजीव गोस्वामीका नाम सुनते ही वैष्णवोंका हृदय आनन्दसे नृत्य कर उठता है। ~ ~ ~ श्रीजीव गोस्वामीजीने श्रीरूपगोस्वामीजीके

था। कुछ ही दिनोंमें तत्त्व-शास्त्रमें श्रीगौड़ीय-सम्प्रदायमें श्रीजीवगोस्वामी सर्वश्रेष्ठ आचार्य माने जाने लगे। उस समयसे श्रीजीवगोस्वामी-जीने श्रीवृन्दावन धामका कभी भी परित्याग नहीं किया। वृन्दावनमें ही रहकर उन्होंने २५ ग्रन्थ लिखे। ~ ~ ~ वेदान्त-दर्शन-विद्यामें उस समय श्रीजीवगोस्वामी अद्वितीय धुरन्धर विद्वान थे। कहा जाता है कि श्रीविष्णुस्वामी सम्प्रदायके आचार्य श्रीवल्लभने

स्व-रचित तत्त्वदीप ग्रन्थ श्रीजीव गोस्वामीको दिखलाया था। श्रीजीव गोस्वामीजीने उसे देखकर बहुत-से वैदान्तिक विचारोंको उठाकर उनके मतकी त्रुटियाँ दिखलायी थीं। वल्लभाचार्यजीने श्रीजीवगोस्वामीके परामर्शसे उस ग्रन्थमें अनेक स्थलोंमें संशोधन किया था। ^ ^ ^ श्रीजीवगोस्वामीका षट् सन्दर्भ ग्रन्थ जगतमें एक अमूल्य रत्न है। षट् सन्दर्भको भलीभाँति समझ लेने पर वेदान्तका कोई भी विचार जानना बाकी नहीं रह जाता।”

—श्रीजीव गोस्वामी प्रभु; स. तो. (सज्जन तोषणी) २/१२

* श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी प्रभुके चरित्रका वैशिष्ट्य क्या है?

“श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी बचपनसे ही वैष्णव-धर्मानुरागी थे। उन्होंने अपने पितृव्य परिव्राजकाचार्य श्रीप्रबोधानन्द सरस्वतीके निकट विधिपूर्वक वेद-वेदान्तादि शास्त्रोंका अध्ययन किया था। जिस समय श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी दक्षिणके लोगोंके ऊपर कृपा करनेके लिए विचरण करते हुए श्रीरंगम्‌में पहुँचे, वहाँ उनकी भेंट गोपाल भट्टसे हुई थी। श्री गोपाल भट्टने श्रीमन्महाप्रभुका दर्शन करके उनके चरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया था। करुणावरुणालय श्रीमन्महाप्रभुजीने गोपाल भट्टके ऊपर विशेष कृपापूर्वक उनके अन्दर शक्तिका संचार किया। इस शक्ति संचारके प्रभावसे गोपाल भट्ट घर-बार और माता-पिता आदि सबकुछ छोड़कर वृन्दावनमें उपस्थित हुए तथा वहाँ श्रीरूप गोस्वामी आदिके साथ मिलकर श्रीवृन्दावनके लुप्त तीर्थोंका उद्धार करनेके पवित्र कार्यमें जुट पड़े। साथ ही

उन्होंने भक्ति एवं स्मृति आदि अनेकानेक ग्रन्थोंकी रचना की है। उन्होंने श्रीमद्रूप गोस्वामी प्रभुकी आज्ञासे वृन्दावनमें श्रीराधारमण-की सेवा भी प्रकाशित की है।”

—श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी प्रभु, स. तो. २/७

* श्रीजाह्वा देवी कौन तत्व हैं? उन्होंने वैष्णव जगतका कौनसा कार्य किया है?

“श्रीश्रीमती जाह्वा देवीका जन्मोत्सव। आज श्रीश्रीचैतन्यचरण महाभागवतोंके लिए परम आनन्दका दिन है। अनुमानित १४०९—१० शकाब्दमें जाह्वादेवी अम्बिका कालनामें श्रीमहाप्रभुके प्रियपात्र श्रीसूर्यदास पण्डितकी परम सौभाग्यशालिनी पत्नी भद्रावतीके गर्भसे आविर्भूत हुई। उपयुक्त समय पर श्रीनित्यानन्द प्रभुने सर्वगुणसम्पन्न जाह्वादेवी और उनकी बड़ी बहन श्रीमती वसुधादेवीका शास्त्र विधिके अनुसार पाणि-ग्रहण किया। जाह्वा देवीने लगभग १४६५ शकाब्दमें श्रीबंशीवदनानन्दके पुत्र श्रीचैतन्यके पुत्र रामचन्द्रको पोष्यपुत्रके रूपमें ग्रहणकर उसे दीक्षा प्रदान की। ये नित्यानन्द प्रभुकी शक्ति हैं तथा कृष्णलीलाकी साक्षात् अनङ्ग मञ्जरी सखी हैं। इन श्रीमती जाह्वादेवीने जो सब अद्भुत कार्य किये हैं, वह वैष्णव-मण्डलीमें अविदित नहीं है।”

—श्रीजाह्वा देवी, स. तो. २/४

* शुद्धभक्ति साहित्य-साम्राज्यके आदि-कवि-सम्प्राट कौन हैं?

“ठाकुर वृन्दावनदास केवल वैष्णव जगतके ही रत्न नहीं हैं, बंगीय साहित्यके भी अलंकार स्वरूप हैं। अंग्रेजी-साहित्यमें जिस प्रकार ‘चॉसर’ (chaucer) नामक कविका सम्मान है, बंगीय-साहित्यमें ठाकुर

वृन्दावनदासका भी वैसा सम्मान होना उचित है। वास्तवमें ठाकुर वृन्दावनसे पहले किसीने भी बंगभाषामें शुद्धभक्तिका पद्य-ग्रन्थ नहीं लिखा है। ॐ वृन्दावनदास ठाकुर श्रीव्यासदेवके अवतार हैं—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। उनकी परमसाध्वी माता समस्त वैष्णवोंकी पूजनीया हैं।”

—श्रीवृन्दावनदास ठाकुर, स. तो. २/२

* श्रीश्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभुने जगत कल्याणके लिए क्या किया है?

कविराज गोस्वामी सर्वशास्त्रज्ञ थे। उनके द्वारा रचित ‘श्रीचैतन्य-चरितामृत’, ‘श्रीगोविन्द-लीलामृत’, ‘श्रीकृष्णकर्णामृतकी सारंग-रंगद टीका’ आदि ग्रन्थ वैष्णवजगतके अमूल्य रत्न हैं। श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी प्रभु श्रीचैतन्य सम्प्रदायमें एक प्रधान पण्डित एवं परम भक्त थे। इस बातको प्रमाणित करनेके लिए हमें चेष्टा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं दीख पड़ती है। कविराज गोस्वामीके ग्रन्थ ही इसका सुन्दर प्रमाण है। अपारमहिम कविराज गोस्वामीकी दयापर विचार करनेसे विमोहित होना पड़ता है। उन्होंने संस्कृत ज्ञानसे रहित जन-समाजके प्रति करुणा प्रकाश कर क्या ही सुन्दर श्रीचैतन्यचरितामृत ग्रन्थकी रचना की है। मेरे विचारसे, यदि कविराज-प्रभु कृपा कर इस ग्रन्थको प्रकाशित न करते तो दर्शनादि-शास्त्र ज्ञानसे रहित मनुष्य श्रीचैतन्य महाप्रभुके द्वारा प्रकटित सनातन वैष्णवमतको जान नहीं पाते तथा उनकी क्या गति होती, इसे कहा नहीं जा सकता है। धन्य कविराज! आपने वैष्णव सम्प्रदायभुक्त पण्डित और मूर्ख दोनोंको ही ऋणी बना रखा है। हम मुखसे

आपका कितना गुण गान कर सकते हैं? आपने श्री चैतन्यचरितामृतमें लिखा है—‘यदि वा ना जाने कहे, शुनिते शुनिते सह’ इत्यादि आपकी सिद्ध वाणीके प्रभावसे ही वैष्णव-सम्प्रदायभुक्त (तथाकथित) अनेक मूर्ख लागोंका भी श्रीचरितामृतमें उत्तम अधिकार देखा जाता है। आपके चरणकमलोंमें अगणित प्रणाम है।”

—श्री कृष्णदास कविराज गोस्वामी, स. तो. २/१०-११

* श्रीश्रीनिवासाचार्य प्रभुने गोड़ीय वैष्णव जगतका क्या उपकार किया है?

“श्रीनिवास बाल्यकालमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके चरणश्रित अपने पिताके मुखसे श्रीचैतन्य महाप्रभुके अतिमर्त्य गुणावलीका श्रवण करके उनके शरणागत हुए और युवावस्थामें अपने माता-पिताका आदेश लेकर वैराग्याश्रममें प्रविष्ट हो गये। इसके पश्चात् वे सबसे पहले श्रीनवद्वीपथामें महाप्रभुकी शक्ति श्रीमती विष्णुप्रिया ठाकुरानीजी, उनके सेवक महाप्रभुके अन्तरङ्ग श्रीबंशीवदनानन्द प्रभु एवं महाप्रभुकी लीला-स्थलियोंका दर्शन करनेके लिए श्रीधाम नवद्वीप पहुँचे। वहाँ श्रीविष्णुप्रिया देवीके मन्दिरमें कुछ दिन रहकर उन्होंने बंशीवदनानन्द प्रभुके निकट महाप्रभुकी लीला-कथाओंका श्रवण किया एवं उनकी लीला-स्थलियोंका दर्शन किया। तत्पश्चात् उन्होंने विष्णुप्रियाजी और बंशीवदनानन्दसे बिदाइ लेकर द्वादश पाटों तथा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके भक्तोंके स्थानोंका दर्शन किया। इस प्रकार कुछ दिन भक्तमण्डलीके साथ भेंटकर वे श्रीपुरुषोत्तम धाममें उपस्थित हुए। ॐ श्रीनिवास

पुरुषोत्तम (पुरीधाम) से गौड़मण्डल लौटकर वहाँ कुछ दिन ठहरे। तदनन्तर श्रीवृन्दावन पहुँचे। वहाँ वे गोस्वामी प्रभुगणके साथ ब्रजमण्डलका दर्शन और नित्य-नवीन भावोंका आस्वादन करने लगे। इसी प्रकार ब्रजमें अनेक दिन वासकर पुनः चिन्तामणि-भूमि गौड़मण्डल लौटकर असंख्य मायामोहित जीवोंका उद्धार किया।”

—श्रीनिवासाचार्य प्रभु, स. तो. २/१०-११

* श्रीश्यामानन्द प्रभुने वैष्णव जगतका क्या उपकार किया है?

“श्यामानन्द प्रभु उत्कल प्रदेशके दण्डकेश्वर नामक गाँवमें करणवंशमें चैत्र-पूर्णिमाके दिन आविर्भूत हुए थे। बाल्य, पौगण्ड और किशोरावस्था तक घर पर ही रहकर उन्होंने यौवनावस्थाके प्रारम्भमें ही घर-बार छोड़कर वैराग्य आश्रम ग्रहण किया था। उनका कठोर वैराग्य देखकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके भक्तगण उनको दुःखी कृष्णदासके नामसे पुकारते थे। बिना दीक्षा ग्रहण किए भजन निष्फल होता है—ऐसा जानकर उन्होंने महाप्रभुके पार्षद श्रीगौरीदास पण्डितके प्रिय शिष्य श्रीहृदय चैतन्यके निकट दीक्षा ग्रहण की। दीक्षा लेनेके पश्चात् वे सबसे पहले गुरु-सेवाको अपना प्रधान कर्तव्य जानकर कुछ दिनों तक गुरुदेवके निकट रहकर उनकी सेवा करनेके पश्चात् गुरुकी आज्ञा लेकर श्रीवृन्दावन दर्शनके लिए चल पडे। वृन्दावनमें उपस्थित होकर श्रीरघुनाथदास गोस्वामी आदि गुरुजनोंके कृपा-पात्र बने। श्यामानन्दकी वैराग्य-चेष्टा बड़ी ही आश्चर्यजनक थी। इनका कठोर वैराग्यको देखकर सभी विस्मित

हो पड़ते थे। आचार्य श्रीनिवास और ठाकुर नरोत्तम आदिके साथ मिलकर बंगालमें बहुत दिनों तक निवास कर श्रीकृष्ण भक्तिके प्रचार द्वारा उन्होंने अगणित मायाबद्ध जीवोंका उद्धार किया। वैष्णव-ग्रन्थावलीमें इन सब विषयोंका बड़ा ही सरस और साङ्घोपाङ्घ वर्णन किया गया है। मेरी बड़ी अभिलाषा है कि इन महापुरुषोंकी महिमा-कथाको विस्तार पूर्वक प्रकाश करूँ।”

—श्रीश्यामानन्द गोस्वामी स. तो. २/३

* श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तम और श्रीश्यामानन्द-प्रभुको ‘गीताचार्य’ क्यों कहा जाता है?

“श्रीनिवासाचार्य, श्रीनरोत्तमदास और श्रीश्यामानन्द—इन तीनों महात्माओंने वृन्दावनमें श्रीजीवगोस्वामीके निकट शिक्षा-शिष्यके रूपमें वास किया। श्रीजीव गोस्वामीके अनुमोदनसे इन्होंने कीर्तन-पद्धतिकी व्यवस्था की थी। तीनों ही संगीत शास्त्रमें महामहोपाध्याय थे। विभिन्न प्रकारकी पुरानी एवं नवीन राग-रागिनियोंके पारदर्शी थे। तीनों ही परस्पर एकप्राण, अभिन्न हृदय और हृदय बन्धु थे। श्रीजीव गोस्वामीके अनुमोदनसे उत्साहित होकर ये तीनों ही संगीताचार्य अपने-अपने प्रदेशमें लौट आए। ये तीनों महात्मा गौड़ भूमिके अलङ्कार हैं। ऐसा जान पड़ता है कि वे गोस्वामियोंकी भाँति संस्कृत विद्यामें अधिक पण्डित नहीं थे, क्योंकि उनके द्वारा रचित कोई संस्कृत ग्रन्थ नहीं देखा जाता है। वे ब्रज-रसके परम रसिक भक्त, वैष्णव-सिद्धान्तमें पारङ्गत और सङ्गीत विद्यामें विशारद थे। श्रीचैतन्य महाप्रभुके अप्रकट

होनेके पश्चात् वैष्णव जगतमें कुछ-कुछ उपद्रव हुआ था। प्रभु-वंशमें उपयुक्त पात्र न रहनेके कारण और नाना मतवादोंके प्रवेश होनेके कारण गौड़भूमि आचार्य-शासनसे रहित हो पड़ी थी। प्रभु वीरचन्द्र स्वतन्त्र-स्वभावयुक्त होनेके कारण वे समस्त गौड़ भूमिको शासनाधीन नहीं कर सके। श्रीअद्वैत-सन्तानमें भी उस समय भीषण गड़बड़ी मची हुई थी। श्रीमन्महाप्रभुके पार्षद-महान्तगण धीरे-धीरे अप्रकट हो रहे थे। इन परिस्थितियोंका सुयोग लेकर बाउल, सहजिया, दरवेश और साईं आदि कुपन्थियोंके प्रचारकगण अपनी-अपनी कुप्रथाओंका जगह-जगह प्रचार करने लगे। श्रीचैतन्य और नित्यानन्दके नामके प्रति साधारणतः सभी लोगोंका विश्वास है। अतः वे कुपन्थी प्रचारकगण उनके नामकी आड़में उनकी दुहाई देकर दुधार्गे जीवोंको कुपथमें आकर्षण करने लगे। इस समय श्रीजीव गोस्वामी ही एकमात्र वैष्णवाचार्य थे। वे ब्रजमण्डलमें रहनेके कारण गौड़ मण्डलकी शोचनीय अवस्था सुनकर बड़े दुःखित हुए और श्रीनिवासाचार्य प्रभु, श्रीनरोत्तमदास ठाकुर महाशय और श्रीश्यामानन्द पभुको गौड़ भूमिके धर्म-संस्थापक आचार्यके रूपमें प्रतिष्ठित करके उन्हें महाप्रभुके परिकरों द्वारा प्रकाशित सिद्धान्त-ग्रन्थोंको देकर गौड़ भूमिमें प्रचार करनेके लिए भेजा। महाप्रभुकी इच्छासे रास्तेमें सारे ग्रन्थ चुरा लिये गए। प्रेरित प्रचारकगण ग्रन्थोंके चोरी चले जाने पर बिना ग्रन्थोंके ही अपने-अपने भजनके बलसे अपनी गीत-पद्धतिका अवलम्बन कर शुद्ध

वैष्णवधर्मका प्रचार करने लगे।”

—‘सिद्धान्त विरुद्ध और रसाभास’ स. तो. ६/२

★ श्रील बलदेव विद्याभूषण कौन हैं? श्रील जीव गोस्वामी और श्रीबलदेव विद्याभूषणमें क्या वैशिष्ट्य है?

“विद्याभूषण महोदय गौड़ीय सम्प्रदायके एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं। इन्होंने इस सम्प्रदायका जितना उपकार किया है, उतना उपकार श्रीपाद गोस्वामियोंके बाद और किसीने भी नहीं किया है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि ये श्रीमहाप्रभुके नित्य-पार्षदोंमें से एक हैं। किसी वैष्णव ग्रन्थमें ऐसा इङ्गित है कि श्रीचैतन्य-पार्षद श्रीगोपीनाथ मिश्र, जिन्होंने सार्वभौमके साथ श्रीमन्महाप्रभुके मुख-निःसृत वेदान्त सूत्रका भाष्य श्रवण किया था, वे ही ब्रह्म हैं। अतएव ब्रह्म सम्प्रदायके भाष्यकर्ताके रूपमें बादमें विद्याभूषणके रूपमें प्रादुर्भूत हुए थे। वैष्णव-वाणी सत्य ही होती है। विद्याभूषणके सम्बन्धमें भी यह बात सत्य ही लगती है।

किसी-किसी अर्वाचीनका कहना है कि बलदेव विद्याभूषणका मत गोस्वामियोंके मतसे कुछ न्यून कोटिका है। हमने विशेष रूपसे विचार कर देखा है कि श्रीबलदेव और श्रीजीव गोस्वामीका एक ही मत है—उनमें तनिक भी भेद नहीं। हाँ, थोड़ा-सा यह भेद तो अवश्य है कि बलदेवने भाष्यकारके गाम्भीर्यकी रक्षा करनेके लिए वैदानिक प्रणाली एवं वैदानिक शब्दोंका अधिक व्यवहार किया है। परन्तु इससे उन दोनोंके मतमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्या तत्त्वके

विषयमें, क्या उपासनाके विषयमें—दोनों महात्माओंने एक ही प्रकारका सिद्धान्त किया है।”

—“सिद्धान्तरत्न या वेदान्त पीठक” स. तो. ९/१०

* श्रील जगन्नाथदास गोस्वामी प्रभुके सम्बन्धमें श्रीभक्तिविनोदने क्या कहा है?

“हे जगन्नाथदास आदि आधुनिक गौराङ्ग-प्रिय भक्तजन! आप लोगोंके चरणोंमें हम दण्डवत् पतित होकर हाथ जोड़कर प्रार्थना कर रहे हैं कि आपलोग श्रीसनातन गोस्वामीके स्थलाभिषिक्त होकर (जब ब्रजके भक्तलोग श्रीकृष्णके लीलास्थानोंके दर्शनके लिए व्याकुल हो रहे थे, तब दयाके सागर श्रीचैतन्यदेवने श्रीसनातन प्रभुमें शक्ति संचार कर दो धानोंके खेत—श्रीराधाकृष्ण और श्रीश्यामकृष्णको दिखा

दिया। श्रीसनातन गोस्वामीकी कृपासे अब सभी लोग उन दो तीर्थोंकी महिमाको समझ रहे हैं।) श्रीमायापुरका स्थान निर्दिष्ट कर दें। अब आपलोग ही हमारे गुरु हैं, और किसके चरणोंमें प्रार्थना करूँ?”

* युग-युगमें जो नये-नये आचार्यवृन्द आविर्भूत होते हैं, क्या वे पूर्वाचार्योंका उद्देश्य सफल करते हैं?

"The great reformers will always assert that they have come out not to destroy the old law, but to fulfil it. Valmiki, Vyas and Chaitanya Mahaprabhu assert the fact either expressly or by their conduct."

—The Bhagavat: Its Philosophy, its Ethics & its Theology. q

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

[वर्ष ४६, संख्या ६, पृष्ठ १२९ से आगे]

प्र. ३७—मेरा सम्बन्ध ज्ञान हो गया है कि नहीं, मैं इसे कैसे समझ सकता हूँ?

उ.—दिव्यज्ञानदाता श्रीगुरुदेवकी कृपासे सम्बन्धज्ञान प्राप्त होता है। गुरुकी कृपासे जिस दिन सम्बन्धज्ञान उदित हो जाता है, उसी दिन हम समझ सकते हैं कि कृष्ण ही मेरे प्रभु हैं, मैं उनका नित्यदास हूँ तथा उनकी सेवा करना ही मेरा नित्यधर्म है।

कृष्ण ही इस विश्व तथा इस विश्वसे अतीत वैकुण्ठके एकच्छत्र सम्राट हैं। अतः उनकी पूजामें कोई भी बाधा नहीं पहुँचा सकता। वास्तवमें सभी लोग उन्होंकी पूजा कर रहे हैं—कोई विधिपूर्वक तो कोई

अविधिपूर्वक। परन्तु जो अविधिपूर्वक कृष्णकी पूजा करते हैं उनका आत्मकल्याण नहीं हो पाता। अविधिका तात्पर्य है—जो सूर्य, गणेश, शिव आदि देवताओंकी पूजा करते हैं, वे भी कृष्णकी छाया शक्तिकी ही पूजा करते हैं। क्योंकि कृष्णको छोड़कर किसीकी भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। परन्तु छाया शक्ति (मायाशक्ति) की पूजा करनेके कारण उनका स्वरूप ज्ञान या सम्बन्धज्ञान उदित नहीं हो पाता।

प्र. ३८—क्या भगवानकी सेवा छोड़कर स्वयं सुखपूर्वक रहनेकी चेष्टा उचित है?

उ.—कदापि नहीं। स्वयं सुखी रहनेकी चेष्टा ही तो अभक्ति है। जो व्यक्ति हरि,

गुरु एवं वैष्णवोंकी सेवा त्यागकर स्वयं सुखी रहनेकी चेष्टामें ही व्यस्त रहता है, वह यदि दूसरोंसे अपनी सेवा भी चाहे तो भी कोई उसकी सेवा नहीं करेगा। बल्कि वे सभी लोग उसकी उपेक्षा एवं अनादर ही करेंगे। इसके विपरीत जो व्यक्ति अपने सुखकी कामनाको त्यागकर सदा-सर्वदा तन, मन एवं वचनसे गुरु तथा कृष्णकी सेवामें ही व्यस्त रहता है, उसके न चाहते हुए भी लाखों लोग उसकी सेवा करनेके लिए तैयार रहते हैं। यहाँ तक कि स्वयं महाप्रभु भी उसकी सेवा करते हैं।

प्र. ३९—भगवानका नाम किस प्रकार ग्रहण करना चाहिए?

उ.—भगवानके शुद्धभक्त पापोंको नाश करनेके लिए, पुण्य अर्जन करनेके लिए स्वर्ग प्राप्तिके लिए या अकाल, महामारी, अशान्ति, देश द्वोह, रोग इत्यादिको दूर करनेके लिए या धन-सम्पत्ति तथा राज्य प्राप्तिकी आशासे भगवानका नाम नहीं लेते। क्योंकि भगवानका नाम साक्षात् परमेश्वर है। यदि कोई ऐसे नामप्रभुको अपने इच्छित भोगोंको पूर्ण करनेमें नियुक्त करता है, तो यह सर्वाराध्य भगवानको अपने सेवकके रूपमें मानना हो जाता है। अतः यही महा अपराध है।

इसलिए यदि भगवानका नाम उनकी सेवाके उद्देश्यसे न लिया जाय, तो ऐसा नाम व्यर्थ ही चला जाता है। यीशु भी कहते हैं—“Don't take God's Name in vain” इसका तात्पर्य यह नहीं है कि भगवानका नाम सदा-सर्वदा अर्थात् सोते समय, स्वप्नमें,

चलते-फिरते नहीं लेना चाहिए। क्योंकि भगवानकी सेवाके लिए भगवानको पुकारना व्यर्थ नहीं है। बल्कि यही जीवका एकमात्र कर्तव्य है। परन्तु अन्य उद्देश्यसे अर्थात् अपनी किसी प्रकारकी कामनाको पूर्ण करनेके लिए भगवानको पुकारनेका अभिनय पूर्णरूपसे व्यर्थ है। भगवानका नाम कभी भी व्यर्थ अर्थात् धर्म-अर्थ-काम-मोक्षकी इच्छासे नहीं लेना चाहिए। परन्तु भगवानकी सेवाके लिए सब समय भगवानको पुकारना चाहिए।

प्र. ४०—आत्मा, मन तथा देह—इन तीनोंमें क्या भेद है?

उ.—शास्त्रोंमें आत्मा, मन तथा देह अर्थात् चित् कण, चिदाभास तथा जड़—इन तीनों विषयोंका परस्पर भेद तथा सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। आत्मा चित्कण (चेतन), मन चिदाभास (चेतनका आभास) तथा देह अचित् (जड़) हैं। आत्मा—देह और मनका अधिकारी (स्वामी) है। देह तथा मन आत्माकी सम्पत्ति हैं। परन्तु आत्मा परमात्माकी सम्पत्ति है। अर्थात् परमात्मा आत्माके अधिकारी (स्वामी) हैं। आत्माके दो शरीर (उपाधियाँ) हैं—एक सूक्ष्म उपाधिरूप सूक्ष्मदेह जो कि मन, बुद्धि, अहङ्कार तथा चित् इन चार तत्त्वोंसे बना है। दूसरा दस इन्द्रियोंसे युक्त स्थूल उपाधिरूप स्थूल देह। स्थूल देह या बाह्य देह पञ्च महाभूत (अग्नि, वायु, आकाश, मिठ्ठी एवं जल) से बना है। अन्तर्देह या सूक्ष्म देह, बाह्य या स्थूल देहका चालक है अर्थात् सूक्ष्म शरीर ही इस जड़ शरीरको चलाता है। चित्कण आत्मा मायाबद्ध अवस्थामें मनके द्वारा विजातीय वस्तुओं अर्थात् विषयोंके

प्रति आसक्त हो जाता है। इस प्रकार बद्ध अवस्था एक प्रकारसे आत्माकी सुप्त अवस्था है। सुप्त अवस्थामें होनेके कारण वह अपने स्वामी परमात्माकी सेवासे अनभिज्ञ रहता है। इस प्रकार मालिकको सोया हुआ देखकर उसके दोनों कर्मचारी (मन तथा देह) अपने मालिकका स्वार्थ (हित) की चेष्टा करनेके बजाय अपने-अपने स्वार्थोंको पूरा करनेमें लग जाते हैं।

मन परिवर्तनशील है, परन्तु आत्मा अपरिवर्तनशील तथा नित्य है। मनका कार्य है—भोग करना या त्याग करना। परन्तु आत्माका कार्य—भगवानकी सेवा करना है। मन इस जड़ जगतके विषयमें ही जान सकता है। अधोक्षज वस्तु भगवानके विषयमें जाननेमें वह सर्वथा असमर्थ है। क्योंकि अनित्य जड़ जगतके ज्ञानके द्वारा वास्तव एवं नित्य सत्यवस्तु भगवानको नहीं जाना जा सकता।

प्र. ४१—मुझे तो केवल जड़ जगतका ही ज्ञान है, तो फिर इन समस्त विषयोंको मैं कैसे समझ सकता हूँ?

उ.—वर्तमान अवस्थामें उन समस्त विषयोंको जानना अर्थात् बद्ध अवस्थामें भगवानको जानना बहुत कठिन है, यह सत्य ही है। परन्तु शास्त्रोंमें भगवानको जाननेके जो उपाय बताए गए हैं, वे भी सत्य हैं। जिस प्रकार दूर देशमें रहनेवाले अपने मित्रके विषयमें हम कुछ नहीं जान सकते, परन्तु जब डाकिया उसका पत्र लेकर आता है, तो सहज ही हमें उसके विषयमें ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार शास्त्रोंमें वर्णन है कि गुरु

एवं वैष्णवोंके द्वारा हम भगवानके विषयमें जान सकते हैं।

प्र. ४२—परन्तु किसी-किसीके पास तो डाकिया संवाद पत्र नहीं भी ला सकता?

उ.—डाकिया जिसका पत्र लेकर नहीं आता, वह तो अत्यन्त ही दुर्भागा होता है। परन्तु संवाद या पत्रके लिए जिसके हृदयमें बहुत उत्कण्ठा होती है, डाकिया अवश्य ही उनके लिए ला देता है। अर्थात् डाकिया स्वरूप गुरु-वैष्णवोंका जिसे दर्शन नहीं हो पाता तथा उनके श्रीमुखसे वैकुण्ठकी वार्ताओंको नहीं सुन पाता वह तो नितान्त दुर्भागा ही है। परन्तु यदि किसीके हृदयमें भगवानको जानने तथा उनकी कथाओंको सुननेकी अति उत्कण्ठा होती है तो उसे गुरु एवं वैष्णवोंका दर्शन अवश्य ही होता है, इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है।

प्र. ४३—वैकुण्ठके समाचारको लानेवाले डाकियेको हम कैसे पहचान सकते हैं तथा उसके द्वारा प्राप्त होनेवाला संवाद (समाचार) सत्य है कि मिथ्या, इसे हम कैसे जान सकते हैं?

उ.—यदि हम निष्कपटरूपसे भगवानसे प्रार्थना करेंगे तो भगवानकी कृपासे सब जान सकते हैं। विद्यार्थी एक विद्वान व्यक्ति (अध्यापक) की कृपा सहायतासे ही किसी विद्वानको पहचान सकता है। हमारे हृदयमें विराजमान भगवान ही सब विषयोंमें हमारी सहायता करेंगे। बस, हमें तो केवल उनके ऊपर निर्भर होना है।

किसी वस्तुके विषयमें जाननेके लिए इस जगतमें दो प्रकारके उपाय देखे जाते हैं।

एक—जागतिक ज्ञानके द्वारा वस्तुको जाननेका प्रयास। दूसरा—जागतिक ज्ञानको असम्पूर्ण जानकर जिस राज्यका ज्ञान हम चाहते हैं, उस राज्यसे अवतीर्ण महापुरुषके चरणोंमें अपनेको सम्पूर्णरूपसे समर्पणपूर्वक उनसे श्रवणकर उस ज्ञानको प्राप्त किया जा सकता है। अर्थात् जागतिक ज्ञान (जड़ज्ञान) के द्वारा हम केवल जड़ जगतकी वस्तुओंको ही जान सकते हैं। परन्तु चित् जगत (वैकुण्ठराज्य) में जड़ ज्ञानका प्रवेश नहीं है। यदि हम इस जड़ जगतमें रहकर भी चित् जगतके विषयमें जानना चाहते हैं, तो उसके लिए हमें चित् जगतसे आए हुए महापुरुषों (वैष्णवों) के चरणोंमें शरणागत होकर उनसे भगवानके विषयमें सुनना होगा।

प्र. ४४—बद्ध अवस्थामें जागतिक ज्ञान ही हमारी सम्पत्ति है। उसे छोड़कर किसी अतिमत्यं (अलौकिक) वस्तुके प्रति शरणागत कैसे हुआ जा सकता है?

उ.—कठिन जानकर भयभीत होनेसे काम नहीं चलेगा। सत्यवस्तु भगवानको जाननेके लिए हृदयमें बहुत बल चाहिए। तैराकी सीखते समय जल देखकर पहले ही भयभीत होनेपर तैरना नहीं सीखा जा सकता। वास्तवमें शरणागति कठिन नहीं है। आत्माके लिए शरणागति अति सहज तथा स्वाभाविक है। परन्तु शरणागतिके विपरीत जो कुछ भी है, वही अस्वाभाविक एवं दुःखकर है।

प्र. ४५—ऐसा साहस कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

उ.—इसके लिए भगवानकी कथाएँ सुननी होंगी, वह भी भगवानके एजेन्टों (निजजनों)

के पास। परन्तु विशेष बात यह है कि उनसे कथाएँ सुनते समय अपनी जागतिक अभिज्ञता (ज्ञान) एवं कुतर्क आदिको सम्पूर्णरूपसे दूर करना चाहिए। जीवन्त साधुओं (वैष्णवों) के पास भगवानकी पराक्रमपूर्ण बलवती कथाओंको सुनते-सुनते हृदयकी दुर्बलता एवं अनर्थ आदि नष्ट हो जाएँगे। हृदयमें अद्भुत साहस आएगा। तब शरणागति या आत्माका सहज धर्म सम्पूर्णरूपसे उद्दित होगा। ऐसे शरणागत व्यक्तिके हृदयमें ही इन्द्रियोंसे अतीत भगवान प्राक्षित होंगे। सत्यवस्तु भगवानको जाननेका यही एकमात्र उपाय है। इसके अतिरिक्त किसी भी उपायसे सत्यवस्तुको जानना असम्भव है।

प्र. ४६—क्या शरणागति तथा दृढ़ताकी विशेष आवश्यकता है?

उ.—अवश्य ही। भगवानके प्रति पूर्ण विश्वास होना चाहिए। हरिभजनके प्रति भी ऐसी ही दृढ़ता होनी चाहिए कि मैं अवश्य ही हरिनाम संख्या पूर्ण करूँगा, अवश्य ही भगवानकी कृपा प्राप्त करूँगा। यदि मैं योग्य हूँ तो निःसन्देह भगवान मेरी सहायता करेंगे।

गुरुके श्रीचरणकमलोंमें ऐकान्तिकरूपसे शरणागत होनेपर अवश्य ही सिद्धि प्राप्त होगी। जिस दिन श्रीरूप गोस्वामीसे अभिन्न श्रीगुरुदेवकी कृपा पर ही हम सम्पूर्ण रूपसे निर्भर हो जाएँगे, उस दिन हमारा कल्याण निश्चित है।

प्र. ४७—श्रीगुरुदेवके आनुगत्यमें कृष्णभजन नहीं करने पर क्या भजन नहीं होता?

उ.—कभी नहीं। हमें एकमात्र कृष्णका ही अनुशीलन करना होगा। यह अनुशीलन

एकमात्र गुरुके आनुगत्यमें उनके निर्देशानुसार ही सम्भव है। श्रीवार्षभानवी देवी (श्रीमति राधिका) कृष्णकी अनुकूला हैं। उनका ही एक नाम अनुकूला है। श्रीगुरुपादपद्म श्रीवार्षभानवी देवीके ही प्रिय निजजन हैं। गौड़ीय वैष्णव हमलोग अनुकूलाके कृष्ण अर्थात् श्रीमतीराधिकाके कृष्णके उपासक हैं। गौड़ीय वैष्णव कृष्णकी अपेक्षा राधिकाजीके ही अधिक पक्षपाती हैं। श्रीगुरुदेव राधाजीकी अभिन्नमूर्ति हैं। अनुकूलाके आनुगत्यमें ही कृष्णका अनुशीलन सम्भव है। जो अनुकूलाका आनुगत्य नहीं करते, वे कदापि अनुकूल कृष्णानुशीलन नहीं कर सकते। उनके हृदयमें अपने सुखकी वासना ही ताण्डव नृत्य करती रहती है। ऐसी भक्तिविरोधी चित्तवृत्तिया दाम्भिकताका परित्यागकर गुरुके आनुगत्यमें कृष्णकी सेवा करनेपर ही कल्याण सम्भव है। परन्तु बहुत ही दुर्भाग्यका विषय है कि हम कृष्णकी अनुकूल सेवाको भूलकर अपनेको सुखी रखनेमें ही व्यस्त हैं। हाय! कृष्णको गृहस्वामी न बनाकर स्वयं ही गृहस्वामी सजकर हम गृहब्रती हो गए हैं। किन्तु यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं, तो जीते जी ही हमें सावधान होना होगा। अर्थात् इसी मनुष्य जन्मके कर्त्ताभिमान त्यागकर भगवानकी

सेवा करनी होगी। अन्यथा आत्मकल्याणका स्वर्ण अवसर पाकर भी हमें वञ्चित होना पड़ेगा।

प्र. ४८—क्या संन्यासी सजनेसे ही कल्याण हो जाएगा?

उ.—कभी नहीं। बाहरसे संन्यासीका वेष धारण करनेसे ही कल्याण नहीं हो सकता। वास्तविक संन्यासी तो वही है, जो गुरुको अपनी आत्माका देवतास्वरूप (भगवानका स्वरूप) जानकर उनकी सेवामें ही अपने जीवनको न्यौछावर कर दे। ऐसा गुरुनिष्ठ तथा नामनिष्ठ संन्यासी होनेपर ही कल्याण है। जो गुरुके आनुगत्यमें कृष्णकी सेवा नहीं करते तथा सर्वदा ही असत्संगमें लगे रहते हैं, उनका तो सर्वनाश ही होता है। वे कभी भी न तो भगवानको जान सकते हैं, न ही उनकी सेवा प्राप्त कर सकते हैं। इस जगतमें संन्यासी वेष धारणकर लोगोंको तो ठगा जा सकता है। परन्तु कर्मफल दाता भगवान सर्वज्ञ हैं, अतः उनसे बचना असम्भव है। जो साधुवेष धारणकर असत्संगमें लिप्त हैं, वे अपने हाथोंसे अपने ही पाँवोंमें कुल्हाड़ी मार रहे हैं। भगवानके ऊपर निर्भर न रहकर दूसरों पर निर्भर रहने पर केवल दुःख ही प्राप्त हो सकते हैं।

(क्रमशः)

लौल्यमपि मूल्यमेकलं

[लेक वाशिंगटन, न्यू वृन्दावनमें हरि कथा (२००२)—एक रिपोर्ट]
(वर्ष ४६, संख्या ६, पृष्ठ १४३ से आगे)

हमारे रूपानुग गुरुवर्गकी सम्पत्ति (धरोहर) की रक्षा हेतु एवं उसे भविष्यके वैष्णवभक्तोंको उपलब्ध करानेके लिए प्रतिदिन श्रीलमहाराजजी कई घंटे श्रीलरुपगोस्वामीजीके श्रीउज्ज्वल नीलमणि

ग्रन्थका अनुवाद करते एवं उसपर टीका लिखते। सायंकालमें वे श्रीलकृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत श्रीचैतन्य-चरितामृतसे श्रीरायरामानन्द संवाद पर प्रवचन करते। रायरामानन्द एवं महाप्रभुके

सवांदके माध्यमसे श्रीलमहाराजजीने पाँचमेंसे अन्तिम दो तथ्यों—‘जीवनका साध्य’ एवं ‘उसे प्राप्त करनेका साधन’ की व्याख्या की।

प्रथम दिन प्रवचनसे पूर्व एक शिष्यने ‘गुरुदेव कृपा करके’ भजन गाया। सुन्दर भजन श्रवणकर श्रीलमहाराजजी भाव-विभोर होकर बोले—“गुरुदेवके प्रति पूर्णरूपसे समर्पण ही इस भजनका भाव है। भक्तमें ऐसा ही भाव होना चाहिए। अन्तरङ्ग गुरु-निष्ठा (केवल बाह्य ही नहीं) भक्तिकी रीढ़ है। हमारे हृदयका इस भजनसे तदात्म्य हो जाना चाहिए। कपटी मत बनो। गुरुकी महिमाको एक सिद्धपुरुष (भक्त) ही समझ सकता है, बद्ध पुरुष नहीं।

फिर श्रीलमहाराजजीने दक्षिण-भारतमें गोदावरीके तटपर महाप्रभु एवं रायरामानन्दके मिलनका वर्णन किया। २४ वर्षके अतिसुन्दर एवं सुकुमार संन्यासी महाप्रभु नदीके तटपर चिन्तामें डूबे हुए थे। तभी वहाँ मन्त्र उच्चारण करते हुए हजारों ब्राह्मणोंसे एवं ऐश्वर्यमयी वस्तुओंसे घिरे हुए रायरामानन्द पधारे। अपनी पालकीसे उत्तरकर विनम्रता पूर्वक वे महाप्रभुके पास गए। कृष्णलीलामें वे विशाखा सखी हैं—आपसमें मिलने पर उन दोनोंका स्वाभाविक, पारस्परिक प्रेम उमड़ आया। दस दिनों तक प्रतिदिन रायरामानन्द महाप्रभुसे मिलने आये। महाप्रभुने उनसे पूछा—“जीवनका लक्ष्य क्या है एवं उसे प्राप्त करनेका साधन क्या है? कृपया पुराणों एवं श्रीमद्भागवतसे प्रमाण सहित समझाइए।”

सर्वप्रथम रायरामानन्द प्रभुने कहा कि वर्णाश्रम धर्मानुसार अपने कर्तव्योंका पालन करना भगवानको प्रसन्न करनेका सर्वोत्तम उपाय है। महाप्रभुने इसे बाह्य कहकर अस्वीकार कर दिया, क्योंकि वर्णाश्रम धर्म बद्धजीवके लिए केवल प्रारम्भिक सीढ़ी (अवस्था) मात्र है। शास्त्र विहित स्वधर्मका पालन न करनेसे पाप होता है व जीव अधोगतिको

प्राप्त होता है। वर्णाश्रम-धर्मपालनसे जीव स्वर्गलोक प्राप्त कर सकता है, कभी-कभी मुक्ति भी प्राप्त कर सकता है; परन्तु वर्णाश्रम आत्माका धर्म नहीं है। वह शरीरसे सम्बन्धित है एवं उसका तात्पर्य केवल इन्द्रिय-तृप्ति है। वर्णाश्रम- धर्ममें अनुकूल केवल यही है कि यदि कोई शुद्ध साधु गृहस्थके घर आए तो उसके संगसे सुकृति अर्जन कर घरके सदस्य भक्ति पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।

इसके बाद रायरामानन्दने कहा कि अपने कर्मोंके फलको श्रीकृष्णको अर्पण कर देनेसे ही सर्वोत्तम गति (मुक्ति) प्राप्त होती है—

यत्करोषि यदशनासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

(गीता ९/२७)

“हे अर्जुन! तुम्हारा एकमात्र कर्तव्य है, कि तुम जो कर्म करते हो, जो कुछ भोग करते हो, जो कुछ हवन करते हो, जो कुछ दान करते हो और जो कुछ तपस्या करते हो—वह सब कुछ मुझे अर्पण करो अर्थात् मेरी प्रीतिविधानके अनुकूल अनुष्ठान करो।”

श्रीलमहाराजजीने समझाया कि कर्मोंके फल बन्धनसे मुक्ति ही इस उपदेशका तात्पर्य है। यह जीवके अपने लाभके लिए है। वह यह नहीं सोचता कि कृष्ण किस वस्तुसे प्रसन्न होंगे। यदि हमारी सम्पूर्ण सम्पत्ति कृष्णकी है, तो हम कृष्णको क्या दान दे सकते हैं? अतः महाप्रभुने इसे भी बाह्य कहकर अस्वीकार कर दिया। अपनेको ही सर्वप्रिय करनेसे शेष सब स्वतः सर्वप्रिय हो जाता है।

इसके पश्चात् रायरामानन्दने श्रीमद् भगवद् गीताके १८ वें अध्यायका ६६ वाँ श्लोक उद्धृत किया।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

“हे अर्जुन! तुम लोकधर्म, वेदधर्म आदि

समस्त नैमित्तिक धर्मोंका परित्याग कर एकमात्र मेरी शरणमें आ जाओ। मैं तुम्हें धर्म-त्यागसे उत्पन्न सारे पापोंसे मुक्त कर दूँगा, अतः तुम शोक मत करो।”

श्रीलमहाराजजीने कहा “इस जगतमें हम अनेक व्यक्तियोंके ऋणी हैं (जैसे—देवता, साधु, अन्य जीव इत्यादि)। परन्तु इस श्लोकमें कृष्ण कहते हैं कि शरणागतिसे जीव अन्य सभी ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। किन्तु शरणागति शरीर और मनसे सम्बन्धित है, आत्मासे नहीं। शरणागति भक्तिका दरवाजा है—परन्तु स्वयं भक्ति नहीं है।

महाप्रभु एवं रायरामानन्दके संवादको श्रीलमहाराजजीने एक उपमासे समझाया। महाप्रभु प्रेम और कृपाके सागर हैं। उस सागरके वाष्पसे बने बादलके समान हैं—श्रीरायरामानन्द। स्वाति नक्षत्रकी बूँदें जब उस बादल (रायरामानन्द) से निकलकर सागरकी सीपों (oyster shells) पर पड़ती हैं, तब वे ही बूँदें मोती बन जाती हैं एवं कहा जाता है कि सागर (महाप्रभु) मोतियोंसे पूर्ण है। इसी प्रकार महाप्रभु स्वयं श्रीकृष्ण हैं जो राधिकाके (कृष्णके प्रति) प्रेमका आस्वादन करना चाहते हैं। रायरामानन्द राधिकाकी प्रिय अन्तरङ्ग सखी हैं, जो राधिकाके प्रेमकी महिमाको जानती हैं एवं महाप्रभुके रूपमें अवतरित कृष्णको प्रेमकी शिक्षा देती हैं।

इसके बाद भगवद् गीता (१८/५४) को उद्धृत करते हुए रायरामानन्दने ज्ञान-मिश्रा भक्तिको साधन बतलाया।

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

“ब्रह्ममें अवस्थित अर्थात् देहाभिमानशून्य प्रसन्नचित्त व्यक्ति अनित्य वस्तुके लिए शोक और अप्राप्त वस्तुके लिए इच्छा नहीं करते हैं। वे सब प्राणियोंमें समभाव रखते हुए मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त करते हैं।”

श्रीलमहाराजजीने कहा कि ब्रह्म-भूत पुरुषको स्वरूपभ्रम (मैं शरीर हूँ) एवं सांसारिक कामनाएँ नहीं होती। वह सबको ब्रह्म-स्वरूप देखता है और किसी वस्तुके लिए इच्छा या शोक नहीं करता। ऐसा पुरुष यदि उत्तम कोटिके वैष्णवके संगमें आए एवं भक्तों और श्रीमद्भागवतके प्रति अपराध न करे तो वह भक्तिमें शीघ्र ही उत्तरि कर सकता है, क्योंकि उसे सांसारिक वस्तुओंसे वैराग्य होता है। किसी भी अवस्थासे जीव भक्ति प्रारम्भ कर सकता है। मुक्त अवस्थामें होना आवश्यक नहीं है।

श्रीलमहाराजजीने श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरका एक उदाहरण बतलाया। यदि एक स्वर्ण-कणको उसी रंगके सरसोंके बीजोंके साथ मिलाकर आग लगा दी जाय तो बीज तो जल जाएँगे लेकिन स्वर्णकण नहीं। और यदि वेगसे हवा बहे तो भस्म उड़ जाएंगी लेकिन स्वर्ण-कण नहीं। इसी प्रकार यदि भक्तिदेवी, शास्त्र एवं वैष्णवोंके प्रति कोई अपराध न हो, तो उत्तमकोटिके वैष्णवों (जो अग्नि एवं पवन सदृश हैं) के संगसे जीव शीघ्र ही भक्तिमें उत्तरि कर सकता है। सार्वभौम भट्टाचार्य, प्रकाशानन्द सरस्वती एवं जैवधर्मके वैष्णव दास इसके उदाहरण हैं। परन्तु यदि साधु-संग न हो तो भक्तिमें प्रवेश असम्भव है और अन्ततः ऐसे जीवका पतन हो जाता है।

एक दिन प्रातः-भ्रमणके समय श्रील महाराजजीने समझाया कि भले ही महाप्रभुने भगवद्-गीताके अनेक श्लोकोंको बाह्य कहकर अस्वीकार कर दिया, लेकिन उन्होंने सम्पूर्ण गीताको बाह्य नहीं कहा। श्रीलमहाराजजीने फिर गीताका १८/६५ श्लोक उद्धृत किया—

मन्ना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।

मामेवैष्णविसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥

“अपने मनको (निरन्तर) मुझमें लगाओ, मेरे भक्त बनकर मेरी अर्चना करो और मुझे प्रणाम

करो। ऐसा करनेसे तुम निश्चित ही मुझे प्राप्त करोगे। मैं तुमसे यह प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तुम मेरे प्रिय मित्र हो।”

श्रीमहाराजजीने कहा—“सम्पूर्ण गीता इसीके लिए है और यही गोपियोंका भाव है।”

इसके बाद (सायंकाल प्रवचनमें) श्रील महाराजजीने ज्ञानशून्य भक्तिका वर्णन किया। रायरामानन्दने इसे साध्य नहीं अपितु साधन बतलाया। हमारी क्रियाओंका लक्ष्य क्या होना चाहिए, इसे श्रील रूप गोस्वामीने भक्तिरसामृत-सिन्धु (१/११) में समझाया है—

**अन्याभिलाषिताशून्यम् ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूलयेन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा॥**

“श्रीकृष्णको सुखी करनेकी स्पृहाके अतिरिक्त समस्त प्रकारकी अभिलाषाओंसे रहित, ज्ञानकर्मादिके द्वारा अनावृत, एकमात्र श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिए ही कायिक, मानसिक और वाचिक समस्त चेष्टाओं और भावके द्वारा तैल-धारावत् अविच्छिन्न गतिसे जो कृष्णकी सेवा की जाती है, उसे (उन समस्त चेष्टाओंको) उत्तमा भक्ति कहते हैं।”

ज्ञानशून्य भक्ति विशुद्ध भक्तिका पहला सोपान है। इसके द्वारा वैकुण्ठकी प्राप्ति हो सकती है। ज्ञानी भक्त हैं—भीष्मदेव एवं प्रह्लाद महाराज। परन्तु महाप्रभुने इसे स्वीकार नहीं किया क्योंकि ज्ञानी भक्त मानता है कि कृष्ण सर्वेश्वर, आप्तकाम एवं आत्माराम हैं तथा उन्हें किसी सेवाकी आवश्यकता नहीं है। इसके बाद श्रील महाराजजीने श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके चतुर्दश अध्यायके तृतीय श्लोकका वर्णन किया—

**ज्ञाने प्रयासमुपादस्य नमन्त एव
जीवन्ति सन्तुखरितां भवदीयवार्ताम्।
स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभि-
र्यं प्रायशोऽजित जितोऽप्यसि तैलिलोक्याम्॥**

“जो ज्ञानके लिए कुछ प्रयत्न न कर कायमनोवाक्यसे साधुसुखसे निःसृत आपकी

लीला-कथाओंका सत्कार कर जीवन धारण करते हैं, उनके द्वारा कोई कर्म न करने पर भी आप अजित होकर उनके द्वारा जीत लिए जाते हैं। आप उनके प्रेमके अधीन हो जाते हैं।”

श्रीलमहाराजने समझाया कि जैसे जीव भक्ति पथ पर अग्रसर होता है तो अन्ततः उसे ज्ञान हेतु प्रयास एवं कृष्ण ईश्वर हैं और मैं उनका अणु-अंश हूँ—इस विचारका भी त्याग करना होगा। अपने स्थानमें स्थिर होकर शुद्ध भक्तोंके मुखारविन्दसे कृष्णकी मधुर रस लीलाका श्रवण करना चाहिए जिससे उनके आनुगत्य व निर्देशमें कृष्ण सेवाका लोभ हृदयमें उत्पन्न हो। ‘हे कृष्ण मेरी सेवा स्वीकार कीजिए’—यह भाव जब भक्तके हृदयमें तीव्र हो जाता है, तब आत्माराम होने पर भी कृष्णके अन्दर एक प्यास उत्पन्न होती है और वे भक्तके प्रेमका आस्वादन करते हैं। रायरामानन्द एवं महाप्रभुके बीच शेष संवाद रागानुगा भक्तिके बिषयमें हुआ। श्रीलमहाराजजीने श्रीरूप गोस्वामीकी पद्यावलीसे यह श्लोक उद्घृत किया—

**कृष्णभक्तिरसभाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौत्यमपि मूल्यमेकलं
जन्मकोटिसुकृतैर्न लभ्यते॥**

“करोड़ों जन्मोंके पुण्यसे भी विशुद्ध कृष्णभक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। उसे प्राप्त करनेका केवल एक ही मूल्य है—भक्ति पानेका तीव्र लोभ। यदि वह कहीं पर उपलब्ध हो, तो बिना विलम्ब किए उसे खरीद लो।”

श्रीलमहाराजजीने कहा कि स्वामीजी कहते थे कि जब उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय कृष्ण भावनामृत संघ (ISKCON) की स्थापना की, तब उन्होंने ‘कृष्णभावना’ शब्द इसी श्लोकसे लिया था। श्रीमहाराजजीने कहा कि शुद्ध कृष्ण-भक्ति इस जगतमें दुर्लभ है। पूर्व जन्मोंकी अनेकानेक सुकृतियोंसे साधु-संग प्राप्त होता है एवं साधु-संगसे

भक्ति मिलती है। परन्तु यह लोभ (लौल्यम्) और भी अधिक दुर्लभ है। ऐसे रसिक तत्त्ववित् वैष्णव जो कृष्णकी मधुर लीलाओंके रस पानमें ढूबे हुए हैं, केवल उनसे श्रवण करनेसे ही ऐसा लोभ हृदयमें उत्पन्न हो सकता है। परन्तु कृष्णके लिए यह लोभ और प्रेम तभी जागृत होगा जब पहले यह गुरु-वैष्णवोंके लिए हो। फिर श्रीलमहाराज-जीने गोपी-गीत (श्रीमद्भागवत १०/३१/९) से एक श्लोक उद्धृत किया—

तव कथामृतं तपतजीवनं
कविभिरीडितं कल्मषापहम्।
श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं
भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

“हे कृष्ण! संसारमे जो आपकी उन लीलाकथाओंका गान करते हैं, जो कि ताप-दग्ध व्यक्तियोंके लिए जीवनस्वरूप, ब्रह्मा-नारदादि द्वारा आराधित, सर्वपापनाशक, श्रवण मात्रसे परममङ्गलप्रद, सर्वशक्तिसमन्वित और सर्वव्यापक है, वे ही सर्वश्रेष्ठ वदान्य हैं।”

श्रीलमहाराजजीने इस श्लोकका एक दूसरा अर्थ समझाया। ऊपर दिया गया श्लोकका भाव चन्द्रावलीके यूथ (दल) की गोपियोंका है। परन्तु राधिकाजीके यूथकी गोपियाँ इस श्लोकका गान दूसरे भावसे करती हैं। उनका भाव है—“हे कृष्ण! तुम्हारी कथा श्रवण करनेसे हमारा जीवन नष्ट हो गया है। कोई इन विषमयी कथाओंको न सुने। अपने परिवारमें ही सुखी व्यक्तिको कृष्णको भूल जाना चाहिए। नहीं तो उसे दुःख और अश्रु ही प्राप्त होंगे। तुम्हारी लीलाओंका श्रवण कर हमारा जीवन नष्ट हो गया है। हमने तुम्हें अपना प्रेम और हृदय दिया, और हमारा जीवन दुःखोंसे भर गया। परन्तु समस्या यह है कि हम अपना हृदय वापस भी नहीं ले सकतीं।”

तत्पश्चात् श्रीलमहाराजजीने कहा कि यदि

रसिक वैष्णवोंसे कृष्णकी माधुर्यमयी लीलाएँ श्रवण करें तो हृदयमें तीव्र लोभ उत्पन्न हो सकता है। पूर्वजन्मकी सुकृतियाँ एवं वैष्णव-संगका सौभाग्य प्राप्त होनेसे ऐसा उन्नत लोभ हृदयमें उत्पन्न हो सकता है। तब साधक स्वजातीय भाव वाले ब्रजबासियोंका अनुगमन करते हुए भजन करता है। यदि यह लोभ प्राप्त करनेका कोई भी अवसर मिले तो वहाँ तुरन्त जाओ और उसे किसी भी मूल्यपर खरीद लो। यदि लोभ नहीं है, तो महाप्रभुकी परम्परामें वैधी भक्तिका पालन करो। निरन्तर अर्चन करनेसे गुरु और कृष्ण कृपा करेंगे, एवं वैसा प्रेम प्रदान करेंगे। और यदि यह दुर्लभ लोभ प्राप्त हो जाए तो बड़ी सावधानीसे हृदयमें उसे रखो, अन्यथा खुले किवाड़ पर पड़े कर्पूरकी तरह वह लुप्त हो जाएगा। उद्धवका उदाहरण देकर श्रीमहाराजजीने समझाया कि कैसे यह लोभ उत्पन्न हो सकता है। जब उद्धव ब्रजमें गए एवं गोपियोंके प्रेम और विरह भावको देखा तो अचम्भित होकर उन्होंने प्रार्थना की कि एक दिन मैं भी ब्रजमें एक तृण अथवा एक गोपीके चरणोंकी रजका एक कण बनूँ। वह एक गोपी कौन हैं—श्रीमती राधिका।

श्रीलमहाराजने कहा कि महाप्रभु सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने और श्रवण करनेकी प्रार्थना की। तब रायरामानन्दने दास्य प्रेमका वर्णन किया। उन्होंने भक्ति रसामृत सिन्धुमें वर्णित चार प्रकारका दास्य प्रेम (अधिकृत, आश्रित, पारिषद एवं अनुगामी) समझाया। ब्रजके दास्य सेवकों जैसे—पत्रक एवं रक्तकके अन्तरंग भावको अनुगामी दास्य कहते हैं। परन्तु ब्रजमें शुद्ध दास्य नहीं है। वहाँ दास्य भाव सख्य अथवा वात्सल्य भावसे मिलित (mixed) होता है। (चेतावनी देते हुए) महाराजजीने कहा कि हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि दास्य-भाव निम्न (inferior) है। स्वरूपतः सभी

पहले दास अथवा दासी हैं—ब्रह्मा और राधिका भी। दास्य-भाव श्रवण करने पर महाप्रभु बोले—“यह ठीक है, परन्तु कृपया मुझे और बताओ।”

श्रीलमहाराजजीके शेष-प्रवचन तीन सर्वोत्तम ब्रज भावों—सख्य, वात्सल्य, एवं माधुर्यसे सम्बन्धित थे। उन्होंने कहा कि स्व-रसमें स्थित भक्त समझता है कि उसीकी सेवा (भाव) सर्वोत्तम है। जब महाप्रभुने सख्य-भावके बिषयमें सुना तब पहली बार वे बोले—“यह उत्तम है।” श्रीलमहाराजजीने चार प्रकारके सखाओंका वर्णन किया—सुहृत (कृष्णसे कुछ अधिक आयु वाले), सखा (कृष्णकी सम आयु वाले), प्रिय सखा (अन्तरंग भाव वाले) एवं प्रियनर्म सखा (बहुत अन्तरंग भाव वाले एवं कृष्ण और गोपियोंके प्रेमलीलाको समझने वाले)। महाराजजीने कहा कि प्रकट-लीला एवं अप्रकट-लीला एक समान हाने पर भी प्रकट-लीलामें कुछ बिशेषता है। योगमायाके प्रबन्धसे साधक, देवता एवं असुर भी प्रकट-लीलामें भाग ले सकते हैं। परन्तु केवल नित्य-सिद्ध और साधन-सिद्ध ही अप्रकट-लीलामें भाग ले सकते हैं। सख्यसे उत्तम है वात्सल्य। श्रीमद्भागवतका एक श्लोक (१०/८/४६) श्रीलमहाराजजीने वर्णन किया—

**नन्दः किमकरोद् ब्रह्मन् श्रेय एवं महोदयम्।
यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनम् हरिः॥**

यशोदा मैयाके महान भाग्यका श्रवण करने पर परीक्षित महाराजजीने शुकदेव गोस्वामीजीसे पूछा—“हे श्रेष्ठ ब्राह्मण! भगवानने माँ यशोदाका स्तन पान किया। उन्होंने एवं नन्द महाराजने पूर्व जन्मोंमें ऐसे कौनसे पुण्य किए थे कि उन्हें ऐसा उत्तर प्रेम (सौभाग्य) प्राप्त हुआ?”

श्रीलमहाराजजीने समझाया कि वास्तवमें कृष्णको पुत्र रूपमें प्राप्त करनेके लिए नन्दमहाराज और

माँ यशोदाने कोई तपस्या नहीं की। वे तो कृष्णके नित्य परिकर हैं और जैसे कृष्ण करोड़ों रूपोंमें अपना विस्तार करते हैं, उसी प्रकार (उनकी सेवा हेतु) उनके नित्य-परिकर भी अनेक रूपोंमें विस्तार करते हैं। माँ यशोदाका सौभाग्य अचिन्त्य है एवं ब्रह्मा, शिव और लक्ष्मीके भाग्यसे कई गुणा अधिक है। श्रीलमहाराजजीने वर्णन किया कि इन तीनोंने ब्रज-लीलामें प्रवेश करनेका प्रयत्न किया, परन्तु असमर्थ रहे। ब्रजकी गापीके गर्भसे जन्म लेकर और रागात्मिक परिकरोंके आनुगत्यमें रहकर ही ब्रज-लीलामें प्रवेश किया जा सकता है, अन्यथा नहीं।

अपने आखिरी प्रवचनके अन्तमें श्रीलमहाराजजीने सभी एकत्रित भक्तोंको धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि वे अब अपनी विदेश यात्राएँ कम करना चाहते हैं, किन्तु यदि इतने सारे भक्त हरिकथा श्रवण करने हेतु उत्सुक होंगे या एकत्रित होंगे तो उन्हें अवश्य आना पड़ेगा। सबको आशीर्वाद देते हुए महाराजजीने सभी भक्तोंको कार्तिक माहमें ब्रज-मण्डल परिक्रमामें आनेके लिए निमन्त्रण दिया। पचाससे भी अधिक भक्तोंने श्रील महाराजजीसे हरिनाम और दीक्षा प्राप्त की। अन्तमें एक बड़ा यज्ञ हुआ। जून २३ के प्रातःकालमें श्रीलमहाराजजी भक्तोंसे विदा लेकर अपनी यूरोप यात्राके लिए निकल पड़े। विरहका दुःख होने पर भी भक्तोंको महाराजजी द्वारा दिए अनमोल रत्नोंका सहारा था। यदि गुरुदेवकी आज्ञा पालन व निर्देशानुसार भजन करेंगे तो हमारी भक्ति बढ़ेगी—यह समझ कर वे आशाबद्ध थे कि महाराजजीसे अगले दिव्य मिलन तक वे अपना जीवन रख पाएँगे। ४

(संग्रहक—श्रीब्रजेन्द्रनन्दन दास, अनुवादक—श्रीविष्णु दास)

श्रीगौराज्ञ-सुधा

(वर्ष ४६, संख्या ६, पृष्ठ १४० से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

जगाइ-माधाइ का उद्धार देखकर

यमराजकी मूर्छा

श्रीगौरसुन्दरकी भुवनमोहिनी लीलाओंका दर्शनके लिए तथा उनकी सेवा करनेके लिए ब्रह्मा, शिव, यम, नारद आदि सभी देवता एवं सिद्ध ऋषि-मुनिवृन्द नित्यप्रति प्रातःकाल नवद्वीपमें उपस्थित होते। सारा दिन प्रभु जितनी भी लीलाएँ करते वे सभी अलक्षित रूप (गुप्त रूप) से उनका दर्शन कर आनन्दित होते थे। सन्ध्याके समय सभी लोग उन-उन लीलाओंका एवं श्रीगौरसुन्दरकी महिमाका गान करते हुए वापस अपने-अपने स्थानोंको चले जाते थे। इस प्रकार प्रतिदिन अनेक प्रकारकी लीलाएँ होती थी, जिनका वे सभी दर्शन करते थे। प्रभुकी जगाइ-माधाइ उद्धार लीलाका दर्शनकर वे सभी लोग बहुत विस्मित हो गए। उन दो ब्रह्मराक्षसोंके ऊपर प्रभुकी कृपा देखकर सभी देवता लोग आनन्दसे रोते-रोते नाचते हुए कहने लगे—“अहो! श्रीगौरसुन्दरकी करुणा अपूर्व है। अभी तक हमारे हृदयमें संशय था कि क्या कभी प्रभु हम पर भी कृपा करेंगे। क्योंकि हम भलीभाँति जानते हैं कि हमारे अन्दर लेशमात्र भी योग्यता नहीं है। परन्तु इन दो पापियोंके उद्धारको देखकर हमें पूर्ण विश्वास हो गया है कि हमारे अयोग्य होने पर भी प्रभु अवश्य ही हम पर कृपा करेंगे। इस प्रकार वे आनन्दसे विभोर होकर प्रभुका गुणगान करते हुए अपने-अपने रथोंसे वापस जाने लगे। उसी समय परम वैष्णव यमराजने अपने अपने सेवक (लेखक) चित्रगुप्तसे पूछा—“जरा पढ़कर बताओ कि इनके कितने पाप हैं।” यह सुनकर चित्रगुप्त बोले—“हे धर्मराज!

यदि मेरे जैसे एक लाख लोग भी इनके पापोंको बताएँ तथा आप एक लाख कानोंसे उन्हें श्रवण करें, तो भी इनके पाप समाप्त नहीं हो सकते। जब ये दोनों पापकर्म करते थे, तो उन पापोंको एक नहीं बहुत-से कायस्थ (चित्रगुप्तके अधीन अन्य-अन्य लेखक) लिखते थे। उस समय उन पापोंको देखकर हम सभी लोगोंको रोना आ जाता था कि ये दोनों इतने पापोंका फल कैसे भोगेंगे? परन्तु महा आश्चर्यकी बात है कि श्रीगौरसुन्दरने एक ही क्षणमें पर्वतके समान पापोंके ढेरको जलाकर भस्म कर दिया।” यमराज परम वैष्णव हैं तथा बारह महाभागवतोंमेंसे एक हैं। वे भागवत-धर्म (वैष्णव-धर्म) की महिमाको भलीभाँति जानते हैं। जब उन्होंने चित्रगुप्तसे इन सब बातोंको श्रवण किया तो वे कृष्णके प्रेममें आविष्ट हो गए तथा मूर्छित होकर अपने रथमें ही गिर पड़े। उन्हें मूर्छित देखकर चित्रगुप्त आदि उनके परिकर उन्हें पकड़कर जोर-जोरसे क्रन्दन करने लगे। सभी देवताओंके रथ तो वापस जाने लगे, परन्तु यमराजजीका रथ वहीं पर रह गया। यह देखकर सभी देवता लोग रुक गए तथा जब उन्होंने उनके रथके पास जाकर देखा तो धर्मराजको मूर्छित देखकर वे आश्चर्यचिकित होकर विचार करने लगे कि आखिर ये मूर्छित क्यों हो गए। तब चित्रगुप्तने उन्हें सारा विवरण सुनाया। यह सुनकर ब्रह्मा, शिव, नारद आदि समझ गए कि ये इस समय कृष्णप्रेममें आविष्ट हैं। अतः वे सभी लोग मिलकर जोर-जोरसे कीर्तन करने लगे। कुछ ही क्षण पश्चात् कीर्तनकी ध्वनिको सुनकर यम महाराजकी मूर्छा

दूर हो गई तथा वे खड़े होकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे। यह देखकर ब्रह्मा, शिव आदि भी भावविभोर होकर नृत्य करने लगे। कुछ समय पश्यात् जब उनका आवेश कुछ शान्त हुआ तो, सभी अपने-अपने रथोंमें सवार होकर प्रभुका गुणगान करते हुए अपने-अपने स्थलको चले गए।

जगाइ-माधाइका पश्चात्ताप

प्रभुकी अहैतुकी कृपासे अब जगाइ-माधाइ परम वैष्णवके रूपमें नवद्वीपमें प्रसिद्ध हो गए। वे प्रतिदिन प्रातःकाल गंगास्नानकर निर्जनमें बैठकर दो लाख नाम जपते थे। वे अपनेको धिक्कारते हुए सदा-सर्वदा रोते-रोते कृष्ण-कृष्ण कहते थे। कृष्णभक्तिका रस पान करनेके कारण उन्हें सारा जगत भगवानका दास दिखाई देने लगा। जब वे पूर्वमें अपने द्वारा किए गए पापोंको स्मरण करते थे, तो रोते-रोते मूर्छ्छत होकर गिर पड़ते थे। जब होशमें आते तो 'हा गौरसुन्दर! हा नित्यानन्द!' कहकर आर्तस्वरसे क्रन्दन करने लगते। उन्हें तो अब खाने-पीनेका होश नहीं था। बस, वे सब समय श्रीगौरसुन्दरका स्मरणकर रोते रहते थे। श्रीगौरसुन्दर अपने भक्तोंके साथ उन्हें सर्वदा ही सान्त्वना प्रदान करते रहते थे। प्रभु स्वयं आकर उन्हें समझा-बुझाकर भोजन कराते थे। परन्तु इतना होनेपर भी वे अपने पापोंको भूल नहीं पा रहे थे। विशेष रूपसे माधाइ अपने द्वारा नित्यानन्दप्रभुके श्रीचरणोंमें किए गए अपराधको स्मरणकर अपना सिर पीटते हुए तथा अपनेको धिक्कार देते हुए रोते-रोते हरिनाम करता रहता था। यद्यपि नित्यानन्दजीने माधाइके अपराधको ग्रहण नहीं किया, परन्तु तो भी माधाइको शान्ति नहीं मिल रही थी। उसे पुनः पुनः वही भयानक दूश्य दिखाई पड़ता था, जिससे वह व्याकुल हो जाता था। अहो! मैंने नित्यानन्दजीके सिरसे रक्तकी धारा बहाई, मेरे जैसा पापी आज तक नहीं हुआ और न होगा। ऐसा कहकर रोते-रोते अपने दोनों

हाथोंसे कभी अपना सिर पीटता, तो कभी अपनी छाती पीटता। कभी-कभी तो वह 'हा नित्यानन्द!' कहकर मूर्छ्छत ही हो जाता था।

उधर नित्यानन्दप्रभु बाल्यभावमें आविष्ट होकर सारे नवद्वीपमें यहाँ-वहाँ सर्वत्र विचरण करते हुए अनेक प्रकारकी लीलाएँ कर रहे थे। एक दिन नित्यानन्दजीको अकेलेमें देखकर दोनों भाई उनके श्रीचरणोंमें गिर पड़े तथा अपने आँसुओंसे उनके श्रीचरणोंको धोते हुए कहने लगे—“हे प्रभो! आप विष्णुरूपसे जगतका पालन करते हैं। आप अपने फन पर अनन्त ब्रह्माण्डोंको धारण करते हैं। आपका शरीर साक्षात् भक्तिस्वरूप है। शिव तथा पार्वती भी सर्वदा ही आपका स्मरणकर आनन्दविभोर रहते हैं। आपकी कृपासे ही गरुड़ महाबलशाली होकर कृष्णको वहन करते (ढोते) हैं। आप अपने अनन्त मुखोंसे निरन्तर कृष्णका गुण गान करते हैं। आप समस्त वैष्णवोंकी रक्षा करते हैं तथा वैष्णव-धर्मकी शिक्षा प्रदान करते हैं। आपकी कृपासे ही ब्रह्मा सृष्टि करते हैं तथा रेवती एवं वारुणी सदा-सर्वदा आपकी सेवामें नियुक्त रहती हैं। आपके क्रोधसे ही रुद्रका अवतार होता है तथा उसीके द्वारा आप सृष्टिका संहार करते हैं। आपका श्रीअङ्ग अति कोमल है, जिस पर कृष्ण आनन्दपूर्वक शयन करते हैं। (नित्यानन्द अथवा बलदेवजीके ही एक छोटेसे अंश शोषनागके ऊपर कृष्णके ही विलास नारायण शयन करते हैं।) आपके ऐसे सुकोमल श्रीअङ्ग पर मैंने निष्ठुरतापूर्वक प्रहार कर रक्तकी धारा बहाई, अतः मुझसे बड़ा पापी इस जगतमें और कोई नहीं हो सकता। पार्वतीको साथ लेकर शिव अपने प्राणोंसे भी बढ़कर जिनकी पूजा करते हैं, जिनका स्मरण करने मात्रसे ही भयङ्कर संसार बन्धन छिन-भिन्न हो जाता है, जिनकी सेवाके फलसे ही चित्रकेतु महाराज वैष्णव- शिरोमणि होकर आनन्दपूर्वक सर्वत्र ही विचरण कर रहे हैं,

जिनकी सेवाके कारण ही नैमिषारण्यमें सौनक आदि ऋषियोंके समस्त प्रकारके बन्धन नष्ट हो गए, जिनकी अवज्ञाके कारण ही इन्द्रजीत (मेघनाद) विनष्ट हो गया था, जिनकी अवज्ञाके कारण ही द्विविदका विनाश हुआ, (रामचन्द्रजीकी सेनामें यह द्विविद नामक बन्दर बड़ा ही बीर एवं शक्तिशाली था। लङ्ग-युद्धके समय इसने बड़े-बड़े पराक्रमी राक्षसोंका संहार किया, परन्तु यह सर्वदा ही लक्ष्मणसे ईर्ष्या करता था, जिस अपराधके फलस्वरूप रामसेवक होते हुए भी इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी तथा यह दुष्टोंका संग करने लगा। द्वापर युगमें जब बलदेवजी रैवतक पर्वत पर रमणियोंके साथ क्रीड़ा कर रहे थे, तो यह दुष्ट उस समय भी बलदेवजी एवं रमणियोंको दिखाकर अश्लीलता करने लगा, जिससे बलदेव प्रभु क्रोधित हो गए तथा उन्होंने अपने हलसे उसे खींच लिया तथा अपने मूषलके प्रहारसे उसका संहार कर डाला।) ब्रह्माके समान दीर्घ आयु पाकर भी जिनके आगमन पर मात्र खड़े न होनेके कारण ही सूत विनष्ट हो गए, ऐसे आपके श्रीचरणोंमें मैंने घोर अपराध किया। अतः मेरी क्या दुर्गति होगी? ऐसा कहते हुए उसने प्रभु नित्यानन्दके चरणोंको अपनी छातीसे लगा लिया तथा रोते-रोते प्रार्थना करने लगा—“हे प्रभो! मैं एक भयङ्कर चण्डाल हूँ। आप कृपापूर्वक मेरे अपराधोंको क्षमा करें।” माधाइकी ऐसी दीनता एवं व्याकुलता देखकर नित्यानन्दप्रभु हँसते-हँसते कहने लगे—“माधाइ! उठो, उठो। तुम तो मेरे अति प्रिय सेवक हो। तुम्हारे शरीरमें तो मेरा आविर्भाव हो गया है। जिस प्रकार अबोध पुत्र यदि पिता पर प्रहार करता है, तो पिताको कष्ट नहीं होता, बल्कि उसे सुख ही मिलता है, उसी प्रकार तुम्हारा प्रहार भी मुझे कष्टकर नहीं लगा। मैं घोषणा करता हूँ कि तुमने जो मेरी स्तुति की, यदि उसे कोई सुनेगा तो वह अवश्य ही मेरा भक्त हो

जाएगा। और फिर तो तुम तो मेरे प्रभुके कृपापात्र हो। मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि कोई मेरे प्रभु श्रीगौरसुन्दरका भजन करेगा तो मैं युग्युगान्तर तक उसकी रक्षा करूँगा। परन्तु जो दुर्बुद्धि मेरे प्रभुका भजन न कर मेरा भजन करता है, तो उससे मुझे अथाह कष्ट होता है, जिसके फलस्वरूप वह जन्मजन्मान्तर तक घोर कष्ट भोग करता है।” ऐसा कहकर उन्होंने आनन्दित होकर माधाइको अपने हृदयसे लगा लिया, जिससे माधाइके सभी दुःख दूर हो गए। पुनः माधाइ प्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर कहने लगा—“हे प्रभो! आपके चरणकम्लोंमें मेरा और एक निवेदन है। आप तो सभी जीवोंके हृदयमें निवास करते हैं। परन्तु मैंने कितने ही जीवोंको कष्ट पहुँचाया है। अब मैं उन सभीके चरणोंमें गिरकर उनसे क्षमा माँगना चाहता हूँ। परन्तु मैंने किस-किसको कष्ट पहुँचाया है, मुझे तो उनकी पहचान ही नहीं है। अतः मैं कैसे उनसे क्षमा माँग सकता हूँ, आप कृपाकर इस विषयमें मुझे कुछ उपदेश प्रदान करें।”

प्रभु—“माधाइ! इसका एक ही उपाय है कि तुम पतितपावनी गंगाके किनारे एक घाटका निर्माण करो, जहाँ पर सभी लोग आनन्दपूर्वक गंगास्नान कर सकेंगे। उस घाट पर जितने भी लोग स्नान करने आएँगे, तुम सभीसे दीनतापूर्वक हाथ जोड़कर क्षमा माँगना। इस प्रकार सभी लोग तुम्हें क्षमा कर देंगे।”

यह सुनकर माधाइ तुरन्त प्रभुको प्रणाम कर तथा उनकी परिक्रमा कर ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहते हुए गंगाकी ओर चल पड़ा। वहाँ जाकर उसने स्वयं अपने हाथोंसे घाट बनाना आरम्भ कर दिया। यह देखकर सभी लोगोंको बहुत आश्चर्य होने लगा। माधाइ सभीके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते कहने लगा—“मैंने यदि जान अथवा अनजानमें आपलोगोंके श्रीचरणोंमें कोई अपराध किया हो तो आप कृपापूर्वक मेरे अपराधोंको क्षमा करेंगे।”

माधाइकी दीनता एवं उसके करुण क्रन्दनको देखकर वहाँ पर उपस्थित सभी लोगोंका हृदय भी द्रवित हो गया तथा उनकी आँखोंसे भी अशुधारा प्रवाहित होने लगी। वे भी 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर रोने लगे। इस प्रकार सर्वत्र ही प्रचार हो गया कि निमाई-पण्डितने जगाइ-माधाइ जैसे ब्रह्मराक्षसोंका उद्धार कर दिया। यह सुनकर सभी आश्चर्यचकित होकर कहने लगे—“यह निमाई पण्डित कोई मनुष्य नहीं है। क्योंकि जगाइ-माधाइ जैसे महापापियोंका उद्धार करनेकी शक्ति केवल कृष्ण एवं कृष्णके भक्तोंमें ही सम्भव है। आजतक जो श्रीगौरसुन्दरकी

महिमाको न जानकर उनकी निन्दा किया करते थे, आज वे ही इन दोनोंका उद्धार देखकर प्रभुका गुणगान करने लगे।

अब माधाइ कठोर तपस्या करने लगा। सर्वत्र ही वह एक नैष्ठिक ब्रह्मचारीके रूपमें प्रसिद्ध हो गया। वह सारा दिन गंगाके घाट पर ही बैठकर भजन करता था तथा अपने हाथोंसे गंगाके घाटकी सफाई करता रहता था। आज भी श्रीगौरसुन्दरकी कृपाका सूचक वह घाट 'माधाइका घाट' के नामसे विख्यात है।

(क्रमशः)

पानीमें उतरे बिना तैरना सीखनेकी इच्छा

एक बालक था जिसकी माँ उसको कभी भी नदीमें स्नानके लिए नहीं जाने देती थी। वह सोचती थी कि कहीं नदीमें स्नान करते समय उसका पुत्र डूब न जाए। इसीके कारण वह ऐसा करती थी। एक दिन पास ही घरका एक वृद्ध व्यक्ति जो यह सब बात जानता था, उस बालककी मातासे बोला यदि बालकको नदीमें नहीं जाने दोगी तो वह कभी भी तैरना नहीं सीख पाएगा और यदि तैरना नहीं सीखेगा तो भविष्यमें कभी नावसे नदी पार करते समय संयोगवश नाव डूब जाए तो निश्चित ही उसे अपने प्राण गँवाने पड़ेंगे। इसलिए उसको तैरना सीखनेकी शिक्षा देना बहुत जरूरी है।

यह सुनकर वह बालक उस वृद्ध व्यक्तिको बोला जिससे कि मुझे भविष्यमें नदीमें डूबकर प्राण न गँवाने पड़े, इसलिए मेरी भी तैरना सीखनेकी विशेष इच्छा है। किन्तु पानीमें उतरे बिना तैरना सीखनेकी आप यदि कोई कला जानते हैं तो कृपा कर मुझे बताइए।

बालककी बात सुनकर उसकी माता मन ही मन उसकी बुद्धिकी प्रशंसा करने लगी। यह सुनकर वह वृद्ध व्यक्ति वहाँसे तुरन्त चला गया।

इस उपाख्यानके माध्यमसे श्रील भक्तिसिद्धान्त

सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद' वह बताना चाहते हैं कि संसारके लोग यह सोचकर कि हरिभजन नहीं करनेसे बादमें बहुत कष्ट उठाना पड़ेगा और नरकमें जाना पड़ेगा, इससे भविष्यमें होनेवाले कष्टके हाथोंसे बचनेकी इच्छा करते हैं। किन्तु गुरु-गृहमें रहकर कृष्णदीक्षा-शिक्षा रूपी हरिभजनकी वैधी-प्रणाली ग्रहणकर हरिभजन करनेके लिए प्रस्तुत नहीं होते हैं। उसमें उनको आशङ्का, भय, सङ्कोच, निरुत्साह आदि नहीं आने देते। वे लोग जलमें न उतरकर तैरना सीखनेकी इच्छा रखनेवाले उपरोक्त बालककी तरह केवल कल्पनामें ही रहते हैं। जैसे तैरना सीखनेके लिए पानीमें उतरनेका साहस करना पड़ेगा, उसी प्रकार हरिभजन करनेके लिए वास्तविक साधुकी खोज, सदगुरु-चरणश्रय और साधुसंगमें रहना पड़ेगा। उसमें यदि नाना प्रकारके बाधा-विघ्न आते हुए देखकर भय वा संशय करके पहलेसे ही हाथ-पैर समेट कर बैठा रहा जाए तो किसी भी दिन हरिभजन सम्भव नहीं होगा। हरिभजनके बिना मनुष्य-जीवन मृत्युके बराबर है। भगवान श्रीकृष्णने उद्धवसे कहा है—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं

पुमान् भवाव्यि न तरेत् स आत्महा॥

(श्रीमद्भा. ११/२०/१७)

हे उद्घव ! यह मनुष्य शरीर समस्त शुभफलोंकी प्राप्तिका मूल है और अत्यन्त दुर्लभ होने पर भी अनायास सुलभ हो गया है। इस संसार-सागरसे पार जानेके लिए यह एक सुदृढ़ नौकाके समान है। शरण-ग्रहण मात्रसे ही गुरुदेव इसके केवट

बनकर पतवारका संचालन करने लगते हैं और स्मरण मात्रसे ही मैं अनुकूल वायुके रूपमें इसे लक्ष्यकी ओर बढ़ाने लगता हूँ। इतनी सुविधा होने पर भी जो इस शरीरको पाकर संसार सागरसे पार होनेकी चेष्टा नहीं करता, वह आत्मघाती है। ४

(श्रीलप्रभुपादके उपाख्यान-उपदेश से,

अनुवादक—श्रीहरिदास ब्रह्मचारी)

विविध संवाद

श्रील रूप गोस्वामीकी तिरोभाव तिथि, झूलनोत्सव तथा रक्षाबन्धन

श्रावण शुक्ला द्वादशी दिनांक १९ अगस्तको श्रीगोड़ीय वेदान्त समितिके उपाध्यक्ष श्रीश्रीमद्-भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजके संचालनमें गोड़ीय आचार्यप्रवर श्रीलरूपगोस्वामीकी विरह तिथि अनुष्ठित हुई। प्रातःकाल श्रीलमहाराजजी भक्तोंके साथ श्रीराधामोदर मन्दिरके परिसरमें स्थित श्रीलरूपगोस्वामीके समाधिस्थल पर पधारे, जहाँ उन्होंने सविधि श्रीलरूपगोस्वामीकी पूजा-अर्चना की। वहाँ श्रीलरूपगोस्वामीके अप्राकृत जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया कि किस प्रकार उन्होंने श्रीचैतन्य महाप्रभुके मनोऽभीष्टकी स्थापना की। आज तक प्रेमरसका सिद्धान्त जगतमें प्रकाशित नहीं था, किन्तु श्रीचैतन्य महाप्रभुकी कृपा द्वारा इन्होंने इसे शास्त्रीय रूप प्रदान कर प्रतिष्ठित किया। इतना होने पर भी उन्होंने दीनतापूर्वक यही कहा कि श्रीमन्महाप्रभुकी कृपासे अप्राकृत रससिन्धुकी एक बूँदका मैने अनुभवकर जगतवालोंको प्रदान किया।

सन्ध्या कालमें श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठमें श्रीश्रीराधाकृष्णको झूलनमें पधरानेके पश्चात विद्वत् गोष्ठीका शुभारम्भ हुआ। सभाके प्रारम्भमें श्रीलमहाराजजीने विद्वद्वरेण्य श्रीअतुलकृष्ण गोस्वामीजीको सभापतिके रूपमें वरण किया और माल्यार्पण किया। प्रधान अतिथिके रूपमें श्रीमद् अच्युतभट्ट गोस्वामी तथा विशेष अतिथिके रूपमें

श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीका वरण किया गया। सबको माल्यार्पण करनेके बाद आचार्य प्राणगोपाल शास्त्रीजी द्वारा मङ्गलाचरणका गान हुआ। सभाके प्रारम्भमें सभापति महोदयने श्रीरूपगोस्वामीजीके अद्भुत जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहा कि यद्यपि नाम ग्रहणकर किसी कविके लाघव या गौरवका प्रश्न नहीं उठता है, परन्तु निरपेक्ष रूपसे विचार करने पर पाएँगे कि श्रीरूपगोस्वामी कविकुलश्रेणीमें अग्रगण्य हैं। ब्रजमण्डलके मूर्धन्य विद्वान सप्तविषयाचार्य श्रीवासुदेवकृष्ण चतुर्वेदीजीने प्रमाण सहित प्रदर्शित किया कि यदि केवल काव्य और कवित्वकी दृष्टिसे भी देखा जाय तो ये कविश्रेष्ठ हैं, भक्ति और रसतत्त्वके प्रतिष्ठापक आचार्यके रूपमें तो इनकी तुलना ही नहीं है।

श्रीगौरकृष्ण गोस्वामीने अपने संप्रेषणमें श्रीनरहरि ठाकुरके भजनसे उद्भृत करते हुए कहा—

यदि गौराङ्ग नहित, तबे कि हइत,

केमने धरित दे।

राधार महिमा, प्रेमरस सीमा,

जगते जानात के ॥

‘अहो ! यदि गौरसुन्दर इस जगतमें नहीं आते तो क्या होता, किस प्रकार मैं प्राण धारण करता तथा इस जगतमें प्रेमरसकी पराकाष्ठा स्वरूप श्रीमती राधिकाजीकी महिमाको कौन जान पाता ?’

श्रीगौरसुन्दर (श्रीचैतन्य महाप्रभु) ने किसके माध्यमसे अपनी तथा सभी वैष्णवोंकी सारी कृपाशक्तिका संचारकर राधिकाजीकी महिमाको प्रकाशित

कराया। ऐसे सुयोग्य पात्र कौन हैं? उत्तर आएगा—श्रील रूप गोस्वामी।

श्रीमद् अच्युत भट्ट गोस्वामीने श्रीरूपगोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित 'भक्ति' शब्दकी परिभाषा पर प्रकाश डाला। श्रीलक्ष्मीनारायण बाबाजी महाराज, श्रीवैद्यनाथ ज्ञा, श्रीभक्तिसर्वस्व गोविन्द महाराज, श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराज आदि वक्ताओंने भी श्रीरूप गोस्वामीके विषयमें अपने विचार व्यक्त किए। सभाके अन्तमें श्रीलमहाराजजीने धन्यवाद ज्ञापन किया। श्रावण बलदेव पूर्णिमा तक पञ्चदिवसव्यापी प्रतिदिन यह आयोजन चलता रहा।

एकादशीके दिनसे पूर्णिमा तक श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ, श्रीरूपसनातन गौड़ीय मठ, श्रीगोपीनाथजी गौड़ीय मठ तथा श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्यान्य शाखा मठोंमें श्रीराधाविनोदविहारीजी झूलामें पधराए गए।

श्रीबलदेव पूर्णिमा (रक्षाबन्धन) के दिन श्रीबलदेवजीका जन्म-उत्सव मनाया गया। श्रीबलदेव कैसे आदिगुरु हैं एवं वे किस प्रकारसे वस्त्र, आसन, भूषण, शश्या, धाम इत्यादिके रूपमें अपनेको विस्तार कर श्रीकृष्णकी हर प्रकारकी सेवा करते हैं, उस पर प्रकाश डाला गया। श्रीबलदेव श्रीकृष्णकी सन्धिनी शक्तिके प्रकाश हैं तथा श्रीकृष्णका भजन करनेके लिए वे चिद-बल प्रदान करते हैं। अनन्तदेव श्रीबलदेवजीके प्रकाश हैं। हमें सद्गुरुदेव, श्रीकृष्ण या बलदेवजी (दाऊ भैया) के करकमलोंमें अनन्त ब्रत (जो कि राखीके नाममें आज प्रचलित है) बाँधना चाहिए ताकि वे हमारी रक्षा करें।

श्रीश्रीकृष्ण जन्माष्टमी और नन्दोत्सव

श्रीजन्माष्टमीसे एक दिन पहले अधिवास दिवस सन्ध्याके समय लगभग पाँच बजे सैकड़ों भक्त श्रीकेशवजी गौड़ीय मठके समक्ष शोभायात्राके लिए उपस्थित हुए। एक असाधारण शोभायात्रा अनेक झाँकियोंके साथ प्रारम्भ हुई। सभी भक्त अत्यन्त उत्साहित एवं आनन्दित होकर उच्चस्वरसे श्रीमन्महाप्रभु द्वारा प्रचारित संकीर्तनमें भाग लेकर

श्रीगुरु, गोराङ्ग, श्रीराधाविनोदविहारीजीके कृपाभाजन हुए।

जन्माष्टमीके दिन प्रातःकाल श्रील महाराजजीने श्रीजयदेव गोस्वामी कृत श्रीगीतगोविन्दके मङ्गलगीतम् 'श्रितकमला कुचमण्डल....' की व्याख्या की। इस गीतमें व्यवहृत प्रत्येक उपमा (जनकसुताकृतभूषण, जितदूषण, दिनमणिमण्डलमण्डन, धृतमन्दर, यदुकुलनलिनदिनेश इत्यादि) कैसे श्रीकृष्णके प्रति ही उद्दिष्ट है, उसको श्रीलमहाराजजीने सरल एवं सहज रूपमें समझाया। उन्होंने यह भी बताया कि श्रीमद्भागवत आदि शास्त्रोंका प्रत्येक श्लोक एक-एक मन्त्र है और सदगुरुके आनुगत्यमें साधन-भजन करते-करते मन्त्रोंकी सिद्धि होनेसे मंत्र-देवता सामने प्रकाशित होते हैं। श्रीमद्भागवत, गोस्वामी-ग्रन्थ, तथा गौड़ीय पूर्वाचार्योंके विचारोंके आधार पर उन्होंने यह बतलाया कि श्रीकृष्ण १६ वर्षके शंख-चक्रधारी चतुर्भुज किशोरके रूपमें कंसके कारागारमें प्रकट हुए थे, वसुदेव एवं देवकीकी स्तुति करने पर वे शिशु बन गए। लेकिन गोकुलमें यशोदा मैयाके गर्भसे श्रीकृष्णका जन्म हुआ। साधारण मनुष्य-शिशुकी भौति उनका नामि-छेदन भी हुआ था। वसुदेवजी मथुराके कृष्णको गोकुल ले जाते समय यमुनाके बीचमें मथुराके कृष्ण अदृश्य हो गए एवं उनके सिर पर स्थित टोकरीमें यशोदानन्दन (ब्रजके कृष्ण) आ गए। पूर्णतम भगवान ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण ब्रजको छोड़कर एक पा भी बाहर नहीं जाते हैं। द्वारकामें श्रीकृष्ण पूर्ण, मथुरामें पूर्णतर एवं ब्रजमें पूर्णतम हैं। श्रीकृष्णका एक नाम वासुदेव है क्योंकि वे वसुदेवके पुत्र हैं—यह नहीं। बल्कि अष्टवसुओंमेंसे द्वारा नामक वसु (जो कि श्रीनन्दबाबाके एक प्रकाश हैं) के पुत्र हैं, इसलिए। नन्दबाबा और यशोदा मैया श्रीकृष्णके नित्य पिता-माता हैं। शास्त्रोंमें कहीं-कहीं देवकीनन्दन नाम द्वारा श्रीकृष्णको बतलाया जाता है। यशोदा मैयाका दूसरा नाम देवकी था। चूँकि परीक्षित महाराजका सम्बन्ध द्वारका या मथुराधीश कृष्णसे था, इसलिए श्रीशुकदेव

गोस्वामीने उनको ये सारी गूढ़ बातें प्रकाश्य रूपमें नहीं बतलाई। लेकिन भागवतमें उनके द्वारा व्यवहृत 'नन्दात्मज' आदि शब्दोंके द्वारा इस बातकी पुष्टि होती है कि श्रीकृष्ण नन्दनन्दन ही थे।

श्रीकृष्ण आप्तकाम, आत्माराम हैं। उनको किसीसे सेवा लेनेकी जरूरत नहीं है, लेकिन असीम कृपापरवश होकर वे जीवोंके नित्यकल्याणके लिए उन्हें अपनी सेवा प्रदान करते हैं।

श्रीलमहाराजजीके उपरान्त श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजजीने श्रीमद्भागवतसे पाठ एवं प्रवचन किया। इसी प्रकार सन्ध्याको प्रायः छः बजे तक अनेक भक्तों द्वारा अखण्ड भागवत-पाठ किया गया। तत्पश्चात् मध्यरात्रि तक आकाशवाणी और दूरदर्शनके प्रसिद्ध संगीत कलाकारोंने श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें सुललित ब्रज-भजनोंके गायनसे श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ परिसरको मुखरित कर दिया। मध्यरात्रिके बागह बजे श्रीकृष्णका महाभिषेक श्रीलमहाराजजी द्वारा सम्पन्न हुआ जिसका दर्शन हजारों लोगोंने किया। इस कार्यक्रमका प्रसारण मथुरा सिटी दूरदर्शन चैनलमें भी हुआ था।

अगले दिन प्रातःकालसे ही सभी भक्त नन्दोत्सवकी तैयारियाँ करने लगे। श्रीलमहाराजजीने कहा कि श्रीलभक्तिवेदान्त स्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथि होनेके कारण यह उत्सव हमारे लिए विशेष रूपसे वरणीय है। श्रीलमहाराजजीने पहले श्रीलस्वामी महाराजजीके वरिष्ठ शिष्योंको उनके चरणोंमें कथारूपी पुष्पाब्जलि अर्पित करनेका सौभाग्य प्रदान किया एवं तत्पश्चात् वे स्वयं श्रीलस्वामी महाराजजीका गुणगान करने लगे। तत्पश्चात् मठकी नाट्यशाला बधाई नृत्य-कीर्तनों 'जय कन्हैया लालकी, हाथी घोड़ा पालकी' से गूँज उठा। इस उत्सवमें लगभग पन्नह हजार अतिथियोंने प्रसाद सेवन किया।

श्रीराधाष्टमी

श्रीश्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके

आनुगत्यमें सितम्बर १४ को श्रीराधाष्टमीका शुभ उत्सव सम्पन्न हुआ। श्रीलमहाराजजीके आनुगत्यमें सभी भक्तोंने मिलकर श्रीमती राधाजीका अभिषेक किया। तीन विभिन्न स्थानोंसे चाव आया। सभी भक्त कीर्तन करते हुए बड़े उत्साहके साथ जब चाव लेकर मठके द्वार तक पहुँचे, स्वयं श्रीलमहाराजजीने उनका स्वागत किया एवं थोड़ी ही देरमें देखते-देखते हजारोंकी संख्यामें भक्तलोग आने लगे। श्रीलमहाराजजीके प्रवचनके उपरान्त सभीने महाप्रसादकी सेवा की। श्रीलमहाराजजीने अपने दिव्य भाषणमें बतलाया कि श्रीगोविन्द (श्रीकृष्ण) सबको आनन्द प्रदान करने वाले हैं और श्रीगोविन्दको आनन्द देने वाली हैं—श्रीमती राधिकाजीके कृष्णके प्रति प्रेमकी महिमा इतना महान् है कि स्वयं श्रीकृष्ण उसको समझनेके लिए श्रीराधाजीके भाव एवं कान्तिको लेकर श्रीचैतन्य महाप्रभुके रूपमें अवतीर्ण होते हैं।

जम्मू-कश्मीरमें श्रीमन्महाप्रभुजीकी वाणीका प्रचार

जगद्गुरु श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अन्तरंग परिकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता नित्यलीलाप्रविष्ट ३५विष्णुपाद श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुगृहीत अस्मदीय शिक्षा गुरुदेव ३५विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद् भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजने विशेष सफलतापूर्वक ४ सितम्बरसे १० सितम्बर तक आतंककी नगरी जम्मू (कश्मीर) में प्रचार किया। उन्होंने अपनी दिव्य वाणी द्वारा सभीको भयसे मुक्त कर दिया। गौड़ीय सम्प्रदायसे वहाँ सर्वप्रथम इतना अधिक प्रचार हुआ। राधाष्टमी उत्सवके उपरान्त सितम्बर १७ को वे पूर्व सोमिएत संघका एक देश यूक्रेन तथा यूरोपके ऑस्ट्रिया देशमें कृष्णभक्तिका प्रचारके लिए रवाना हुए हैं। जम्मू तथा विदेशमें प्रचारका विशद वर्णन अगले अंकमें प्रकाशित किया जाएगा।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः प्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र		आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस		ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ कार्तिक मास, सन् २००२, २२ अक्टूबर—१९ नवम्बर

{ संख्या ८

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुर भक्तिविनोद कृत]

विद्यारूपोद्भवधनजनैयनिलभ्या नरेण तां चैतन्यप्रभुवरकृपां दैन्यभावादवाप।
देवानन्दः कुलियनगरे यस्य भक्तान् प्रपूज्य वन्दे गौरं विमदविदुषां शुद्धभक्त्यैकलभ्यम् ॥५२॥
वृन्दारण्येक्षणकपटतों गौड़देशे प्रसूतिं दृष्ट्वा स्नेहाद् यवनकवलात् साग्रजं रूपमेव।
उद्धृत्यौद्रं पुनरपि ययौ यः स्वतन्त्रः परात्मा तं गौराङ्गं स्वजनतरणे हष्टचित्तं स्मरामि ॥५३॥
संगं हित्वा बहुविधनृणां भद्रमेकं गृहित्वा यात्रां वृन्दावनद्वामतिर्यशकारात्मतन्त्रः।
ऋक्षव्याघ्रप्रभृतिकपशून् मादयित्वात्मशक्त्या तं स्वानन्दैः पशुमतिहरं गौरचन्द्रं स्मरामि ॥५४॥
वृन्दारण्ये गिरिवननदीन्ग्रामराजीं विलोक्य पूर्वं क्रीडास्मरणविवशो भावपुञ्जैर्मुमोह।

तस्माद्द्वारो व्रजविपिनतश्रालयामास यज्च तं गौराङ्गं निजजनवशं दीनमूर्तिं स्मरामि ॥५५॥
 भावावेश पथिपरमहोवीक्ष्य तं भाग्यवन्तो म्लेच्छाः केचिच्छुमतिभबलाल्लेमिरे यत् प्रसादम्।
 भक्तास्तं च प्रणयवशगा यत् प्रसादाद् बभूवस्तं गौराङ्गं जनिमलहरं शुद्धमूर्तिं स्मरामि ॥५६॥
 पुण्ये गङ्गातपनतनया संगमे तीर्थवर्ये रूपं विद्यां पररसमर्यीं शिक्षयामास यो वै।
 प्रेमाणं गोकुलपतिगतं वल्लभाख्यं बुधज्ज तं गौराङ्गं रसगुरुमणिं शास्त्रमूर्तिं स्मरामि ॥५७॥
 काशीक्षेत्रे रसविरहितान् केवलाद्वैतक्षान् प्रेमाप्लाव्य स्वजनकृपया यस्तु रूपाग्रजाय।
 विष्णोर्भक्तिस्मृतिविरचने साधुशक्तिं व्यतारीत् वन्दे गौरं भजनविषये साधकानां गुरुं तम् ॥५८॥
 धिक् गौराङ्गपूर्णतिरहितां शुष्कतकादिदग्धानित्यारम्यप्रचुरवचनं शाङ्कराणां बभूव।
 न्यासीशानां सदसि महतां यस्य पूजा तदाभूत् गौराङ्गं तं स्वसुखमथानानन्दमूर्तिं स्मरामि ॥५९॥
 प्राप्यक्षेत्रं पुनरपि हरिभक्तवर्गं तुतीष रामानन्दप्रमुखसुजनान् सार्वभौमादिकान् यः।
 प्रेमालापैहरिसपरेयपियामास वर्षान् तं गौराङ्गं हरिसकथास्वादपूर्णं स्मरामि ॥६०॥

पद्यानुवाद—

—परलोकगत पं० मधुसूदनदास गोस्वामी कृत
 विद्या धन जन रूप गुन लही न जो नर कोय।
 देवानन्द है दीन, प्रभु करुणा पाई सोय॥
 भक्तन क्षमा कराय प्रभु हरौ विप्र कौ कुष्ट।
 भक्त कृपाते 'प्रभु कृपा, उमत्र' भयौ सौ दुष्ट ॥५२॥
 वृन्दा कानन दरस मिस गौड़ देश प्रभु आय।
 स्वजन नेह परबस हृदय लखी सची निजमाय॥
 गौड़ देशपति यवनके सेवन अधिक दुखाँय।
 कार्य भार शासन कठिन भयतें तजिन सकाँय॥
 रूप सनातन भ्रात सों कोने प्रभु उद्धार।
 बन्ध विमोचन प्रेमरस लह्यौ कृपा विस्तार॥
 फिरे तहाँ ते फेर प्रभु उत्कल पहुँचे जाय।
 युरी निवासी भक्तजन हिये मगन सुख पाय ॥५३॥
 लक्ष लक्ष जन संग हैं तजौ संघ सो नाथ।
 इकले वृन्दावन चले बलभद्रहि लै साथ॥
 सिंह व्यग्र भल्लूक पशु मिलत बन्य पथ माँहि।
 आत्म शक्ति संचार प्रभु श्री हरिनाम कहाँहि ॥५४॥
 पूरब लीला थल सकल गिरि वन सरिता कुञ्ज।
 देखे वूम्हा विपिन पशु तरु वल्ली खग पुञ्ज॥
 शोक मोह बाढ़यो सुमर पूरब लीलारंग।

हँसत रुदत नाचत लुठत नाना भाव तरंग॥
 लौटाये बलभद्र प्रभु भाव विवश तन जान।
 निज जन वश हरि विपिन तज कीनौ पुरी प्रयान॥ ५५॥
 चलन भाव आवेश प्रभु कछु तन की सुध नाँहि।
 देखी सो छबि म्लेछ गन प्रमुदित मारग माँहि॥
 भक्त भये सब यवन जन जपन लगे हरिनाम।
 प्रभु करुणा कछु लखत नहिं जाति वरन कुलकामा॥५६॥
 तीरथराज प्रयागमें गोस्वामी श्रीरूप।
 मिले आय गौराङ्ग सों प्रेम भक्तिके भूप॥
 तिनकौ रस शिक्षा दई रस गुरु श्रीचेतन्य।
 वल्लभ बुध कों कियौ रस शिक्षा दे धन्य॥५७॥
 काशी बासी रस रहित मायावादी लोग।
 श्री प्रभु तिनहू कौ दियौ प्रेम भक्ति कौ योग॥
 मिले सनातन प्रभु सौं कियौ वेश संस्कार।
 शिक्षा साधन भक्ति की करन शास्त्र परचार॥५८॥
 काशीके न्यासी सबै ऐसे वचन उचार।
 गौर विमुख जीवन करन, लगे' विविध धिक्कार॥
 “गौर वन्दना विमुख जे पडे तर्क जज्ञाल
 वृथा जनम जग में मरै बसत नरक चिरकाल”॥
 संन्यासिनकी सभामें पूजित श्रीचैतन्य।
 श्रीलप्रकाशानन्द कौ किये भक्ति दे धन्य॥५९॥
 फिर नीलाचल धाम को श्रीप्रभु यात्रा कीन।
 उत्कलवासी भक्त सब देखत हरख नवीन॥
 रामानन्द प्रमुख जन सावैभौम आचार्य।
 मगन भये प्रभु संगते कृष्ण भजनके आर्य॥
 भक्तन संग श्रीहरि कथा रस कर कर आलाप।
 नीलाचलमें कछु बरस निवसे श्रीप्रभु आय॥६०॥

(क्रमशः)

प्रश्नोत्तर
विद्वोपदेशक या आचार्यब्रुव
 —जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्र० १—निरीश्वर कर्मोपदेश करनेवाले पण्डितों का विचार और व्यवहार कैसा होता है?

“सर्वद्रष्टा और कर्मफलदाता चैतन्यस्वरूप ईश्वरका ही जब अस्तित्व नहीं है, तब बुरे कर्मोंके लिए और किस बातका भय है? केवल इसी विषयमें सावधान रहो कि तुम्हारे दुष्कर्मोंको दूसरे जान न पायें। दूसरोंके जानेसे अपयश, राजदण्ड और असदनुकरणरूप उपद्रव अवश्य ही होगा। इससे अपने आप या संसार कोई सुखी नहीं बन सकता। जान पड़ता है कि निरीश्वर कर्मोपदेश पण्डितोंके चरित्रको विशेषरूपसे अनुसन्धान करनेसे ऐसा ही व्यवहार लक्षित होगा।”

(तत्त्वविवेक, १म अनु. ९-१२)

प्र० २—श्रद्धाहीन व्यक्तिको हरिनाम या दीक्षा देना क्या सद्गुरुके लिए उचित है?

“जो दक्षिणाकी लालसासे श्रद्धाहीन व्यक्तिको हरिनाम देते हैं, वे हरिनाम-विक्रयी हैं। अति तुच्छ विनिमयके लिए अमूल्य रत्नको नष्ट करते हुए आप भी हरिभजनसे च्युत होते हैं।”

(श्रीचैतन्यशिक्षामृत

३/४)

प्र० ३—गुरुत्यक्त संन्यासीब्रुव क्या आचार्य हो सकते हैं?

“रामचन्द्रपुरी माधवेन्द्रपुरीके शिष्य थे। परन्तु शुष्क ज्ञानी सम्प्रदायका सङ्ग करनेके कारण उन्होंने दूषित सिद्धान्तोंको अपनाकर अधर्म-उपदेश किया। ऐसा देखकर पुरी गोस्वामीजीने अपराधी समझकर उनका वर्जन किया। तभीसे वे परनिन्दा, परदोषानुसन्धान शुष्क-ज्ञानोपदेश आदि निन्दनीय कार्य करनेके

कारण शुद्ध वैष्णवोंके द्वारा उपेक्षित हुए”।
(श्रीचैतन्यचरितामृत अमृतप्रवाह भाष्य अ. ८)

प्र० ४—विद्ध और शुद्ध आचार्योंके सिद्धान्त क्या एक ही हैं?

“वेद और वेदान्तकी आलोचनापूर्वक आचार्योंने दो प्रकारके सिद्धान्त स्थिर किए हैं। दत्तात्रेय, अष्टावक्र, दुर्वासा आदि ऋषियोंके अनुगत सिद्धान्तको लेकर श्रीमद् शङ्कराचार्यने केवलाद्वैत-मतका प्रचार किया है। यही पहला सिद्धान्त है। नारद, प्रह्लाद, ध्रुव, मनु आदि महात्माओंके अनुगत सिद्धान्तको लेकर वैष्णवाचार्योंने शुद्धभक्ति तत्त्वका प्रचार किया है। यही दूसरा सिद्धान्त है।”

(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा नवाँ परिच्छेद)

सत्-सम्प्रदाय

प्र० ५—सत्-सम्प्रदाय प्रणाली सनातन है अथवा अर्वाचीन?

“सम्प्रदाय-व्यवस्था नितान्त प्रयोजनीय है, अतएव आदिकालसे ही साधु-पुरुषोंमें सत्-सम्प्रदायकी प्रणाली चली आ रही है।”

(जैवधर्म १३ वाँ अ.)

प्र० ६—किन्होंने विशुद्ध मत स्वीकार किया है?

“जिन्होंने ब्रह्मासे गुरु परम्पराक्रमसे उस वेद-सज्जिता वाणीका प्रकृत अनुव्याख्यानादि प्राप्त किया है, उन्होंने ही विशुद्ध मतको स्वीकार किया है। दूसरे सभी मतभेदके कारण नाना प्रकारके पाषण्ड मतावलम्बी हो पड़े हैं।”

(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा दूसरा परिच्छेद)

प्र० ७—श्रीचैतन्य महाप्रभुके दासोंकी गुरुप्रणाली क्या है? कौन उनके प्रधान शत्रु

हैं?

“श्रीब्रह्म-सम्प्रदाय ही श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभुके अनुगत व्यक्तियोंकी गुरु-प्रणाली है। श्रीकविकर्णपूर गोस्वामीने इसीके अनुसार स्व-रचित ‘गौरगणोदेश दीपिका’ में सुदृढरूपसे गुरु-प्रणालीका क्रम लिखा है। वेदान्तसूत्रके भाष्यकार श्रीबलदेव विद्याभूषणने भी इसी प्रणालीको स्वीकार किया हैं। जो इस प्रणालीको अस्वीकार करते हैं, वे श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुके चरणानुचरोंके प्रधान शत्रु हैं।”

(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा दूसरा परिच्छेद)

प्र० ८—कलिके गुप्तचर कौन हैं?

“श्रीकृष्णचैतन्य-सम्प्रदायको स्वीकार करते हुए जो गुप्तरूपसे गुरुपरम्परा-सिद्ध प्रणालीको नहीं मानते, वे ही कलिके गुप्तचर हैं।”

(श्रीमन्महाप्रभुकी शिक्षा दूसरा परिच्छेद)

प्र० ९—भविष्यमें भक्ति-तत्त्वमें किस सात्त्वतसम्प्रदायका एकमात्र अस्तित्व रहेगा?

“कुछ समयके पश्चात् भक्तितत्त्वमें जो एकमात्र सम्प्रदाय रहेगा, वह श्रीब्रह्म-सम्प्रदाय है। दूसरे सभी सम्प्रदाय इसी ब्रह्म-सम्प्रदायमें मिल जायेंगे।”

प्र० १०—वैष्णव सम्प्रदायोंके मतोंमें परस्पर भेद क्यों है?

“सभी सम्प्रदायोंके वैष्णवोंका एक ही मत है। केवल क्षुद्र-क्षुद्र विषयोंमें कुछ-कुछ मतभेद है। सभी वैष्णव ही जीवको तत्त्वतः ईश्वरसे भिन्न तत्त्व मानते हैं। सभी वैष्णवाचार्योंने भक्ति मार्गका ही अवलम्बन किया है।”

(प्रेम प्रदीप छठा अध्याय)

प्र० ११—सम्प्रदायप्रणाली जीवोंके लिए क्या अहितकर है?

“सम्प्रदाय-प्रणाली जीवोंके लिए कल्याणकारी है। ★★ सम्प्रदायमें प्रवेश करनेसे साधु-पदाश्रय, सद्वर्म-शिक्षा, धर्मालोचना और युक्तवैराग्य अनायास ही प्राप्त किया जा सकता है। जबतक असम्प्रदाय बुद्धि प्रबल रहेगी, तबतक जीवन भर भी तर्क वितर्क कर आत्म-प्रसाद पाया नहीं जा सकता। सम्प्रदायस्थ कोई-कोई व्यक्ति स्वार्थपर होकर कदाचार करते हैं। ऐसा देखकर सम्प्रदाय-प्रणालीकी निन्दा करना मूर्ख लोगोंका ही कार्य है। सम्प्रदायमें प्रवेश पूर्वक सम्प्रदायको पवित्र करनेकी चेष्टा करना ही बुद्धिमान व्यक्तिका कर्तव्य है। बाजारमें अच्छे द्रव्य अब पाए नहीं जाते और अनेक प्रकारकी कृत्रिमताका प्रचलन हो रहा है, ऐसा देखकर बाजारके संस्कार करनेकी आवश्यकता है न कि बाजार प्रणालीको ही उठा देनेकी आवश्यकता है। जो बाजार प्रणालीको ही उठा देना चाहते हैं उनकी किसी प्रकारसे भी प्रशंसा नहीं की जा सकती। सम्प्रदायके प्राचीन आचार्योंने जगतका कल्याण करनेके लिए ही सम्प्रदायका निर्माण किया है।”

(‘सम्प्रदाय प्रणाली,’ सज्जन तोषणी ४/४)

प्र० १२—सम्प्रदाय-विरुद्ध मतकी कबसे सृष्टि हुई है?

“इतिहासकी आलोचना करनेसे ऐसा जान पड़ता है कि इस पवित्र भारत क्षेत्रमें कभी भी सम्प्रदाय विरुद्ध मत नहीं था। जबसे पाश्चात्य पण्डितोंके साथ भारतवासियोंका सम्पर्क हुआ है, तभीसे अनभिज्ञ व्यक्ति सम्प्रदाय विरोधी हो पड़े हैं।”

(सम्प्रदाय-प्रणाली, स. तो. ४/४)

प्र० १३—सम्प्रदाय प्रणालीमें दोष अधिक

है, या गुण?

“निरपेक्ष होकर विचार करने पर सम्प्रदाय प्रणालीमें दोषकी अपेक्षा अनेक अधिक गुण हैं। जिसमें अधिकांश गुण हैं, उसमें कुछ-कुछ दोष रहने पर भी वह पण्डितोंके लिए आदरणीय है।”

(सम्प्रदाय-प्रणाली, स. तो. ४/४)

प्र० १४—क्या असाम्प्रदायिक व्यक्ति स्व-कपोल कल्पित असत् साम्प्रदायिक नहीं हैं?

“सम्प्रदाय-विरोधीगण सम्प्रदायके विरुद्ध एक मतको लेकर अपनेको ‘असम्प्रदायी’ समझते हैं। वे उसी मतवादको लेकर एक नये सम्प्रदायकी सृष्टि करते हैं।”

(सम्प्रदाय-प्रणाली स. तो ४/४)

प्र० १५—वैष्णव धर्म नित्य सिद्ध है, इसका क्या प्रमाण है?

“वैष्णव धर्म जीवके साथ-साथ उदित हुआ है। ब्रह्माही प्रथम वैष्णव हैं। श्रीमन्महादेव भी वैष्णव हैं। आदि प्रजापतिगण भी सभी वैष्णव हैं। ब्रह्माके मानस पुत्र श्रीनारद गोस्वामी भी वैष्णव हैं ★★ इतिहासमें केवल विशेष यसस्वी वैष्णवोंके ही नामों का उल्लेख है। वस्तुतः प्रह्लाद और ध्रुवके समयमें और भी कितने ही वैष्णव थे किन्तु उनकी गणना नहीं है। ★★ चन्द्र-सूर्य वंशीय राजागण और उच्चकोटिके ऋषि मुनियोंमें अधिकांश विष्णुपरायण थे। सत्य, त्रेता, द्वापर-तीनों युगोंमें ही ऐसा उल्लेख है। कलिकालमें दक्षिण भारतमें श्रीरामानुजाचार्य, श्रीमध्वाचार्य, श्रीविष्णुस्वामी, एवं श्रीनिम्बादित्य स्वीमीने लाखों व्यक्तियोंको विशुद्ध वैष्णव धर्ममें दीक्षित

किया था।”

(जैवधर्म दसवाँ अध्याय)

प्र० १६—वैष्णव धर्मकी परिस्फुटावस्थाका इतिहास क्या है?

“वैष्णव धर्म—पद्मापुष्पकी तरह कालके साथ क्रमशः प्रस्फुटित हुआ है। पहले-कलिकाके रूपमें उदित होता है; तत्पश्चात् वह और भी विकसित होता है। क्रमशः पूर्णविकसित पुष्पकी तरह प्रकाशित होता है। ब्रह्माके समयमें श्रीमद्भागवतका चतुःश्लोकी-सम्मत भगवत्-ज्ञान, विज्ञान, भक्तिसाधन औ ध्रेम केवल अंकुररूपसे जीव-हृदयमें प्रकाशित था। प्रह्लादादिके समयें कलिकाके आकारमें विकसित हुआ। क्रमशः बादरायण (व्यास) ऋषिके कालमें कलिका विकसित हुई एवं वैष्णव आचार्योंके समय पुष्पाकारमें परिणत हुआ। श्रीमन्महाप्रभुके आविर्भाव होनेपर ध्रेमपुष्प सम्पूर्ण विकसित होकर जगतवासियोंके हार्द नासिकामें परम रमणीय सौरभ प्रदान करने लगा। श्रीवैष्णव धर्मका परम निगूढ भाव जो नामप्रेम है, उसीको श्रीमन्महाप्रभुने जगत् जीवोंको कृपापूर्वक दान किया है।”

(जै. ध. १० बाँ अ.)

प्र० १७—परमार्थ तत्त्व किस प्रकार क्रमशः स्पष्टीभूत ओर परिपक्व हुआ है?

“परमार्थ तत्त्व आदिकालसे लेकर आजतक क्रमशः स्पष्टीभूत, सरल और संक्षेप होता हुआ आ रहा है। देश-काल जन्य मलिनता उसमेंसे जितनी ही दूरीभूत होती जाती है, उसका सौन्दर्य उतना अधिक देवीप्यमान होकर हमारे सामने प्रकटित हुआ है। सरस्वतीके तटपर ब्रह्मावर्त्तकी कुशमय भूमिमें इस तत्त्वका

जन्म हुआ था। क्रमशः बदरिकाश्रमके तुषारावृत भूमिमें इसने बाल्यलीला की। गोमती तटपर नैमिषारण्य क्षेत्रमें इसका पौगण्ड काल बीता। द्रविड़ देशमें कावेरी नदीके रमणीय कूलमें उसके यौवन कार्य देखे जाते हैं। जगत पवित्रकारिणी गङ्गाजीके तटस्थित नवद्वीप नगरमें इस धर्मकी परिपक्वावस्था देखी जाती है।”

(उपक्रमणिका, कृष्ण संहिता)

प्र० १८—सत्सम्प्रदाय-विशेषका आनुगत्य कैसे सूचित होता है?

“शङ्करके तर्कस्रोतमें भक्तिकुसुम भक्तके चित्तरूपी स्रोतस्वती (नदी) में भासमान होकर अस्थिर था। किन्तु रामानुजाचार्यने शङ्करके विचारोंका खण्डनकर भगवत् कृपासे शारीरक सूत्रके भाष्यान्तरकी रचना करते हुए पुनः वैष्णव तत्त्वके बलको बढ़ाया था। थोड़े ही दिनोंमें विष्णुस्वामी, निष्बादित्य, और मध्वाचार्यने भी वैष्णव-मतके कुछ-कुछ भिन्न आकार की स्थापना करते हुए अपने-अपने मतानुसार शारीरक भाष्यकी अलग-अलग रचना की। किन्तु सभी शङ्करके ही अनुकारक हैं। शङ्कराचार्यकी तरह सभीने ही एक-एक गीताभाष्य, सहस्रनाम-भाष्य और उपनिषद्-भाष्यकी रचना की है। उस समयसे सभीके हृदयमें ऐसा विचार उठा कि किसी एक सम्प्रदायकी स्थापना करनेके लिए उपरोक्त चार ग्रन्थोंके भाष्योंका होना परमावश्यक है। इन चार वैष्णवाचार्योंसे श्री-सम्प्रदाय आदि चार सम्प्रदाय चले आ रहे हैं।”

(उपक्रमणिका, कृष्ण संहिता)

प्र० १९—परमार्थ तत्त्वकी उत्तिकी पराकाष्ठा कहाँ हुई है?

“समस्त जगतके इतिहासकी आलोचना करनेपर श्रीनवद्वीपमें ही परमार्थ तत्त्वकी चरम उत्तिदेखी जाती है। परब्रह्म स्वरूप भगवान जीवोंके एकान्त प्रेमके आस्पद (वशीभूत) हैं। अनुरागपूर्वक उनका भजन नहीं करनेसे वे कभी भी जीवोंके लिए सहज ही प्राप्त नहीं होते। सारे जगतमें जीवोंके जो स्नेहास्पद हैं, उसे छोड़कर उनकी भावना करने पर भी वे सहज ही प्राप्त नहीं होते।”

(उपक्रमणिका, कृ. स.)

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. ४९—क्या यह संसार बद्ध जीवोंके लिए कारागार है?

उ. जो इस जगतकी किसी भी वस्तुकी इच्छा नहीं करते, ऐसे निष्किञ्चन भक्तोंका विचार है कि इस जगतमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो हमें चिरकालके लिए सुख दे सके। यह पृथ्वी बद्ध जीवोंके लिए एक कारागार सदृश है। हमलोग कृष्णसे बहिर्मुख होकर अर्थात् कृष्णकी सेवाको भूलकर यहाँ बंदी (कैदी) हो चुके हैं। इसलिए हमें इतने दुःख तथा इतने कष्ट मिल रहे हैं। हम मायारूप जेल रक्षक (Jailer) के द्वारा मिलनेवाले इन कष्टोंको भी सुख मान रहे हैं, जिसके परिणाम स्वरूप हम अत्यन्त कष्ट पा रहे हैं। जो मूर्ख मायिक जगतके विषयभोगोंके प्रति दौड़ रहे हैं, वे ही मायाके फंदेमें फँस जाते हैं।

जो गृहव्रत (जिसने अपने घरको ही

अपनी धुरी बना रखा है) हैं वे विचार करते हैं कि हमारे पास एक सेवक होना चाहिए। हम गृहब्रती होकर समस्त प्रकारकी सुविधाओंको प्राप्त कर लेंगे, हम अपने मन, बुद्धिके द्वारा सब समझ लेंगे। राजनैतिक साहित्यिक, पण्डित, धनी, प्रार्थी, देशके नेता, विद्वान्, कर्मी इत्यादि होनेकी इच्छा एकमात्र मायाके प्रभु अर्थात् मायाको अपनी सेविका बनानेकी व्यर्थ चेष्टा मात्र है। किन्तु प्रह्लाद महाराज कहते हैं—“अपनी इन्द्रियोंको बाहरकी ओर अर्थात् विषयोंकी ओर मत जाने दो। तुमलोग विषयभोगोंकी कामना मत करो। हम देहात्मवादी (देहके प्रति आत्मबुद्धि होना) या गृहब्रत होकर इस जगतमें मालिक सजे हुए हैं। हम जगतको भोग दृष्टिसे देखते हुए सोचते हैं कि सभी लोग मेरे सेवक हैं और जगतकी प्रत्येक वस्तु मेरी सेवाके लिए है। मिट्टी-जल-अग्नि-वायु-आकाश, चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र, पशु-पक्षी-वृक्ष-लता आदि सब मेरे भोगके लिए ही बने हैं। हम सोचते हैं कि मैं जगतका भोक्ता हूँ। जगतके सभीलोग मेरी सेवा करेंगे, किन्तु मैं यह भूल जाता हूँ कि यह जगत किसके लिए है? वास्तवमें जगत जगदीश्वरकी (भगवानकी) सेवाकी वस्तु है। भगवानका भजन न करने पर हमें इस जगतका एक तिनका भी ग्रहण करनेका अधिकार नहीं है।

प्र. ५०—कृष्ण किसे आकर्षण करते हैं?

उ.—कृष्ण त्रिभुवनको ही आकर्षण करते हैं। वास्तव ‘वस्तु’ ही आकर्षक है। कृष्ण किसे आकर्षण करते हैं? चुम्बक लोहेको आकर्षण करता है लकड़ीको नहीं, उसी

प्रकार सेव्य भगवान भी सेवोन्मुख (सेवक) को ही आकर्षण करते हैं। सेवाकी माधुरीके लोभसे ही सेवक आकृष्ट होते हैं। बीचमें यदि सेवक अन्य वस्तुके द्वारा आकृष्ट हो जाता है, तो वह मूल आकर्षणसे वज्ज्यत हो जाता है। एक और बधनमूलक संसारका आकर्षण तथा दूसरी ओर मङ्गलजनक कृष्णका आकर्षण है। इस जगतमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द आदि आकर्षक वस्तुएँ हमारे अत्यन्त निकट हैं, इसीलिए हमारे जैसे दुर्बल लोग इन वस्तुओंके प्रति आकृष्ट हो जाते हैं। ऐसी अवस्थामें गुरु-वैष्णवोंके निकट निरन्तर हरिकथा सुननेसे अपने निकट उपस्थित इन शत्रुओंके हाथसे हम आसानीसे ही बच सकते हैं। यदि हम कृष्णके चरणकमलोंके प्रति आकृष्ट नहीं हुए, तो हमें मायाके प्रति आकृष्ट होना ही पड़ेगा। यदि हमें कृष्णके नाम-रूप-गुण-लीला आदि आकर्षित कर लें, तो वर्तमान अवस्थामें जो हम भोक्ताके रूपमें कृष्णके आसनपर बैठे हुए हैं, इस दुर्बुद्धिसे हमारा छुटकारा हो सकता है। कृष्णकी कथाओंकी आलोचना जितने अधिक परिमाणमें होगी, उतने ही परिमाणमें हमारा भोक्ता अभिमान भी दूर होगा। तब कृष्ण हमको आकर्षित करेंगे।

प्र. ५१—हमारी सुविधा या हमारा मङ्गल कैसे होगा?

उ.—गृहब्रत या गृहके प्रति आसक्त होनेपर भयानक विपत्तिमें पड़ना पड़ता है। किन्तु जो निरन्तर कृष्णकी सेवा करते हैं, ऐसे श्रीगुरुदेवके आनुगत्य तथा उनकी सेवा करनेसे हमारे सामने किसी प्रकारकी विपत्ति नहीं आ

सकती। भगवद्गत्कोंके अनुगमन या अनुसरणको छोड़कर मङ्गलका अन्य कोई रास्ता नहीं है। मूलवस्तु भगवानकी सेवाकी अपेक्षा उनके परमप्रिय श्रीगुरुदेवकी सेवा अधिक मङ्गलजनक है। गुरुसेवाके द्वारा ही हमारा अधिक कल्याण हो सकता है। गुरुसेवा करनेसे पतितसे पतित जीवोंका भी उद्धार हो जाता है। अतः जो अपना वास्तविक कल्याण चाहते हैं, उन्हें अवश्य ही आदरपूर्वक गुरु-वैष्णवोंकी सेवा करनी चाहिए। गुरु-वैष्णवोंकी सेवाका तात्पर्य क्या है? गुरु-वैष्णव भगवानकी सेवाके अतिरिक्त कुछ भी नहीं करते। गुरु-वैष्णवोंकी सेवाका अर्थ—उनकी भगवानकी सेवामें सहायता करना तथा गुरु-वैष्णवोंकी आज्ञाका बिना कोई विचार किए आनन्दपूर्वक पालन करना है। इसलिए सब समय श्रीगुरुदेवके आनुगत्यकी आवश्यकता है। गुरुके आनुगत्यको छोड़कर अपनी इच्छानुसार कृष्णकी सेवा करनेकी दाम्भिकतासे केवल अमङ्गल ही होता है। गुरुको अस्वीकार करनेसे या उनकी अवज्ञा करनेसे सर्वनाश होता है। मैं भगवानकी सेवा करता हूँ—यह केवल एक दाम्भिकता है। यह दाम्भिकता ही पतनका प्रथम एवं प्रधान कारण है। गुरु-वैष्णवोंका दोष देखनेसे सर्वनाश अनिवार्य है। गुरुसेवाको छोड़कर जीवका मङ्गल कभी भी सम्भव नहीं है।

अपने सुखके लिए व्यस्त रहनेपर अमङ्गल ही होता है। जबतक ऐकान्तिक न हुआ जाए, तबतक कृष्णसेवा सम्भव नहीं है। जबतक गुरुसेवा न की जाए, तबतक ऐकान्तिक होना असम्भव है। गुरु-वैष्णवोंकी सेवाके अतिरिक्त मायाबद्ध जीवोंके उद्धारका अन्य

कोई उपाय नहीं है।

प्र. ५२—राधारानी क्या मूलगुरु हैं?

उ.—हादिनी स्वरूपा पराशक्ति श्रीराधिका ही समस्त भक्तोंकी मूलगुरु हैं। यहाँ तक कि वे कृष्णकी भी गुरु हैं। कृष्ण उनके शिष्य होकर उनसे नृत्यादि सीखते हैं। शुद्धभक्तलोग अर्थात् मधुररसके अतिरिक्त अनान्य रसोंके भक्तलोग श्रीनित्यनन्द प्रभुको मूलगुरु मानते हैं। किन्तु मधुररसके रसिक भक्तोंकी मूलगुरु श्रीमती राधिका ही हैं।

प्र. ५३—हमें भगवानकी अनुभूति क्यों नहीं हो रही है?

उ.—जीव स्वरूपतः भगवानका सेवक है। अतः निरन्तर भगवान और भक्तोंका संग तथा उनकी सेवा नहीं करनेसे भगवानकी अनुभूति कैसे होगी? यदि हम सांसारिक कार्योंमें ही व्यस्त रहें, तो भगवानकी अनुभूति कैसे होगी? वर्तमान अवस्थामें निकृष्ट (विषयभोगोंकी) आशाओंके वशीभूत होकर हमारी ऐसी दुर्बुद्धि हो गई है कि हम जागतिक कार्यको ही प्रधानता दे रहे हैं। मूल वस्तुकी सेवासे दूर होनेके कारण ही हमारे ऐसी असत् बुद्धि हो गयी है। जैसे दलदलमें पैर पड़नेपर पैर उसमें धंस जाता है, उसी प्रकार दलदलरूप सांसारिक वस्तुकी आशाओंमें फँसकर हमारा सर्वनाश हो जाता है। हम कृष्णकी सेवा न कर सांसारिक आशाओंके कारण बहिर्मुख कार्योंमें ही व्यस्त हैं। विष्णुकी मायाने हमें भोगी या कर्मवीर इत्यादि बनाकर इस संसारमें ही आबद्ध कर रखा है। अतः हमें सब समय सावधान रहना चाहिए। हमें कदम-कदमपर मार्गदर्शनकी आवश्यकता है

और उसके लिए गुरुके आनुगत्यकी विशेष आवश्यकता है।

भगवानकी सेवाकी अपेक्षा भक्तोंकी सेवा अधिक मङ्गलप्रद है। भगवानके संगकी अपेक्षा भक्तोंका संग अधिक उपयोगी है। भगवानके स्थानकी अपेक्षा भक्तोंका स्थान अर्थात् गुरुगृह शुद्ध भजनके लिए अधिकतर अनुकूल है। “यथाय वैष्णवगण से इ स्थान वृन्दावन”—इस बातको अच्छी तरहसे समझानेकी आवश्यकता है। अर्थात् जिस किसी भी स्थानपर वैष्णवलोग रहते हैं, वह स्थान वृन्दावन ही है। इस बातको न समझकर यदि हम गुरुसेवासे उदासीन होते हैं, तो हम कभी भी भगवानके सेवक नहीं हो सकते। हम अहङ्कारी हो जाएँगे तथा सांसारिक चिन्ताओंके प्रवाहमें ही आबद्ध रह जाएँगे। श्रीराधागोविन्दके श्रीचरणकमलोंकी सेवाकी कथाके अतिरिक्त अन्य कोई बड़ी कथा नहीं है। अतः कहीं हम अधोक्षज (भगवान) की सेवासे वज्जित होकर घोर विषयी न हो जाएँ, इसके लिए निरन्तर हरिकथा सुननेकी आवश्यकता है। भगवानके भजनके प्रति हमें तीव्र दृष्टि रखनी चाहिए। क्योंकि भगवानके भजनके अतिरिक्त अन्यान्य सांसारिक कार्योंको करते-करते हमारे अनेक जन्म बीत चुके हैं। अतः इसी जन्ममें ही जिससे हम सर्वश्रेष्ठ प्रयोजन (कृष्णप्रेम) प्राप्त कर लें, इस विषयमें हमें निरन्तर सावधान रहनेकी आवश्यकता है। बहुत सावधान होकर आदर एवं प्रीतिके साथ सदा-सर्वदा गुरु एवं कृष्णकी सेवा करनेसे भगवानकी अनुभूति अवश्य ही होगी।

प्र. ५४—इस जगतमें इतने दुःख क्यों

हैं?

उ.—भगवान कहते हैं कि मैंने संसारमें इतने दुःख-कष्ट, आपद-विपद आदिको तुमलोगोंको दुःख देनेके लिए ही सजाकर रखा है। परन्तु दुःख अप्रयोजनीय है। ये केवल शिक्षा देनेके लिए ही है। अर्थात् जो व्यक्ति भगवानकी सेवाको भूलकर विषयभोगोंमें प्रमत्त हैं, ऐसे दुर्बुद्धि परायण व्यक्तियोंको ही भगवान दुःख-कष्ट प्रदान करते हैं, जिससे कि उसे संसारसे विरक्ति हो तथा वह नित्य सुख, नित्य आनन्दके अनुसन्धानमें लग जाए।

(क्रमशः)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(गताङ्कसे आगे)

—श्रीपरमेश्वरीदास ब्रह्मचारी

अद्वैताचार्य पर कृपा

प्रभु सारी रात श्रीवासजीके घरमें दरवाजा बन्दकर अपने भक्तोंके साथ कीर्तन करते थे। किसी भी विजातीय व्यक्तिका अन्दर प्रवेश वर्जित था। एक दिन श्रीवासकी सास प्रभुका नृत्य दर्शनके उद्देश्यसे घरके भीतर एक कोनेमें छिप गई। परन्तु छिपनेसे ही क्या होने वाला था? प्रभुके नृत्यके दर्शनके लिए बहुत सौभाग्य चाहिए। जब सभी भक्त लोगोंने कीर्तन आरम्भ किया तथा प्रभु नृत्य करने लगे तो वे बार-बार कहने लगे—“न जाने क्यों आज आनन्द नहीं आ रहा है। लगता है घरमें कहीं कोई विजातीय व्यक्ति छिपा है।” यह सुनकर श्रीवासजीने घरकी तलाशी ली, परन्तु उन्हें एक भी विजातीय व्यक्ति न मिला। अतः पुनः कीर्तन प्रारम्भ

हुआ, परन्तु प्रभु फिरसे कहने लगे—“आज रोजकी तरह आनन्द नहीं आ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि आज मुझपर कृष्ण प्रसन्न नहीं हैं।”

यह सुनकर वैष्णववृन्दके सिर पर मानो बज्रपात हो गया। वे चिन्ता करने लगे कि यहाँ तो हमारे अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। फिर प्रभुको आनन्द क्यों नहीं आ रहा। ऐसा लगता है, हममेंसे ही किसीने कुछ भयङ्कर अपराध कर दिया है, जिसके फलस्वरूप प्रभु आनन्द नहीं पा रहे हैं। एक बार फिर श्रीवास पण्डितने घरकी तलाशी ली तो देखा कि घरके भीतर एक कोनेमें उनकी सास छिपकर बैठी है। यह देखकर वे अत्यन्त क्रोधित हो गए, क्योंकि उसके कारण प्रभुके आनन्दमें बाधा पहुंची थी। अतः उन्होंने उसके केश पकड़कर घरसे बाहर निकलवा दिया। तब प्रभु उल्लसित होकर नृत्य करते हुए कहने लगे—“अब मुझे बहुत आनन्द आ रहा है।”

यह सुनकर आनन्दित होकर वैष्णवलोग कीर्तन करने लगे। नृत्य करते-करते प्रभु कभी-कभी भगवत् भावमें आविष्ट हो जाते थे। उस समय वे मन्दिरमें जाकर भगवानके सिंहासन पर बैठ जाते तथा सभीके मस्तक पर अपने श्रीचरणकमलोंको अर्पण करते तथा उन्हें वरदान देते थे। उस अवस्थामें जब प्रभु अद्वैताचार्यसे कहते—“अरे नाडा! तू मेरे पास आ। तू मेरा जन्म-जन्मका दास है।” तो यह सुनकर अद्वैताचार्यके आनन्दकी सीमा ही नहीं रहती थी। क्योंकि स्वाभाविक अवस्थामें श्रीगौरसुन्दर सर्वदा ही अद्वैताचार्यका

गुरुके समान आदर करते थे। उन्हें प्रणाम करते, उनकी चरणधूलि लेते थे, जिससे उन्हें बहुत कष्ट होता था। वे सोचते थे कहाँ मुझे इनकी सेवा करनी चाहिए, इनकी चरण-रज अपने मस्तक पर धारण करनी चाहिए, परन्तु कहाँ ये इसके विपरीत कर रहे हैं। अतः कभी-कभी जब प्रभु भावाविष्ट होकर मूर्छित हो जाते, उस समय वे जी भरकर प्रभुके चरणोंमें लोटते, उनके चरणोंको कभी अपनी छातीसे लगाते तो कभी अपने सिर पर धारण करते।

एक दिन श्रीवासजीके घरमें ही प्रभु नृत्य करते-करते आविष्ट होकर मूर्छित हो गए। ऐसा सुन्दर अवसर पाकर अद्वैताचार्यजीने प्रभुकी चरणधूलिको अपने सारे शरीरमें मल लिया। कुछ क्षणके पश्चात् जब प्रभुकी मूर्छा भङ्ग हुई तथा वे नृत्य करने लगे तो अन्तर्यामी तथा भक्तोंके आनन्दको बढ़ाने वाले प्रभु विनोदपूर्वक कहने लगे—“मेरे हृदयमें आज उल्लास नहीं हो रहा है। ऐसा लगता है, किसीके चरणोंमें मेरा अपराध हो गया है। यहाँ पर ऐसा कौन चोर है जिसने मेरी चोरी की? जिस अपराधके फलस्वरूप मुझे नृत्यमें आनन्द नहीं आ रहा है। क्या किसीने चोरीसे मेरी चरणधूलि ली है? यदि किसीने ली हो तो सत्य-सत्य बताए, भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, मैं उसे कुछ भी नहीं कहूँगा।”

अन्तर्यामी प्रभुकी बात सुनकर भक्तलोग भयभीत हो गए। किसीके मुखसे एक शब्द भी न निकला। वे विचार करने लगे कि यदि हम सत्य बोलते हैं, तो अद्वैताचार्यजी

हमसे रुष्ट हो जाएँगे, यदि न बोलें तो प्रभुके चरणोंमें अपराध हो जाएगा। इस प्रकार सभी लोग भयङ्कर उलझनमें फंस गए। उन सबकी हृदयकी बात जानकर आचार्य स्वयं हाथ जोड़कर कहने लगे—“हे प्रभो! यदि चोरको उसकी इच्छित वस्तु सीधी तरहसे न मिले तो उसके लिए चोरी करना ही उचित है। अतः प्रभो! मैंने ही आपकी चोरी की है। आप कृपा करके मुझे क्षमा करें। मेरे ऐसा करनेसे यदि आपको कष्ट होता है, तो मैं आजसे ऐसा नहीं करूँगा।”

यह सुनकर प्रभु विश्वम्भर प्रणयरोष पूर्वक अद्वैताचार्यकी महिमाका वर्णन करते हुए कहने लगे—“आप तो रुद्र रूपसे सारे जगतका संहार करते हैं। इतना करने पर भी क्या आपका मन नहीं भरा, जो आप मेरे जैसे एक तुच्छ व्यक्तिके सामान्य भक्ति बलका भी संहार (नष्ट) करना चाहते हैं। यह आपको शोभा नहीं देता। आप तो महाबली वैष्णव हैं। अनन्त ब्रह्माण्डोंमें जितनी भक्ति हो सकती है, कृष्णने आपको सब प्रदान किया है। इतना होने पर भी आप मेरे जैसे तुच्छ जीवके तुच्छ भक्ति-बलको भी छीन लेना चाहते हैं। आपके लिए तो यह निन्दनीय कार्य है। आप तो भक्तिके भण्डारी हैं। अतः कहाँ आप मेरे जैसे तुच्छ जीव पर कृपा कर मुझे अपने भण्डारसे थोड़ी-सी भक्ति प्रदान करेंगे, परन्तु ऐसा न कर आप उल्टे मेरी रही-सही तुच्छ भक्तिको हरण करना चाहते हैं। तो क्या आप यह समझते हैं कि चोरी करना आपको ही आता है, मुझे नहीं—ऐसी बात नहीं है। मुझे भी चोरी

करना अच्छी तरहसे आता है। देखिए, मैं अभी आपसे बदला लेता हूँ।”

ऐसा कहकर प्रभुने हँसते-हँसते बलपूर्वक अद्वैताचार्यके चरणोंको पकड़ लिया तथा उन चरणोंको अपने सारे शरीर पर रगड़ने लगे। अद्वैताचार्यने प्रभुको रोकनेकी बहुत चेष्टा की, परन्तु महाबलशाली श्रीगौरसुन्दरको नहीं रोक पाए। प्रभुने उनके चरणोंको अपनी छातीसे चिपका लिया तथा हँसते हुए कहने लगे—“यह देखिए आचार्य! मैंने चोरको जकड़ लिया है। चोर बार-बार चोरी करता है, परन्तु गृहस्थ एक ही बार पकड़कर सारी कसर निकाल देता है।”

यह सुनकर अद्वैताचार्य कहने लगे—“प्रभो! मेरे प्राण, बुद्धि, मन एवं देह आदि सब आपके ही हैं। अतः आप चाहे मेरा संहार करें अथवा मेरी रक्षा करें, इस विषयमें आप स्वतन्त्र हैं। परन्तु आप मेरे प्रभु हैं, मैं आपका एक तुच्छ सेवक हूँ। अतः मेरी चरणधूलि लेना आपके लिए उचित नहीं है। इस तरह तो मेरा सर्वनाश हो जाएगा।”

यह सुनकर प्रभु विश्वम्भर कहने लगे—“हे आचार्य! आप तो भक्तिके भण्डारी हैं। इसीलिए मैं आपकी सेवा करता हूँ। यदि कोई आपकी चरण-रजको अपने शरीर पर मलता है, तो वह कृष्णप्रेमके समुद्रमें डूब जाता है। यदि आप कृपा कर किसीको भक्ति प्रदान न करें तो वह अपनी चेष्टासे लाखों जन्मोंमें भी भक्ति प्राप्त नहीं कर सकता।”

इस प्रकार श्रीगौरसुन्दर आनन्दसे अद्वैताचार्यकी महिमाका गान कर रहे थे। यही भगवानका स्वभाव है कि वे स्वयं

अपने भक्तकी महिमाको बढ़ाते हैं। अद्वैताचार्यके ऊपर प्रभुकी अपार करुणा देखकर सभी वैष्णववृन्दके नेत्रोंसे आनन्दश्रु प्रवाहित होने लगे। उसी समय प्रभु उठकर उद्दण्ड नृत्य करने लगे तथा भक्तवृन्द उन्हें घेरकर कीर्तन करने लगे।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी पर कृपा

नवद्वीपमें ही शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी नामक एक वैष्णव रहा करते थे। पूर्व जन्ममें वे सुदामा विप्र थे। उनके ऊपर महाप्रभुकी अपार करुणा थी। वे परम सुशान्त और भजन साधनमें तल्लीन रहते थे। परन्तु कोई भी ऐसे महान वैष्णवको पहचान नहीं पाता था। वे नवद्वीपमें घर-घर जाकर अपने कंधेमें झोली लटकाकर भिक्षा करते हुए, निरन्तर कृष्ण-कृष्ण कहते हुए रोते रहते थे। लोग एक साधारण भिखारी जानकर उन्हें कुछ विशेष महत्व नहीं देते थे। लोग तो यही विचार करते थे कि यह कोई अत्यन्त दरिद्र भिखारी है। यह सारा दिन भिक्षा करता है तथा रातको भिक्षामें प्राप्त वस्तुओंको कृष्णको अर्पण खा लेता है। इस प्रकार यह अपना जीवन निर्वाह करता है। परन्तु शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी तो सदा-सर्वदा कृष्णप्रेमके समुद्रमें ढूबे रहते थे। उन्हें तो किसी वस्तुकी आवश्यकता थी ही नहीं, वे तो केवल लोगोंका कल्याण करनेके लिए घर-घर जाकर उन्हें कृष्णनाम सुनाया करते थे। परन्तु श्रीगौरसुन्दरके कृपापात्रको कौन पहचान सकता है? जिसपर श्रीगौरसुन्दरकी कृपा होती है, केवल वही व्यक्ति उनके भक्तोंको पहचान सकता है। अन्य कोई नहीं। जैसे द्वापरयुगमें

सुदामा विप्रकी महिमाको कौन जानता था? परन्तु जब वे फटेहाल अवस्थामें द्वारिका पहुँचे, तो कृष्णने स्वयं उनकी सेवा की। तब कृष्णकी कृपासे ही जगत सुदामाजीकी महिमाको जान पाया था। एकदिन श्रीगौरसुन्दर भगवद् आवेशमें सभी भक्तोंपर कृपा कर रहे थे। उस समय ये भी वहीं पर उपस्थित थे तथा प्रभुका दर्शनकर प्रेममें प्रमत्त होकर अपने कंधेमें झोली लटकाकर कभी नाच रहे थे, तो कभी गा रहे थे। यह देखकर प्रभुका हृदय गद्गद हो गया। वे बड़े स्नेहसे बोले—“शुक्लाम्बर! मेरे पास आओ। तुम मेरे जन्म-जन्मके दरिद्र सेवक हो। तुमने अपना सर्वस्व मुझे अपर्णकर भिक्षु धर्मको ग्रहण किया है। इसलिए मैं पूर्णरूपसे तुम्हारे वशमें हूँ। और इसीलिए मैं सदा-सर्वदा तुम्हारे दिये हुए वस्तुओंको ही ग्रहण करता हूँ। यदि तुम नहीं भी देते हो, तो भी मैं तुम्हारे हाथसे जबरदस्ती छीनकर खा लेता हूँ। क्या तुम्हें याद है कि जब तुम द्वारिकामें मुझसे मिलने आये थे तो उस समय तुम मेरे लिए कुछ चावल लेकर आये थे। परन्तु मेरा वैभव देखकर तुम्हारा साहस नहीं हुआ कि तुम मुझे वह तुच्छ उपहार दे सको। उस समय मैंने जबरदस्ती तुम्हारे हाथसे छीनकर वे चावल खाये थे। और उस समय स्वयं रुक्मिणीने मेरा हाथ पकड़ लिया था।” ऐसा कहकर प्रभु श्रीगौरसुन्दरने शुक्लाम्बरकी झोलीमें हाथ डालकर एक मुँही भिक्षाके चावल निकाल लिये तथा मुँहमें डालकर आनन्दसे रोते-रोते उन चावलोंको चबाने लगे। यह देखकर शुक्लाम्बर हाय! हाय! करते हुए

कहने लगे—‘हे प्रभो! सर्वनाश हो गया। ये तुच्छ चावल आपके लायक नहीं हैं। इन चावलोंमें बहुतसे छोटे-छोटे कंकड़ भी हैं।’

यह सुनकर प्रभु हँसते हुए कहने लगे—“शुक्लाम्बर! तुम्हारे कंकड़युक्त चावलोंको भी मैं बड़े प्रेमसे खाता हूँ। परन्तु अभक्तके द्वारा दिये हुए अमृतकी ओर ताकता भी नहीं हूँ।”

प्रभु स्वतन्त्र हैं तथा भक्तोंके जीवन स्वरूप हैं। वे अपने भक्तके चावल चबा रहे हैं, उन्हें कौन रोक सकता है। अपने भक्तके ऊपर प्रभुकी ऐसी अपार करुणाको देखकर सिरपर हाथ देकर सभी वैष्णवलोग आनन्दसे विहङ्ग होकर क्रन्दन करने लगे। चारों ओर आनन्दकी लहर दौड़ गई। सभी आत्मविभोर होकर कृष्ण कीर्तन करने लगे। शुक्लाम्बरकी तो अवस्था ही अद्भुत हो गई थी। वे कभी प्रभुके चरणोंमें गिरकर रोते-रोते लोट-पोट खा रहे थे, तो कभी उदण्ड नृत्य कर रहे थे। यह देखकर प्रभु प्रसन्न होकर बोले—“शुक्लाम्बर! मैं सर्वदा ही तुम्हारे हृदयमें निवास करता हूँ। जब तुम भोजन करते हो तो मेरा भोजन करना हो जाता है। जब तुम भिक्षाके लिए भ्रमण करते हो, तो उस समय मेरा भ्रमण हो जाता है। प्रेमभक्ति लुटानेके लिए ही मेरा यह अवतार हुआ है। तुम जन्म-जन्मके मेरे प्रेमी भक्त हो। मैं तुम्हें प्रेमाभक्ति प्रदानकर रहा हूँ। तुम इसे अच्छी तरह गाँठ बाँध लो कि प्रेमभक्ति ही मेरा प्राण है। शुक्लाम्बरके प्रति प्रभुका यह वरदान सुनकर वैष्णव-मण्डली प्रभु एवं शुक्लाम्बरकी जय-जयकार करने लगी। यद्यपि

शास्त्रोंमें वर्णन है कि भगवानको विधिपूर्वक मंत्र पढ़ते हुए और विभिन्न प्रकारकी मुद्राओंके द्वारा भोग अर्पण करना चाहिए। यहाँ तक कि उस भोगको अदीक्षित व्यक्ति स्पर्श भी न करे। परन्तु भक्तके पास भगवान शास्त्रके विधियोंको भी जो कि स्वयं उन्हींके द्वारा बनायी गयी है, उनकी उपेक्षा कर देते हैं। इसके प्रमाण सुदामाविप्र एवं शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी हैं। इसके द्वारा भगवान यह दिखाना चाहते हैं कि भक्ति ही समस्त विधियोंका मूल है। अन्ये होनेके कारण जिस मूर्खको इस बातपर विश्वास नहीं होता है, उसका सर्वनाश निश्चित है। क्योंकि भगवान सम्पूर्णरूपसे अपने प्रिय वैष्णवोंके वशीभूत होते हैं। ऐसे वैष्णवोंको पुत्र, परिवार, स्त्री इत्यादिके मोहमें फँसे हुए दुर्भागी लोग नहीं पहचान पाते हैं। अतः जो वैष्णवोंको निर्धन, मूर्ख इत्यादि जानकर उनका उपहास करते हैं, कृष्णका भजन करनेपर भी उनका भजन व्यर्थ चला जाता है। क्योंकि वेद-शास्त्र स्पष्टरूपसे घोषणा कर रहे हैं कि “अकिञ्चन प्राण कृष्ण”。 अर्थात् कृष्ण तो एकमात्र अकिञ्चनोंके ही प्राण स्वरूप हैं। श्रीगौरसुन्दरने शुक्लाम्बर पर कृपाके माध्यमसे इसी बातको जगतमें प्रकाशित किया। जो व्यक्ति शुक्लाम्बरके चावलोंको खानेकी गौरसुन्दरकी इस लीलाको श्रवण करता है, उसे अवश्य ही श्रीगौरसुन्दरके चरणोंमें प्रेमाभक्ति प्राप्त होती है।

(क्रमशः)

एकादशी माहात्म्य

—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी
गालव नामक एक तपस्वी मुनि थे।

उनके पुत्रका नाम भद्रशील था। ध्रुव, प्रह्लाद आदि जिस प्रकार बाल्यकालसे ही हरिभजन में रत थे, उसी प्रकार भद्रशील भी समस्त धर्मोंका परित्याग करके शिशु अवस्थासे ही भगवद् पादपद्मोंकी सेवामे लग चुके थे। वेदपाठ, तप-जप, शास्त्र अध्ययनके साथ दीनहीन भावसे भद्रशील हरिमन्दिरका मार्जन करते थे एवं शुद्ध चित्तसे प्रत्येक कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षके एकादशी-ब्रतोंका पालन करते थे।

पुत्रकी इस प्रकारकी भक्ति देखकर उसके पिता गालवमुनिको आश्यर्च हुआ एवं वे भद्रशीलसे पूछने लगे कि धर्म आचरणका फल क्या है? भद्रशीलने कहा,—“हे पिताजी! इस एकादशी-प्रतका फल भाषा द्वारा प्रकाशित नहीं किया जा सकता। आकाशके तारोंकी गणना करनेकी क्षमता किसीकी हो भी सकती है, समुद्रका जल भी कलशीसे भरा जा सकता है, पृथ्वीके धूलिकणोंकी गणना करना सम्भव हो सकता है; किन्तु इस एकादशी-ब्रतके फलका वर्णन किसीके द्वारा भी सम्भव नहीं है। जब आप इतने ही अधीर हो रहे हैं तो कहता हूँ, आप श्रवण करें।”

पुर्व जन्ममें मैंने सोमवशंमें जन्मग्रहण किया था। मेरा नाम धर्मकीर्ति था। मैं जम्बुद्वीपका एकछत्र राजा था। मैं खूब दुष्ट प्रकृतिका था। सदैव अधर्ममें रत रहकर साधुओं एवं प्रजा आदिको कष्ट पहुँचाता था। इस प्रकार मैंने पाप कार्योंमें जीवन काटा था। दैवयोगसे एकदिन मैं सेना लेकर रथमें बैठकर शिकार करने गया। वनमार्गमें

एक हरिणको देखकर मैंने उसको पकड़नेके लिए घेरा एवं कहा—“इस हरिणको तुम यदि नहीं मार सके, तो तुम्हारी खैर नहीं। जिसकी तरफसे हरिण भाग जाएगा, उसका वंश सहित वध कर दूँगा। इस बातसे सेना भयभीत हो गई एवं सावधानी पूर्वक हरिणको पकड़नेके लिए तैयार हो गई। हरिण भी शङ्काकुल होकर विचार करने लगा—“मैं जिस सैनिककी ओरसे भागूँगा, राजा वंशसहित उसे मृत्युदण्ड दे देगा। मेरे जैसे एक नगण्य प्राणीके लिए अनेक लोग मृत्युको प्राप्त होंगे। आज शुभ एकादशी तिथि है। यदि आज ही के दिन एकादशी तिथिमें मेरी मृत्यु हो जाती है तो खूब अच्छा होगा। एकादशी तिथिमें मृत्यु होने पर मैं पशुयोनिसे मुक्तिलाभ कर सकूँगा। जो होगा सो होगा, मैं राजाकी ओरसे भागूँगा। राजाके हाथसे निधन होने पर यह पापयोनि प्राप्त पशुत्व समाप्त होगा एवं मोक्ष प्राप्त होगा। और यदि किसी प्रकार भागकर मेरे प्राणोंकी रक्षा होती है, तो राजा लज्जित होगा एवं सैन्यदलकी भी रक्षा हो जाएगी।” ऐसा सोचकर हरिण मेरी तरफ होकर भाग गया। मैंने उसको निशाना बाँधकर बाण छाड़ दिया। किन्तु नियतिका ऐसा परिहास हुआ कि मेरा बाण चूककर व्यर्थ हो गया। मैं खूब लज्जित हुआ। क्रोधसे काँपने लगा तथा घोड़ेकी पीठ पर बैठकर घोर वनमें प्रवेश कर उस हरिणको खोजने लगा। किन्तु बहुत खोज करने पर भी हरिणको नहीं देख सका। अत्यन्त परिश्रम करने पर मेरे घोड़ेकी मृत्यु हो गई। मैं भी खूब थक गया था। अतः भूख, प्याससे दुःखित होकर वृक्षके नीचे सो

गया। मेरी सेना द्वारा मेरी बहुत खोज करने पर भी मुझे न पाकर वापस लौट गए। इधर रात्रिके अन्तिम प्रहरमें उस वृक्षके नीचे मेरी मृत्यु हो गई। महा भयङ्कर दो यमदूत आकर बड़ी रस्सीसे बाँधकर मुझे यमराजके पास ले गए। महाजन यमराजने दूतोंका तिरस्कार करते हुए कहा—“अकारण इनको यहाँ क्यों लाये हो? यह राजा समस्त पापोंसे मुक्त हो चुका है। कारण एकादशी उपवासके दिन इसने देहत्याग किया है। मैं तुम सबको सावधान कर रहा हूँ कि जो एकादशी व्रत पालन करते हैं, हरि मन्दिर मार्जन करते हैं एवं गोविन्दके नामका कीर्तन करके हरि भजनमें रत रहते हैं, उनको कभी भी यहाँ लेकर मत आना। बल्कि उनका यथोचित सम्मान करना।”

यमराजके इस प्रकारके वाक्योंको सुनकर दूतगण आश्चर्यमें पड़ गए और हाथ जोड़कर धर्मराजका स्तव करने लगे। महाजन यमराजके मुखसे यह कथा सुनकर मैं आश्चर्यमें पड़ गया! यमराजने मेरी विधिपूर्वक सेवा की। तब आकाशसे एक दिव्य रथ आया एवं मुझे दिव्य गति प्राप्त हुई। अनजानेमें एकादशी व्रत पालन करके मुझे ब्रह्मलोकमें स्थान प्राप्त हुआ। मैंने ही वर्तमानमें आपके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया है। मेरे दिव्य ज्ञानका अपहरण नहीं हुआ है। इसलिए मैंने समझा है कि हरिभजन ही सार वस्तु है एवं एकादशी व्रत पालनके समान मैं अन्य कोई साधन न जानकर एकादशी व्रतका पालन करता हूँ।

पुत्रकी बातसे गालव मुनि अत्यन्त आनन्दित हुए एवं इस प्रकारके भक्त-पुत्रको प्राप्त कर

स्वयंको गौरवान्वित और भाग्यवान समझकर बार-बार उसका चुम्बन करने लगे। एकादशी व्रतपरायण हरिभक्त पुत्रका संग पाकर गालवमुनि हरिपरायण होकर एकादशी व्रतका पालन करने लग गए।

माधव तिथि, भक्ति जननी, यतने पालन करि।
कृष्ण वसति, वसति बलि, परम आदरे बरि॥

विविध संवाद

जम्मू-कश्मीरमें श्रीमन्महाप्रभुजीकी

वाणीका प्रचार

दुर्भेद्य व्यवस्था

हवाई अड्डेसे आरम्भ करके सर्वत्र अभूतपूर्व रक्षाकी व्यवस्था थी। रक्षासीमाको अतिक्रमण करके किसीको भी हवाई अड्डेकी सीमामें प्रवेश करनेका उपाय नहीं था। समग्र भारतकी राजधानी दिल्ली एवं अन्यान्य प्रधान महानगर मुम्बई, कलकत्ता, चेन्नई आदिके हवाई अड्डों पर भी इतनी कठोर व्यवस्था नहीं है। हवाई जहाजसे उत्तरनेके साथ ही साथ पुलिस एवं अर्द्ध-सैनिकबल प्रतिरक्षाके लिए प्रस्तुत था। यह प्रतिरक्षा अड्डेसे बाहर आकर कुछ शिथिल हो गई, फिर भी सर्वत्र पुलिस अत्यन्त सतर्क दिखाई देती थी।

अभूतपूर्व स्वागत

जम्मू-कश्मीरकी जनताने जिस प्रकारसे श्रीलमहाराजजीका स्वागत किया, इससे पहले चार सम्प्रदायके किसी आचार्यका इतने उत्साहके साथ उन्होंने कभी स्वागत नहीं किया। भूस्वर्ग जम्मू-कश्मीरके हवाई अड्डे पर फूलकी माला इत्यादि ले जाना निषेध है। श्रीलमहाराजजी लगभग चालीस भक्तों (संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं

गृहस्थ) सहित जम्मू-विजयके लिए गए थे। मठवासी भक्तोंके साथ कीर्तन करते हुए दो सौ भक्त हाथोंमें फूलकी मालाएँ लेकर हवाई अड्डेके बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। हवाई जहाजसे उत्तरनेके साथ ही स्थानीय पुलिसबलने बताया कि आपके स्वागतके लिए अनेक भक्त दीर्घकालसे प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे उच्च-संकीर्तन करने पर भी नहीं थके हैं। बाहर जाने पर देखा गया कि तीन सौ से भी अधिक भक्तोंने सम्मिलित होकर वातावरणको भक्तिमय कर दिया।

भूस्वर्ग जम्मूमें हरिकथा

वर्तमान वर्षमें प्रायः समग्र पश्चिम भारत और उत्तर भारतके कुछ अंश आधिदैविक तापसे प्रचुर परिमाणमें प्रभावित होने पर भी श्रीलमहाराजजी चुनावसे कुछ दिन पहले यहाँ हरिकथा परिवेशण करने गए। हरिकथाके प्रधान-प्रधान आलोच्य विषय थे—(१) मायावाद खण्डन, (२) भक्तप्रवर जाम्बवान्‌की कथा, (३) श्रील सनातन गोस्वामी द्वारा बताए गए पाँच प्रकारके भक्त, (४) ब्राह्मण और वैष्णव, (५) ब्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति प्रेम।

मायावाद क्या है? भक्तप्रवर शङ्करने इसका प्रचार क्यों किया? मायावादियोंकी गति क्या है? श्रीलमहाराजजीने इन समस्त विषयों पर विशद आलोचना की। मायावादकी गतिके सम्बन्धमें श्रीलमहाराजजीने कहा—मायावादी वेदोंके प्रादेशिक वाक्यों ‘अहं ब्रह्मास्मि’, ‘सर्व खल्विदं ब्रह्म’ इत्यादि तथा ‘सोऽहम्’, ‘शिवोऽहम्’ वाक्योंको लेकर ही खोंचातानी करते हैं। पहले ये ‘ॐ नमः शिवाय’—‘ॐ नमः शिवाय’ जप करते हैं। बादमें स्वयंको

परिपक्व समझकर ‘ॐ नमः शिवाय’ के बदले ‘शिवोऽहम्’, ‘शिवोऽहम्’ जप करते हैं। शिवजीकी शक्ति पार्वती देवी इससे अत्यन्त रुष्ट होकर कहती है—“दुष्ट! पहले मुझे अपनी माँ कहता था, और अब स्वयं शिव बनकर मुझे अपनी ‘वामा’ बनाना चाहता है। अच्छा! मैं तुझे उपयुक्त दण्ड दे रही हूँ।” ऐसा कहकर वे उन्मत्त होकर सम्पूर्ण निर्वस्त्र होकर ‘शिवोऽहम्’, ‘सोऽहम्’, ‘अहं ब्रह्मास्मि’ उच्चारण करने वालोंके सिर तलवार द्वारा छेदन कर देती है। इसी रूपमें विध्वंसकारी पार्वतीका ही रूप हुआ—कराल वदनी कालीरूप। श्रीशिव ठाकुर असमयमें प्रलयका आभास देखकर पार्वतीको रोकनेकी इच्छासे मार्गमें लेट जाते हैं। पार्वती देवी कालीके रूपमें रास्तेको अतिक्रमण करते समय श्रीशिव ठाकुरके अङ्गसे अपने चरणके स्पर्श होनेसे अपनी जिह्वाको बाहर निकालकर निरुत्साहित हो जाती है। इसलिए ही काली देवीको जीभ बाहर निकालती हुई हम दर्शन करते हैं। पुष्पमालाके बदले कालीदेवी ‘शिवोऽहम्’ उच्चारणकारियोंके मुण्डकी माला बनाकर अपने गलेमें धारण करती हैं। उनके हाथोंको काटकर अपनी कमरमें बाँधकर वस्त्ररूपमें धारणकर लज्जा निवारण करती हैं। इस विध्वंसकारी लीला द्वारा उन्होंने जगतको शिक्षा दी है कि जिससे कोई जानबूझकर ‘अहं ब्रह्मास्मि’, ‘शिवोऽहम्’ इत्यादि उच्चारण न करे। उच्चारण करनेसे उनको अकालमें ही प्राण त्यागने पड़ेंगे, कोई उनको बचा नहीं सकता। और एक उल्लेखयोग्य विषय है कि कालीदेवीके गलेमें जो मुण्डमाला दिखाई देती

है, उनके ललाट पर त्रिपुण्ड्र तिलक देखा जाता है, न कि वैष्णवोंके ललाट पर रचित ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक।

भक्तप्रवर जाम्बवान्‌की गुफा आज भी है। इससे जाम्बवतीकी कथा स्मृति पटल पर उदित हो जाती है। भगवान श्रीकृष्णके प्रति राजा सत्राजित द्वारा आरोप लगाने पर श्रीकृष्णने नरवत् लीलामें स्यमन्तक मणि लाकर सत्राजितको प्रदान की। परवर्ती कालमें उक्त मणि सत्यभामाके विवाहके समय राजा सत्राजितने दहेज रूपमें श्रीसत्यभामा सहित श्रीकृष्णको प्रदान की। जम्मूसे श्रीनगर तक प्रायः ३०० कि. मी. की गुफा आज भी विद्यमान है। कोई-कोई भक्त उस गुफामें प्रवेश करके प्रत्यावर्तन नहीं करते थे तथा आतङ्कवादियों द्वारा इस गुफाका अपव्यवहार करने हेतु इसका द्वार बन्द कर दिया गया है, जिससे कोई भी गुफामें प्रवेश नहीं कर सकता। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रके नरवत् लीलाके समय श्रीसीता- देवीकी खोजके लिए जाम्बवान्, हनुमान, अङ्गद इत्यादिमेंसे समुद्र तटपर आकर कौन छलांग लगाएगा—यह आलोचना होने पर भक्त जाम्बवानने कहा—“मैं वृद्ध हो गया हूँ। मैं अपनी युवावस्थाकी कथा कहता हूँ। भक्तवत्सल भगवान वैकुण्ठमें श्रीनारायणके रूपमें अवस्थान कर रहे थे। भक्तोंकी इच्छा पूर्तिहेतु धराधाममें श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण हुए। दैत्यराज बलिकी छलना करने हेतु भगवानने जब त्रिविक्रम रूप धारण किया, उस समय मैंने मनसे भी अधिक तेज गतिसे पृथ्वीकी सात बार परिक्रमा की थी। वर्तमानमें समुद्र लंघन करनेका सामर्थ्य होने

पर भी बूढ़ापा हेतु लौटनेकी आशंका करता हूँ।”

इसी भक्तप्रवर जाम्बवानने त्रेतायुगमें भगवान रामचन्द्रकी प्रचुर सेवा की थी। परवर्ती कालमें द्वापर युगमें अपनी पालित कन्या जाम्बवतीका विवाह श्रीकृष्णके साथ कराके भगवानके ससुर बन गए तथा नरवत् लीलामें भगवान श्रीकृष्णके भी प्रणम्य बने।

सनातन धर्म और पाँच प्रकारके भक्तोंका तारतम्य

सनातन धर्मकी आलोचना करते समय श्रीलमहाराजजीने कहा कि जो वस्तु सदैव वर्तमान रहती है, वह सनातन है। यही सनातन वस्तु भी दो प्रकारकी है—(१) आत्मा, (२) परमात्मा।

आत्माके लिए स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र भक्तश्रेष्ठ अर्जुनको लक्ष्य करके जगतको शिक्षा देकर कह रहे हैं—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

(गीता २/२४)

यह जीवात्मा अच्छेद्य, अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है। यह नित्य, सभी योनियोंमें भ्रमण करनेवाला, स्थायी और अचल अर्थात् स्थिरतर है। यह सनातन अर्थात् सदा ही विद्यमान है।

सनातन धर्मके सम्बन्धमें श्रीब्रह्मा सम्प्रदायके प्रवर्तक एवं हमारे आदिगुरु श्रीब्रह्माजीने कहा है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपवजौकसाम्।

यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्मसनातनम् ॥

(श्रीमद्भा. १०/१४/३२)

अहो! नन्द, यशोदा आदि ब्रजवासी गोपगण धन्य-भाग्य हैं। क्योंकि परमानन्दस्वरूप सनातन परिपूर्ण ब्रह्म उनके अपने सगे सम्बन्धी और सुहृद हैं।

श्रीब्रह्मा भगवानके सखा, गोवत्स आदिको अपने उपास्य पीताम्बर चतुर्भुज रूपमें दर्शन कर मोहित हो गए एवं स्वाभाविक अवस्थामें आनेके बाद श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

इस श्लोकमें श्रीकृष्णको पूर्णब्रह्म सनातन कहा गया है। ये दो सनातन वस्तुएँ जिस धर्मके द्वारा संयुक्त होती हैं, उसे सनातन धर्म कहते हैं। जैसे अट्टालिका बनाने हेतु एकसे अधिक ईटोंको जोड़नेके लिए सीमेंट, बालू, जल इत्यादि मसालेकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दो सनातन वस्तुओंको जोड़नेमें जो धर्म मध्यस्थताका कार्य करता है, वही सनातन धर्म है। इसी धर्मका ही दूसरा नाम जैव धर्म, भागवत धर्म व प्रेम धर्म है। इसी धर्मके आश्रयमें ही साधक गोलोक वृन्दावनमें प्रवेश करके युगल-किशोर व श्रीराधाविनोद विहारीजीकी सेवा लाभ करता है।

पाँच प्रकारके भक्तोंका तारतम्य—(१) ज्ञानी भक्त—प्रह्लाद महाराज आदि, (२) शुद्ध भक्त—अम्बरीष महाराज, (३) प्रेमी भक्त—श्रीहनुमानजी, (४) प्रेमपर भक्त—पाण्डव और (५) प्रेमातुर भक्त—कृष्णके मन्त्री व सखा उद्धव।

इनकी विशद वर्णना करते हुए श्रील-महाराजजीने ब्रजवासियोंकी सेवा-परिपाटीका वर्णन किया। ब्रजवासी भक्तोंके क्रममें नहीं गिने जाते। ये तो भक्तोंके भी आराध्य और मुकुटमणि हैं। ब्रजवासियोंकी कृपा एवं उनके

आनुगत्यके अतिरिक्त कोई भी श्यामसुन्दर व विनोद- विहारीजीकी कृपा प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं है। यह आनुगत्य वैष्णवों एवं वैष्णवोंमें अग्रगण्य श्रीगुरुपादपद्मसे ही आरम्भ होगा।

यूरेसियामें श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका

प्रचार

जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादके अन्तरङ्गपार्षदप्रवर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता श्रीलभक्तिप्रश्नान केशव गोस्वामी महाराजके अनुगृहीत अस्मदीय शिक्षागुरुदेव ३०विष्णुपाद अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी सफलताके साथ यूरोप और पूर्व अविभाजित रसियाके यूक्रेनमें प्रचारकर स्वदेश भारतभूमिमें लौट आए हैं। १९-९-२००२ से २९-९-२००२ तक यारह दिनके संक्षिप्त यूरेसिया प्रचारमें श्रीलमहाराजजीने यूरोपके अष्ट्रियाकी राजधानी विएनामें तीन दिन, यूक्रेनके ओडेशा और इलियाश (माक्सेवादी नेता लेनिनके पिता इलियाशके नामके अनुसार) में प्रचार किया।

यूरोपमें प्रचारका प्रमुख विषय था—भजन और साधुसङ्गकी आवश्यकता। यूक्रेन स्थित ओडेशा और इलियाशमें प्रचारके प्रधान विषय थे—श्रीमद्भागवतके प्राकट्यका कारण, श्रीप्रह्लाद चरित्र, अम्बरीष चरित्र, भरत चरित्र, स्वयं भगवान् श्रीकृष्णकी बाल्यलीला और परचर्चा नहीं करना।

श्रीप्रह्लाद महाराजके चरित्रकी आलोचना करते हुए श्रीलमहाराजजी बोले—“जगद्गुरु श्रीलभक्तिसिद्धान्त ‘प्रभुपाद’ ने श्रीप्रह्लाद-चरित्रकी १०८ बार आलोचना की थी। श्रीमद्भागवत

या दूसरे ग्रन्थोंमें अनेक आलोच्य विषय रहने पर भी श्रीप्रह्लाद-चरित्रकी आलोचनाके पीछे क्या निगृह रहस्य छिपा हुआ है?

(१) शास्त्रोंमें कहा गया है—

गुरु पादपद्मे यार रहे निष्ठा भक्ति।
जगत तारिते सेइ धरे महाशक्ति॥

श्रीप्रह्लाद महाराजजीकी अपने गुरुदेव देवर्षि नारदजीके श्रीचरणकमलोंमें इतनी निष्ठाभक्ति थी कि वे समग्र जगतके उद्धारकर्ता हुए हैं। श्रीगुरुपादपद्ममें ऐकान्तिक निष्ठाभक्तिके बिना कोई अपना ही उद्धार नहीं कर पाता है। जगतके उद्धारकी बात तो दूर रही। इसलिए हमलोगोंको श्रीगुरुपादपद्मोंमें एकनिष्ठ होना पड़ेगा।

(२) सप्तम स्कन्धके प्रारम्भमें पहले श्लोकमें देखा जाता है—

समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयं।
इन्द्रस्यार्थं कथं दैत्यानवधाद्विषमो यथा॥

इस श्लोकमें 'समः प्रियः' एवं सुहृद्शब्दोंमें ब्रजके प्रधान-प्रधान भावसमूह छिपे हुए हैं। मुख्य और गौण भेदसे भक्तिरस दो प्रकारका है। मुख्यरस—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, शृङ्गार भेदसे पाँच प्रकारका है। गौण रस—हास्य, अद्भुत, करुण, रौद्र, भयानक, वीर, वीभत्स भेदसे सात प्रकारका है। मुख्य रसोंमें शान्त रस ब्रजमें सुप्तावस्थामें है, उनके बारेमें हमारे पूर्वाचार्य श्रीलविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुरजीका विचार अलग प्रकारका है। श्रीमद्भागवत एकादश स्कन्धमें एक श्लोककी टीकामें 'गाव' अर्थात् गौओंको माता या वात्सल्य रस एवं 'नग' अर्थात् गोवर्धन आदि

पर्वतोंको सख्यरसके आश्रयके रूपमें वर्णन किया गया है। इसलिए ब्रजमें शान्त-रसका प्रकाश लुप्त है। ब्रजमें शुद्ध दास्य भी नहीं देखा जाता है। शुद्ध दास्य अयोध्यामें श्रीरामभक्त हनुमानजीमें देखा जाता है। ब्रजमें श्रीकृष्णके कोई दास नहीं है। ब्रजमें जिन दासोंका वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है, वे सभी ब्रजराज श्रीनन्दमहाराजके दास हैं। इन दासोंमें कोई वात्सल्यभावमिश्रित तो कोई सख्यरसमिश्रित हैं। इसलिए ब्रजमें शुद्ध दास्य नहीं है।

मुख्य रसोंमें बाकी रह गए—सख्य, वात्सल्य और मधुर। उन्नत रसोंके द्वारा श्रीकृष्ण अधिक रूपमें वशीभूत होते हैं। इसलिए श्रीचैतन्यचरितामृतमें देखा जाता है—

मोर पुत्र मोर सखा मोर प्राणपति।
एइ भावे जेइ मोरे करे शुद्धभक्ति॥
आपनाके बड़ माने आमारे सम—हीन।
सेइ भावे हइ आमि ताहार अधीन॥

अर्थात् कृष्ण मेरा पुत्र है, मैं उसका पालन करनेवाला हूँ, वह मेरे द्वारा पालित है—इस प्रकारका वात्सल्य भाव है। कृष्ण मेरा सखा है, मैं उसका सखा हूँ, हम दोनोंमें समानता है—सख्य भाव इस प्रकारका है। श्रीकृष्ण मेरे प्राणपति या प्रियतम और मैं उनकी प्रियतमा हूँ—इस प्रकारके मधुर भावसे जो शुद्ध-भक्ति करते हैं अथवा रस भेदमें मुझे हीन (छोटा) समझकर अपनेको मेरे समान या मुझसे बड़ा मानते हैं, उस भावमें मैं उनके अधीन होता हूँ।

पूर्व श्लोकमें 'समः' शब्दके द्वारा सख्य रस सूचित हो रहा है। सखागण शुद्ध सख्य भावमें श्रीकृष्णके कन्धे पर चढ़नेमें भी

सङ्केत नहीं करते हैं। अधिकन्तु वे आनन्दित होते हैं तथा श्रीकृष्णको भी आनन्द प्रदान करते हैं। जब कभी श्रीकृष्ण अपने बड़प्पनको स्थापित करना चाहते हैं, तत्क्षणात् श्रीदाम बोल उठते हैं—‘तुमि कोन बड़ लोक, तुमि आमि सम।’ अनेक बातोंमें मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ। तुम्हारे पिताजीकी नौ लाख गौएँ हैं तो मेरे पिताजीकी ग्यारह लाख गौएँ हैं। तुम्हारे माता-पिताका एक ही बच्चा है। हमारे पिता-माताके तीन बच्चे हैं। इसलिए मैं तुमसे श्रेष्ठ हूँ। इसीलिए श्रीलकविराज गोस्वामीने स्वरचित श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थमें लिखा है—

सखा शुद्ध सख्ये करे स्कन्धे आरोहण।
तुमि कोन बड़ लोक—तुमि आमि सम॥

श्लोकके ‘सुहृद’ शब्दके द्वारा वात्सल्य रस सूचित हुआ है। वात्सल्य रसके आश्रय माँ यशोदा, नन्दबाबा आदिका मनोभाव है—मैं कृष्णका पालन करनेवाला हूँ। यदि मैं ही उसका पालन नहीं करूँगा, तो कौन करेगा? उनके हृदयमें कृष्णके प्रति लेशमात्र भी भगवत्ताका भाव नहीं है। एक दिन नन्दबाबाके बड़े भाई उपानन्दजीने बैठानमें एक सभाका आयोजन किया। उस सभामें वे नन्दबाबासे बोले—“नन्द! तुम कभी भी कृष्णको डॉट-फटकार मत लगाना और यशोदाको भी बोल देना कि वह कृष्णसे कुछ भी न कहे तथा उसका कान न उमेरे और न ही पीटे। विशेष रूपसे सपनेमें भी कृष्णको न बाँधे।” यह सुनकर नन्दमहाराज मन्द-मन्द मुस्कराते हुए पूछने लगे कि इसका क्या कारण है? आप कहना क्या चाहते हैं? इससे पहले तो

आपने कभी ऐसी बात नहीं कही।

नन्दबाबाकी बात सुनकर श्रीउपानन्दजी बोले—“नन्द! क्या तुम्हें याद नहीं है कि नामकरणके समय गर्गचार्यजीने स्पष्टरूपसे कहा था कि यह बालक नारायणके समान ही है। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह कृष्ण साक्षात् परब्रह्म नारायण ही है। यदि ऐसा नहीं है तो एक छोटा-सा बालक इतने विशाल गिरिराज पर्वतको उखाड़कर अपने बाँए हाथकी कनिष्ठ अंगुली पर सात दिन तक बिना किसी कष्टके किस प्रकार धारण कर सकता है?”

यह सुनकर नन्दमहाराज मुस्कराते हुए कहने लगे—“मैंने सुना है कि अस्सी सालके बाद ही ग्वालोंकी बुद्धि परिपक्व होती है। परन्तु अभी तो आप अस्सी वर्षके नहीं हुए, इसलिए आप ऐसी नासमझीकी बातें कर रहे हैं। नहीं तो आप ऐसा विचार भी कैसे कर सकते थे? परब्रह्मको तो भूख-प्यास नहीं लगती, वह तो कभी झूठ नहीं बोलता और न ही छोटी-छोटी बातोंके लिए क्रोधित होता है। परन्तु हमारा लाला तो ठीक इसके विपरीत कार्य करता है। उसे झूठ बोले बिना कुछ हजम ही नहीं होता है। भोजन देनेमें थोड़ी-सी देर होनेपर ही तो वह गुस्सेमें बर्तनोंको तोड़ डालता है। इसके अतिरिक्त उसकी माखन-चोरीकी शिकायतोंको सुनते-सुनते तो हमारे कान ही पक गए हैं।”

इस प्रकार इन प्रमाणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि कृष्णमें चाहे कितना ही ऐश्वर्य क्यों न दिखाई पड़े, परन्तु नन्दबाबा, यशोदा आदि ब्रजवासी कभी भी कृष्णको भगवान नहीं

मानते। उन्हें तो कृष्ण अपना पुत्र ही दिखाई पड़ता है। स्वयं कृष्ण ही कह रहे हैं—
 माता मारे पुत्र भावे करेन बन्धन।
 अति हीन ज्ञाने करे लालन पालन॥
 (चै. च.)

अर्थात् मैया मुझे पुत्र मानकर बाँध देती है तथा अबोध जानकर मेरा लालन-पालन करती है।

उपर्युक्त श्लोकमें 'प्रियः' शब्दके द्वारा मधुर रस सूचित हुआ है। मधुर रसकी आश्रय ब्रजदेवियाँ श्रीकृष्णको अपना प्राणप्रिय मानती हैं, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं। एक दिन द्वारिकामें अर्जुनने कृष्णसे पूछा—“हे कृष्ण! मैंने सुना है कि ब्रजकी गोपियाँ आपको कर्कश वाणीके द्वारा गालीगलौज करती हैं, तथापि गोपियाँ आपको इतनी प्रिय क्यों हैं? यहाँ तक कि आप द्वारिकामें अपने राजमहलमें शयनकी अवस्थामें भी गोपियोंका नाम लेकर रोते हैं। इसके अतिरिक्त जब बड़े-बड़े ऋषि-मुनि आपकी स्तुति करते हैं तो आप उनकी उपेक्षा भी कर देते हैं। इसका कारण क्या है?” यह सुनकर श्रीकृष्ण बोले—“अर्जुन! तुम मेरे परम प्रिय सखा हो। इसलिए तुमसे सत्य बात कहनेमें मुझे कोई हिचक नहीं है।

ब्रजपुर जरितृणां पारुषावाचा यथा प्रमोदयति।
 स्तुतिमपि महामुनिनाम् मधुर पदादपि न सखे तथा॥

अर्थात् हे सखे! ब्रजमें जारभाव (उपपति भाव) की आश्रय गोपियोंके कठोर एवं कर्कश वाक्य मुझे जैसा आनन्द प्रदान करते हैं, वैसा आनन्द तो बड़े-बड़े ऋषि-महर्षियोंके मधुर-मधुर पदसंयुक्त स्तुतियाँ भी नहीं करतीं।

इसलिए श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी श्रीचैतन्यचरितामृतमें वर्णन करते हैं—
 प्रिया यदि मान करि करये भर्त्सन।
 वेद-स्तुति हइते हरे सेइ मार मन॥
 अर्थात् प्रिया यदि मान करके मेरा भर्त्सन भी करती है, अर्थात् मुझे कठोर वाक्य भी कहती है, तो भी उनका वह भर्त्सन वेद-स्तुतिकी अपेक्षा मेरा मन हरण कर लेता है।

(३) सहिष्णुताकी शिक्षा

भजनप्रिय साधकोंको कितना सहिष्णु होना चाहिए प्रह्लादजीके चरित्रसे यह स्पष्ट हो जाता है।

हिरण्यकशिपुने राजशक्ति, दैवशक्ति और मायाशक्तिके द्वारा प्रह्लादजीको कितना कष्ट प्रदान किया, परन्तु प्रह्लादजीने उद्धिग्न हुए बिना चुपचाप सबकुछ सहन किया। लेशमात्र भी हिरण्यकशिपुका प्रतिवाद नहीं किया। पिता होकर स्वयं अपने अबोध पुत्रके प्रति किसीने ऐसा अन्याय, अत्याचार किया हो—ऐसा उदाहरण इतिहासमें दूसरा नहीं है। प्रह्लादजीके चरित्रसे ही प्रभावित होकर श्रीलक्ष्मिसिद्धान्त सरस्वती प्रभुपादने अपने अनुगत जनोंको कहा है कि सहिष्णु होना मठवासियोंका प्रधान कर्तव्य है।

(४) प्रह्लादजीके चरित्रमें भजनकी सुन्दर परिपाटी—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
 अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
 इति पुंसार्पिता विष्णो भक्तिश्चेन्नवलक्षणा।
 क्रियते भगवत्यद्वा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम्॥

(श्री म द्वा ग व त

इस श्लोकमें श्रवण शब्दसे भगवानके नाम, रूप, गुण, लीला, परिकर इत्यादिके श्रवणका पता चलता है। इसी प्रकार कीर्तन और स्मरणके विषयमें भी समझना चाहिए। स्मरण शब्दसे पता चलता है कि उपर्युक्त विषयोंका चिन्तन क्रमानुसार करना चाहिए। पादसेवन शब्दसे पता चलता है कि स्थान, परिस्थिति और समयके अनुसार परिचर्या (सेवा) करनी चाहिए। अर्चन शब्दका तात्पर्य विष्णुकी पूजासे, बन्दन शब्दका तात्पर्य नमस्कारसे है। दास शब्दसे हमें यह समझना चाहिए कि हम भगवानके दास हैं। सख्य शब्दके द्वारा पता चलता है कि बन्धु भावसे कृष्णके हितकी चेष्टा करनी चाहिए। आत्मनिवेदनका तात्पर्य देहसे आत्मातक कृष्णको सम्पूर्णरूपसे समर्पित करना। इस भक्तिका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिए, यह 'पुंसार्पिता विष्णो' शब्दसे स्पष्ट होता है। अर्थात् यदि साधक सर्वप्रथम विष्णुके चरणोंमें स्वयंको ही समर्पित करके उपर्युक्त अन्यान्य अङ्गोंका अनुष्ठान करता है, तभी उसकी भक्ति सिद्ध होगी, अन्यथा नहीं।

यहाँ पर प्रश्न उठता है कि किस उद्देश्यसे इस भक्तिका पालन करना चाहिए? इसके उत्तरमें कहते हैं कि भगवानके सुखके लिए ही भक्तिका अनुष्ठान करना चाहिए। परन्तु विष्णुके चरणोंमें कोई स्वयंको समर्पित नहीं कर सकता। इसके लिए उसे पहले आश्रय-भगवान अर्थात् सद्गुरुके श्रीचरणकमलोंमें स्वयंको समर्पित करना पड़ेगा। तब उन्हेंके आनुगत्यमें नवविधा भक्तिका पालन करनेसे उसकी भक्ति सिद्ध हो सकती है। इसीलिए

शास्त्रोंमें वर्णन मिलता है कि नवविधा भक्तिके अतिरिक्त कृष्णप्रेम प्राप्त करनेका अन्य उपाय नहीं है—

**भजनेर मध्ये श्रेष्ठ नवविधा भक्ति।
कृष्णप्रेम कृष्ण दिते धरे महाशक्ति॥**
(चैतन्यचरितामृत)

अर्थात् भजनके समस्त अङ्गोंमें नवविधा भक्ति प्रथान है। यह नवविधा भक्ति कृष्णप्रेम एवं स्वयं कृष्णको भी प्रदान करनेमें समर्थ है।

(५) महापुरुषोंकी कृपाके बिना कृष्णप्रेम असम्भव—

प्रहाद महाराजजीके चरित्रसे स्पष्ट रूपसे पता चलता है कि महापुरुषोंकी कृपाके बिना भगवानके चरणकमलोंमें मति नहीं लग सकती।

**नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्गिं
सृशत्यनर्थापगमो यदर्थः।
महीयसां पादरजोऽभिषेकं
निष्क्रिज्यनानां न वृणीत यावत्॥**
(श्रीमद्भा. ७/५/३२)

अर्थात् जब तक जीव अकिञ्चन, भगवत्प्रेमी, महात्मा, भगवद्भक्तोंके चरणोंकी धूलमें स्नान नहीं कर लेता, तब तक समस्त अनर्थोंका नाश करनेवाले भगवत्चरणोंमें उसकी मति नहीं लगती।

ठीक ऐसा ही उपदेश जड़ भरत महाराजजीने राजा रहूणणको प्रदान किया—

**रहूणैतत्पसा न याति न
चेज्यया निर्वपणाद् गृहद्वा।
नच्छन्दसा नैव जलाग्नि सूर्यै
बिना महत्पादरजोऽभिषेकम्॥**
(श्रीमद्भा.

(५/१२/१२)

हे रहूण ! महापुरुषोंके चरणोंकी धूलसे अपनेको नहलाए बिना केवल तप, यज्ञादि वैदिक कर्म, अन्नादिके दान, ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, सन्न्यास अथवा जल, अग्नि और सूर्य आदि देवताओंकी उपासना-द्वारा यह परमात्म ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता ।

इसके अतिरिक्त श्रीचैतन्यचरितामृतमें श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामीजीने भी कहा है—

महत् कृपा बिना कोन कर्मे भक्ति नय ।
कृष्णभक्ति दूरे रहु संसार नहे क्षय ॥
महापुरुषोंकी कृपाके बिना किसी भी साधनसे भक्ति नहीं हो सकती । कृष्णभक्ति तो बहुत दूरकी बात है, उनका तो संसार-बन्धन ही नष्ट नहीं हो पाता ।

अन्यत्र भी देखा जाता है—
भक्तपदधूलि आर भक्तपदजल ।
भक्तभुक्तशेष एइ तिन साधनेर बल ॥
एइ तिन सेवा हइते कृष्णप्रेम हय ।
पुनः पुनः सर्वशास्त्रे फुकारिया कय ॥
अर्थात् समस्त शास्त्र पुनः पुनः घोषणा कर रहे हैं कि भक्तोंकी चरणधूलि, चरणामृत एवं उनका उच्छिष्ट प्रसाद—इन तीनोंका सेवन करनेसे साधनमें बल प्राप्त होता है तथा कृष्णप्रेम भी प्राप्त हो जाता है ।

इन बातोंसे प्रेरित होकर श्रीलप्रभुपाद स्वयं अपने अभीष्ट भावोंमें उद्दीपित होकर श्रीप्रह्लाद महाराजजीके उपाख्यानका अनुशीलन करते थे । उनके सेवक अभिमानी हमलोगोंको भी पुनःपुनः प्रह्लाद-चरित्रका अनुशीलन करना चाहिए ।

—त्रिदण्डभिक्षु भक्तिवेदान्त माधव

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः प्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ मार्गशीर्ष मास, सन् २००२, २० नवम्बर—१९ दिसम्बर

{ संख्या ९

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुर भक्तिविनोद कृत]

(गताङ्कसे आगे)

यत्पादाब्जं विधिशिवनुतं वीक्षितुं ते महान्तो वर्ष-वर्षे रथपरिगतौ गौडदेशात् समेत्य।
प्रीतिं लब्ध्वा मनसि महतीमोद्रदेशात् समीयुगाँड़ीयानां परमसुहृदं तं यतीन्द्रं स्मरामि ॥६१॥
निर्विण्णानां विपुलपतनं स्त्रीषु सम्भाषणं यत् तत्तद्वोषात् स्वमतचरकारक्षणार्थं य ईशः।
दोषात् क्षुद्रादपि लघुहरिं वर्जयित्वा मुमोद तं गौराङ्गं विमलचरितं साधुमूर्ति स्मरामि ॥६२॥
दैवाङ्गीनान्वयजनिवतां तत्त्वबुद्धिप्रभावादाचार्यत्वं भवति यदिदं तत्त्वमेकं सुगृह्म्।
प्रद्युम्नाय प्रचुरकृपया ज्ञापयामास यस्तत् तं गौराङ्गं गुणमधुकरं जाड्यशून्यं स्मरामि ॥६३॥

वात्सल्येन स्वभजनवशात् दासगोस्वामिनं यस्तत्त्वज्ञानं भजनविषये शिक्षयामास साक्षात्।
सिन्धोस्तीरे चरमसमये स्थापयामास दासं तं गौराङ्गं स्वचरणजुषां बन्धुमूर्ति स्मरामि ॥६४॥
पुरी रामाख्यं यो गुरुजनकथा निन्दनपरं सदोपेक्ष्य भ्रान्तं कलिकलुषकूपे गतमिह।
अमोघं स्वीचक्रे हरिजनकृपालेशतः शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥६५॥

सनातनं कण्डुरसप्रपीडितं स्पर्शेन शुद्धं कृपया चकार यः।
स्वनाशबुद्धिं परिशोधयन्नहो स्मरामि गौरं नवखण्डनागरम् ॥६६॥

गोपीनाथं नरपतिबलाद्यो रक्षात्मतन्त्रो रामानन्दानुजनिजजनं शिक्षयन् धर्मतत्त्वम्।
पापैर्लब्धं धनमिह सदा त्याज्यमेव स्वधर्मतं तं गौराङ्गं स्वजनशिवदं भद्रमूर्ति स्मरामि ॥६७॥

उपायनं राघवतः समावृतं पुनः पुनः प्राप्तमपि स्वदेशतः।
स्वभक्ततोयेन परात्परात्मना तमेव गौरं सततं स्मराम्यहम् ॥६८॥

तेलं नाङ्गीकृतं येन संन्यासधर्मरक्षिणा। जगदानन्ददत्तञ्च स्मरामि तं महाप्रभुम् ॥६९॥
जगन्नाथागारे गरुडसदने स्तम्भनिकटे ददर्श श्रीमूर्ति प्रणयविवशा कापि जरती।
समारूह्य स्कन्धं यदमलहरेस्तुष्टमनसः शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७०॥

पद्मानुवाद—

विधि शिव वन्दित प्रभु चरन देखन हित प्रति वर्ष।
रथ यात्रा पर आवहि गौड भक्त अति हर्ष ॥६१॥
नारी भाषण होत है वैरागिन अति दोष।
याते लघु हरिदास कौं कीनौं त्याग सरोष ॥६२॥
गूढतत्त्व प्रद्युम्नते कहाँ कृपा कर एक।
“जाति वर्ण कुल होत है दैव आग ले टेक ॥
तेउ आचारजता लहत भक्ति ज्ञान बलपाय।
गुरुता कारन ज्ञान है जाति वरन कुल नाँय” ॥६३॥
दास गुसाँई कौं भजन तत्त्व सिखायौ नाथ।
भेजे पुनि वृन्दा विधिन वत्सलता के साथ ॥
अन्त समय हरिदास के, भक्त बन्धुता साथ।
संकीर्तन कर दई प्रभु जलनिधि निकट समाध ॥६४॥
गुरु जन ‘निन्दनपर’ पुरी-रामचन्द्र को देख।
मूढ पतित भव कूपमें दीनौं गौर उपेख ॥
भद्राचार्य अमोघ को लियौ गौर अपनाय।
हरि जन करुणा दीनजन बान्धवता दरसाय ॥६५॥
उदित सनातन ‘कण्डुरस पीड़ा’ निज तन त्याग।
प्रभु आलिङ्गन कर कियौ दिव्य अङ्ग बड़ भाग ॥६६॥

राजकोशके अपव्यय हेतु उड़ीसा धीश।
 गौपीनाथै दण्डच किय, निश्चय विश्वावीस ॥
 भवानन्द आदिक जनन प्रभुसे किय अनुरोध।
 क्षमाकर न हित नृपतिसौ कहिवे की संबोध ॥
 प्रभु कही “अन्याय धन संग्रह उचित न होय।
 तुच्छ भोग हित वैष्णव ‘अथरम’ कर तन कोय” ॥६७ ॥
 देत उपायन वर्षप्रति राघव पण्डित लाय।
 सोई भक्त उपहार प्रभु भुज्जत मन हरखाय ॥६८ ॥
 लाये जगदानन्दजू चन्दन आदिक तेल।
 कियौ न अङ्गीकार प्रभु न्यास धरम मनमेल ॥६९ ॥
 जगन्नाथ दरशन करत गरुड खंभकी टेक।
 उचकि पाय प्रभु अँसधर चढ़ी डोकरी एक ॥
 गोविन्द लगे निवारवे निरख तासु अनुराग।
 प्रभु कही “ना यह दशा होत बड़े ही भाग” ॥७० ॥

(क्रमशः)

वेदानुगब्रुव और वेद-विरुद्ध अपसम्प्रदाय

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्रश्न १—भारतीय वेदानुगब्रुव (जो किसी वेदान्त-शास्त्र और उनका आनुगत्य स्वीकारकर भी वेदार्थ विरोधी मत प्रकाश करनेवाले न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक और कर्ममीमांसा आदि शास्त्र, वेदविरुद्ध बौद्ध और चार्वाक मत आदि नाना प्रकारके मतवाद प्रचलित हुए हैं।

“भारतवर्षमें सिद्ध-ज्ञानस्वरूप वेद-सम्मत वेदान्त-शास्त्र और उनका आनुगत्य स्वीकारकर भी वेदार्थ विरोधी मत प्रकाश करनेवाले न्याय, सांख्य, पातञ्जल, वैशेषिक और कर्ममीमांसा आदि शास्त्र, वेदविरुद्ध बौद्ध और चार्वाक मत आदि नाना प्रकारके मतवाद प्रचलित हुए हैं।

आदि देशोंमें जड़वाद (Materialism), स्थिरत्ववाद (Positivism), निरीश्वर कर्मवाद (Secularism), निर्वाण सुखवाद (Pessimism), सन्देहवाद (Scepticism), अद्वैत (सर्वब्रह्म) वाद (Pantheism), नास्तिक्यवाद (Atheism), आदि नाना प्रकारके मतवाद (Ism) प्रचलित हैं। कुछ ऐसे भी मतवाद हैं, जिनमें युक्तिके द्वारा ईश्वरकी संस्थापाना की गई है। श्रद्धालु होकर ईश्वरकी उपासना करनी चाहिए, ऐसा भी एक मत संसारके अनेक देशोंमें प्रचलित हुआ है। यह मत कहीं-कहीं केवल श्रद्धामूलक मतवादके रूपमें प्रतिष्ठित है और कहीं-कहीं इसे परमेश्वर प्रदत्त धर्म

माना गया है। जिन-जिन देशोंमें केवल श्रद्धामूलक माना जाता है, वहाँ उसे ईशानुगतिवाद (theism) कहते हैं और जिन-जिन देशोंमें उसे ईश्वर प्रदत्त माना जाता है, वहाँ यह ईश्वर प्रदत्त शास्त्रीय मत अर्थात् ईसाई धर्म (Christianity), मुसलमान धर्म (Mohammedanism) आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।”

(तत्त्वविवेक १म अनु. ३)

प्रश्न २—किन-किन धर्मोंको विधर्म, छलधर्म, धर्माभास या अधर्म कहा जा सकता है?

“जिस धर्ममें नास्तिक्यवाद, सन्देहवाद, अनात्मवाद, स्वभाववाद और निर्विशेषवाद आदि अनर्थ विद्यमान रहते हैं, उस धर्मको भक्तजन धर्म नहीं मानते हैं, ऐसे धर्मोंको छलधर्म, विधर्म, धर्माभास या अधर्म समझना चाहिए।”

(श्रीचैतन्य शिक्षामृत १/१)

प्रश्न ३—जड़वादियोंका धर्म कैसा होता है?

“जड़वादियोंने जिस धर्मका उपदेश दिया है, वह धर्म भित्तिरहित घरकी तरह पतनशील है।”

(तत्त्वविवेक १म अनु. ९/१२)

प्रश्न ४—भारतीय और विदेशीय स्वार्थ और निःस्वार्थ जड़ानन्दवाद क्या हैं तथा इनका स्वरूप क्या है?

“जड़ानन्दवादी दो प्रकारके हैं—(१) स्वार्थ-जड़ानन्दवादी और (२) निःस्वार्थजड़ानन्दवादी। स्वार्थ जड़ानन्दवादियोंका कहना है—जब ईश्वर, आत्मा, परलोक और कर्मफल आदि नहीं हैं, तब सांसारिक (ऐहिक) कर्मफलोंसे कुछ सावधान रहकर अनवरत (निरन्तर) इन्द्रिय-

सुखोंका भोग करते हुए आनन्दसे समय बिताना चाहिए। ★★★ भारतवर्षमें चार्वाक, चीनमें नास्तिक इयाङ्चू (Yangchoo), ग्रीसमें नास्तिम लुसिप्स (Leucippus), मध्य एशियामें सर्डनापेलास् (Sardanapalas), रोममें लुक्रिसियस् (Lucrctius) आदि और अन्यान्य कई देशोंमें इस मतकी पुष्टि करनेवाले ग्रन्थोंकी रचनाएँ हुई हैं। वॉन हलबाक् (Von Holbach) का कहना है कि अपने-अपने सुखवर्द्धक धर्म ही ग्रहणयोग्य हैं दूसरोंके सुखसे अपनेको सुखी करनेका कौशल ही धर्म कहा जा सकता है। ★★★ ग्रीस देशके प्लेटो (Plato) और अरस्तू (Aristotle) ने परमेश्वरको एकमात्र नित्यवस्तु और समस्त जगतका एकमात्र मूल कारण नहीं माना है। कणाद-मतके दोष-समूह ही इन सभी विद्वानोंके मतोंमें देखे जाते हैं। गेसेन्डी (Gassendi) ने परमाणुवादको स्वीकार करते हुए परमेश्वरको परमाणुओंका सृष्टिकर्ता माना है।

फ्रान्समें डिडेरो (Diderot) और लामेट्रि (Lamettre) आदिने निःस्वार्थ जड़ानन्दवादका प्रचार किया है। निःस्वार्थ जड़ानन्दवाद क्रमशः उन्नत होकर फ्रान्सके कोंत् (Comte) नामक एक दार्शनिकके ग्रन्थमें सम्पूर्णताको प्राप्त हुआ है। ★★★ उन्होंने अपने मतको स्थिरत्ववाद (Positivism) कहा है। परन्तु उनका यह मत नितान्त असार है; क्योंकि उनके मतानुसार हम जड़ीय प्रतीति और जड़गत विधिके अतिरिक्त अन्य वस्तुको नहीं जान पाते। इन्द्रियोंको छोड़कर हमारे लिए ज्ञान प्राप्त करनेका और कोई साधन नहीं है। उनका धर्म यही है कि अन्तःकरण वृत्तिकी आलोचनाके

द्वारा इस वृत्तिकी ही मनुष्य पुष्टि करें। उसकी पुष्टि करनेके लिए एक काल्पनिक विषयका अवलम्बन कर एक स्त्री-मूर्तिकी पूजा करनी चाहिए। विषय असत्य होनेपर भी यह प्रवृत्ति चरितार्थ हो जाती है। पृथ्वी उनका महत्तत्व (Supreme Fetich) है। देश ही उनका कार्यधार (Supreme Medium) है; मानव-प्रकृति ही उसकी प्रधान सत्ता (Supreme Being) है। हाथमें एक शिशुको लिये हुए स्त्री-मूर्तिकी प्रातःकाल, मध्याह और सन्ध्याके समय पूजा करनी चाहिए। ★★★ इंग्लैंड देशके विद्वान मिल् (Mill) ने जड़वादको भाववादके रूपमें विचार करते हुए अन्तमें कई विषयोंमें कोंतके सहित ऐक्य प्रकट करते हुए निःस्वार्थ-जड़ानन्दवादकी ही पुष्टि की है। एक प्रकारके निरीश्वर संसारवाद (Secularism) ने आपाततः इंग्लैंडके अनेक युवकोंका चित्त आकर्षण किया है। मिल् लुइस् (Mill Lewis), पेन (Paine), कारलाइल् (Carlyle), बेन्थम् (Bentham), कोम्ब (Combe) आदि तार्किक ही इस मतके प्रवर्त्तक हैं। यह मत दो भागोंमें विभक्त है। हॉलियोक (Holyoake) एक विभागके प्रधान कर्ता हैं। उन्होंने अनुग्रहपूर्वक ईश्वरको कुछ अंशों तक स्वीकार किया है। दूसरे विभागके प्रवर्त्त ब्रेडलॉ (Bradlaugh) सम्पूर्ण नास्तिक हैं।”

(तत्त्वविवेक १ म अनु. ५-८)

प्रश्न ५—निःस्वार्थ-जड़ानन्दवादियोंका वास्तविक स्वरूप क्या है?

“स्वार्थ-जड़ानन्दवादियोंका असल स्वरूप उनके मतके नामसे प्रकट है। वास्तवमें निःस्वार्थ-जड़ानन्दवादी भी स्वार्थवादी ही हैं।”

(त. वि. १ म अनु. ९-१२)

प्रश्न ६—निःस्वार्थवादियोंका मत क्या स्वार्थरहित है?

“ईश्वर-संश्रव-चातुर्यवशतः निरीश्वर कर्मवादका भारतमें इतना व्यापक रूपमें प्रचार है। इसके प्रचारक स्मार्त-पण्डित हैं। एक व्यक्तिका स्वार्थ दूसरे व्यक्तिके स्वार्थको आघात (बाधा) पहुँचाता है। अतएव क्षुद्र बुद्धिवाले व्यक्ति निःस्वार्थ नामको सुनकर अपनी स्वार्थ-पूर्तिकी आशामें निःस्वार्थवादियोंके मतका आदर करते हैं।”

(त. वि. १ म अनु. ९-१२)

प्रश्न ७—पाश्चात्य विद्वानोंमें मौलिक-पाण्डित्य कहाँ तक है?

“पाश्चात्य देशोंमें अत्यन्त अल्प समयसे ही मनुष्योंकी सभ्यता और बुद्धिवृत्तिका परिचय पाया जाता है। इसलिए उन सब देशोंमें ढिण्डल, हाक्सलि, डारविन आदि पण्डित माने जाते हैं। पुरानी बातको नई भाषामें बोलनेसे जो पाण्डित्य लक्षित होता है, उसका ही वे दावा कर सकते हैं। पाँच हजार वर्ष पहले जिस श्रीभगवद्गीताका प्रादुर्भाव हुआ था, उसमें आसुर-प्रवृत्तिका वर्णन करते हुए ‘जगदाहुरनीश्वरम्’, ‘अपरस्परसम्भूतं’ आदि श्लोकोंमें यह बतलाया गया है कि स्वभाववाद, क्रमोन्त्रति और क्रमोपत्तिवाद आदि मत आसुर प्रवृत्तिसे उत्पन्न हैं।”

(धर्म और विज्ञान, स. तो. ७/७)

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. ५५—ग्राम्यकथा कहने तथा सुननेसे क्या अमङ्गल होता है एवं भक्ति नष्ट होती है?

उ.—अवश्य ही। श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—
“ग्राम्यकथा ना सुनिबे ग्राम्यवार्ता ना किहिबे।
भाल ना खाइबे आर भाल ना परिबे॥”

अर्थात् श्रीचैतन्य महाप्रभुसे जब श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीने पूछा कि मुझे क्या करना चाहिए तो महाप्रभु उत्तर देते हुए कह रहे हैं कि तुम कभी भी ग्राम्यवार्ता अर्थात् कृष्णसेवाके अतिरिक्त किसी भी प्रकारकी बातें मत करना और न ही किसीसे सुनना। इस प्रकार स्वयं महाप्रभुने रघुनाथजीको लक्ष्यकर भगवद् भजनमें श्रद्धा एवं रुचियुक्त साधकोंके लिए ही यह उपदेश प्रदान किया है। अधिक खानेसे अपनी ही हानि होती है, दूसरेका कुछ नहीं बिगड़ता। अर्थात् दूसरे व्यक्तिके भजनमें वाधा नहीं पहुँचती। किन्तु अच्छा पहनना अधिक हानिकारक है। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति अच्छे कपड़े पहनता है तो उसका उद्देश्य दूसरे व्यक्ति होते हैं। दूसरेके लिए पहननेका क्या तात्पर्य है? दूसरेकी आँखों एवं मनको भजनसे दूर करना ही उनका उद्देश्य होता है। जिह्वाकी लालसा भी अच्छी नहीं है। इससे भी भक्तिकी हानि होती है—

“जिहार लालसे जेझ इति उति धाय।
शिनोदर परायण कृष्ण नाहि पाय।”

यह भी महाप्रभुकी वाणी है। ग्राम्यवार्ता सुननेसे जितनी हानि होती है, उतनी

अच्छा-अच्छा खानेसे नहीं होती और ग्राम्यवार्ता बोलनेसे दूसरेका जितना अकल्याण होता है, उतना अच्छा पहननेसे भी नहीं होता। असद्वार्ता या ग्राम्यवार्ता वेश्याके समान है। उसके द्वारा जीवका हृदय कलुषित और विक्षिप्त हो जाता है। व्यर्थकी बातोंमें जिसकी रुचि अधिक होती है, उसकी रुचि हरिकथामें नहीं हो सकती। इसलिए श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीजीने कहा है—“असद्वार्ता वेश्या विमृज मतिसर्वस्व-हरिणी।” अर्थात् असद्वार्ता उसी प्रकार साधककी बुद्धिको हरण कर लेती है, जिस प्रकार एक वेश्या अपने हाव-भावके द्वारा एक सत् पुरुषका सर्वस्व हरण कर लेती है।

यदि पाँच लोग एक साथ मिलें तो ग्राम्यवार्ता अवश्य ही होगी। इसलिए सदा-सर्वदा भक्तोंको भगवद् कथाओंकी आलोचना करनी चाहिए। क्योंकि निरन्तर हरिकथाओंकी आलोचना होने पर ऐसी असद्वार्ताके लिए समय ही नहीं मिल पाएगा।

जो भजन करना चाहते हैं, उन्हें कदापि असद् वार्ताओंको नहीं सुनना चाहिए और न ही बोलना चाहिए। इसके अतिरिक्त अच्छा खाने और अच्छा पहननेके प्रति भी स्पृहा नहीं होनी चाहिए। अच्छा खाने और पहननेकी इच्छा साधकको हरिभजनसे बहुत दूर कर देती है। यहाँ तक कि उसकी भजनसे छुट्टी भी हो जाती है। इसलिए भजनके इच्छुक व्यक्तियोंको इन विषयोंमें सावधान रहना चाहिए।

नहीं तो अमङ्गल निश्चित है।

प्र. ५६—नित्य कल्याण प्राप्त करनेका उपाय क्या है?

उ.—भगवद् भक्तोंकी शुभ आकांक्षा होती है कि लोग अकल्याणके मार्गमें न चलें, बल्कि सभी कल्याणके मार्गमें चलें। उस नित्य कल्याणका उपाय है—कृष्णके प्रिय श्रीगुरुदेवके चरणोंमें आत्मसमर्पण। जिनके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त करनेसे कृष्णकी सेवा प्राप्त होती है, श्रीरूप गोस्वामीसे अभिन्र उन गुरुदेवकी सेवा दृढ़ विश्वास और प्रीतिपूर्वक करनी चाहिए तथा हरिभजनके विषयमें उनके श्रीमुखसे सुनना चाहिए। श्रीगुरुदेवकी चरणधूलि प्राप्त होनेपर भुवनमङ्गल कृष्णकी माधुर्यमय सेवा प्राप्त की जा सकती है। इसलिए श्रीगुरुदेवके चरकमलोंका नित्यकाल भजन करना चाहिए। श्रीगुरुदेव अप्राकृत जगतके निवासी हैं। इस जड़—जगतके नहीं। वे अनित्य वस्तु अथवा रक्त एवं मांसके पिंड नहीं हैं। उनका स्वरूप भी भगवानके समान ही सच्चिदानन्दमय है। श्रीगुरुपादपद्म नर-ब्रह्म हैं, साधारण नर नहीं हैं। जो भगवान एवं गुरुको जगतकी वस्तु मानते हैं, वे कदापि सेवा नहीं कर सकते और यदि करते भी हैं तो वह अपना स्वार्थ पूरा करनेके लिए एक ढोंग मात्र है। वह शुद्ध सेवा नहीं है, उसको बनिया वृत्ति कहते हैं। जीव जब तक भजनीय वस्तु गुरुदेवका पूर्णरूपसे आनुगत्य नहीं करता, तब तक उसे भगवानका दर्शन नहीं होता। जो श्रीगुरुदेवको अप्राकृत तत्त्व अथवा उन्हें श्रीकृष्णका प्रिय नहीं मानते हैं, वे कदापि (चित् राज्य) कृष्ण-सेवा-राज्यमें

प्रवेश नहीं कर सकते। श्रीगुरुदेवकी कृपा होनेसे ही हम अप्राकृत राज्य अथवा कृष्णके राज्यमें प्रवेश कर सकते हैं, श्रीचैतन्यमहाप्रभुके चरणकमलोंका आश्रय ग्रहणकर चेतनमय दिव्य चक्षुओंके द्वारा उनका दर्शन कर सकते हैं। स्वयंरूप श्रीकृष्णके चरणकमलोंके निकट पहुँचनेका सौभाग्य प्राप्तकर धन्य और कृतार्थ हो सकते हैं। इस प्राकृत विचारोंमें आबद्ध रहकर कभी रूप गोस्वामीसे अभिन्र श्रीगुरुदेवका दर्शन सम्भव नहीं है। इसलिए भजनीय वस्तु गुरु एवं कृष्णका निष्कपट रूपसे भजन करनेसे ही कल्याण होता है तथा भोगपर दर्शन समाप्त हो जाता है। इसलिए हमारी प्रार्थना है—

“आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीमद्गुरुपदाभ्योजधूलि स्यां जन्मजन्मनि ॥”

अर्थात् मैं दाँतोंमें तृण धारणकर दीनतापूर्वक पुनः पुनः यही प्रार्थना करता हूँ कि मैं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष कुछ भी नहीं चाहता हूँ। मैं तो केवल श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंकी धूलि होना चाहता हूँ। जिस प्रकार वे निरन्तर भगवानकी सेवामें नियुक्त रहते हैं, उसी प्रकार उनके आनुगत्यमें मैं भी सदा-सर्वदा भगवानकी सेवा करना चाहता हूँ। कृष्ण मेरे हैं, यदि मैं उनकी सेवा नहीं करूँगा तो उन्हें बहुत कष्ट होगा—जब तक ऐसे विचार हमारे हृदयमें उदित नहीं होंगे, तब तक कृष्णकी प्राप्ति असम्भव है। श्रीगुरुदेवकी प्रीतिपूर्वक सेवाके द्वारा ही यह सौभाग्य प्राप्त हो सकता है।

प्र. ५७—क्या श्रीगुरुदेवके चरणकमलोंमें श्रद्धा ही भक्तिका मूल है?

उ.—अवश्य ही। भक्तिके उदित होनेसे पहले सम्बन्ध-ज्ञान अति आवश्यक है। श्रीगुरुदेव ही वह सम्बन्ध-ज्ञान प्रदान करते हैं। ऐसे अप्राकृत गुरुके प्रति सुदृढ़ श्रद्धा ही भक्तिका मूल है। आदौ श्रद्धा। भक्तिके सोपानोंमें प्रथम सोपान श्रद्धा है। अर्थात् जगतमें बहुत प्रकारके धर्म हैं, ऐसा अन्धविश्वास एवं युक्ति, तर्क इत्यादिको छोड़कर श्रीगुरुदेवके मङ्गलमय उपदेशोंके प्रति श्रद्धा ही आवश्यक है। श्रद्धाका तात्पर्य गुरुदेवके वचनोंमें पूर्ण विश्वास है। अर्थात् गुरुदेवके अतिरिक्त और किसी सांसारिक व्यक्तिके वचनोंमें विश्वास नहीं होना चाहिए। क्योंकि वे लोग कपटी हैं। अतः इस जगतकी समस्त बातोंको त्यागकर हमें श्रीगुरुदेवके वचनों पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिए। नहीं तो मङ्गल असम्भव है। श्रीगुरुदेवकी कृपासे ही हमारे समस्त अनर्थ दूर होंगे तथा हमारी समस्त आशाएँ पूर्ण हो जाएँगी, हम भगवानकी कृपा और उनका दर्शन अवश्य ही प्राप्त कर सकेंगे।

साधु एवं गुरुके निकट जाकर उनका सङ्ग करनेसे हमारी समस्त असुविधाएँ दूर हो जाएँगी तथा हमें शुद्धभक्ति प्राप्त हो जाएगी। इसलिए हमें गुरुदेवके वचनोंमें विश्वास रखकर भगवानकी सेवा करनी चाहिए। गुरुदेव हमें उत्तम वस्तु भक्ति प्रदान कर सकते हैं। यदि सौभाग्यसे हम सद्गुरुको प्राप्त कर लेते हैं, तभी हमारी रक्षा हो सकती है तथा हम भगवानकी सेवा प्राप्त कर सकते हैं। श्रीगुरुदेव सर्वदा ही हमें दिव्यज्ञान एवं भक्ति प्रदान करनेके लिए तत्पर रहते हैं। मैं गुरुको

चलाऊँगा—यह नास्तिकोंका विचार है। यही गुरुकी अवश्य है। यह सर्वदा ही परित्यज्य है। मैं जगतके किसी भी व्यक्तिकी बात नहीं सुनूँगा। केवल वैकुण्ठजगतसे मेरे कल्याणके लिए अवतरित श्रीगुरुदेवकी बात ही सुनूँगा।

हम अणुचैतन्य हैं, परन्तु गुरुदेवकी कृपासे विभुचैतन्य भगवानके निकट जा सकते हैं। हम जागतिक लोगोंका सङ्ग परित्यागकर अपने नित्य प्रभु भगवानके पास जाएँगे। यद्यपि श्रीगुरुदेव स्वयंको भगवानका तुच्छ सेवक मानते हैं, तथापि हम गुरुदेवको भगवानके पास जानेका एकमात्र उपाय तथा उन्हें अपना नित्य बन्धु जानकर उनके चरणोंमें अपना सर्वस्व समर्पण करेंगे। हमारी समस्त चेष्टाएँ निःस्वार्थ रूपमें गुरुदेवकी सेवाके लिए होनी चाहिए। तभी हमारी सर्वार्थ-सिद्धि हो सकती है।

प्र. ५८—सुखी होनेका उपाय क्या है?

उ.—गुरुदेवके चरणोंका आश्रय ग्रहण करनेसे ही अभय, अशोक व सुखी हुआ जा सकता है। सेवाके द्वारा ही उनका सङ्ग प्राप्त हो सकता है। तन, मन एवं वचनसे यदि सदा-सर्वदा श्रीगुरुदेवकी सेवा की जाय तो गुरुकृपा अति शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है। गुरुदेवके प्रसन्न होनेपर गुरुसेवाकी प्रवृत्ति निरन्तर बढ़ती रहती है। यही वास्तविक मङ्गल एवं हमारा प्रयोजन है।

प्र. ५९—‘भक्ति’ क्या चीज है?

उ.—भगवानको सुखी रखना ही भक्ति है। भक्ति कृष्णसुखतात्पर्यमयी है, स्वसुखमयी नहीं। अर्थात् भक्तिमें केवल कृष्णका सुख देखा जाता है, अपना सुख नहीं। भक्ति आत्माकी

स्वाभाविक नित्यवृत्ति है। आत्माके स्वरूपका और कोई धर्म नहीं है। इसके अतिरिक्त जितनी भी वृत्तियाँ हैं—वे सब आत्माका धर्म अथवा जीवके स्वरूपका धर्म नहीं हैं। ये सब नित्य धर्मका विकृत स्वरूप हैं। इसीलिए ये सभी विकृत धर्म परिवर्तनशील और अनित्य हैं। भक्ति शोक, मोह और भयको नष्ट करनेवाली होती है। द्वितीय वस्तु अर्थात् कृष्णके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंमें आसक्ति होनेके कारण ही भय, शोक और मोह इत्यादि उत्पन्न होते हैं। कृष्ण एवं कार्ण (भक्त) के अतिरिक्त जितनी प्रतीतियाँ हैं, वे सभी द्वितीय अभिनिवेश हैं। भक्ति एकाभिनिवेश-मयी (एक ही वस्तु भगवानके प्रति आविष्टता), भगवन्निष्ठामयी और कृष्णाभिनिवेशमयी है।

प्र. ६०—क्या भगवान जीवकी स्वतन्त्रतामें बाधा नहीं देते?

उ.—जीव विभुचैतन्य परमेश्वरका छोटा-सा अंश है। समुद्रका जो जलधर्म है, वही जलधर्म एक बिन्दु जलका भी है। विभु चैतन्य भगवान परम स्वतन्त्र हैं। उनका ही एक छोटा-सा अंश होनेके कारण जीवमें भी अणु मात्रामें स्वतन्त्रता है। जीव सृष्ट-वस्तु नहीं है। अर्थात् जीवका जन्म नहीं है। जीव नित्य है। यह जड़ नहीं, चेतन वस्तु है। जीवकी स्वतन्त्रता किसीके द्वारा दी हुई नहीं है, बल्कि जीवकी सत्तामें ही स्वाभाविक रूपसे स्वतन्त्रता विद्यमान है। स्वतन्त्रताका

दुरुपयोग करनेके कारण ही जीवको कष्ट भोग करना पड़ता है। भगवान किसीकी स्वतन्त्रतामें बाधा नहीं पहुँचाते। वे चेतन धर्मके हन्तारक नहीं हैं। भगवान दयाके सागर हैं। इसलिए वे केवल स्वतन्त्रताके सदुपयोग या दुरुपयोगके विषयमें उपदेश प्रदान करते हैं। जो उन उपदेशोंको श्रवणकर भगवद् भजन करते हैं अर्थात् स्वतन्त्रताका सदुपयोग करते हैं, उनका ही मङ्गल होता है।

प्र. ६१—माया क्या वस्तु है?

उ.—मीयते अनया इति माया। अर्थात् जिसे मापा जा सकता है, वही माया है। माया = माया। अर्थात् 'मा' का अर्थ है नहीं, 'या' का अर्थ जो; अर्थात् जो नहीं है, वही माया है। नाशवान अनित्य वस्तु ही माया है। जो भगवान नहीं है, वही माया है। भगवान मायाके पति हैं। उन्हें मापा नहीं जा सकता अर्थात् भगवानको मन, बुद्धि इत्यादिके द्वारा नहीं जाना जा सकता। इसाइयोंके अनुसार जैसे भगवान एक अलग वस्तु तथा शैतान एक अलग वस्तु है। परन्तु श्रीमद्भागवतमें वर्णित मायाका स्वरूप भगवानसे अलग नहीं है। भागवत-मतके अनुसार कृष्णबहिर्मुख जीवको दण्डितकर उसका संशोधन करना मायाका कार्य है और यह माया भगवानके पश्चात् प्रदेशमें अवस्थित है अर्थात् भगवानके सम्मुख आनेमें लज्जा बोध करती है। (क्रमशः)

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।
साधुभिर्गस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

मैं भक्त-पराधीन हूँ, हे ब्राह्मण! परम भक्त साधुगण मेरे हृदयपर सम्पूर्णरूपसे अधिकार किये हुए हैं। मैं भक्तजनोंका प्रिय हूँ। (श्रीमद्भा. ९/४/६३)

महामन्त्र युगपत् जप्य और उच्च स्वरसे संकीर्तनीय है

—त्रिदण्डस्वामी श्रीभक्तिवेदान्त बोधायन महाराज है, वही विधि है। 'मन्त्र' के सम्बन्धमें श्रीहरिभक्तिविलासके (२ विलास १७७ संख्या) 'संख्यां बिना मन्त्रजप्तस्था मन्त्रप्रकाशनम्' श्लोकमें पाया जाता है—“जब भी मन्त्रकी चर्चा होगी, तभी विधि, संख्या और जपके नियमोंके पालनकी बात होगी।” नारद पञ्चरात्रमें कहते हैं—“शिष्य गुरोपदिष्ट मन्त्रको कभी किसीको न बतलाए, जनसमाजमें इस गुरुप्राप्त मन्त्रको प्रकाशित न करे। शास्त्रोंके गोपनीय विषयोंको किसीको भी उपदेश न करे। श्रीगुरुपादपद्मसे प्राप्त मन्त्रको दूसरोंके निकट प्रकाश करनेपर अनन्त कालतक नरक भोगना पड़ता है। अतः स्वमन्त्र सदैव गोपनीय रखे और अपने शरीरकी भाँति रक्षा करे।”

महामन्त्र और मन्त्र दोनोंके द्वारा जीवका चित्त शुद्ध होता है, चित्त शुद्ध होनेपर समस्त इन्द्रियाँ नश्वर विषयकी प्रवृत्तिसे विमुक्त होकर नित्यत्वकी उपलब्धि करती हैं, तब उनका अधिक हेय या अनुपादेय विचार और प्रबल नहीं हो पाता। मन्त्र और महामन्त्र दोनोंका पृथक् वैशिष्ट्य है। मन्त्रमें काल-अकालका विचार होता है, किन्तु महामन्त्रमें काल-अकाल, योग्य-अयोग्य अथवा स्थान-अस्थानका विचार नहीं है। परन्तु काल्पनिक मन्त्र-नामादिके जपसे किसी प्रकारकी सिद्धिकी सम्भावना नहीं है, क्योंकि वैसे पदसमूह अज्ञरुद्धिवृत्तिजात हैं। जो जीवकी मनन धर्मसे रक्षा करता है, वही मन्त्र है। जड़भोग चिन्तासे मनके विरत होनेकी प्रक्रिया ही 'मन्त्र' रूपसे शास्त्रोंमें चिह्नित है। मनकी रक्षा करनेकी समस्त क्रियासमूहको साधन कहनेके कारण मन्त्रको भी साधन कहा जाता है। उच्चारित मन्त्र हृदयमें धारण करके विषयासक्त मनको नियन्त्रित करने पर ही मन्त्रकी सिद्धि होती है। प्रणव और बीज-पुटित 'नमस्', 'स्वाहा', 'स्वधा'-शब्दादि युक्त और चतुर्थन्त भगवन्नामात्मक पदको मन्त्र कहते हैं। यह साधारण रूपसे अप्रकाश्य है। श्रौत परम्परामें श्रीगुरुदेवसे यह मन्त्र प्राप्त करके विनीत शिष्य कायमनोवाक्यको संयतकर ध्याननिष्ठ होकर मन्त्रोंका जप करे—यही शास्त्र सम्मत विधि है। श्रीहरिनामामृत व्याकरणसे विदित होता है कि 'कर्तव्यत्वनोपदेशः विधिरिति' अर्थात् कर्तव्यरूपमें शास्त्रोंने जो आदेश किया

'महामन्त्र' 'मन्त्र'से अधिक शक्तिशाली है, 'महत्' विशेषणसे विशेषित है। मन्त्र शब्द महत्-शब्दके योगसे महामन्त्र होनेके कारण मन्त्र भी है और महामन्त्र भी है। तब विचारणीय यह है कि जब मन्त्र बीज और प्रणव-पुटित होगा, चतुर्थन्त पदयुक्त और नमस् शब्द आदिका योग होगा, तब यह साधारणके लिए अप्रकाश्य है एवं जब यह बीज और प्रणव-रहित होगा, तब 'महत्' विशेषणसे विशेषित हो या न हो अथवा नमस् प्रभृतिके योगमें चतुर्थन्त पदयुक्त हो या न हो, वह महामन्त्ररूपमें प्रसिद्ध होते ही साधारणके लिए प्रकाश्य है, यहाँ तक कि उच्च स्वरसे कीर्तनीय अथवा संकीर्तनीय है। चतुर्थन्त, प्रणवयुक्त, स्वाहा, स्वधा अथवा

नमः शब्द-समन्वित मन्त्रमें नाम अवश्य है, तथापि मन्त्र तथा महामन्त्रमें भेद यह कि महामन्त्रमें नाम भजनमें मात्र सम्बोधनका पद है। महामन्त्रमें सम्बोधनके अतिरिक्त अन्य कोई विभक्ति नहीं है। मन्त्रमें चतुर्थ्यन्तयुक्त जड़ अहङ्कार निरोधक सम्बन्ध ज्ञान सुस्पष्ट है। महामन्त्र अथवा नामके निकट आत्मसमर्पण अथवा अहङ्कार निर्मुक्त भाव व्यज्जन ही मन्त्रका उद्देश्य है, सम्बन्ध ज्ञान विशिष्ट व्यक्तिका सम्बोधन ही यथेष्ट है। जहाँ जीव साधन राज्यमें प्रवेश करता है, उसका मन्त्र जप ही प्रधान अनुष्ठान है। मन्त्र अनर्थयुक्त जीवको अनर्थमुक्त करता है, नाम अनर्थयुक्त व्यक्तिको कृष्ण प्राप्ति कराता है।

कृष्णमन्त्र हइते हबे संसार मोचन।

कृष्णनाम हइते पाबे कृष्णोर चरण॥

(चै. च. आ. ७/७३)

बीज-पुटित चतुर्थ्यन्त पद प्रयुक्त मन्त्र अथवा प्रणव-पुटित चतुर्थ्यन्त मन्त्र कीर्तनीय नहीं है, परन्तु नाम या सम्बोधन पदयुक्त नाम या बीज प्रणवरहित चतुर्थ्यन्त पद प्रयुक्त नमः शब्द युक्त मन्त्र भी संकीर्तनीय है। यथा 'हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः'—यह पद संकीर्तनीय है।

आजकल अनेक भारवाही सम्प्रदाययुक्त मनोधर्मी शास्त्रानभिज्ञ कपट व्यक्ति कहते रहते हैं कि श्रीचैतन्यमहाप्रभुने 'हरेकृष्ण' महामन्त्र का केवल जप करनेका ही आदेश दिया है, किन्तु अन्यान्य नाम या लीलाकीर्तनका उच्च स्वरसे कीर्तन करनेपर कोई बाधा नहीं है, इसलिए श्रीचैतन्यभागवतमें उल्लेख है—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

**हरे राम हरे राम राम हरे हरे॥
प्रभु कहे, कहिलाम इङ् महामन्त्र।
इहा जप गिया सबे करिया निर्बन्ध॥**

इसलिए 'जप' शब्दका उल्लेख है, अतएव जप करना ही शास्त्रकी विधि है। महामन्त्रमें केवल जपप्रथाका प्रचार कुप्रचार और असत् सिद्धान्त है। विद्वत् जन इस बातको भलीभाँति समझ चुके हैं कि उनका मत खोखला है। विभिन्न कुप्रथाओं और सिद्धान्त विरोधके कारण ही महामन्त्रके जपको सीमाबद्ध कर एक नवीन काल्पनिक पदसमूहका कीर्तन आरम्भ हुआ है। लीलाकीर्तनके सिद्धान्तविरुद्ध सम्बन्धविहीन नामसमूह महाप्रभुके मतका विरोधी हैं। सोलहनाम बत्तीश अक्षरका उच्च स्वरमें कीर्तनके निषेधकी व्यवस्था कभी भी शास्त्रीय युक्ति और सिद्धान्त सम्मत नहीं है। नामापराधीगण ही उच्च स्वरमें महामन्त्र कीर्तनके विरोधी हैं। वर्तमानमें उच्च स्वरसे कीर्तनकी जो रीति प्रचलित देखी जाती है, वह प्राचीन कालसे चली आ रही है।

महामन्त्र ही समस्त मन्त्रोंका अंशीस्वरूप है, अतएव इसमें मन्त्रत्व निहित है। इसीलिए स्वयं महाप्रभु जपके समय निर्बन्धपूर्वक जप-विधिकी बात कहते हैं। जप और कीर्तन शब्दकी संज्ञा श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु पू. २/६४ श्लोकमें वर्णित है—

**नामरूप गुण लीलादीनामुच्चैर्भाषा तु कीर्तनम्।
मन्त्रस्य सुलघुच्चारा जप इत्यभिधीयते॥**

अर्थात् "नाम, रूप, गुण और लीलादिका उच्च स्वरसे आवृत्तिका नाम कीर्तन एवं मन्त्रका अति निम्नस्वरमें आवृत्तिका नाम जप है।" महामन्त्रका मानसजप हो सकता है,

उपांशु जप हो सकता है और उच्च कीर्तन भी हो सकता है। श्रीनृसिंह पुराणमें पाया जाता है—

त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य-भेदान्तिबोधत्।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसश्च त्रिधा मतः।
त्रयाणां जप यज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः॥

जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है—वाचिक, उपांशु और मानस। जपगत विचारसे मानस जप ही सर्वश्रेष्ठ है। जपके समय उच्चारित शब्द दूसरोंके कर्णप्रवेश होनेपर जप सफल नहीं होता है। इसीलिए स्वल्प या लघु उच्चारणयुक्त उपांशु जपकी अपेक्षा मानस जप अर्थात् जहाँ उच्चारणकार्य मन-मनमें सम्पादित होता है, उसकी श्रेष्ठता शास्त्रोंमें उल्लिखित है। एक प्रकारसे उपांशु जपकी अपेक्षा मानस जप, मन्त्र सिद्धिके लिए अधिक सफल होता है। जप और कीर्तनमें भेद यही है कि जपमें जपकारीका अपना स्वार्थ रहता है, किन्तु कीर्तनमें जीवोंके प्रति दयाका भाव उत्तम उदाहरण है। यदि कीर्तन न रहे तो यह जापक-सम्प्रदायकी उत्पत्तिका अभाव होता है क्योंकि मन्त्रको पहले गुरु ही शिष्यके कानोंमें कीर्तन करते हैं, इसके पश्चात् ही उनके शिष्य इसको जपते हैं। श्रील जीवगोस्वामी पाद उच्च स्वरसे नाम संकीर्तनकी बात क्रमसन्दर्भ सप्तम स्कन्ध, पञ्चम अध्यायमें लिखते हैं—“यद्यप्यन्या भक्तिः कलौ कर्तव्या तदा कीर्तनाख्या भक्ति संयोगेनैव” अर्थात् “चौसठ प्रकारकी साधनभक्तिके अन्तर्गत ‘जपकार्य’ कीर्तनके साथ ही करना होगा।” उपांशु या मानस-जपादि कीर्तनाख्याभक्तियोगके साथ करना कर्तव्य है—यही श्रीगौरसुन्दरका

अभिमत है।

जपकी अपेक्षा कीर्तनकी श्रेष्ठताके प्रमाण शास्त्रोंमें उल्लिखित हैं—

जपकर्ता हइते उच्च संकीर्तनकारी।
शतगुण अधिक से पुराणेते धरि॥
शुन विग्र, मन दिया इहार कारण।
जपि आपनारे सबे करये पोषण॥
उच्च करि करिले गोविन्द संकीर्तन।
जन्तुमात्र शुनियाइ पाय विमोचन॥
कहे आपनारे भाव करये पोषण।
कहे वा पोषण करे सहस्रेक जन॥
दुइते के बड़, भावि बुझह आपने।
एइ अभिप्राय गुण उच्च संकीर्तन॥

(चै. भा. आ. १६/२८४-२८६,

२८९-२९०)

नारदीय पुराणमें प्रह्लादजी कहते हैं—

जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन श्रोतृन् पुनाति च॥

“जो हरिनाम जप करते हैं, उनसे उच्च स्वरसे कीर्तनकारी व्यक्ति शतगुणा श्रेष्ठ है। क्योंकि जपकर्ता केवलमात्र स्वयंका ही कल्याण करते हैं, किन्तु उच्चस्वरसे हरिकीर्तनकारी व्यक्ति स्वयंका और समस्त श्रोताओंका भी कल्याण करते हैं।”

महामन्त्रका वाचिक, मानसिक और उपांशु—इन तीनों प्रकारके जपके विधानसे हम विभिन्न शास्त्रीय प्रमाणों द्वारा भलीभाँति अवगत हो चुके हैं। अब प्रश्न है कि “महामन्त्रका कीर्तन अथवा संकीर्तन असंख्यात भावसे किया जा सकता है या नहीं? क्या श्रीगौरसुन्दरने कहीं भी भक्तोंको संख्यापूर्वक कीर्तन अथवा संकीर्तन करनेका उपदेश किया

है?” इस विषयकी आलोचना करनेपर यह स्पष्ट हो जाएगा। श्रीचैतन्यभागवतमें श्रीचैतन्यमहाप्रभु अपने भक्तोंको उपदेश कर रहे हैं—

आपने सबारे प्रभु करे उपदेश।
कृष्णनाम महामन्त्र शुनह विशेष॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम हरे हरे॥

★ ★ ★ *

इह हइते सर्वसिद्धि हइबे सबारा।
सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर॥
दश पाँच मिलि निज दुयारे बसिया।
कीर्तन करह सबे हाते तालि दिया॥

‘सर्वक्षण बल’—इस पदके द्वारा स्वयं महाप्रभुने जपके महत्वको कम बतलाकर असंख्यात कीर्तनकी स्थापना की है। इसलिए दस-पाँच भक्त मिलकर हाथकी ताली बजाकर कीर्तन करनेकी व्यवस्था है। तालके साथ हाथ, मन और स्वरको सामञ्जस्य रखे बिना हाथकी तालीसे कीर्तन करना असम्भव है। संख्या रखकर दोनों हाथोंसे ताली बजाकर कीर्तन करना विचारसङ्गत हो सकता है क्या? चतुर्थन्त पदयुक्त मन्त्र भी यदि प्रणव और बीज रहित हो, तो यदि उसको उच्च स्वरसे असंख्यातपूर्वक कीर्तन किया जा सकता है, तो महामन्त्रकी तो बात ही क्या है? जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद श्रीचैतन्यभागवतके गौडीय भाष्यमें लिखते हैं—“महामन्त्र उच्च स्वरसे ही सर्वक्षण कीर्तनीय है, जप्य नहीं है—ऐसा विचार किसीके चित्तमें उदित न हो, इसलिए महामन्त्र जप करनेका उपदेश भी उल्लिखित है। ‘निर्बन्ध’ शब्द

विधिपूर्वक संख्यानाम ग्रहण करना ही लक्ष्य करता है। महामन्त्र केवल मात्र जपनीय नहीं है, और अजप्य भी नहीं है। महामन्त्रका उच्च स्वरसे कीर्तन करनेका उपदेश होनेपर भी महामन्त्र केवल अनिर्बन्ध कीर्तनीय नहीं है, और इससे नाम मन्त्रमें सम्बोधनके साथ चतुर्थन्त पदका प्रयोग करके कीर्तन करनेकी विधि भी उपेक्षित नहीं हुई।”

श्रीचैतन्यभागवतमें “कृष्णनाम महामन्त्र शुनह विशेष” पयारमें श्रीमन्महाप्रभुने लोगोंको जिस महामन्त्रका उपदेश किया था, वह क्या संख्यापूर्वक किया था? अथवा निर्बन्धकृत नामजपकी संख्यामेंसे एकबार वितरण किया था? यदि वह ऐसा नहीं होती है, तो निश्चय ही महाप्रभुने असंख्यात रूपसे महामन्त्रकी बात कही थी। यदि संख्यानिर्बन्धके बिना महामन्त्रका कीर्तन या संकीर्तन निषिद्ध होता है, तो महाप्रभुने असंख्यातरूपसे करनेके लिए भक्तोंको क्यों उपदेश दिया था? इसके द्वारा महामन्त्र असंख्यात रूपसे कीर्तनीय प्रमाणित होता है। श्रीचैतन्य भागवतमें अन्यत्र भी पाया जाता है—

रात्रिदिन नाम लय खाइते शुइते।
ताँहार महिमा वेदे नाहि पारे दिते॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
हरे राम हरे राम राम हरे हरे॥

एङ श्लोक नाम बलि लय महामन्त्र।
षोलनाम बत्रिश अक्षर एङ तन्त्र॥

उपरोक्त पयारोंमें खाते सोते महामन्त्र करनेका उपदेश विहित है। खाते-सोते किस प्रकार संख्यापूर्वक महामन्त्र करना सम्भवपर है? “सर्वथा बल इथे विधि नाहि आर।”

पयारमें यही प्रतीत होता है कि महामन्त्र निर्बन्धपूर्वक जप और असंख्यात रूपसे कीर्तन या संकीर्तन दोनों ही प्रकारसे किया जा सकता है। ब्रह्माण्ड पुराणके उत्तरखण्डके छठे अध्यायके ५५वें श्लोकमें श्रीकृष्णद्वैपायन वेदव्यासने महाभागवत सूतऋषिको जिस महामन्त्रका उपदेश किया था, वह भी असंख्यात है।

'हरेकृष्णात्युच्चैः' श्लोकमें श्रीमन्महाप्रभुने उच्चस्वरसे वाचिकजप लीलाका प्रदर्शन किया था। बद्ध जीवसमूह कृष्णभक्तिहीन होकर निजेन्द्रियका तोषण करनेके लिए उत्कण्ठित रहते हैं, इसीलिए श्रीगौरसुन्दरने इन सब जीवोंके मङ्गलके लिए कृष्णनाम महामन्त्र कीर्तन करके सहर्ष श्रवण करनेका उपदेश दिया है। नामाचार्य श्रील हरिदास ठाकुर सर्वदा अपतित भावसे तीन लाख नाम ग्रहण करते थे। उसमेंसे एक लाख नाम उच्च स्वरसे, एक लाख नाम अति निकटस्थ व्यक्ति सुन सके—इस रूपमें एवं एक लाख नाम मानसजप करते थे। साक्षात् मायादेवी उनका उच्चस्वरसे नाम कीर्तन श्रवण करके मुग्ध हो गई थीं। लक्ष्मीरा नामक वेश्या उनके नामकीर्तन श्रवणके प्रभावसे प्रसिद्ध वैष्णवी हो गई थी। जगद्गुरु श्रीश्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद अपने

प्रकट कालमें श्रीमद्भागवतादि पाठके प्रारम्भ और अन्तमें सर्वत्र ही मृदङ्ग-करतालादिके संयोगसे कलितारण 'हरे कृष्ण' महामन्त्रका उच्च स्वरसे कीर्तन कराते थे। वर्तमानमें भी उनके अनुयायीगण तत्प्रवर्तित धारानुसार महामन्त्रका उच्च स्वरसे कीर्तन और प्रचार कर रहे हैं। जो महामन्त्रका उच्च स्वरसे कीर्तन या संकीर्तन करनेमें बाधा उत्पन्न करते हैं, वे कलिके ग्रासमें कवलित हतभाग्य जीव हैं।

लोकशिक्षक श्रीमन्महाप्रभुके आचरण और शिक्षा एवं शास्त्रीय विभिन्न प्रकारके प्रमाणमूलक विचारोंके द्वारा यही स्पष्ट होता है कि महामन्त्र अन्य विष्णुमन्त्रोंके समान केवलमात्र जप्य ही नहीं है, वह उच्चस्वरसे कीर्तनीय भी है। अतएव षोलहनाम बत्तीस अक्षरात्मक महामन्त्रमें जब स्वतःसिद्ध भावसे मन्त्रत्व निहित रहता है, तब महामन्त्रको नामात्मक रूपसे जपनेके समय संख्यापूर्वक वाचिक, मानसिक और उपांशु—ये तीन प्रकारके जप होंगे एवं कीर्तनके समय महामन्त्र मृदङ्ग-करतालादिके साथ असंख्यात भावसे उच्च स्वरमें संकीर्तनीय होगा, यही दृढ़ सिद्धान्त है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष ५२ संख्या ४ से अनूदित, अनुवादक—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी एम. ए., एल. एल. बी.)

नाम चिन्तामणि: कृष्णश्चैतन्य-रसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वात्रामनामिनोः॥

‘कृष्णनाम’ चिन्तामणि स्वरूप तथा स्वयं कृष्ण चैतन्य रस विग्रह,

पूर्ण, मायातीत एवं नित्यमुक्त है, क्योंकि नाम और नामीमें भेद नहीं हैं। (श्रीभक्तिरसामृतसिन्धु)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

महाप्रभुका नगर भ्रमण तथा पाषण्डियोंको

प्रत्युत्तर

श्रीगौरसुन्दर मतवाले हस्तीकी भाँति सारे नगरमें भ्रमण करते रहते थे। मार्गमें यदि कोई पण्डित उन्हें मिल जाता तो, उसे शास्त्रार्थके लिए ललकारते। उस समय निमाई पण्डितका पाण्डित्य जगतप्रसिद्ध था। अतः कोई भी उनसे शास्त्रार्थका साहस नहीं कर पाता था। प्रभुके ललकारनेपर पण्डित लोग सिर झुकाकर वहाँसे चुपचाप खिसक जाते थे। प्रभुको देखकर कुछ पाषण्डी लोग उन्हें डरानेकी नीयतसे कहते—“निमाई पण्डित! तुम जो सारी रात श्रीवास्के घरमें दरवाजा बन्द करके कीर्तन करते हो, उसकी शिकायत राजाके पास पहुँच चुकी है। अतः अति शीघ्र ही राजाके सिपाही तुम्हें पकड़नेके लिए आनेवाले हैं। हम तुम्हें अपना समझकर ये सब बातें बता रहे हैं।” यह सुनकर प्रभु मुस्कराते हुए बोलने लगते—“यह तो बहुत ही अच्छी बात है। मैं भी बहुत दिनोंसे राजासे मिलनेकी सोच ही रहा था, परन्तु राजासे मिलनेका कोई उपाय नहीं खोज पा रहा था। अतः आज जब उसके सिपाही मुझे लेने आ ही रहे हैं तो इसी बहाने राजासे भी भेंट हो जाएगी। मैं बचपनमें ही समस्त शास्त्रोंमें पारङ्गत हो गया हूँ, परन्तु मुझे बच्चा जानकर कोई भी पण्डित मुझसे शास्त्रार्थ करना तो दूर, बातचीत करनेमें भी हिचकिचाता है। मैं कबसे खोज रहा हूँ कि मुझे कोई योग्य व्यक्ति मिले, जिसे मैं अपना पाण्डित्य दिखा सकूँ। और आज वह शुभ अवसर आ ही गया। अब मैं राजाके

साथ ही शास्त्रार्थ करूँगा।” यह सुनकर वे लोग उपहास करते हुए कहने लगते—“पण्डित महाशय! वह राजा मुसलमान है, वह आपको कीर्तन सुनानेके लिए या आपसे शास्त्रार्थ करनेके लिए नहीं बुला रहा है, वह तो आपको दण्ड देनेके लिए बुला रहा है।” यह सुनकर प्रभु हँसते हुए वहाँसे अपने घरकी ओर चल पड़ते। सन्ध्याके समय जब वे अपने भक्तोंसे मिलते तो कहते कि “आज नास्तिक एवं पाषण्डियोंसे मेरी बातचीत हुई है। इस अपराधके कारण मेरा मन बड़ा दुःखी है। अतः आज सभी लोग उच्च स्वरसे कीर्तन करें जिससे कि मेरे मनको शान्ति मिले।” प्रभुके ऐसी दैन्ययुक्त वचनोंको सुनकर सभी भक्त रोते-रोते कीर्तन करने लगते। कीर्तनको सुनकर प्रभु आविष्ट हो जाते तथा उन्मत्त होकर नृत्य करने लगते।

लक्ष्मीके वेशमें प्रभुका नृत्य

एक दिन प्रभु श्रीगौरसुन्दर भक्तोंसे बोले कि आज मैं प्रकृति स्वरूपमें (लक्ष्मी रूपमें) नृत्य करूँगा। अतः जो जितेन्द्रिय होगा, केवल उसे ही दर्शन करनेका अधिकार होगा। वही आज घरके भीतर आएगा जिसकी इन्द्रियाँ वशमें हैं। प्रभु लक्ष्मी वेशमें नृत्य करेंगे, यह सुनकर वैष्णवोंको अपार आनन्द हुआ। परन्तु प्रभुकी बादकी बातको सुनकर सभीका हृदय दुःखी हो गया। सबसे पहले श्रीअद्वैताचार्यजी बोले—“आज प्रभुका नृत्य दर्शन करनेकी मेरी योग्यता नहीं है। क्योंकि मैं अजितेन्द्रिय हूँ। अतः मैं आज घरके भीतर नहीं आऊँगा।” यह सुनकर श्रीवास्त्री बोले—“मैं भी सर्वथा

अयोग्य हूँ। मेरी भी इन्द्रियाँ मेरे वशमें नहीं हैं। अतः मैं भी भीतर नहीं आऊँगा।” यह सुनकर प्रभु मन्द-मन्द मुस्कराते हुए बोले—“यदि आपलोग ही भीतर नहीं आएंगे तो मैं किसे लेकर नृत्य करूँगा? अतः आपलोग चिन्ता मत कीजिए। आज मैं आप सबको वरदान देता हूँ कि आप सभी महायोगीश्वर हो जाएंगे। मुझे लक्ष्मीके स्वरूपमें नृत्य करते हुए देखकर भी आप लोगोंके अन्दर किसी प्रकारका विकार नहीं आएगा।” प्रभुका वरदान सुनकर वैष्णवोंका मुखमण्डल खिल गया। तत्पश्चात् प्रभु अपने सभी भक्तोंको साथ लेकर चन्द्रशेखर आचार्यके घरकी ओर चल पड़े। लक्ष्मी स्वरूपमें प्रभुका नृत्य दर्शन करनेके लिए शचीमाता अपनी पुत्रवधू श्रीविष्णुप्रियाके साथ तथा अन्यान्य वैष्णवोंकी स्त्रियाँ भी उत्कण्ठित होकर चन्द्रशेखर आचार्यके घरमें पहुँचीं। तत्पश्चात् प्रभुके आदेशसे भक्त लोगोंने अलग-अलग वेश धारण किए। चन्द्रशेखरके घरमें आनन्दकी बाढ़-सी आ गई। तब प्रभुके आदेशसे मुकुन्दने कीर्तन आरम्भ किया—राम कृष्ण बोल हरि गोपाल-गोविन्द। सभाके बीचमें सबसे पहले हरिदासजी प्रविष्ट हुए। वे वैकुण्ठके प्रहरीके रूपमें सजे हुए थे। उनकी बड़ी-बड़ी मूँछें थीं, सिरपर बहुत बड़ी पगड़ी थी तथा वे हाथमें एक डंडा लेकर सभीको सावधान कर रहे थे—“सावधान! आज जगतके नाथ श्रीगौरसुन्दर लक्ष्मीके वेशमें नृत्य करेंगे। तत्पश्चात् वे कीर्तन करते हुए सभामें चारों तरफ दौड़ने लगे—कृष्ण भजो कृष्ण सेव बल कृष्ण नाम।” उनका सारा शरीर पुलिकित हो रहा था, नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित हो रहे थे। हरिदासको इस वेशमें देखकर वैष्णवलोग हँसने लगे। उन्होंने हँसते हुए पूछा—“आप कौन हैं? यहाँ किसलिए आए हैं?”

हरिदास—“मैं वैकुण्ठका प्रहरी हूँ। वैकुण्ठ छोड़कर आज प्रभु इस स्थानपर प्रेमभक्तिको लुटाने आए हैं। आज वे लक्ष्मीके वेशमें नृत्य करेंगे। इसलिए आप सभी सावधानी पूर्वक उस प्रेमाभक्तिको लूट लीजिए।” ऐसा कहकर वे अपनी मूँछोंको मरोड़ने लगे। अगले ही क्षण नारदजीके वेशमें श्रीवास पण्डितजीने उल्लसित होकर सभामें प्रवेश किया। उनकी बहुत बड़ी सफेद दाढ़ी थी। उन्होंने कन्धेपर बीणा तथा हाथमें कुश धारण किए हुए थे। सभामें चारों ओर इधर-उधर देखने लगे। उनके पीछे-पीछे हाथमें कमण्डलु लेकर श्रीराम पण्डित चल रहे थे। उन्होंने श्रीवासजीको बैठनेके लिए आसन दिया और श्रीवासजी उसपर विराजमान हो गए। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो साक्षात् नारदजी ही वहाँपर विराजमान हैं। श्रीवासजीको इस वेशमें देखकर सभी वैष्णवोंको हँसी आ गई। उन्होंने पूछा—“तुम कौन हो तथा यहाँ किसलिए आए हो?”

श्रीवास—“मेरा नाम नारद है। कृष्णका गुणगान करते हुए मैं अनन्त ब्रह्माण्डोंमें भ्रमण करता हूँ। मैं जब वैकुण्ठ (ब्रज) में कृष्णका दर्शन करनेके लिए गया तो सुना कि कृष्ण नवद्वीपमें गए हैं। सारा वैकुण्ठ सुनसान पड़ा हुआ था। वहाँ न तो कृष्ण थे न उनके परिकर। अतः निर्जन वैकुण्ठको देखकर मुझे अच्छा नहीं लगा और मैं वहाँ न रह पाया। अपने प्रभुको खोजते हुए यहाँ नवद्वीप आ पहुँचा। आज मेरे प्रभु यहाँ पर लक्ष्मीजीके वेशमें नृत्य करेंगे। इसलिए उनका दर्शन करनेके लिए मैं यहाँ आया हूँ।”

श्रीवासजीको नारदजीके वेशमें देखकर शचीमाताने मालिनी देवीसे पूछा—“क्या ये ही पण्डितजी हैं?”

मालिनी देवी—“ऐसा ही लगता है।”

परम वैष्णवी सर्वलोकमाता शशीमैयाने श्रीवासजीको नारदजीके वेशमें देखा तो वे विस्मित हो गई तथा अनन्दसे मूर्छित होकर जमीनपर गिर पड़ीं। उनका श्वाँस चलना बन्द हो गया। यह देखकर सभी स्थियाँ आश्चर्यचकित हो गईं। सभी शशीमैयाके कानोंके पास कृष्ण-कृष्ण कहने लगीं, जिससे कुछ ही क्षण पश्चात् वे गोविन्द-गोविन्द कहते हुए उठकर बैठ गईं। इस प्रकार घरमें उपस्थित सभी वैष्णवलोग कृष्णप्रेमके सागरमें डूबे हुए थे। सभीके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। उधर घरके भीतर प्रभु श्रीगौरसुन्दर रुक्मणीका वेश धारण कर रहे थे। वेश धारण करते-करते वे रुक्मणीके भावोंमें आविष्ट हो गए। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। वे उन औंसुओंसे अपने अंगुलीके द्वारा पृथ्वीपर पत्र लिखने लगे, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रुक्मणीजीने कृष्णको पत्र लिखा था—

श्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरताऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रं मे॥

(श्रीमद्भा. १०/५२/३७)

“हे भुवनसुन्दर कृष्ण! आपकी महिमा सुनकर मेरे आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—ये तीनों ताप दूर हो गए हैं। मैंने जबसे आपके गुणोंके विषयमें सुना, मेरा चित्त निर्लज्ज होकर आपके पास चला गया। जगतमें ऐसी कौन कुलवती नारी होगी, जो आपके प्रति आकर्षित न हो तथा आपकी सेवा न करे। आपके बिना विद्या, कुल, शील, धन, सौन्दर्य आदि सभी कुछ व्यर्थ हैं। हे प्रभो! आप मेरी धृष्टिको क्षमा करेंगे। मैं अपने

चित्तको आपके पास आनेसे नहीं रोक पा रही हूँ। मैंने आपके चरणकमलोंको वरण कर लिया है तथा अपना तन, मन, प्राण, ब्रुद्धि सब कुछ आपके चरणोंमें समर्पित कर दिया है। मुझे अपनी पत्नीपद प्रदानकर अपनी दासी बना लीजिए। मैं नहीं चाहती कि शिशुपाल मुझे स्पर्श भी करे। हे प्रभो! आप मुझे उसी प्रकार यहाँसे हरण कर लीजिए, जिस प्रकार एक सिंह गोदड़ोंके बीचमेंसे अपना शिकार ले जाता है। यदि मैंने व्रत, दान, गुरु, ब्राह्मण, देवताओंकी तथा भगवानकी निष्कपट रूपसे सेवा की हो तो भगवान गदाग्रज मेरे प्राणनाथ हो जाएँ तथा शिशुपाल मुझे स्पर्श भी न कर पाए। हे वीर! कल मेरा विवाह शिशुपालसे होनेवाला है, इसलिए आप देर न कर अति शीघ्र ही आकर शिशुपाल, जरासन्ध, शाल्व इत्यादि विधर्मी राजाओंको हराकर अपने बाहुबलसे मेरा हरण कर लीजिए। मेरे बन्धु-बान्धवोंको मारे बिना आप जिस प्रकारसे मेरा हरण कर सकते हैं, मैं उसका उपाय आपके चरणकमलोंमें निवेदन कर रही हूँ—हमारे कुलकी प्रथा है, विवाहसे एक दिन पहले कन्या दुर्गाजीके मन्दिरमें जाकर उनकी पूजा करती है। उस अवसर आप बिना मेरे परिवारजनोंको मारे मेरा हरण कर लेंगे। यदि आपने विलम्ब किया तो मैं शरीर परित्याग कर दूँगी तथा पुनः जन्म लेकर आपको प्राप्त करनेके लिए तपस्या करूँगी। इस प्रकार जब तक आपकी चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त नहीं कर लूँगी, तब तक बार-बार जन्म लूँगी और बार-बार मरूँगी।” इस प्रकार पत्र लिखकर रुक्मणीने ब्राह्मणको दिया तथा प्रार्थना की—“हे विष्र! आप अति शीघ्र द्वारिका जाइए और यह पत्र श्रीकृष्णको दीजिए।”

प्रभुके भावोंको देखकर वैष्णवलोग प्रेमसे

रोने लगे। कुछ देरके बाद प्रभु रुक्मणीका वेश धारणकर सभामें उपस्थित हुए। उनके आगे-आगे नित्यानन्द प्रभु योगमायाका वेश धारणकर चल रहे थे। इससे सभीने अनुमान लगाया कि ये ही प्रभु श्रीगौरसुन्दर हैं। उस समय प्रभुको रुक्मणीके वेशमें देखकर ऐसा लग रहा था मानो समुद्रसे साक्षात् लक्ष्मीदेवी प्रकट हो गई हों। किसीको प्रतीत होने लगा—जैसे वैकुण्ठसे साक्षात् महालक्ष्मी ही हमारे सामने प्रकट हो गई हों। किसीको प्रतीत होने लगा साक्षात् ब्रजेश्वरी श्रीमती राधिकाजी ही कृपाकर हमारे सामने प्रकट हो गई हों। अथवा पार्वतीजी ही हमारे सामने प्रकट हुई हैं। इस प्रकार वैष्णवलोग प्रभुको न पहचानकर अपने-अपने भावनाओंके अनुसार विचार करने लगे। सारा जीवन जो लोग प्रभुके साथ रहे, वे लोग भी उन्हें न पहचान पाए। औरेंकी तो बात ही क्या, जिन्होंने प्रभुको अपने गर्भमें धारण किया वे शरीरमैया ही उन्हें नहीं पहचान पाई। वे अन्य वैष्णवियोंसे पूछने लगीं—“क्या ये साक्षात् लक्ष्मीदेवी ही नृत्य करने आयी हैं?”

जिस रूपको देखकर शङ्करजी मोहित हो गए तथा पार्वतीको छोड़कर जिनके पीछे दौड़ने लगे, उसी लक्ष्मी स्वरूपको दर्शनकर किसी भी वैष्णवके मनमें लेशमात्र भी विकार न आया। क्योंकि दयाके सागर स्वयं प्रभु श्रीगौरसुन्दरजीने सबको वरदान दिया था। सभी वैष्णवलोग प्रभुके इस स्वरूपका दर्शनकर उसी प्रकार क्रन्दन करने लगे, जिस प्रकार माँको देखकर अबोध बच्चे रोने लगते हैं। जब प्रभु श्रीगौरसुन्दरने रुक्मणीजीके भावोंमें आविष्ट होकर नृत्य करना आरम्भ किया तो भक्तवृन्द उनके भावोंको जानकर उसीके अनुरूप कीर्तन करने लगे। वहाँपर उपस्थित कोई भी वैष्णव यह अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि प्रभु इस समय

किसके भावोंमें आविष्ट होकर नृत्य कर रहे हैं। कभी तो वे उत्कण्ठित होकर कहते—“हे विप्र! क्या आप द्वारिकासे आ गए? क्या श्रीकृष्ण आ गए हैं? यह सुनकर वैष्णवलोग अनुमान लगा रहे थे कि इस समय वे रुक्मणीके भावोंमें आविष्ट हैं। और कभी प्रभु अद्वैत कर हँसते, उस समय ऐसा लगता था मानो प्रभु महाचण्डीके आवेशमें हैं। और जब ढलमल-ढलमल कर चलते, उस समय ऐसा प्रतीत होता—जैसे कादम्बरी पानकर रेवतीजी चल रही हों और कभी जब प्रभु कहते “चलो पौर्णमासीजी, वृन्दावन चलते हैं”, उस समय ऐसा प्रतीत होता जैसे वे श्रीमती राधिकाजीके भावोंमें आविष्ट हैं। इस प्रकार रुक्मणीके वेशमें प्रभुने उन समस्त शक्तियोंको दिखाया जो कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमें विराजमान हैं। ये सब दिखानेका एक और कारण था। प्रभु यह दिखाना चाहते थे कि ये सब मेरी शक्तियाँ हैं, कोई भविष्यमें इनकी निन्दा न करे। इनका यथायोग्य सम्मान करनेसे कृष्णके चरणोंमें दृढ़ भक्ति होती है। शास्त्रोंका यही निर्णय है कि अनन्त ब्रह्माण्डोंमें जितनी भी शक्तियाँ हैं, वे सब श्रीमतीजीकी सेविकाएँ हैं। उनको यथायोग्य सम्मान न देनेसे भक्ति नष्ट होती है। प्रभु मूलशक्तिके रूपमें अद्वृत नृत्य कर रहे थे। वहाँपर उपस्थित सभी लोग उस नृत्यको देखकर प्रेम-समुद्रमें तैरने लगे। उसी समय नित्यानन्द प्रभु मूर्छ्छत होकर भूमिपर गिर पड़े। कहाँ गया उनका पौर्णमासीजीका वेश, वे कृष्ण आवेशमें विह्वल हो गए। जैसे ही वे मूर्छ्छत होकर जमीनपर गिर पड़े, वैसे ही समस्त वैष्णवलोग उन्हें चारों ओरसे घेरकर क्रन्दन करने लगे।

(क्रमशः)

विरह संवाद

**७ नवम्बर वृहस्पतिवार कार्तिक शुक्ल तृतीयाके दिन श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी
महाराजजीका नित्यलीलामें प्रवेश**

जगद्गुरु नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्ति- सिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्ति- प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके प्रतिष्ठित विश्वव्यापी श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी ओरसे प्रतिवर्षकी भाँति इस वर्ष भी श्रीब्रजमण्डल परिक्रमाका अनुष्ठान कार्तिक मासमें मदीय दीक्षागुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीके शुभाशीर्वाद तथा मदीय शिक्षागुरु- पादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें किया गया।

इस परिक्रमामें देश विदेशसे प्राय ६०० भक्त, समितिके अनेक संन्यासी और ब्रह्मचारी- वृन्द सम्मिलित हुए। वृन्दावन, मधुवन, तालवन, बहुलावन इत्यादि स्थानोंका दर्शन करते हुए हमारी परिक्रमा पार्टीने छः दिन श्रीगिरिराजके सान्निध्यमें वास किया, जहाँ पर अन्नकूट, दीपावली आदि महोत्सवका यत्नपूर्वक आयोजन किया गया और प्रचुर परिमाणमें हरिकथाका परिवेशन किया गया। ७ नवम्बर वृहस्पतिवारको जब परिक्रमा पार्टी सूर्य कुण्ड होते हुए बरसानामें पहुँची, उस समय यह अत्यन्त दुःखद समाचार प्राप्त हुआ कि मदीय शिक्षागुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम गोस्वामी महाराज कुछ समय पहले ही श्रीनवद्वीप धाम स्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें नित्यलीलामें प्रविष्ट हो गए।

श्रीचैतन्यभागवतमें वर्णन है, जब श्रीमन्महा- प्रभुके संकीर्तन रासमें उल्लास न होनेपर श्रीमन्महाप्रभुने श्रीवास पण्डितसे इसका कारण पूछा था।

पुत्र मरि जाय प्रभु ए बङ् व्यथन।

कृष्ण भक्त विरह प्रभु न जाय सहन॥

इसी प्रकार आज अस्मदीय शिक्षागुरुपादपद्म श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीके विरहने

हम सबके मर्मस्थलको भेदकर सबको विरह समुद्रमें निमग्न कर दिया है। बरसानामें उसी सन्ध्या श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके आनुगत्यमें एक विरह सभाका आयोजन किया गया जिसमें श्रीलभक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज व समितिके अन्यान्य संन्यासीवृन्द भी उपस्थित



थे। श्रीलमहाराजजी द्वारा अपने सतीर्थ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीके चरणकमलोंमें जो श्रद्धाभावपूर्ण पुष्पाञ्जलि अर्पित की गई, वह नीचे प्रस्तुत है।

**श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी
महाराजजीके द्वारा श्रील त्रिविक्रम महाराजजीके
श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि**

“सर्वप्रथम मैं अपने परमाराध्य गुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट ॐ विष्णुपाद अष्टोत्तरशत श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके चरणकमलोंमें अनन्त कोटि दण्डवत् प्रणति ज्ञापन करता हूँ। तदनन्तर समस्त वैष्णववृन्दके चरणोंमें यथायोग्य दण्डवत् प्रणाम ज्ञापन करता हूँ। श्रीश्रीगुरुगौराङ्गजीकी अहैतुकी कृपासे हमारी परिक्रमाका प्रथम पन्द्रह दिन सुष्ठुरूपसे सुखपूर्वक व्यतीत हुए। किन्तु आज एक अति दुःखद समाचार प्राप्त हुआ। श्रीचैतन्य चरितामृतमें श्रीचैतन्य महप्रभुने श्रीरायरामानन्दसे पूछा—

दुःख मध्ये कोन दुःख हय गुरुतर?

श्रीरायरामानन्दने उत्तर दिया—

कृष्णभक्तविह बिना दुःख नाहि आर॥

श्रीमन्महाप्रभुने पूछा कि अत्यन्त दुःख क्या है? श्रीरायरामानन्दने उत्तर दिया वैष्णव विह। पर अर्थात् सर्वोत्तम या अत्यधिक। वैष्णव विह ही सर्वोत्तम दुःख है। (चै. च. ८/२४८)

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अप्रकटके पश्चात् मदीय गुरुदेव श्रीलभक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजने अन्य कुछ भक्तोंको लेकर श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिकी स्थापना की, जिसमें श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी महाराज भी संस्थापक सदस्य थे। श्रील गुरुमहाराज इससे बहुत पहले ही संन्यास ले चुके थे और प्रचार कार्यमें रत थे। लेकिन अभी उन्होंने समितिका मुख्य केन्द्र नवद्वीपमें स्थापन कर समितिके माध्यमसे प्रचार कार्य आरम्भ किया।

श्रीलगुरुमहाराजके तीन प्रमुख सेवक थे। परम पूज्यपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज,

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज तथा मैं। हम पूर्णतः अपने प्राण और आत्मासे प्राणोंको हथेलीमें रखकर गुरुमहाराजकी सेवा करने लगे। आरम्भसे ही गुरुमहाराजने पूज्यपाद वामन महाराज, पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज तथा मुझे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भके रूपमें तैयार किया। उस समय श्रील पर्यटक महाराज हमारे साथ नहीं थे, उन्होंने कुछ समय पश्चात् योगदान किया। विशेष कर श्रील वामन महाराजने श्रील गुरुमहाराजकी बहुत प्रकारसे सेवा की। वे मासिक गौड़ीय पत्रिका एवं अन्यान्य ग्रन्थोंके प्रकाशक थे। गुरुमहाराजको जब कोई पत्र, लेख या ग्रन्थ लिखना होता था तो वे ही श्रूतलिखनका कार्य करते थे। मठमें मेरे योगदानसे पूर्व मैं पुलिस अधिकारी था, गुरुजीसे व्यक्तिगत रूपमें नहीं मिला था। उस समय वे ही अत्यधिक प्रेम और स्नेहसे मुझे पत्र देते थे। वे अपने पत्रके आरम्भमें ‘तिवारीजी’ कहकर मुझे सम्बोधन करते थे, क्योंकि मैं उच्चकुल ब्राह्मण तिवारी परिवारसे था। मेरे मठमें योगदानसे लेकर दीक्षाग्रहण तक पूज्यपाद वामन महाराज मुझे तिवारीजी कहकर सम्बोधित करते थे। श्रील वामन महाराज श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके मातृतुल्य थे और मठवासियोंको जो कुछ कपड़े और प्रसाद इत्यादिकी आवश्यकता होती थी, वे उन सबको पूर्ण करते थे। श्रील त्रिविक्रम महाराज अत्यधिक योग्य थे। हमारे गुरुमहाराजने स्वयं अपने ऊपर प्रकाशनका भार लिया था और श्रील त्रिविक्रम महाराजको प्रचार कार्यका भार दिया था तथा उनकी सेवा होती थी अन्यान्य प्रचारकोंको बंगलाके विभिन्न जिलोंमें प्रेरित करना। श्रील त्रिविक्रम महाराज वर्द्धमान जिलेमें स्वयं भी प्रचार एवं भिक्षाके लिए जाते थे। श्रीलगुरुमहाराजने श्रील त्रिविक्रम महाराजके माध्यमसे मेदिनीपुर, चौबीस परगणा तथा अन्यान्य स्थानोंमें विपुल प्रचार कार्य किया। जबसे मैंने मठमें योगदान किया, तभीसे श्रील वामन महाराजजीका मेरे प्रति विशेष स्नेह रहा है।

किन्तु फिर भी परम पूज्यपाद श्रील त्रिविक्रम महाराजजीने मुझपर अत्यधिक स्नेह प्रकाश किया। मेरे गुरु महाराजने मुझे त्रिविक्रम महाराजको सुपुर्द किया और हम एक दूसरेके अत्यधिक निकट हो गए। श्रील त्रिविक्रम महाराजजीने मुझे कीर्तन, प्रचार तथा भिक्षा करना सिखाया। कभी-कभी स्नेहपूर्वक वे मुझे डॉट्टे भी थे। जितना भी समय मैंने श्रीलगुरुमहाराजजीके साथ बीताया, उन्होंने कभी भी मुझे डॉटा नहीं। किन्तु श्रील त्रिविक्रम महाराज स्नेह व प्रेमपूर्वक मुझे डॉट्टे थे। हम दोनोंका इतना निकट सम्बन्ध था कि कभी-कभी हमारी वार्तालापमें गरमागरमी भी हो जाती थी। मैं उनके युक्तियोंको काटता था तथा वे मेरी युक्तियोंको काटते थे। परन्तु गुरुमहाराज कृपापूर्वक मेरा पक्ष लेते थे।

श्रील त्रिविक्रम महाराज समस्त भारतमें प्रचारके लिए जाते थे तथा जब वे गुरुमहाराजके साथ प्रचारमें जाते थे, तब मैं गुरुमहाराजजीके सेवकके रूपमें जाता था। मैं गुरुमहाराजके लिए रसोई करता था, उनके कपड़े धोता था, पादसंवाहन करता था तथा उनके लिए लालटेन लेकर चलता था क्योंकि उस समय गाँवमें बिजली नहीं होती थी। अन्यान्य अनेक प्रकारकी सेवाएँ भी करता था। कभी-कभी मुझसे कोई त्रुटि होने पर श्रील त्रिविक्रम महाराज मेरी रक्षा करते थे। गुरु महाराज प्रचारके दौरान नियमित रूपसे प्रत्येक गाँवमें उनके वक्तृता साथ-साथ महाप्रभु तथा अन्यान्य महापुरुषोंके जीवनी सम्बन्धी छायाचित्र (स्लाइड सो) दिखाते थे। एक समय मैं स्लाइड प्रोजेक्टर लाना भूल गया। जब मुझे इस बातका ध्यान आया, तब मैं अत्यधिक व्याकुल हो गया कि गुरुमहाराज मुझपर रुष्ट हो जाएँगे। तब श्रील त्रिविक्रम महाराजने मेरी व्याकुलताका कारण पूछा। मैंने उन्हें सबकुछ बता दिया। तब उन्होंने कहा—चिन्ता मत करो, मैं इस स्थितिको संभाल लूँगा। बादमें जब अपनी वक्तृता और स्लाइड सो के लिए श्रीलगुरुमहाराज प्रस्तुत हुए, तब उन्होंने

श्रील त्रिविक्रम महाराजसे पूछा—क्या सब कुछ तैयार है?

श्रील त्रिविक्रम महाराजने उत्तर दिया—गुरुमहाराज! आज आकाशमें बहुत मेघ हैं तथा वर्षा हो सकती है। यदि आप वक्तृताके साथ-साथ स्लाइड सो भी दिखाएँगे तो कार्यक्रम भी लम्बा हो जाएगा और उस समय यदि वर्षा हो जाती है तो सब लोग आपकी वक्तृताको बीचमें छोड़कर चले जाएँगे।

तब गुरुमहाराजजीने पूछा—मुझे क्या करना चाहिए?

श्रील त्रिविक्रम महाराज—क्यों नहीं केवल आप वक्तृता ही दें।

तब श्रीलगुरुमहाराज इससे सन्तुष्ट हो गए।

अनेक वर्षों बाद मुझे इस घटनाका स्मरण कराते हुए उन्होंने पूछा कि क्या मुझे ये सब घटनाएँ याद हैं? तो मैंने उत्तर दिया—हाँ। तब हम दोनोंने एक दूसरेके आलिङ्गन पाशमें आबद्ध हो गए।

श्रीलगुरुमहाराज अक्टूबर १९६८ में नित्यलीलामें प्रविष्ट हुए। किन्तु आन्तरिक रूपसे वे सदैव ही हमारी देखभाल कर रहे हैं और हमें प्रेरणा दे रहे हैं। बाह्य रूपमें श्रील त्रिविक्रम महाराजजीने मेरे गुरु महाराजका स्थान लिया अर्थात् उन्होंने मुझे समस्त कार्यमें प्रेरणाएँ दीं। जब मैंने विदेशमें प्रचार कार्य प्रारम्भ किया तथा ग्रन्थोंका अनुवाद कार्य आरम्भ किया, तब मैं श्रील वामन महाराज, श्रील त्रिविक्रम महाराज, श्रील पर्यटक महाराज इत्यादि सतीर्थोंको पत्र देकर इनका परामर्श लेता क्योंकि ये सब बड़े योग्य प्रचारक हैं। श्रील त्रिविक्रम महाराज अविलम्ब मेरे पत्रोंका उत्तर देते थे। वे मुझे ग्रन्थ अनुवाद और लेखन कार्यमें तथा समस्त विश्वमें प्रचार करनेके लिए उत्साहित और प्रेरित करते थे। पूज्यपाद वामन महाराज श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान आचार्य हैं तथा वे अनेक प्रकारके गम्भीर दायित्वपूर्ण कार्यमें व्यस्त रहते हैं। वे सदैव मेरे प्रचारसे

बहुत प्रसन्न रहते हैं। किन्तु कभी-कभी अस्वस्थ होनेके कारण सब समय मेरे पत्रोंका उत्तर नहीं दे पाते। क्योंकि श्रील त्रिविक्रम महाराज अधिकांशतः एक ही स्थान पर रहते आए, इसलिए वे मेरे पत्रोंका अविलम्ब उत्तर देते थे। मैं उन्हें कभी भूल नहीं सकता। श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराज, श्रील भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज दोनोंको ही मैं अपने शिक्षागुरुके रूपमें मानता हूँ। इन दोनोंने मुझे सहारा दिया, पोषण किया तथा प्रेरित किया है। इन दोनोंके प्रति अपने भावोंको मैं शब्दोंमें व्यक्त नहीं कर सकता। पूज्यपाद वामन महाराजजी आरम्भसे ही गम्भीर व्यक्तित्वके रहे हैं। किन्तु पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजके साथ मेरा सम्बन्ध ऐसा रहा कि हम एक साथ रहते-सोते, शास्त्र विचारों पर तर्क-वितर्क करते तथा एक दूसरेको अनेक प्रकारसे प्रीति करते।

कभी-कभी हम एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न विचार प्रकट कर एक दूसरेके युक्तियोंका खण्डन करते। ऐसा होनेपर भी श्रील त्रिविक्रम महाराज मेरे प्रति अत्यधिक सम्मान प्रकट करते थे। यद्यपि मैं उन्हें अपने शिक्षागुरुके रूपमें सम्मान करता था, किन्तु अपने अन्तिम समयमें कभी-कभी वे मुझे साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करते थे। यहाँ तक कि मेरी अनुपस्थितिमें मेरी पादुकाको भी प्रणाम करते थे। ज्येष्ठ सतीर्थ होकर भी इस प्रकारका आचरण किसी अन्यके लिए सम्भव नहीं है। वे इस प्रकारसे नम्र और दीनतापूर्वक रहते थे। वे समस्त प्रकारसे एक श्रेष्ठ वैष्णव थे और समस्त जगतका कल्याण कर सकते थे। किन्तु वे मुझे लिखा करते थे—“आप जिस प्रकारसे श्रीलगुरुदेवकी सेवा कर रहे हैं, हम इस प्रकारकी सेवा नहीं कर सकते। इसलिए मैं आपकी प्रशंसा करता हूँ, आपके प्रति विशेष सहानुभूति और समर्थन व्यक्त करता हूँ। आप दीर्घ काल तक प्रचार करें और ग्रन्थोंका लेखन तथा प्रकाशन करें।”

आज हमने श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके एक स्तम्भको खो दिया है। तथापि मेरे हृदयमें यह सान्त्वना है कि वे इस कार्तिक मासके नियमसेवा ब्रतके, शुक्ल पक्षमें श्रीनवद्वीप धाममें अप्रकट हुए तथा वह शुभ मुहूर्त था मध्याह लीला (१२:२५ के समय) अमृतयोग, तृतीया तिथि और गुरुवार। उन्होंने हमें अन्रकूट महोत्सव, दीपावली और भैयादूज उत्सवोंको मनानेके लिए प्रेरित किया। आन्तरिक रूपसे उन्होंने मेरे हृदयमें इस प्रकारसे सङ्केत दिया था कि वे इन उत्सवोंके उपरान्त इस जगतको छोड़कर जाएँगे।

वे एक अच्छे कवि थे। प्रतिदिन श्रीनवद्वीप धामस्थित श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें भक्तगण उनके द्वारा रचित श्रीलगुरुदेवकी आरतीका गान करते हैं। इस आरतीके अन्तिम दो श्लोक विशेष द्रष्टव्य हैं।

नाना छन्दे सज्जन चामर ढुलाय।

गौरजन उच्च कण्ठे सुमधुर गाय॥

भिन्न-भिन्न प्रकारके भावोंसे श्रीसज्जन श्रीलगुरुमहाराजको चामर ढुला रहे हैं तथा गौरजन उच्च कण्ठसे श्रीगुरुमहाराजकी मधुर-मधुर महिमा गान कर रहे हैं।

सुमङ्गल नीराजन करे भक्तगण।

दुरमति दूर हइते देखे त्रिविक्रम॥

समस्त भक्तगण अति शुभ आरतीमें भाग ले रहे हैं और यह अयोग्य त्रिविक्रम दूरसे उन सबको देख रहा है।

श्रील भक्तिवेदान्त वामन महाराजजीका संन्याससे पूर्वका नाम श्रीसज्जनसेवक ब्रह्मचारी था। श्रील त्रिविक्रम महाराज लिखते हैं कि सज्जनसेवक प्रभु विभिन्न भावोंसे चामर ढुला रहे हैं तथा गौरजन (गौरनारायण—मेरा संन्याससे पूर्वका नाम) मधुर और उच्च कण्ठसे गुरुदेवका गुणगान कर रहे हैं।

अन्तमें लिखते हैं कि मेरे अतिरिक्त समस्त भक्तगण गुरुदेवकी महिमा गान कर रहे हैं और अनेक प्रकारकी सेवाएँ कर रहे हैं। वे अति दीन

थे। अपने सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है—अहो, मैं इतना अभागा हूँ कि मैं सज्जनसेवक प्रभु और गौरनारायणकी भाँति श्रीलगुरुमहाराजकी सेवा नहीं कर सकता। इसलिए मैं दूरसे ही उनकी सेवाओंको निहार रहा हूँ। जिस प्रकार श्रील नरोत्तम दास ठाकुरने अपने भजनोंमें स्वयंको अति पतित और अवगुणोंसे युक्त बताया है, श्रील त्रिविक्रम महाराजजीने उसी प्रकारसे यहाँ अति दीनताका परिचय दिया है। वे एक निष्किञ्चन वैष्णव थे और अपने जीवनमें उन्होंने कोई भी शिष्य नहीं किया।

पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज ज्योतिर्विद्यामें पारदर्शी भी थे। उनकी गणनाएँ कभी गलत नहीं होती थीं। इसलिए अन्यान्य गौड़ीय मठोंसे भी भक्तलोग पञ्जिका, ब्रत तालिका तथा एकादशी आदि ब्रत और अन्यान्य उत्सवोंकी सटीक तिथियोंके सम्बन्धमें उनसे परामर्श लेते थे। अपने अप्रकट होनेसे कुछ पूर्व ही गुरुमहाराजने श्रील त्रिविक्रम महाराजको आदेश दिया था कि तुम वेदान्तकी समालोचना करना। इसलिए गुरुमहाराजके अप्रकटके पश्चात् श्रील त्रिविक्रम महाराजने वेदान्तसम्बन्धी अनेक लेख लिखे, जो कि श्रीगौड़ीय पत्रिकामें प्रकाशित हुए हैं।

दस-बारह वर्ष पूर्व श्रील त्रिविक्रम महाराजकी उप्र लगभग ७५ वर्षकी थी। वे ब्रजमण्डलमें आए और श्रीपाद नारायण प्रभुके साथ श्रीराधाकुण्डके तटपर एक मास रहे। वहाँसे वे एक मास तक प्रतिदिन श्रीगिरिराज गोवद्धनकी परिक्रमा करते थे। उनके पैरमें छाले पड़ जाने पर भी परिक्रमा बन्द नहीं करते थे। यद्यपि अपनी वृद्धावस्थामें वे प्रतिवर्ष श्रीब्रजमण्डल परिक्रमामें आते थे, किन्तु उस साल उन्होंने निरन्तर तीस दिनों तक श्रीगिरिराजकी परिक्रमा की।

आज आप सबके प्रतिनिधिके रूपमें मैं अपने हृदगत भाव एवं श्रद्धा-पुष्पाञ्जलिको उनके श्रीचरणकमलोंमें अर्पित करता हूँ। मैं समझता हूँ कि आज उन्हें श्रीनवद्वीप धार्म भगवती गङ्गाके

तटपर समाधि दे दी गई होगी। वे अभी कहाँ होंगे? वे नवद्वीप धाम या ब्रज धाममें होंगे। सदैवसे ही उनका विशेष झुकाव महाप्रभुके प्रति श्रीनवद्वीप धाममें था तथा उनकी एक प्रबल अभिलाषा थी कि वे अपने देहको नवद्वीप धाममें त्यागें। इसलिए मैं समझता हूँ कि वे नवद्वीप धाममें ही हैं। तथापि इस वर्ष यहाँ आकर हमारे साथ श्रीब्रजमण्डल परिक्रमा करनेकी उनकी एक प्रबल इच्छा जागी थी। कलकत्तासे यहाँके लिए २५ अक्टूबरको भी उनकी टिकट हो गई थी। कलकत्ता पहुँचने पर ही वे अस्वस्थ हो गए। इसलिए एक स्वरूपसे वे नवद्वीपमें हैं तथा दूसरे स्वरूपमें वे अवश्य ही हमलोगोंके बीचमें हैं तथा अपनी अहैतुकी कृपासे हमें उत्साह और आशीर्वाद दे रहे हैं। मैं आज हम सबके लिए उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे प्रति और आप सबके प्रति कृपावर्षण और प्रचुर आशीर्वाद करें जिससे कि हम उन्हींकी भाँति श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंकी सेवा तथा भजन कर सके।

परम पूज्यपाद श्रील त्रिविक्रम महाराजजीकी जय। परम पूज्यपाद श्रील त्रिविक्रम महाराजजीकी विरह-तिथिकी जय।”

श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराजजीके द्वारा श्रील त्रिविक्रम महाराजजीके श्रीचरणोंमें पुष्पाञ्जलि

श्रील पर्यटक महाराजजीने गुरु-वन्दना और वैष्णव-प्रणति पूर्वक बताया—“परमपूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज भगवानकी मध्याह-लीलामें प्रवेश कर गये क्योंकि वे आज मध्याह १२:२५ बजे अप्रकट हुए। गुरु और वैष्णव नित्य हैं, फिर भी आज हमलोग उनके साक्षात् सङ्गसे वञ्चित होकर विरह-दुःखका अनुभव कर रहे हैं।

मदीय दीक्षागुरुपादपद्म नित्यलीलाप्रविष्ट श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजीके समय ब्रजमण्डल, गौड़मण्डल और क्षेत्रमण्डलकी नियमित परिक्रमाएँ होती थीं। उन सभीमें श्रील त्रिविक्रम महाराज पार्टीके संचालन और प्रचारका दायित्व लेते थे।

उनका जन्म पश्चिम बंगालके वर्द्धमान जिलेके अम्बिका कालनाके पास हुआ था। यह स्थान श्रीचैतन्य महाप्रभुके अन्तरङ्ग पार्षद श्रीगौरीदास पण्डितका भी आविर्भाव-स्थल है। पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराजजीके गौड़ीय मठमें योगदानसे पहले मदीय गुरुदेव श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीजी (श्रील प्रभुपादके शिष्य जो कि परवर्ती अवस्थामें संन्यासके बाद श्रीलभक्तिकमल मधुसूदन महाराजजीके नामसे परिचित हुए) के साथ इस स्थान पर प्रचारके लिए आते थे। श्रीनरोत्तमानन्द ब्रह्मचारीजीके प्रचार और अहैतुकी कृपासे श्रील त्रिविक्रम महाराजने मठमें योगदान किया। इन ब्रह्मचारीजीके प्रचारसे श्रील नारायण महाराजजीने भी मठमें योगदान किया।

कुछ वर्षों बाद पूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज वर्द्धमान प्रचारमें गए और गुरुदेव मेदिनीपुर जिलेमें प्रचार करते थे। श्रील त्रिविक्रम महाराज अनेक बार अकेले ही प्रचारमें जाते थे। एकबार जब गाँव-प्रचारके दौरान वे एक गृहस्थके घरमें हरिकथा कह रहे थे, उस समय उनके पूर्वाश्रमके कुछ सम्बन्धी-लोग बहुत क्रोधित होकर आए और उन्हें सांसारिक जीवनमें वापस ले जानेके लिए जबरदस्ती की। तब उस गृहस्थ (जिसके घर श्रील त्रिविक्रम महाराज ठहरे हुए थे और हरिकथा कर रहे थे) ने हाथमें तुरन्त एक डंडा और नारियल काटनेका कटार ले लिया और जोरसे बोला—“श्रील त्रिविक्रम महाराजको लेनेका प्रयास कौन कर रहा है—मैं उसका सिर देखना चाहता हूँ। किसके शरीरमें सिर है, मैं देखना चाहता हूँ।” वह गृहस्थ अकेला था और सम्बन्धी-लोग अनेक थे। वे लोग उसके ऊपर आक्रमण कर सकते थे। किन्तु उसका यह भयानक रूप देखकर वे लोग भाग गए। इस घटनासे यह सूचित होता है कि श्रील त्रिविक्रम महाराजकी रक्षा भगवान् कृष्ण कैसे कर रहे थे। भगवान् उनके प्रिय-शरणागत भक्तकी निश्चय ही रक्षा करते हैं।

श्रील वामन महाराज, श्रील नारायण महाराज

और श्रील त्रिविक्रम महाराज—ये तीनों श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके तीन स्तम्भ रहे हैं। श्रील त्रिविक्रम महाराजके अप्रकट होनेसे एक स्तम्भको हमने खो दिया। यद्यपि समितिमें अनेक योग्य वैष्णव हैं, फिर भी इस क्षतिको कोई पूर्ण नहीं कर सकता। उनके विरहसे समितिको आध्यात्मिक रूपसे हानि पहुँचेगा।

बज्रादपि कठोरणि मृदुनि कुसुमादपि—बाहरी रूपसे वे बज्रसे भी कठोर थे, लेकिन उनका हृदय फूलसे भी कोमल था। वे सीधा बोलनेवाले थे। यदि वे किसीमें कोई दोष देखते थे तो वे तत्क्षणात् ही उस व्यक्तिको बता देते थे। वे कभी भी परोक्ष रूपसे या पीछे किसीका दोष-कीर्तन नहीं करते थे। पूरी गौड़ीय वेदान्त समितिमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो कि उनके तीक्ष्ण वाक्योंका शिकार न हुआ हो। वे तीक्ष्ण वाक्योंका प्रयोग भक्तोंकी पारमार्थिक उन्नतिके लिए ही करते थे, अपने स्वार्थके लिए नहीं। वे कभी-कभी अपने गुरुदेवके साथ भी शास्त्र-विचारोंको लेकर प्रेमपूर्वक तर्क करते थे जैसे एक पुत्र अपने पिताके साथ करता है।

मैं श्रील भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज और श्रील भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे बड़े गुरुभ्राताएँ हैं, वे इस जगतमें हमें अनाश्रित रूपमें छोड़कर न जाएँ। मैं श्रीलगुरुदेव, श्रीगौरसुन्दर एवं श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीके चरणकमलोंमें प्रार्थना करता हूँ कि वे इन बड़े गुरुभ्राताओंको दीर्घ-जीवन प्रदान करें औ ये लोग हमें सदैव पथप्रदर्शन करते रहें। मैं उन सभीको प्रणतिज्ञापनपूर्वक यह प्रार्थना करता हूँ कि परमपूज्यपाद त्रिविक्रम महाराज हमें मार्गदर्शन कराएँ और अहैतुकी कृपावृष्टि करें ताकि मैं श्रीलगुरुदेव और श्रीगुरुपरम्पराकी नित्यसेवा कर सकूँ। हरे कृष्ण।”

(प्रस्तुति—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त माधव महाराज)

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ पौष मास, सन् २००२-२००३, २० दिसम्बर—१८ जनवरी

{ संख्या १०

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुरभक्तिविनोदकृतम्]

पुरीदेवे भक्ति गुरुचरणयोग्यां सुमधुरां दया गोविन्दाख्ये विशदपरिचर्याश्रितजने ।
स्वरूपे यो प्रीतिं मधुरसस्तुपां ह्यकुरुत शचीसूनुः शशवत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७१॥
दधानः कौपीनं वसनमरुणं शोभनमयं सुवर्णाद्रिः शोभां सकलसुशरीरे दधदपि ।
जपन् राधाकृष्णं गलदुदकथाराक्षियुगलः शचीसूनुः शशवत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७२॥
मुदा गायन्त्रुच्चैर्मधुरहरिनामावलिमसौ नटन् मन्दं मन्दं नगरपथगामि सहजनैः ।
वदन् काक्वा रे रे वद हरिहीत्यक्षरयुगं शचीसूनुः शशवत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७३॥

रहस्यं शास्त्राणां यदपरिचितं पूर्वविदुषां श्रुतेर्गृहं तत्त्वं दशपरिमितं प्रेमकलितम्।
दयालुस्तद्योऽसौ प्रभुतिकृपाभिः समवदच्छचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥७४॥

आन्नायः प्राह तत्त्वं हरिमिह परमं सर्वशक्तिं रसांविध
तद्विवांशांश्च जीवान् प्रकृतिकवलितान् तद्विमुक्तांश्च भावात्।
भेदाभेदप्रकाशं सकलमपि हरे: साधनं शुद्धभक्तिं
साध्यं तत्प्रीतिमेवेत्युपदिशति हरिगौरचन्द्रं भजे तम् ॥७५॥

स्वतः सिद्धो वेदो हरिदयितवेदः प्रभृतिः प्रमाणं सत्प्राप्तं प्रमितिविषयान् तात्रविधान्।
तथा प्रत्यक्षादिप्रमितिसहितं साधयति नः न युक्तिस्तर्काख्या प्रविशति तथा शक्तिरहिता ॥७६॥

हरिस्त्वेकं तत्त्वं विधिशिवसुरेशप्रणामितः यदेवेदं ब्रह्म प्रकृतिरहितं तत्त्वनुमहः।
परात्मा तस्यांशो जगदनुगतो विश्वजनकः स वै राधाकान्तो नवजलदकान्तिश्चदुदयः ॥७७॥

पराख्यायाः शक्तेष्वपृथगपि स स्वे महिमनि स्थितो जीवाख्यां स्वामचिदभिहितां तां त्रिपदिकाम्।
स्वतन्त्रेच्छः शक्तिं सकलविषये प्रेरणपरो विकाराद्यैः शून्यः परम-पुरुषोऽयं विजयते ॥७८॥

स वै हादिन्यायाः प्रणयविकृतेहर्दादनरतस्तथा सम्विच्छक्तिप्रकटितरहोभावरसितः।
तथा श्रीसच्चिन्दन्या कृतविशदतद्वामनिचये रसाम्भोधौ मग्नो व्रजरसविलासी विजयते ॥७९॥

स्फुलिङ्गाः ऋद्धाग्नेरिव चिदणवो जीवनिचयाहरे: सूर्यस्यैवापृथगपि तु तद्वेदविषयाः।
वशे माया यस्य प्रकृतिपतिरेवेश्वर इह स जीवो मुक्तोऽपि प्रकृतिवशयोग्यः स्वगुणतः ॥८०॥

स्वरूपार्थैर्हनान् निजसुखपरान् कृष्णाविमुखान् हरेमर्यादण्डग्नान् गुणनिगडजालैः कलयति।
तथा स्थूलैलिङ्गैर्द्विविधवरणैः कलेशनिकरैर्महाकर्मालानैर्नयति पतितान् स्वर्गनिरयो ॥८१॥

यदा भ्रामं भ्रामं हरिसगलद्वैष्णवजनं कदाचित् संपश्यन् तदनुगमने स्याद् रुचियुतः।
तदा कृष्णावृत्या त्यजति शनकैर्मायिकदशां स्वरूपं विभ्राणो विमलरसभोगं स कुरुते ॥८२॥

हरे: शक्ते: सर्वं चिदचिदखिलं स्यात् परिणतिर्विवर्तं नो सत्यं श्रुतिमतिविरुद्धं कलिमलम्।
हरेर्भेदाभेदौ श्रुतिविहिततत्त्वं सुविमलं ततः प्रेम्नः सिद्धिर्भवति नितरां नित्यविषये ॥८३॥

श्रुतिः कृष्णाख्यानं स्मरणनतिपूजाविधिगणाः तथा दास्यं सख्यं परिचरणमप्यात्मददनम्।
नवाङ्गान्येतानीह विधिगतभक्तरेनुदिनं भजन् श्रद्धायुक्तः सुविमलरतिं वै स लभते ॥८४॥

स्वरूपावस्थाने मधुररसभावोदय इह व्रजे राधाकृष्णस्वजनजनभावं हृदि वहन्।
परानन्दे प्रीतिं जगदतुलसम्पत् सुखमहो विलासाख्ये तत्त्वे परमपरिचर्यां स लभते ॥८५॥

पद्यानुवाद—

(परलोकगत पण्डित श्रीमधुसूदनदास गोस्वामी कृत)
श्रीपरमानन्दं पुरीमें करत प्रभु गुरु आय।
गुरुपार्षदं गोविन्दं प्रति करत दया सरसाय ॥
मानत प्रभु स्वरूप सो मधुर रसमयी प्रीत।
शची सुबनकी भावमय अकथ अलौकिक रीत ॥७१॥
कमर कोपनी गेरुया बहिर्वासं परिधान।
अलज नयन रोमाञ्च तनु कनक गिरीश समान ॥

जपत 'रथिका कृष्ण मनु' बहत नयन जलधार।
 दासन हित जग जन हृदय कल्मस कढत बहार॥७२॥
 मन्द-मन्दनिरतत चलत गाय मधुर हरिनाम।
 जाचत विनती कर जनन 'हरि बोलो' सुखधाम॥७३॥
 अविदित पूरब बुध जनन गूढ तत्त्व श्रुतिसार।
 करुणा कर सो जीव हित कीनो प्रभु प्रचार॥
 सब शास्त्रन सिद्धान्त मथ दस संख्या परिमान।
 चरम 'प्रेम फल' सह दई प्रभु सुबलित विज्ञान॥७४॥
 सर्वशक्तियुत(१) रस जलधि(२) परम तत्त्व(३) हरि एक।
 वरणे तीन प्रमेय ये आगम (४) सहित विवेक॥
 सकल जगतके जीव हरि विभिन्नांश (५) कर जान।
 माया कवलित (६) मुक्त (७) अरु भावभेद पहचान॥
 भेदाभेद 'अचिन्त्य' हरि जगत चराचर (८) एह।
 शुद्ध भक्ति है साधना (९) पर फल प्रेम सनेह (१०)॥
 जीवन कौ शिक्षा दई यही गौरहरि राय।
 याही कौ विस्तार कछु देत यहाँ समुझाय॥७५॥
 (१) हरि प्रिय ब्रह्मादिक वचन 'आगम' स्वतः प्रमान।
 'प्रत्यक्ष' हू प्रमान अरु तदनुसार 'अनुमान'॥
 नव प्रमेय साधन सकल यही त्रिविध परमान।
 होत न यामें तर्क अरु युक्ति को सन्धान॥७६॥
 (२) विधि शिव सुरगण प्रणतपद, एक तत्त्व 'भगवान्'।
 तिन तनु द्युति मण्डल सोई 'ब्रह्म' उपनिषद गान॥
 'परमात्मा' हरि अंश है व्यापक जगत मझार।
 विश्व जनक ब्रह्माण्ड पति पुरुष सोई तिरथार॥
 भगवत, अरु परमात्मा, ब्रह्म, 'तत्त्व' सब एक।
 पूरन 'श्रीनन्दलाल' हैं अधिकृत भेद विवेक॥७७॥
 (३) हरि 'पर शक्ति' अभिन्न है नित निवसत निजधाम।
 जीव शक्ति, जड़ शक्ति, कौ प्रेरण करत निकाम॥
 सब विकार ते शून्य हरि सकल विषय स्वच्छन्द।
 सर्व शक्ति युत पर पुरुष सत् चित ज्ञानानन्द॥७८॥
 (४) आह्वादिनीके प्रणय तें आह्वादित सुख रास।
 रहत भाव प्रकटित सबै 'संवित शक्ति' प्रकाश॥
 'सन्धिनी शक्ति' अधार तिह रचित धाम रससार।
 व्रजलीला रस मगन हरि निस दिन करत विहार॥७९॥

(५) अग्नि फुलिङ्ग समान सब चित्कण 'जीव समूह'।
 सूर्य किरण सम हरी सौं 'भिन्न अभिन्न' अनूह॥
 माया जाके वस सोई प्रकृति पति 'जगदीश'।
 परत प्रकृति के फन्द जो सोई जीव अनीस ॥८०॥

(६) जीव रूप 'हरिदासता' विमुख, ताहि जो भूल।
 विषय वासनामें परे हरि भावन प्रतिकूल॥
 हरि माया दण्डन तिनैं, बान्ध त्रिगुण जञ्जाल।
 देह, उभय इन्द्रिय, करम, निरय, स्वर्ग, चिरकाल ॥८१॥

(७) भ्रमत-भ्रमत जब जीव कहुँ, पावत वैष्णव सङ्ग।
 तिन अनुगति ते लहत है, कृष्ण भजन रस-रङ्ग॥
 शनकैः 'मायिक दशा' तज, दासरूप निज लाय।
 भोगत जग कौ विमल रस, सिंद्ध मुक्ति सुख पाय ॥८२॥

चिदचित जग हरि शक्ति कौ अहै सकल परिणाम।
 गुण फणि सीपी-रजत जिमि, नहिं 'विपते' सौं काम॥
 मायावाद, विवर्त, सब, कीजै कलिमल ज्ञान।
 श्रुतिविरुद्ध सिद्धान्त यह मन मानों न 'प्रमान'॥

(८) 'भेदा-भेद-अचिन्त्य' जग हरि सौं श्रुति सिद्धान्त।
 लहत जीव या ज्ञान तें श्री हरि प्रेम नितान्त ॥८३॥

(९) श्रवण, कीर्तन, स्मरण नति पूजन पद-सम्मान।
 दास्य, सख्य, नव भक्ति ये 'हरि पद आत्मा दान'॥
 'विधि-भक्ति नव अङ्ग ये व्रज सेवा 'अनुराग'।
 दोउन तें व्रजमें मिलत परिकर जनम सुहाग॥
 लहत 'रूप' विधि भक्ति तें रागभक्ति तें प्रेम।
 निमल होत कृसानु ते कान्ति 'ओप' तें हेम ॥८४॥

(१०) देही लब्ध स्वरूप जब उदित मधुर रस सार।
 परिकर है सेवा लहत राधानन्द कुमार ॥८५॥

(क्रमशः)

वेदानुग्रुव और वेद-विरुद्ध अपसम्प्रदाय

—ॐ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

प्रश्न ८—कर्मजड़-स्मार्तोंकी प्रायश्चित्तादि व्यवस्थाएँ क्या कपटता-रहित हैं?

उत्तर—“एक समय किसी स्मार्त-पण्डितने प्रायश्चित्त विषयक एक जिज्ञासुको चान्द्रायणादि व्रत पालन करनेका आदेश दिया। उनका

आदेश सुनकर उस व्यक्तिने कहा—‘पण्डितजी ! यदि मकड़ीका वध करनेके कारण मुझे चान्द्रायण व्रतका पालन करना पड़े तो आपके पुत्र, जो मेरे साथ इस कार्यमें लिप्त थे, उनके लिए भी तो चान्द्रायण व्रतका

पालन करना आवश्यक है?’ पण्डितजी यह सुनकर बड़े सङ्कटमें पड़े। तब वे अपनी पुस्तकके दो तीन पत्रोंको उलटकर कहने लगे—‘अजी! मुझसे भूल हो गई है। शास्त्रमें कहा गया है कि मकड़ी मारनेसे कोई दोष नहीं होता। अतएव तुम्हें कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं है।’ निरीश्वर स्मार्तोंकी प्रायश्चित्तादि क्रियाएँ आदि भी ऐसी ही होती हैं।”

(त. वि. १म अनु. ९-१२)

प्रश्न ९—सन्देहवादकी क्या गति है?

उत्तर—“सन्देहवाद आप ही अपना विनाश करता है। क्योंकि उसमें संदिग्ध तत्त्वोंको स्वीकार किया गया है।”

(त. वि. १म अनु. १६)

प्रश्न १०—नवीन नास्तिकोंकी मौलिकता कहाँ तक है?

उत्तर—“नवीन नास्तिक लोग जिन मतोंका प्रचार कर अपनेको नवीन मतप्रचारक मानते हैं, वे सभी मत भ्रममात्र हैं। वे लोग पुराने मतोंको ही नामान्तर और रूपान्तरके द्वारा प्रकाशित करते हैं।”

(त. वि. १म अनु. १७)

प्रश्न ११—आध्यक्षिक व्यक्तियोंके विचार कैसे हैं?

उत्तर—“कई पण्डिताभिमानी व्यक्तियोंसे हमारी भेट होती है। वे लोग ऐसा सोचते हैं कि बुद्धि और विद्याके बलसे उन्होंने भक्तिका स्वरूप जान लिया है। वस्तुतः उनमेंसे किसी-किसीने ज्ञानमिश्रा भक्तिको और किसी-किसीने कर्ममिश्रा भक्तिको ही भक्ति मान रखा है। उनका दम्भ इतना अधिक होता है कि चैतन्य-चरितामृतमें शास्त्र ग्रन्थोंके शब्दोंका या मन्त्रोंका जो अर्थ लिखा गया है, उसे सुनकर भी वे लोग यही कहते हैं कि

अपने-अपने मतानुसार सभी अच्छी व्याख्या कर सकते हैं। चरितामृत आदि ग्रन्थोंकी व्याख्याको मान लेना ही सबके लिए आवश्यक नहीं है। ऐसे व्यक्तियोंको सद्धर्म जाननेकी इच्छा न होनेके कारण सद्धर्मके साथ इन लोगोंका तनिक भी सम्बन्ध नहीं होता। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपनी-अपनी नवीन-प्रणालीके अनुसार भजन करनेका व्यर्थ प्रयास करते हैं, परन्तु वे कभी भी शुद्धभक्तिका आस्वादन कर नहीं पाते।”

(तत्त्वकर्मप्रवर्त्तन, स. तो. ११/६)

प्रश्न १२—ईश्वरविश्वासरहित नीतिका कोई मूल्य है या नहीं?

उत्तर—“कोई-कोई नीति तो स्वीकार करते हैं; परन्तु ईश्वरको नहीं मानते। वे आत्मरक्षाके लिए यह कहते हैं कि ईश्वर-विश्वास-रहित नीति सर्वदा भयशून्य और कर्तव्यपूर्ण है। ★★★ ईश्वरको अस्वीकार करनेसे सभी नैतिक विधियाँ अकर्मण्य हो पड़ती हैं।”

(चै. शि. ३/३)

प्रश्न १३—अक्षज (इन्द्रियज) मनोवैज्ञानिक या प्रीतिवैज्ञानिकोंने क्या जगतका कुछ उपकार किया है?

उत्तर—“प्रीतिका स्वरूप न समझकर जिन्होंने मनोविज्ञान और प्रीतिवैज्ञान आदिके विषयमें लिखा है, वे चाहे जितनी ही युक्तियाँ क्यों न दें, वह केवल राखमें घी डालनेकी भाँति व्यर्थ परिश्रममात्र है। उन लोगोंने अहङ्कारमें मत होकर अपनी-अपनी प्रतिष्ठाका संग्रहमात्र किया है। जगतका कोई उपकार करना तो दूर रहा, उन्होंने बहुत हद तक अपकार ही किया है।”

(‘प्रीति’, स. तो. ८/९)

प्रश्न १४—शङ्कराचार्यजीने किस प्रकार कर्मकाण्डयों और बौद्धोंको अपने मतान्तर्भुक्त

किया था?

उत्तर—“शङ्कराचार्यको ब्राह्मणोंके द्वारा अधिक सफलता न मिलनेके कारण वे गिरि, पुरी, भारती आदि दस प्रकारके संन्यासी पदोंकी सृष्टिकर इन संन्यासियोंकी सहायता और विचार-बलसे कर्मप्रिय ब्राह्मणोंको आत्मसात् कर बौद्ध-विनाशमें प्रवृत्त हुए। जहाँ वे बौद्धोंको अपने दलमें शामिल न कर सके, वहाँ उन्होंने नागा संन्यासी दलके द्वारा खड़ग आदि अस्त्रोंका सहारा लिया। अन्तमें उन्होंने वेदान्त-भाष्यकी रचनाकर ब्राह्मणोंका कर्मकाण्ड और बौद्धोंका ज्ञानकाण्ड—दोनोंको एकत्र मिलाकर बौद्धों और ब्राह्मणोंको एक साथ अपने मतमें लगाया। उसके पश्चात् बौद्धोंके देवायतन (मन्दिर और देवलिङ्गों) का नामान्तर कर वैदिक धर्मकी स्थापना की। बौद्धोंमेंसे कुछ प्रहारके भयसे और कुछ अपने धर्मकी डावाँडोल स्थिति देखकर ब्राह्मणोंके अधीन हो पड़े। जिन बौद्धोंने इस कार्यमें घृणाका बोध किया, वे बुद्धदेवके सभी चिह्नोंको लेकर सिंहल-द्वीप (सीलोन), ब्रह्म-राज्य (वर्मा, स्याम आदि) में चले गए। इसी समय बौद्ध-पण्डितगण बुद्धदेवके दाँतको लेकर श्रीजगन्नाथपुरीसे सिंहल द्वीपको चले गए।

(उपक्रमणिका, कृष्ण संहिता)

प्रश्न १५—संन्यासी या जीवको नारायण समझना क्या उचित है?

उत्तर—“मायावादी संन्यासी अपनेको ब्रह्म मानते हुए मुखसे ‘नारायण’, ‘नारायण’ शब्द उच्चारण करते हैं। स्मार्तोंकी यही रीति है कि वे लोग (गृहस्थ ब्राह्मण भी) मायावादी संन्यासीको देखकर उसे नारायण मानकर प्रणाम करते हैं। इस भ्रमपूर्ण प्रथाको दूर करनेके लिए श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुने कहा था—संन्यासी जीवमात्र हैं, वे कभी भी

षडैशवर्यपूर्ण भगवान्-नारायण या स्वयं भगवान् कृष्ण नहीं हो सकते। वे अणुचित् हैं, भगवान् पूर्ण चिद्-वस्तु हैं। अतएव जीव कृष्णरूपी सूर्यके किरण-कणके समान हैं। उन्हें नारायण या कृष्ण कहकर प्रणाम करना उचित नहीं है।”

(अमृतप्रवाहभाष्य म. १८/११२-११६)

प्रश्न १६—मायावादीकी पूजाको क्या देवतागण ग्रहण करते हैं?

उत्तर—“मायावादी जिस किसी भी देवताकी पूजा क्यों न करें और जिस किसी देवताको अन्नादि अर्पण क्यों न करें, उनके मायावाद-निष्ठ दोषोंके कारण वे देवतागण उनकी पूजाको और उनके द्वारा अर्पित खाद्य द्रव्योंको ग्रहण नहीं करते।”

(जैवधर्म १८ अध्याय)

प्रश्न १७—मायावादीकी कृष्णसेवा, श्रवण, कीर्तन और स्तव-स्तुतिसे क्या कृष्ण सन्तुष्ट होते हैं?

उत्तर—

“भक्ति स्वरूप आर ‘विषय-आश्रय’।
मायावादी अनित्य बलिया सब कय॥
धिक् तार कृष्ण सेवा, श्रवण, कीर्तन।
कृष्ण अंगे बज्र हाने ताहार स्तवन॥”

(शरणागति)

अर्थात् मायावादी भक्तिके स्वरूप तथा उसके विषय और आश्रय—सबको अनित्य समझते हैं। अतएव उनकी कृष्णसेवा, श्रवण, कीर्तनादि भी अनित्य ही हैं। उनकी कृष्णसेवा और उनके श्रवण कीर्तनादिको धिक्कार है। उनके द्वारा किए गए स्तव आदि भगवानके अङ्गमें बज्राघात जैसे लगते हैं। अतएव भगवान् उनसे कभी सन्तुष्ट नहीं होते।

प्रश्न १८—पशुओंमें ईश्वरका आरोप करना क्या शुद्धधर्मके अनुकूल मत है?

उत्तर—‘जो व्यक्ति या सम्प्रदाय किसी पशुको ‘ईश्वर’ समझकर पूजा करते हैं, वे भी अद्वैतवादी हैं।’

(चैतन्य शिक्षामृत ५/३)

प्रश्न १९—एकमात्र किनकी उपासना करनी चाहिए?

उत्तर—“शाक्त, सौर, गाणपत्य, शैव और वैष्णव—ये पाँच प्रकारकी भगवद् उपासनाएँ साधकोंके संस्कार क्रमसे हुआ करती हैं। अर्थात् पहले केवल जड़शक्ति, उसके अनन्तर जड़शक्तिके आधारमें क्रियाशक्ति उत्तापरूपी सूर्य, उसके पश्चात् चेतनाधिष्ठान नर-गज-विशेष गणेश- देवता, तत्पश्चात् सर्वोत्कृष्ट व्यापक आत्मारूपी शिव और सबसे अन्तमें जीव और अजीवसे अतीत अतुलनीय सच्चिदानन्दरूप परमात्मा विष्णु सेवित होते हैं। अतत्वज्ञ (अत्यन्त मूर्ख) व्यक्तिसे लेकर परतत्वज्ञ व्यक्तितक सभी परब्रह्मका भजन करनेके अधिकारी हैं। रागकी निर्मलता और उन्नति ही उपासनाका लक्षण है। अतएव सभी जीवोंका यही कर्तव्य है कि वे स्वतन्त्र,

सच्चिदानन्द परमेश्वरकी उपासना करें। दूसरी-दूसरी उपासनाओंमें आबद्ध रहनेसे कभी भी श्रेष्ठ मङ्गल लाभ नहीं होता।”

(तत्त्वसूत्रम् ४७ सूत्र)

प्रश्न २०—प्रकृतिका कर्तृत्व कैसा है?

उत्तर—“अदूरदर्शी व्यक्ति प्रकृतिको ही संसारकी रचना करनेवाली तथा विनाश करनेवाली कर्त्री मानते हैं। प्रकृतिका महिषासुर-मर्दन, चण्डमुण्ड-विनाश और शुभ्म-निशुभ्म वध इत्यादिमें उनके सम्बन्धमें जो कर्तृत्व-सूचक वचन कहे गए हैं, उनका पण्डितगण इस प्रकारसे सद् अर्थ करते हैं—जिस जड़ पदार्थके द्वारा जो कार्य साधित होता है, उसी जड़को स्त्रीलिङ्ग या पुलिङ्ग कल्पना कर उसमें कर्तृत्वका आरोप किया जा सकता है। गङ्गाजलको पवित्रकारिणी, कलकत्ताको उल्लासिनी, कलिको धर्मोच्छेदक और विद्याको अर्थदायिनी कहनेसे उनका कर्तृत्व जैसे रूपक-बोधक मात्र है, प्रकृतिके कर्तृत्वको भी वैसे ही समझना चाहिए।”

(तत्त्वसूत्रम् २२ सूत्र)

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. ६२—आरोहवाद क्या तुरन्त छोड़ा जा सकता है?

उ.—जितने दिन हम अपनी शक्ति पर, अपने पाण्डित्य पर निर्भर रहेंगे, तब तक भगवानके चरणोंमें शरणापन्न नहीं हो सकते। जब तक भगवानके चरणोंमें हमारी शरणागति नहीं हो जाती, तब तक हम आरोहवादको ही प्रधानता देंगे। जिस दिन हमें अपनी शक्ति तथा अपने पाण्डित्यकी तुच्छताकी उपलब्धि होगी, तभी हम शरणागत होकर अवरोहवादको स्वीकार करेंगे। श्रीमद्भागवतमें गजेन्द्रकी कथाका

वर्णन है। यह गजेन्द्र मदमत्त होकर एक सरोवरमें हथिनियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। उस समय उस सरोवरमें रहनेवाले जलचर प्राणियोंको बहुत कष्ट हो रहा था। किन्तु कुछ देर बाद ही दैववश एक बलवान मगरमच्छने आकर उस हाथीका पैर पकड़ लिया। हाथी और मगरमच्छमें भयङ्गर युद्ध छिड़ गया। दोनोंको लड़ते-लड़ते एक हजार साल हो गए, फिर भी युद्ध समाप्त नहीं हुआ। दोनों ही अपनी-अपनी शक्तिका प्रदर्शन कर रहे थे। परन्तु गजेन्द्रका बल धीरे-धीरे

कम होने लगा, क्योंकि एक तो वह पानीमें था और दूसरा मगरमच्छ उसका रक्त पान कर रहा था। इस प्रकार शक्ति कम होने पर उसकी मत्तता कम होने लगी। अन्तमें जब गजेन्द्रको मगरमच्छके चंगुलसे बचनेका कोई उपाया न दिखा, तो उसने विचार किया कि इस विकट स्थितिमें जब कि मेरे बल इत्यादि सब व्यर्थ हो गए हैं, केवल भगवानके चरणोंमें शरणागत होनेसे ही मेरा कल्याण हो सकता है। जबतक जीव इस मदमत्त हाथीके समान अपने तुच्छ बल-बुद्धिके अभिमानमें चूर रहता है, तब तक वह आरोहवादको ही महत्त्व देता है। और जब उसके हृदयमें भगवद् आश्रयकी महिमा उदित होती है, तब शरणागति या अवरोहवादकी ओर उसका चित्त धावित होता है। वैष्णवलोग शरणागतिकी ही बात कहते हैं, वे आरोहवादका उपदेश नहीं देते। कोई व्यक्ति कितना ही बड़ा क्यों नहीं हो जाय, यदि आरोहवादको मङ्गलका पथ मानता है, तो उसका पतन अवश्य ही हो जाता है। कृष्ण ही सबके आश्रय हैं। उनके अतिरिक्त किसी औरका आश्रय ग्रहण करनेपर हमारी रक्षा नहीं हो सकती।

**प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्मणि सर्वशः।
अहङ्कार विमूढात्मा कर्त्तुःहिमिति मन्यते॥**

अहङ्कार विमूढात्मा लोगोंकी ही बुद्धि कर्म-काण्डीय होती है। वे ही आरोहवादी हैं। मोक्षवादी ज्ञानी एवं योगी लोग अपनी चेष्टासे ऊपर उठना चाहते हैं। “ज्ञानी जीवन-मुक्त दशा पाइनु करि माने” अर्थात् ज्ञानी लोग अपने आपको जीवन्मुक्त मानते हैं, वे ब्रह्म बनना चाहते हैं। एक तुच्छ व्यक्तिके बड़े होनेकी पिपासाका नाम ही आरोहवाद है। योगी लोग दो-चार-पाँच हाथ ऊँचा होना चाहते हैं। वे विभूति अथवा कैवल्य (सायुज्य

मुक्ति) प्राप्त करना चाहते हैं। ये सभी आरोह चेष्टाएँ हैं। हम जहाँ कहीं भी रहें, वहाँ आरोहवादी ज्ञानी होनेकी चेष्टा न कर, आरोहवादी कर्मी अथवा योगी बननेकी दुर्बुद्धिको परित्यागकर, बुभुक्षा (विषय भोगोंकी इच्छा), मुमुक्षा (मुक्तिकी इच्छा) से ताड़ित न होकर यदि तन, मन और वचनसे शरणागत होकर साधुके मुखसे हरिकथा श्रवण करें तो भगवान अजित (जिन्हें कोई जय नहीं कर सकता) को सहज ही अपने वशमें कर सकते हैं। पण्डित हो अथवा मूर्ख, यदि वह कहीं पर रहकर साधुके श्रीमुखसे वैकुण्ठकी कथाओंको सुनता है, तो उसका कल्याण निश्चित है। यदि हम अपनी बुद्धिके बलपर शास्त्रोंके विचारोंको जाननेकी चेष्टा करेंगे तो हमें वज्जित होना पड़ेगा। भुक्ति और मुक्तिकी इच्छाओंसे युक्त होकर शास्त्रोंकी आलोचना करनेका तात्पर्य है कि हम शास्त्रोंको अपने अधीन करना चाहते हैं। किन्तु शास्त्र तो साक्षात् कृष्ण अथवा कृष्णके अवतार हैं। स्वयं कृष्ण श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं—

**तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेश्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥**

प्रभु होनेकी चेष्टा ही कर्मकाण्ड है। इस उद्देश्यसे हम जो उपदेश प्राप्त करनेका अभिनय करते हैं, उससे हम स्वयं ही वज्जित हो जाते हैं। इस दुर्बुद्धिसे युक्त होकर शास्त्र आलोचना करनेपर शास्त्र अपना स्वरूप हमारे सामने प्रकाशित नहीं करते हैं। श्रुतियोंमें भी कहा गया है—

**यस्य देवे परा भक्तिर्था देवे तथा गुरो।
तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः॥**

भगवानकी भाँति ही जिसकी श्रीगुरुदेवके श्रीचरणकमलोंमें भी अचला (दृढ़) भक्ति है, उसके निकट ही शास्त्रोंका अर्थ प्रकाशित

होता है। महाप्रभुने कहा है—

तृणादपि सुनीचेन तरोरयि सष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

जिस समय साधक एक तिनकेसे भी अधिक दीन-हीन होगा, तभी वह शुद्ध रूपमें हरि-कीर्तन कर सकता है। श्रेष्ठ होनेकी लेशमात्र भी इच्छा रहनेपर हरिकीर्तनसे छुट्टी हो जाएगी।

प्र. ६३—जीवको कौन चलाता है?

उ.—भगवान ही समस्त जीवोंके नियामक एवं ईश्वर हैं। जीव जैसे-जैसे कर्म करते हैं, भगवान उसीके अनुरूप फल प्रदान करते हैं। पूर्वजन्मके कर्मके अनुसार जीवकी प्रवृत्ति भगवानकी प्रेरणाके द्वारा कार्य करती है। जीव हेतुकर्ता और ईश्वर प्रयोजककर्ता हैं। जो किसीकी प्रेरणासे प्रेरित होकर कोई कार्य करता है, उसे हेतुकर्ता या प्रयोज्यकर्ता कहते हैं तथा जो प्रेरणा प्रदान करता है, वह मूल कर्ता या प्रयोजककर्ता होता है। जीव अपने कर्मोंका कर्ता होकर जो फल भोग करता है या अगले जन्मके लिए कर्म करता है, यह सब ईश्वरके द्वारा ही होता है। क्योंकि ईश्वर ही फल देनेवाले हैं और जीव फल भोक्ता है। शरणागत भक्तको भगवान स्वयं ही चलाते हैं, परन्तु बहिर्मुख जीव भगवानकी मायाशक्तिके द्वारा चालित होते हैं।

प्र. ६४—आरोहवाद किसे कहते हैं?

उ.—आरोहवाद रावणके द्वारा स्वर्गमें जानेके लिए सीढ़ी बनानेके समान ही व्यर्थ चेष्टा है। शास्त्रोंमें स्वर्गमें जानेके लिए सीढ़ी बनानेकी रावणकी नीतिको परित्याग करनेको कहा गया है। एक लालटेन हाथमें लेकर रात्रिके समय सूर्यको देखनेकी चेष्टा है और दूसरी प्रातःकाल होनेकी प्रतीक्षा करके सूर्यकी किरणोंके द्वारा सूर्यको देखना है। प्रेयःकामी (जागतिक

वस्तुओंका इच्छुक) होनेपर हमें आरोहवादी होना ही पड़ेगा। अर्थात् ज्ञानका प्रयास, योगका प्रयास तथा कर्मका प्रयास हमें करना ही पड़ेगा, परन्तु आरोहवाद चेष्टा सर्वदा ही असम्पूर्ण रहेगी। बीस वर्षकी सभ्यता या ज्ञान एक सौ वर्षकी सभ्यता या ज्ञानकी तुलनामें असम्पूर्ण या भ्रान्तिपूर्ण प्रमाणित होगी। एक हजार वर्षकी सभ्यता या ज्ञानके आगे दो सौ वर्षकी सभ्यता या ज्ञान असम्पूर्ण या गलत प्रमाणित हो जाएगा। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति कभी भी आरोहवादका मार्ग नहीं अपनाते। वे अवरोहपन्थी हैं।

प्र. ६५—गुरुनिष्ठा नहीं होनेसे क्या हरिभजन नहीं होगा?

उ.—गुरुदेवतात्मा नहीं होनेसे हरिभजन नहीं होगा। गुरु जीव नहीं हैं, वे ईश्वर हैं। इसलिए उन्हें देवता कहा गया है। इसके अतिरिक्त गुरु आत्मा हैं अर्थात् प्रीतिके पात्र हैं। जो गुरुको ईश्वर अथवा प्रिय मानते हैं वे ही गुरुदेवतात्मा हैं। ऐसे गुरुदेवतात्मा गुरुभक्त ही गुरुकी कृपा प्राप्त करते हैं। कृष्णके परमप्रिय श्रीगुरुदेवके ऐसे गुरुनिष्ठ भक्तोंके प्रति प्रसन्न हो जानेके कारण उनके प्राणबन्धु कृष्ण भी उन गुरुदेवतात्मा गुरुनिष्ठ भक्तोंके प्रति प्रसन्न हो जाते हैं। देखिए, हरि, गुरु एवं वैष्णव—इन तीनोंको किस प्रकार सजाकर रखा गया है। गुरु, भगवान और वैष्णवोंको क्रोडीभूत करके बीचमें बैठे हुए हैं। तात्पर्य यह है कि यदि कोई दृढ़तापूर्वक गुरुकी शरण ग्रहण करता है, तभी वह भगवान और भक्तकी कृपा प्राप्त कर सकता है। गुरुके प्रसन्न होनेसे ही श्रीहरि और वैष्णव प्रसन्न होते हैं। परन्तु यदि कोई गुरुदेवतात्मा नहीं हो सकता है अर्थात् गुरुको अपना जीवनस्वरूप नहीं बना सकता है, तो उसका

सारा भजन-साधन व्यर्थ हो जाता है। वह भक्त अथवा भगवान किसीकी भी सेवा प्राप्त नहीं कर सकता। अन्तमें उसे भगवानकी सेवासे बच्चित होना पड़ता है।

इन सब बातोंको सुनकर एक भक्त दुःखी होकर बोले—“हे प्रभो! आपने तो कृपापूर्वक गुरुकी महिमाका वर्णन किया तथा गुरुदेवतात्मा होनेकी बात कही। परन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि मैं इन बातोंको ग्रहण नहीं कर सका।”

यह सुनकर श्रील प्रभुपाद दुःखी होकर कहने लगे—“मेरा ही भाग्य खराब है, क्योंकि मैंने तो अनेक बातें कहीं, परन्तु लोगोंने मेरी बातोंको नहीं सुना।”

प्र. ६६—वैष्णव कौन है?

उ.—गुरुसेवक ही वैष्णव है। सद्गुरुके चरणोंका आश्रय ग्रहण करनेवाला दीक्षितभक्त ही वैष्णव है। गुरुभक्तिके तारतम्यके अनुसार ही कृष्णभक्ति या वैष्णवताका तारतम्य है अर्थात् जितने परिमाणमें गुरुके श्रीचरणोंमें भक्ति होगी, उतने ही परिमाणमें कृष्णके प्रति भी होगी या उतने ही परिमाणमें वैष्णवता आएगी। गुरुद्वेषी व्यक्ति वैष्णव नहीं हैं, वे अवैष्णव, पाषण्डी और नारकी हैं। जो गुरुसे द्रोह करता है, उसे भगवानका द्रोही या सारा जगतका द्रोही कहा गया है। गुरुनिष्ठ निष्काम भक्त ही शुद्धभक्त है। इसीलिए कहा है—

कनक कामिनी प्रतिष्ठा बाधिनी
 छाड़ियाछे जारे सेइ त वैष्णव।
 सेइ अनासक्त सेइ शुद्ध भक्त
 संसार तथाय पाय पराभव ॥

अर्थात् कनक (सम्पत्ति), कामिनी (स्त्री) तथा प्रतिष्ठारूपी बाधिनी—इन सभीने जिसे छोड़ दिया है, वही वैष्णव है। ऐसे वैष्णव ही संसारके प्रति अनासक्त होते हैं। अतः वे ही शुद्ध भक्त हैं तथा संसार ऐसे शुद्धभक्तोंके

चरणोंमें नतमस्तक होता है।

प्र. ६७—क्या भगवानकी सेवाके बिना कल्याण नहीं हो सकता?

उत्तर-कदापि नहीं। कृष्णको भूलकर जीव कभी परमात्म विचारको ग्रहणकर योगमार्गमें तो कभी ब्रह्मविचारको ग्रहणकर निर्विशेष ज्ञानमार्गकी ओर चला जाता है। इसके द्वारा उसका मङ्गल नहीं हो सकता। परन्तु भगवानकी सेवाके द्वारा साक्षात् भगवानको पाया जा सकता है। भगवानकी सेवाके बिना जीवोंका कल्याण सम्भव नहीं है। भगवान केवलमात्र सात्रिध्यप्राप्तिकी वस्तु नहीं हैं, बल्कि नित्यसेव्य-वस्तु हैं अर्थात् भगवानके दर्शन अथवा उनके निकट निवास करना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उनकी सेवा ही प्रधान है। यदि किसीको भगवानकी कथाओंका श्रवण करनेमें रुचि नहीं हो रही है, तो यह समझना चाहिए कि अवश्य ही वह अपना अधिकतर समय व्यर्थकी सांसारिक बातोंमें नष्ट करता है। क्योंकि निरन्तर भगवत् कथाओंकी आलोचना करनेपर अवश्य ही रुचि उत्पन्न होगी। मृत्युसे पहले ही यदि जीवन्मुक्त अवस्थाको प्राप्त न किया जाय तो फिरसे जन्मग्रहण करना ही पड़ता है। अर्थात् पुनर्जन्म निर्भर करता है संसारके प्रति आसक्ति पर। यदि मृत्युके समय संसारके प्रति लेशमात्र भी आसक्ति रह जाती है तो उसीके अनुसार अगला जन्म निश्चित है। परन्तु दुःखकी बात तो यह है कि असत्सङ्ग तथा हरिकथाओंसे दूर रहनेके कारण किसीकी इस दुःखमय संसारसे पार होनेकी इच्छा भी नहीं होती। यदि किसीकी होती भी है तो उसमें भी उसका अपना सुख छिपा हुआ रहता है। जैसे—बुभुक्षु तथा मुमुक्षु। बुभुक्षु स्वर्ग आदि उच्च लोकोंके सखभोगोंकी इच्छासे ही सत्कर्म आदि करते

हैं तथा मुमुक्षु मुक्ति सुख प्राप्त करनेके लिए ही संसारसे विरक्त होकर निर्विशेष ब्रह्मज्ञानका अवलम्बन करते हैं। इस प्रकार इन दोनों ही प्रकारके लोगोंके हृदयमें अपने सुखकी कामना रहती है। इसीलिए भगवान् भोगी तथा त्यागी—इन दोनोंकी सहायता नहीं करते। इनकी सेवा तो भगवानसे विमुखोंको मोहित करनेवाली मायाशक्ति ही करती है। परन्तु जो सम्पूर्णरूपसे भगवानको ही प्रसन्न करना चाहते हैं, ऐसे भक्तकी सहायता मायापति भगवान् स्वयं ही करते हैं।

गुरुदेवतात्मा गुरुनिष्ठ होकर निष्कपटरूपसे गुरु एवं भगवानकी सेवा करते-करते हमें मुक्त होना होगा। तभी हम शुद्धसेवा प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि मुक्त हुए बिना भगवानकी सेवा शुद्धरूपसे नहीं हो सकती।

गुरुके आनुगत्यमें हमें सदा-सर्वदा हरिनाम करना होगा। हमें सर्वदा ही स्मरण रखना चाहिए कि हरिनामभजन ही साक्षात् कृष्णभजन है। श्रीनाम भजनके द्वारा ही सवार्थसिद्धि होगी।

(क्रमशः)

गुरु-तत्त्व

(अँ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीके मुखनिःसृत अमृतमयी
हरिकथा, मथुरा, २५ अगस्त २००२)

श्रीमद्भागवतमें नारदजी तथा व्यासदेवका वर्णन है। समस्त ग्रन्थोंकी रचना करके भी व्यासजीके हृदयमें शान्ति नहीं आई। नारदजी उनके गुरु हैं, उनकी कृपासे उनका चित्त शान्त हुआ तथा समाधि भाषामें उन्होंने श्रीमद्भागवतको प्रकट किया। गुरु तथा शिष्य दोनों ही योग्य होने चाहिए। द्रोणाचार्यजीके शिष्य अर्जुन तथा एकलव्य दोनों हैं। कौन योग्य शिष्य है? अर्जुन, एकलव्य नहीं। क्योंकि जो द्वेषी है, गुरुके विचारोंका अनुसरण नहीं करता, वह वास्तवमें शिष्य नहीं है। श्रीहरिभक्तिविलासमें शिष्यके लक्षण बताए गए हैं। यदि शिष्य योग्य नहीं है तो उसका कल्याण होना बहुत कठिन है। नारद तथा व्यासजीके उदाहरणसे गुरुशिष्यके सम्बन्धको समझना होगा। बिना गुरुकृपाके भगवानकी अनुभूति नहीं होती, यहाँ तक कि शक्त्यावेश अवतार व्यासजीको भी नहीं हुई। शक्त्यावेश अवतारके लिए परशुरामजीसे समझो। वे जीव तत्त्व हैं, किन्तु कायविशेष हेतु भगवानने

उनमें अपनी शक्ति संचार करके उनसे क्षत्रियोंका मान मर्दन कर इक्कीस बार संहार कराया। यह कार्य जीव नहीं कर सकता। किन्तु जब भगवान् रामचन्द्रसे उनकी भेट हुई, तब तक उनके शक्त्यावेश अवतारका समय समाप्त हो चुका था। इसलिए रामजीने बड़ी चतुराई पूर्वक उसे वापिस ले लिया। धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर पूछा—‘बोलो, इसे कहाँ सन्धान करूँ? तुम पर छोड़ूँ तो मारे जाओगे, अतएव तुम्हारी शक्ति मैं वापिस ले लेता हूँ।’ इसके बाद परशुरामजीकी असाधारण शक्ति समाप्त हो गई तथा वे क्षत्रियोंका संहार तथा अन्य अलौकिक कार्य करनेमें असमर्थ हो गए।

उसी प्रकार व्यासजी भी शक्त्यावेश अवतार हैं। यद्यपि वे नारायण नहीं हैं, किन्तु उन्हें नारायण कहा गया है। भगवानकी शक्ति उनमें कार्य कर रही है। समस्त वेद, पुराण, उपनिषदोंकी उन्होंने रचना की जो साधारण जीवका कार्य नहीं है। किन्तु उनके चित्तमें

खेद रहा। नारदजी उनके गुरु तथा भगवानके परिकर हैं। उनका चित्त हर समय प्रसन्न रहता है। वे भगवानके समान नाना प्रकारके रूप धारणकर भगवानकी अनेक लीलाओंमें सेवा कर सकते हैं। यह सामर्थ्य सिद्ध परिकरमें ही होती है, शक्त्यावेश अवतारमें नहीं। इसलिए नारदजी पृथक-पृथक रूप धारणकर श्रीकृष्णकी लीलाओंमें सेवा करते हैं। जिस प्रकार नन्दबाबा, यशोदामैया उतने ही रूपोंमें हैं जहाँ-जहाँ कृष्णलीला हो रही है। सिद्ध परिकरोंकी यह विशेषता कृष्णने नारदजीके माध्यमसे द्वारकालीलामें दिखाई कि मेरे परिकर मेरे समान ही अनेक रूप धारण कर सकते हैं तथा विभिन्न लीलाओंमें सेवा कर सकते हैं। यह कार्य शक्त्यावेश अवतार नहीं कर सकते। व्यासजीने अपनी समस्त रचनाओंमें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष चार पुरुषार्थोंको महत्त्व दिया। उन्होंने भगवानके नाम, रूप, गुण और लीलाका वर्णन नहीं किया। इसी कारण उनके चित्तमें खेद हुआ। उनका यह खेद नारदजीकी कृपासे दूर हुआ। उन्होंने भक्तियोगके द्वारा समाधिमें कृष्णकी समस्त लीलाओंका दर्शन किया। भक्तियोग अर्थात् गुरु-हरिके चरणोंमें सम्पूर्ण शरणागति। मैं अब कुछ नहीं कर सकता, आपकी कृपासे ही होगा। जहाँ यह भाव आया, वहाँ भगवानने अपना स्वरूप दिखाया—

**भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले।
अपश्यत् पुरुषं पूर्णं मायाज्ज्व तदपाश्रयाम्॥**
(श्रीमद्भा. १/७/४)

अर्थ—भक्तियोगके प्रभावसे शुद्ध मनको पूर्णतया एकाग्रकर श्रीव्यासदेवजीने आत्मगत सहज समाधिमें कान्ति, अंश तथा स्वरूपशक्तिसे समन्वित श्रीकृष्णको एवं उनके पीछे गर्हित भावसे स्थित उनके आश्रित मायाको देखा।

उन्होंने कृष्णके परिपूर्णतम रूपका दर्शन किया जो केवल वृन्दावनमें ही प्रकट होता है—उनकी माधुर्यपूर्ण लीलाएँ—नन्दबाबा, मैया, सखा तथा गोपियोंसे परिवेष्टित। उनकी समस्त लीलाओंका यहाँ तक कि रासलीलाका भी दर्शन व्यासजीने किया। ये समस्त लीलाएँ उनके हृदयमें प्रकृष्ट रूपसे उदित हुई (प्रचोदयात्)। इनका दर्शनकर उन्होंने श्रीमद्भागवतकी रचना की।

नारदजी समस्त गुरुलक्षणोंसे पूर्ण हैं तथा व्यासजी शिष्यके लक्षणोंसे। जब अपनी बुद्धिने काम नहीं किया, विद्वताने काम नहीं किया तब गुरुके शरणागत होनेपर गुरुकृपासे परतत्त्वको तथा उनकी लीलाओंको सम्पूर्ण रूपसे देखा। तभी वे भगवानकी सेवा कर सके।

शिष्यके भी लक्षण हैं उसे गुरुके बाह्य तथा आन्तरिक भावोंको समझकर उसके अनुरूप कार्य करना चाहिए। गुरुके विचार, आचरण, आदेश—सब प्रकारसे उनका अनुसरण करना चाहिए। आत्मसमर्पण करके सेवा करे, तनिक भी विद्वताका अभिमान न हो। ये सब गुण गुरुप्रदत्त ही हैं, हम तो संसारमें भटक रहे थे, गुरुजीने कृपा करके हमारा उद्धार किया, अपने पास रखा, सेवा प्रदान की, कथा श्रवण कराई तथा इस स्थिति तक पहुँचाया कि ‘पङ्कुं लङ्घयते गिरिं’। सब समय गुरुके आनुगत्यमें रहें। जहाँ अपनी स्वतन्त्रताका भाव आया तो शिष्य कौएके समान ही रह जाएगा, समस्त ज्ञान धरा रह जाएगा। नारदजी अद्वितीय गुरु हैं तथा व्यासजी उनके योग्य शिष्य।

शिष्यके लक्षण—शुद्धाचारी, महाबुद्धिमान, गुरुका मनोभीष्ट समझनेवाला, दम्भहीन, कामक्रोधशून्य, केवल भगवद्भक्तिकी ही कामना, गुरुभक्तिविशिष्ट, सर्वकाल कायमनोवाक्य-सेवामें

तत्पर, निष्पाप, जितेन्द्रिय, जड़वस्तु ममत्वहीन, निरालस्य, तत्त्वजिज्ञासु, गुरुमें दृढ़ मित्रता विशिष्ट (विश्रम्भेन गुरौ सेवा), सत्यवादी, मृदुभाषी, सहिष्णु, विनयी हो। संसारके कलेशोंको देखकर ही परमार्थ चिन्तन करनेवाला ही भजन कर सकता है। अन्य किसी कारणसे आश्रय लेने पर नहीं कर सकता। सदूशिष्य सदैव अपना दोष देखता है, दूसरोंकी समालोचना नहीं करता। गुरु अपना सर्वोत्तम धन 'रथा दास्य' शिष्यको प्रदान करते हैं। जो शिष्य इसका महत्व समझता है, वह गुरुका चिरत्रहणी हो जाता है।

यदि किसी कारण अयोग्य गुरु जैसे

मायावादी आदि मिल जाए तो उसे छोड़कर योग्य गुरु करना चाहिए। यदि शिष्य अयोग्य हो तो वह गुरुका द्रोहाचरण करेगा जैसे एकलव्य। गुरुके आचार-विचारका अनुसरण करना शिष्यका कर्तव्य है, अन्यथा वह मनोभीष्ट पूर्ण नहीं कर सकता, सेवा नहीं कर सकता। यदि विद्याका दम्भ अभिमान रहेगा तो वह काम नहीं आता। भक्ति स्वतन्त्र है, वह गुरुकृपासे आती है, विद्याभिमानसे नहीं। गुरुका अनुशासन मानो, गुरु पर विश्वास करके आत्मसमर्पण करके वात्मीकि जैसा दस्यु भी परमार्थ लाभ कर सकता है। अन्यथा विद्याका गौरव रौरव (नरक) बन सकता है। ४

श्रीगौराङ्ग-सुधा

(वर्ष ४६, संख्या ९, पृष्ठ २१० से आगे)

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

वैष्णवोंको इस प्रकार प्रेममें विह्वल होकर रोते देखकर श्रीगौरसुन्दरके हृदयमें वात्सल्यभाव उमड़ आया तथा उन्होंने मातृभावसे स्नेहपूर्वक सभीको अपना स्तनपान कराया। इस प्रकार प्रभुने गीताकी अपनी वाणीको सत्य कर दिया, जिसमें उन्होंने कहा है—

"पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।"

अर्थात् मैं ही जगतका पिता, माता, धाता तथा पितामह हूँ।

प्रभुका स्तनपानकर सभी वैष्णवलोग आनन्दसे क्रन्दन करने लगे। इस प्रकार सात दिनों तक श्रीचन्द्रशेखर आचार्यके घरसे अद्भुत तेज निकल रहा था, जिससे कि देखनेवालोंकी आँखें भी चुधियाँ जाती थीं।

श्रीअद्वैताचार्यकी चतुराई

प्रभु जब आवेशमें रहते थे, उस समय वे सभीके ऊपर कृपा करते तथा उन्हें वरदान

दिया करते थे। परन्तु जब उनका आवेश दूर हो जाता तथा वे स्वाभाविक स्थितिमें रहते, तो उस समय वे सभीका यथायोग्य सम्मान करते थे। अद्वैताचार्यजीका सम्मान तो विशेष रूपसे करते थे, जिससे आचार्यजीको बहुत दुःख होता था। सबके समक्ष तो वे कुछ कह नहीं पाते थे, परन्तु मन ही मन सोचने लगे—“मेरे प्रभु सदा-सर्वदा अपनी मायाके द्वारा अपनी महिमाको छिपाकर मुझे ठगते हैं अर्थात् स्वयं भगवान होकर भी मुझ दासको प्रणाम करते हैं। परन्तु मैं कुछ नहीं कर पाता हूँ, क्योंकि ये महाबली हैं। मेरे निषेध करनेपर भी जबरदस्ती मेरे चरणोंको स्पर्श कर लेते हैं। अतः मेरे पास अब एक ही उपाय है, जिसके द्वारा मैं इनकी चोरी जगतमें प्रकट करा सकता हूँ, वह है भक्तिभाव। अतः मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि

लोग जो मुझे अद्वैतसिंह कहते हैं, वह तभी सार्थक होगा यदि मैं प्रभुकी मायाको हटवाकर प्रभुको जगतके सामने प्रकाशित कर दूँगा। ऋषि भृगुको जीतकर प्रभु स्वयंको अजित मान रहे हैं, परन्तु ऐसे भृगु जैसे सैकड़ों ऋषि मेरे शिष्य हैं। अतः भृगु तो प्रभुको क्रोधित न कर पाए, परन्तु मैं प्रभुको इस प्रकार क्रोधित कर दूँगा कि वे सबके समक्ष मुझे अपने हाथोंसे दण्ड देंगे। भक्तिका प्रचार करनेके लिए तो भगवानका अवतार होता है। परन्तु प्रभुको क्रोधित करनेके लिए मैं भक्तिका प्रचार न कर ज्ञानका प्रचार करूँगा, जिससे क्रोधित होकर प्रभु सबके सामने मेरे केश पकड़कर मुझे दण्ड प्रदान करेंगे।”

ऐसा विचारकर वे हरिदासको साथ लेकर शान्तिपुर चले गए। वहाँ जाकर उन्होंने ‘योगवाशिष्ठ’ ग्रन्थ पाठ करना आरम्भ कर दिया—“ज्ञानके बिना भगवानके चरणोंमें भक्ति नहीं हो सकती। अतः ज्ञान ही सबका प्राणस्वरूप है, सर्वशक्तिसम्पन्न है। कुछ लोग ऐसे ज्ञानरूप धनको घरमें खोकर बनाँमें जाकर खोजते हैं। वे नहीं जानते कि भक्ति दर्पणके समान तथा ज्ञान नेत्रोंके समान है। जिस प्रकार नेत्रहीन व्यक्तिका दर्पणसे कोई लाभ नहीं हो सकता, उसी प्रकार नेत्ररूप ज्ञानके बिना भक्तिरूप दर्पणका कोई महत्व नहीं रह जाता। मैंने समस्त शास्त्रोंका अध्ययन कर यही निष्कर्ष निकाला है कि समस्त शास्त्रोंका सार ज्ञान ही है।”

क्योंकि हरिदास ठाकुर श्रीअद्वैताचार्यजीकी महिमा जानते हैं, इसीलिए उनकी ऐसी भक्तिविरुद्ध बातोंको सुनकर वे जोर-जोरसे हँसने लगे। उधर अन्तर्यामी प्रभु श्रीगौरसुन्दर श्रीअद्वैताचार्यजीकी प्रतिज्ञाको जान गए थे। एक दिन प्रभु नित्यानन्दके साथ नगर-भ्रमण

करते-करते ललितपुर नामक एक गाँवमें जा पहुँचे। उसी गाँवमें गङ्गाके किनारे एक गृहस्थ संन्यासीका आश्रम था। यह देखकर प्रभुने नित्यानन्दजीसे पूछा—“श्रीपाद नित्यानन्द! यह आश्रम किसका है, क्या आप जानते हैं?” नित्यानन्द—प्रभो! यह संन्यासीका आश्रम है।

प्रभु—हमारा बड़ा ही सौभाग्य है कि हम आज संन्यासीके आश्रम पर पहुँचे हैं। अतः चलिए हम उनका दर्शनकर कृतार्थ हो जाएँ। ऐसा कहते हुए वे दोनों आश्रमके अन्दर प्रविष्ट हो गए। अन्दर जाकर श्रीगौरसुन्दरने उस संन्यासीको आदरपूर्वक प्रणाम किया। प्रभुके मनमोहक स्वरूपका दर्शनकर संन्यासी प्रसन्न हो गया तथा उसने प्रभुको आशीर्वाद दिया—“तुम्हें धन-सम्पत्ति, सुन्दरी-स्त्री तथा उत्तम विद्या प्राप्त हो।”

इस आशीर्वादको सुनकर प्रभु मुस्कराते हुए बोले—“स्वामीजी! यह आशीर्वाद नहीं, अभिशाप है। यदि आप मुझे वरदान देना ही चाहते हैं तो यही वर दीजिए कि मुझे कृष्णभक्ति प्राप्त हो। क्योंकि इस जगतकी सभी वस्तुएँ दुःखजनक तथा नाशवान हैं। परन्तु भक्ति अक्षय (नष्ट न होनेवाली) तथा अव्यय है।”

यह सुनकर संन्यासी हँसते हुए बोला—“मैंने सुना ही था कि इस कलियुगमें यदि किसीका हित चाहो, तो वही व्यक्ति डंडा लेकर मारने आता है, परन्तु आज स्पष्टरूपसे देख भी लिया है। यह ब्राह्मण बालक ऐसा ही है। संसारमें लोग सुख-वैभवकी वृद्धिका आशीर्वाद प्राप्त करनेके लिए क्या कुछ नहीं करते, और वह दुर्लभ आशीर्वाद मैंने इसे सहजरूपमें ही दे दिया। परन्तु कहाँ तो यह मेरा उपकार मानेगा, बल्कि उल्टा मेरा दोष निकाल रहा

है।” संन्यासीने प्रभुसे पूछा—“हे बालक! तुमने मेरे आशीर्वादकी निन्दा क्यों की? जगतमें आकर जिसने भोग-विलास नहीं किया उसका जीवन तो मानो व्यर्थ ही चला गया। जिसके पास सुन्दरी स्त्री न हो, प्रचुर धन न हो, उसके जीवित रहनेसे क्या लाभ? इसके अतिरिक्त तुम जिस विष्णुभक्तिकी बात कर रहे हो, वह भी धन-सम्पत्तिके बिना असम्भव है। क्योंकि यदि तुम्हारे पास खाने-पीनेको कुछ भी नहीं हो, तो क्या तुम भूखे पेट भक्ति कर सकते हो?”

संन्यासीकी बातें सुनकर प्रभु हँसने लगे। कुछ क्षण पश्चात् प्रभु अति विनम्र वाणीसे कहने लगे—“हे संन्यासी महाराज! यदि भाग्यमें खाना-पीना तथा विषयभोग होगा तो मनुष्य कहीं भी क्यों न रहे, उसे अवश्य ही मिलेगा। और फिर संसारके लोग जिस धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र-परिवार इत्यादिकी कामना करते हैं, क्या कारण है कि एक दिन ये सभी वस्तुएँ नष्ट हो जाती हैं। यदि आप कहना चाहते हैं कि कामना करने पर ही अपनी चेष्टासे ही सब वस्तुएँ मिलती हैं, तो जरा विचार तो कीजिए कि बीमारियोंकी प्राप्तिके लिए कोई भी कामना नहीं करता, न चेष्टा ही करता है, परन्तु फिर भी बीमारी क्यों होती है? अतः स्वामीजी! जगतमें अच्छा अथवा बुरा फल पूर्वजन्मोंके कर्मापर निर्भर करता है। यदि कोई कहे कि फिर शास्त्रोंमें क्यों कहा गया है कि सत्कर्मोंके द्वारा ही स्वर्ग आदि सुख प्राप्त किया जा सकता है या जागतिक सुख जैसे धन-सम्पत्ति, मान-सम्मान आदि प्राप्त हो सकता है? इसका उत्तर यह है कि जिनकी आसक्ति संसारमें पूर्णरूपसे लगी हुई, उनका एकमात्र उद्देश्य होता है कि किस प्रकार संसारमें

विषयभोगकी वस्तुएँ प्राप्त हों। ऐसे लोगोंके लिए ही शास्त्रोंमें उपदेश दिए गए हैं कि सत्कर्म जैसे दान-पुण्य-यज्ञ आदि अथवा हरिनामके द्वारा समस्त प्रकार सुख प्राप्त किए जा सकते हैं, जिससे धीरे-धीरे हरिनाम अथवा सत्कर्मोंके प्रभावसे उनका चित्त निर्मल हो, संसारसे उनकी आसक्ति दूर हो तथा कृष्णभक्तिमें रुचि उत्पन्न हो। परन्तु मूर्ख लोग शास्त्रोंके अभिप्रायको न समझकर विषय सुखोंमें ही व्यस्त रहते हैं।”

प्रभुकी बातोंको सुनकर हँसते हुए संन्यासी कहने लगा—“ऐसा प्रतीत होता है कि इस संन्यासी (नित्यानन्दजी) ने अपने मन्त्रके प्रभावसे इस ब्राह्मणबालककी बुद्धिको विकृत कर दिया है, जिससे कि यह इसे अपनी सेवा करानेके लिए अपने साथ ले जा सके, तभी यह ऐसी बहकी-बहकी बातें कर रहा है। मेरी इतनी उम्र हो गई है तथा भारतके समस्त तीर्थोंमें मैंने भ्रमण किया, और आज यह छोटा-सा दूध पीनेवाला बच्चा मुझे उपदेश दे रहा है।”

यह सुनकर श्रीनित्यानन्दप्रभु हँसते हुए कहने लगे—“हे महाशय! आप व्यर्थ ही बालकके मुख लग रहे हैं। बालक तो स्वभावसे ही चञ्चल होते हैं। अतः अपनी इसी बालसुलभ चञ्चलताके कारण इसने जो कुछ कहा, आप उसका बुरा न मानें। मैं आपकी महिमा अच्छी तरहसे जानता हूँ। अतः मेरे कारण आप इस चञ्चल बालकको क्षमा कर दीजिए।”

नित्यानन्दजीके मुखसे अपनी प्रशंसा सुनकर संन्यासीका क्रोध शान्त हो गया तथा उसने प्रसन्नतापूर्वक उन दोनोंको प्रसाद पानेके लिए कहा।

नित्यानन्द—“हे महाशय! हम किसी

आवश्यक कार्यसे जा रहे हैं। अतः आप हमें कुछ दे दीजिए, हम मार्गमें कहींपर स्नानकर खा लेंगे।”

सन्यासी—“आप दोनों यहींपर स्नान करें। तत्पश्चात् कुछ प्रसाद पाकर अपने कार्यके लिए चले जाना।”

वे दोनों तो ऐसे पतितोंका उद्धार करनेके लिए ही अवतरित हुए हैं, अतः उन्होंने सन्यासीकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। पहले उन दोनोंने गङ्गामें स्नान किया, तत्पश्चात् सन्यासीके द्वारा दिए आम, दूध, कटहल आदि फलाहार कृष्णको अर्पितकर खानेके लिए बैठ गए। जब उनका प्रसाद पाना समाप्त हो गया तो सन्यासी श्रीनित्यानन्दजीसे बोला—“हे श्रीपाद! क्या आनन्द ले आऊँ? अर्थात् वह सन्यासी वामपन्थी (वामाचारी) था। मद्य, मांस, मछली, मुद्रा (धन), मैथुन (स्त्रीसङ्ग)—इन पञ्च ‘मंकारोंको ग्रहण करना तथा रजस्वला स्त्रीके रजके द्वारा कुलदेवीकी पूजा करना, इन वामाचारियोंका प्रधान कर्तव्य है। श्रीनित्यानन्दप्रभु सर्वत्र भ्रमण कर चुके हैं, अतः आनन्द नाम सुनकर वे समझ गए कि यह वामपन्थी सन्यासी है तथा मदिरा लानेके लिए कह रहा है। परन्तु सुनकर भी जब वे चुप रहे तो सन्यासी बार-बार आग्रह करने लगा। उसके पुनः पुनः आग्रह करनेपर नित्यानन्दप्रभु बोले—“अच्छा महाशयजी! अब हम चलते हैं।” उन दोनोंके मनोहारी स्वरूपका दर्शनकर उस सन्यासीकी स्त्री मुग्ध हो गई। वह सन्यासीको उन दोनोंके भोजनमें आनन्द (मदिरा) की बात कहकर बाधा न डालनेके लिए कहने लगी। उन लोगोंके मुखसे ‘आनन्द-आनन्द’ सुनकर कुछ न समझ पानेके कारण प्रभु नित्यानन्दसे पूछने लगे—“श्रीपाद! यह सन्यासी कौनसे आनन्दकी बात कर रहा है?”

नित्यानन्द—“प्रभो! ऐसा प्रतीत होता है कि यह मदिराकी बात कर रहा है।”

यह सुनते ही प्रभुने प्रसाद पाना बन्द कर दिया तथा ‘विष्णु-विष्णु’ कहते हुए आचमनकर दोनों ही वहाँसे दौड़े तथा उन्होंने गङ्गामें छलांग लगा दी। गङ्गामें कूदनेके पश्चात् दोनों ही तैरते-तैरते अद्वैताचार्यके घरकी ओर चल पड़े।

इस लीलाके द्वारा प्रभुने दिखाया कि मायावादी सन्यासीकी अपेक्षा स्त्रीसङ्गी शराबी तथा विषयभोगोंमें प्रमत्त व्यक्ति अच्छा है। क्योंकि मायावादी वैष्णवोंसे द्वेष करते हैं, भगवानके सच्चिदानन्दमय स्वरूपको नहीं मानते तथा भक्तिदेवीका अनादर करते हैं। परन्तु शराबी तथा स्त्रीसङ्गी आदि अज्ञानके कारण अथवा हृदयकी दुर्बलताके कारण ही पापोंमें लिप्त रहते हैं। परन्तु वे वैष्णवोंसे द्वेष नहीं करते। अतः यदि कभी सौभाग्यवश उसे सत्सङ्ग मिल जाए तो सत्सङ्गके बलसे उसके हृदयकी दुर्बलता काम, क्रोध, लोभ आदि दूर हो जानेपर अवश्य ही उसका चित्त निर्मल हो जाता है तथा भक्तिमें उसकी रुचि उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए भगवान विषयभोगोंमें प्रमत्त व्यक्तिपर तो कृपा करते हैं, परन्तु अपराधी मायावादियों (अद्वैतवादियों) पर नहीं।

इसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है—जब प्रभु श्रीधाम वृन्दावन जाते समय काशीमें पहुँचे, तो वहाँके मायावादियोंने सोचा कि जिसका चारों ओर इतना यश फैल रहा हे, हम भी उनका दर्शन करेंगे। वे प्रभुको अपने ही सम्प्रदायका मायावादी सन्यासी समझते थे, क्योंकि प्रभुने मायावादी सन्यासी केशवभारतीसे सन्यासवेश ग्रहण किया था। परन्तु काशीमें पहुँचने पर प्रभुने किसी भी सन्यासीको दर्शन नहीं दिया। इसके विपरीत यहाँपर नवद्वीपमें

अन्तर्यामी प्रभुने यह जानते हुए भी कि यह संन्यासी दारी है अर्थात् संन्यासवेश लेनेपर भी स्त्रीके साथ रहता है तथा मदिरा पान करता है। फिर भी अनजानकी भाँति प्रभुने उसके घरमें स्नान किया तथा भोजन किया। क्योंकि प्रभु जानते थे कि यह पापी है, अपराधी नहीं। यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि पाप और अपराधमें जमीन-आसमानका अन्तर है। पाप अज्ञान अर्थात् हृदयकी दुर्बलता (काम, क्रोध, लोभ आदि) के कारण होता है, जैसे ब्रह्महत्या, गौ-हत्या, स्त्री-हरण, दूसरेका धन हरण करना, परस्ती सङ्ग आदि। ऐसे भयङ्कर पापोंका प्रायश्चित्त

आदिके द्वारा विनाश हो जाता है। परन्तु अपराध धूर्त्ताका लक्षण है। अतः किसी भी प्रायश्चित्त या साधनके द्वारा इसका विनाश नहीं होता है। जिस कार्यके द्वारा हमसे भगवानकी राध (प्रीति) दूर हो जाती है, वही अपराध है। यद्यपि पाप करनेसे भी भगवान रुष्ट होते हैं, परन्तु यदि कोई व्यक्ति भगवान या उनके भक्तोंसे द्वेष, हिंसा अथवा निन्दा आदि करता है, भगवान इसे कदापि सहन कर नहीं सकते हैं क्योंकि भगवान भक्तोंको अपने प्राणोंसे अधिक प्रेम करते हैं। ऐसा व्यक्ति ही अपराधी है। उसके प्रति भगवानकी प्रीति नष्ट हो जाती है। (क्रमशः)

विविध संवाद

भारतकी राजधानी दिल्लीमें श्रीमणविहारी गौड़ीय मठका शिलान्यास

समग्र विश्वमें श्रीचैतन्य महाप्रभुके शुद्ध प्रेमधर्मके प्रचारक तथा विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके संस्थापक ३० विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्ति-सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके अनुग्रहीत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी शुभेच्छा एवं आशीर्वाद तथा दिल्लीवासी भक्तोंके अथक प्रचेष्टा द्वारा भारतकी राजधानी दिल्लीमें श्रीमन्महाप्रभुकी शुद्धवाणी प्रचार हेतु गौड़ीय मठ निर्माणके लिए बी-३ए जनकपुरीमें ६०० वर्ग मीटरका एक स्थान उपलब्ध हुआ है। इस स्थानमें एक मठको कार्यान्वित करनेके लिए स्थानके पासमें दो कमरोंका मकान किराया पर लिया गया जहाँ श्रीपाद रामचन्द्र प्रभु द्वारा प्रत्येक बृहस्पतिवारको कीर्तन, सत्सङ्ग व प्रवचनका कार्यक्रम पिछले

एक वर्षसे चला आ रहा है। गत २५ नवम्बरको श्रीलगुरुमहाराजजी द्वारा इस मठका भित्ति-स्थापन पारम्परिक ढङ्गसे किया गया। इस उपलक्ष्यमें उक्त स्थानपर एक दो-दिवसीय कार्यक्रम आयोजित किया गया। २४ नवम्बर २००२ रविवारको मथुरा-वृन्दावनसे देश-विदेशके भक्तोंकी दो बसें जनकपुरी पहुँच गईं। उसी सन्ध्याको एक अपूर्व नगर कीर्तनका आयोजन किया गया। जनकपुरीमें पहली बार एक साथ देशी व विदेशी भक्त हरिकीर्तन करते तथा सङ्गोंने बड़े हर्ष और उल्लासके साथ भक्तोंका स्वागत किया। नगर कीर्तनके प्रारम्भमें ही जनकपुरी क्षेत्रके विधानसभा सदस्य प्रो. जगदीश मुखीने श्रीलगुरुमहाराज व श्रीश्रीराधाकृष्णाकी छवियों और श्रीश्रीगौरनित्यानन्दके विग्रहोंको माल्यार्पण किया तथा जनकपुरी नगर निगमकी सदस्या श्रीमती कमला मलहोत्राने कीर्तनकी अगवानी की। जनकपुरी क्षेत्रके विभिन्न मन्दिरोंमें

अत्यन्त उत्साहपूर्वक भक्तोंका स्वागत व प्रसाद वितरण किया गया। नगरकीर्तनकी दिव्य ध्वनिसे आप्लावित होकर दिल्लीके विभिन्न भागोंसे प्राय ५०० भक्त भित्ति स्थापनाके दिन उक्त स्थानपर सम्मिलित हुए। २५ नवम्बर २००२ सोमवारको प्रातःकाल पूज्यपाद श्रीभक्तिवेदान्त तीर्थ महाराजने वैष्णव यज्ञ और पूजाका बड़ा सुन्दर अनुष्ठान किया। एक बड़े पन्डालकी व्यवस्था की गई थी। श्रीलगुरुमहाराजजीने स्वयं अपने करकमलोंसे श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठकी भित्ति स्थापनाकर यज्ञकी पूर्णाहृति सम्पन्न कराई। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी दिव्य वाणी द्वारा उपस्थित लोगोंको लाभान्वित किया। उन्होंने बताया कि यद्यपि उन्हें व्यक्तिगत रूपसे किसी मठकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी भक्तोंके बढ़ते अनुरोधके कारण उन्होंने दिल्लीके मठकी आधार-शिला रखी है। आज समाजमें शुद्ध भक्तिके प्रचारकी अत्यन्त आवश्यकता है। अधिकांश वक्ता धर्मके नामपर लोगोंकी मनचाही बातें करके लोगोंका मनोरञ्जन कर रहे हैं या धर्मके नामपर देह और मन सम्बन्धी बातें कर आत्मतत्त्वसे वज्ज्यत रख लोगोंको गुमराह कर रहे हैं। भगवान् कृष्णकी सेवामें अपनी समस्त इन्द्रियोंको नियोजित करना ही शुद्ध भक्ति है। कृष्णकी सेवा ही जीवका मूल विशुद्ध धर्म है। अद्वैतवादियोंका सिद्धान्त कोरी कल्पना है। द्वैत शब्द पहलेसे है। उसमें ‘अ’ उपसर्ग लगानेसे अद्वैत शब्द बनता है। अद्वैत शब्दसे द्वैत शब्द नहीं आया है। जीव ब्रह्म नहीं है, अपितु परब्रह्म कृष्णका दास है।

तत्पश्चात् उपस्थित सभी भक्तोंने महाप्रसाद सेवन किया। मठका निर्माणकार्य शीघ्र ही आरम्भ होनेवाला है। श्रीरमणविहारी गौड़ीय

मठके स्थानप्राप्ति एवं निर्माण आदि कार्योंमें योगदानके लिए श्रीसोमनाथजी, श्रीसहगलजी, श्रीतिलक बुद्धिराजाजी, श्री एस. के. खुरानाजी, श्रीप्राणवल्लभ दास (दुगलजी), श्रीविनोदविहारी दास (कश्यपजी), श्रीवशिष्ठजी, श्रीरोहिणीनन्दन दास, श्रीरामचन्द्र दास एवं विशेषरूपसे श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराजजी श्रीहरि-गुरु-वैष्णवोंके कृपाभाजन हुए हैं।

नन्दगाँव स्थित उद्धवक्ष्यारीमें

विशाखा-कुण्डका खनन

नन्दगाँवके निकट ललिताकुण्डसे दक्षिण-पूर्व दिशामें कुछ ही दूर कदम्ब-क्यारी या उद्धव-क्यारी स्थित है। यथार्थमें यह विशाखाजीका कुञ्ज है। पास ही विशाखाकुण्ड है। विशाखाजी कदम्ब वृक्षोंसे घिरे हुए निर्जन रमणीय वनमें श्रीराधाकृष्ण युगलका परस्पर मिलन कराती थीं। कभी-कभी यहाँ कृष्ण राधाजी एवं उनकी सखियोंके साथ रास भी करते थे तथा सरोवरके स्वच्छ एवं सुगन्धित जलमें नाना-प्रकारसे जलविहार भी करते थे। रासवेदी भी यहाँ दर्शनीय है।

श्रीकृष्णके मथुरा चले जानेपर सारा ब्रज विरह-समुद्रमें डूब गया। गोप-गोपियोंकी तो बात ही क्या, पशु, पक्षी भी भोजन-पान सबकुछ त्यागकर कृष्णविरहमें व्याकुल हो गए थे। कृष्णकी प्रियतमा गोपियाँ अक्रूरके रथके साथ कृष्णके पीछे-पीछे यहाँतक आकर बेसुध होकर गिर पड़ीं। वे फिर कभी घर नहीं लौटीं। अलक्षित रूपमें विरहसे व्याकुल होकर राधाजी इसी गहन वनमें किसी प्रकार कृष्णके आनेकी आशामें दिन गिनती थीं। उनके प्राण कण्ठतक आ गए थे। उसी समय कृष्णके दूत उद्धवजी विरहव्यथित गोपियोंको सान्त्वना देनेके लिए यहाँ पधारे। किन्तु श्रीमती राधिकाकी विरह-दशा देखकर उन्होंने

उन्हें दूरसे ही प्रणाम किया। परन्तु कुछ कह नहीं सके। इसी समय विरह व्याकुला श्रीमती राधिका एक भँवरेको कृष्णका दूत समझकर दिव्योन्मादमें चित्रजल्प, प्रजल्प आदि करने लगीं। वे भँवरेको कृष्णका दूत समझकर कभी डॉट्टी-फटकारतीं, कभी उलाहना देतीं, कभी उपदेश देती, कभी दूतका सम्मान करतीं और कभी उससे प्रियतमका कुशलक्षेम पूछतीं। उसे देख-सुनकर उद्धवजी आश्चर्यचकित हो गए। वे गुरु बनकर उपदेश देनेके लिए आये थे, किन्तु शिष्य बन गए। उन्होंने सान्त्वना देनेके लिए कृष्णके कुछ सन्देश गोपियोंको सुनाए। किन्तु, उससे गोपियोंकी विरह वेदना और भी तीव्र हो गई। गोपियोंने कहा—“ऊधो मन न भयो दस बीस, एक हुतो सो गयो श्याम सङ्ग, को आराधे ईश।” और भी, “ऊधो जोग कहाँ राखें, यहाँ रोम रोम श्याम है।”

गोपियोंके कृष्णके प्रति इन अपूर्व भावोंका दर्शनकर अन्तमें उद्धवजीने गोपियोंके चरणोंकी धूल ग्रहण करनेके लिए ब्रजमें गुल्म, लता, घासके रूपमें जन्म ग्रहण करनेकी अभिलाषा करते हुए गोपियोंकी चरण धूलिकी बन्दना की—

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।
या दुस्त्यजं स्वजनमायर्पथञ्च हित्वा
भेजुमुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम् ॥

(श्रीमद्भा. १०/४७/६१)

“मेरे लिए तो यह परम सौभाग्यकी बात होगी कि मैं इस वृन्दावनधाममें कोई झाड़ी, लता अथवा औषधि—जड़ी-बूटी ही बन जाऊँ। अहो! यदि मैं ऐसा बन जाऊँगा, तो मुझे इन ब्रजाङ्गनाओंकी चरणधूलि निरन्तर सेवन करनेके लिए मिलती रहेगी। इनकी

चरण-रजमें स्नान करके मैं धन्य हो जाऊँगा। धन्य हैं ये गोपियाँ! देखो तो सही, जिनको छोड़ना अत्यन्त कठिन है, उन स्वजन-सम्बन्धियों तथा लोक-वेदकी आर्य-मर्यादाका परित्यागकर इन्होंने भगवानकी पदवी—उनके साथ तन्मयता, उनका परम प्रेम प्राप्त कर लिया है।”

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्षणशः ।

यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

(श्रीमद्भा. १०/४७/६३)

“नन्दबाबाके ब्रजमें रहनेवाली ब्रजाङ्गनाओंकी चरण-धूलिको मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ। अहो! इन गोपियोंने भगवान कृष्णकी लीलाओंके सम्बन्धमें जो कुछ गान किया है, वह तीनों लोकोंको पवित्र कर रहा है और पवित्र करता रहेगा।”

यह लीला स्थली एक ओर महासम्भोग रसमयी तथा दूसरी ओर महाविप्रलभ्म रसमयी भूमि है। इसके दर्शन और स्पर्शनसे ब्रजरस साधकका जीवन कृतार्थ हो जाता है।

यह विशाखा कुण्ड लुप्त होने जा रहा था। विशव्यापी गौड़ीय मठोंके संस्थापक एवं श्रीचैतन्य महाप्रभुके वाणी-प्रचारक ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर प्रभुपादके अन्तरङ्ग परिकर एवं श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता श्रीश्रीमद्भक्तिप्रशान केशव गोस्वामी महाराजके अनुग्रहीत श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी शुभेच्छा एवं निर्देश द्वारा इस माहमें इस कुण्डका खनन तथा पुनरुद्धार कराया गया है। ४

(निजस्व संवाददाता)

(दिल्लीके श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठ, उद्धव क्यारीके श्रीविशाखा कुण्ड तथा गोवर्धनमें निर्माणाधीन श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठके सम्बन्धित कुछ फोटो अगले पृष्ठों पर दिए जा रहे हैं।)



(१)



(२)

(१) दिल्ली जनकपुरीमें श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठकी भित्ति-स्थापना करते हुए श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजी, बाँच पाश्वर्में श्रीपाद गोस्वामी महाराज, दाँच पाश्वर्में श्रीपाद तीर्थ महाराज, श्रीपाद माधव महाराज, श्रीसोमनाथ प्रभु तथा अन्य भक्त भी साथमें हैं।

(२) भित्तिस्थापनका और एक दृश्य।



(३)



(४)

(३) श्रीरमणविहारी गौड़ीय मठके निर्माणके लिए लिया गया स्थान।

(४) भित्तिस्थापनके पूर्व दिन सन्ध्याको जनकपुरीमें नगर-संकीर्तनके लिए निकले देशी व विदेशी भक्त।



(५)



(६)

(५) व (६) नगर-संकीर्तनमें श्रीगौर-नित्यानन्दके श्रीविग्रह तथा श्रीलगुरुमहाराजजीके चित्रपटके साथ उद्दण्ड नृत्य-कीर्तन करते हुए भक्तवृन्द।



(७)



(८)

- (७) खुदाईसे पहले लुप्तप्राय विशाखा कुण्ड तथा खुदाईकी मशीन।
 (८) खनन कार्यके तदारखके लिए उपस्थित (बाँसे) श्रीहर्षीकेश महाराज, नन्दगाँवके चैयरमैन (चश्मेमें), श्रीपुरन्दर ब्रह्मचारी व अन्य।



(९)



(१०)



(११)



(१२)

(९) व (१०) खननरत हाईड्रोलिक मशीन तथा पहला दिन खननके बाद खोंचा गया फोटो।

(११) व (१२) गोवर्धनमें निर्माणाधीन श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठका मॉडल तथा नींव खोदते समय प्राप्त गिरिराज।

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूर्वर्गण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्य महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ माघ मास, सन् २००३, १९ जनवरी—१६ फरवरी

{ संख्या ११

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुरभक्तिविनोदकृतम्]

प्रभु कः को जीवः कथमिदमचिद्विश्वमिति वा विचार्यैतानर्थान् हरिभजनकृच्छास्त्रचतुरः।
अभेदाशां धर्मान् सकलमपराधं परिहरन् हरेन्मानन्दं पिवति हरिदासो हरिजनैः ॥८६॥
संसेव्य दशमूलं वै हित्वाऽविद्यामयं जनः। भावपुष्टिं तथा तुष्टिं लभते साधुसङ्गतः ॥८७॥
इतिप्रायां शिक्षां चरणमधुपेभ्यः परिदिशन् गलत्रेत्रांभोभिः स्नपितनिजदीर्घोऽज्ज्वलवपुः।
परानन्दाकारो जगदतुलबन्धुर्यतिवरः शचीसूनुः शशवत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥८८॥

गतिगौड़ीयानामपि सकलवर्णश्रमजुषां तथा चौद्रीयानामति सरलदैन्याश्रितहदाम्।
 पुनः पाश्चात्यानां सदयमनसां तत्त्वसुविधां शचीसूनुः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥८९॥
 अहोमिश्रागारे स्वपतिविरहात्कण्ठहृदयः इलथात् सन्धेदैध्यं दधतिविशालं करपदोः।
 क्षितौ श्रुत्वा देहं विकलितमतिर्गदगदवचः शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९०॥
 गतो बद्धद्वारादुपलगृहमध्याद्वहिरहो गवां कालिङ्गानामपि समतिगच्छन् वृतिगणम्।
 प्रकोष्ठे सङ्कोचाद्वत निपतितः कच्छप इव शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९१॥
 व्रजारण्यं स्मृत्वा विरहविकलान्तर्विलपितो मुखं संघृष्यायं रुधिरमधिकं तद्विद्युत्तमो।
 क्व मे कान्तः कृष्णो वदवदवदेति प्रलपितः शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९२॥
 पयोराशेस्तीरे चटकगिरिराजे सिकतिले व्रजन गोष्ठे गोवद्धनगिरिपतिं लोकितुमहो।
 गणैः साद्वृ गौरोद्भुतविशिष्टः प्रमुदितः शचीसूनुः साक्षात् स्मरणपदवीं गच्छतु स मे ॥९३॥

पद्यानुवाद

(परलोकगत पण्डित मधुसूदनदास गोस्वामीकृत)
 को प्रभु? को मैं जीव हूँ? क्यों यह जड़ संसार?
 चतुर बूझ 'यह' हरि भजन कर, वेदान्त विचार ॥
 'अहं ब्रह्म'-मत छोड़ कें, परिहर सब अपराध।
 हरिनामामृत पान 'हरि'-दासन के सङ्ग साथ ॥८६॥
 सेवन कर 'दसमूल' यह, ताप अविद्या नास।
 लहत साथ सङ्ग भावकी, पुष्टि, तुष्टि, परकास ॥८७॥
 दासन यह शिक्षा दइ प्रभु कृष्णचैतन्य।
 वेद तत्त्व उपदेश 'कलि-जीव' किये सब धन्य ॥
 दीर्घ बाहु सुवर्ण वरन परत नयन जल धार।
 यति वर जगबन्धु अतुल परानन्द आकार ॥८८॥
 वर्णश्रम सेवी 'सकल'-गौड़ जनन के प्राण।
 दीन सरल उत्कलन के केवल प्रभु गति ज्ञान ॥
 पश्चिम वासी आर्यजन परमाश्रय गौराङ्ग।
 प्रभुपद सेवत प्रीत जुत जे जन साङ्गेपाङ्ग ॥८९॥
 काशीमिश्र आगारमें निवसत गोराराय।
 राधा विरहिणि भावतें रमण विरह आकुलाय ॥
 अति दीर्घ कर पाद भये अंग संधिके भेद।
 लुटत धरणि गदगद् वचन ब्रणन भये तन खेद ॥९०॥
 बद्ध द्वार पाषाणमय गृहते बाहर होय।
 चले गये कैसे प्रभु लख न सकौ गति कोय ॥

कालिङ्ग की गौणके गोष्ट रहे प्रभु जाय।
 आङ्गनके संकोच वस कच्छप सदृस लखाय ॥११॥
 विरह विकल विलपत सुमर ब्रज वृन्दावन धाम।
 संघर्षण तै कियौ मुख वाहित रुधिर निकाम ॥
 'कहाँ कृष्ण मम कान्त है, कहाँ-कहाँ सखि! हाय'।
 शची तनय या विथ जगत दीयौ प्रेम दिखाय ॥१२॥
 सिन्धु तीर सिकता त्वरित चटक गिरीको जात।
 ब्रजमें गिरिवर लखनके भ्रम गण सह अकुलात ॥१२॥

(क्रमशः)

वेदानुगब्रुव और वेद-विरुद्ध अपसम्प्रदाय

—३५ विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(वर्ष ४६, संख्या १०, पृष्ठ २२३ से आगे)

प्र. २१—पञ्चोपासनाकी विष्णूपासना क्या शुद्ध वैष्णवधर्म नहीं है?

उ.—पञ्च उपासनामें जो विष्णुकी उपासना है, उसमें दीक्षा, पूजादि सभी विष्णु-विषयक होनेपर भी और कभी राधाकृष्ण विषयक होनेपर भी वह शुद्ध वैष्णवधर्म नहीं है।

(जै. ध. चौथा अ.)

प्र. २२—केवल काशीवासी अद्वैतवादी संन्यासी ही क्या मायावादी हैं?

उ.—वाराणसी निवासी संन्यासी प्रसिद्ध मायावादी हैं। ★★★ उनके मतानुयायी पञ्चोपासक गृहस्थ सभी मायावादी ही हैं। ★★★ वैष्णव-मन्त्रसे दीक्षित होनेपर भी इन मतवादियोंको मायावादी कहा जा सकता है। यही नहीं, जो लोग अपनेको श्रीचैतन्यदेवका भक्त कहते हैं, उनमेंसे भी अधिकांश मायावादी हैं। बाउल-दरवेशोंके मत भी मायावादी हैं।

(‘मायावादी किसे कहते हैं?’, स. तो. ५/१२)

प्र. २३—शङ्कराचार्यजीने मुक्तिके पश्चात् जीवकी गतिके सम्बन्धमें क्या कहा है?

उ.—केवला मुक्ति पानेके पश्चात् जीवकी क्या अपूर्व गति होती है, इस विषयमें श्रीशङ्कर निस्तब्ध हैं। ★★★ जो लोग केवल उनकी शिक्षाके बाहरी अंशको लेकर ही समय नष्ट करते हैं, वे ही केवल वैष्णवधर्मसे दूर रहते हैं।

(जै. ध. २रा अ.)

प्र. २४—राजा राममोहन रायके द्वारा प्रवर्तित ब्राह्म-धर्मका स्वरूप क्या है?

उ.—राजा राममोहन रायके द्वारा प्रचारित ब्राह्म-धर्म—ईसाई और हिन्दुधर्मका विकृत मिश्रण है। ऐसे धर्ममें सत्यकी प्रतिष्ठा होगी, ऐसा माना नहीं जा सकता। ब्राह्म धर्मावलम्बियोंने इसाई और विलायती तार्किकोंसे केवल शान्तरसकी उत्तमताकी शिक्षा ग्रहण करके उससे श्रेष्ठ दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुररसोंकी अवज्ञा करनेका प्रयास

किया है। ★★★ जो लोग पहले एक्सयम (Axiom) और पस्टुलेट (Postulate) का ज्ञान प्राप्त न कर Geometry (रेखागणित) की शिक्षा प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं, उनकी जैसी दुर्गति होती है, वैसे ही जो व्यक्ति प्राकृत-अप्राकृत वस्तुका पार्थ्यक्य न समझकर सर्वप्रथम रसका ही विचार करनेमें तत्पर होते हैं, उनके सिद्धान्तोंकी भी वही गति होती है।

(‘समालोचना’, ससङ्गिनी स. तो. ८/४)

प्र. २५—ब्राह्मधर्मावलम्बिगण गुरुपदाश्रयका विरोध क्यों करते हैं?

उ.—गुरुपदाश्रय करनेसे कहीं कुशिक्षा न मिल जाए—इसी भयसे सद्गुरु प्राप्त करनेके लिए वे लोग यत्न भी नहीं करते और वैसे गुरु प्राप्त करनेपर भी उनकी भक्ति नहीं करते। असद्गुरु शिष्योंको कुपथगामी बनाते हैं, इसी भयसे वे लोग सद्गुरुका भी बहिष्कार करते हैं।

(त. वि. १८ अनु. २८)

प्र. २६—जड़भजन किसे कहते हैं?

उ.—जड़ संसारमें जो आकाश है, वह सर्वव्यापी और निराकार है। ऐसे व्यक्तियोंके ईश्वर भी वैसे ही हैं। इसीका नाम जड़भजन है।

(त. वि. १८ अनु. २८)

प्र. २७—आध्यात्मिक और अप्राकृत तत्त्व क्या एक ही है?

उ.—आध्यात्मिक और अप्राकृत तत्त्वका वैज्ञानिक सूक्ष्म भेद जब तक जाना नहीं जाता, तब तक इन दोनों शब्दोंका व्यवहारमें विचार नहीं होता। शुष्कवादियोंके हृदयमें

अप्राकृत भावोदय होना कठिन है। अत्यन्त सुकृतिके प्रभावसे अप्राकृत तत्त्वमें रति (रुचि) होती है। अन्यथा आध्यात्मिक वितर्करूप चहरदीवारीके उसपार रहकर अप्राकृत वैचित्र्यका दर्शन नहीं किया जा सकता।

(‘समालोचना’, स. तो. ६/२)

प्र. २८—Trinity मतवादकी उत्पत्ति कैसे हुई?

उ.—जरद्वस्त्र अत्यन्त प्राचीन पण्डित थे। भारतवर्षमें उनके मतका आदर न होनेके कारण उन्होंने ईरान देशमें अपने मतका प्रचार किया। उनके मतने संक्रमित होकर यहूदियोंके धर्ममें और अन्तमें कुरान मतावलम्बियोंके धर्ममें प्रवेशकर परमेश्वरके समकक्ष एक शैतानको पैदा किया। जिस समय जरद्वस्त्र दो ईश्वर विषयक मतका प्रचार कर रहे थे, उसी समय यहूदियोंमें तीन ईश्वरकी आवश्यकता पड़ जाने पर Trinity मत उत्पन्न हुआ।

(त. वि. १८ अनु. २९)

प्र. २९—Trinity मतका विस्तार किस प्रकार हुआ?

उ.—पहले Trinity मतमें तीन पृथक्-पृथक् ईश्वरोंकी कल्पना की गई। तत्पश्चात् जब पण्डितोंको उससे सन्तोष नहीं हुआ, तब उन्होंने गॉड (God) होली घोस्ट (Holy Ghost) और क्राइस्ट (Christ)—इन तीन तत्त्वोंके विचार द्वारा उनकी युक्त मीमांसा की। जिस कालमें या जिस सम्प्रदायमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव—इन तीनोंको पृथक्-पृथक् ईश्वरके रूपमें कल्पना की गई, उसी समय भारतवर्षमें भी तीन ईश्वरविश्वास-रूप एक महान अनर्थकी

उत्पत्ति हुई थी। पण्डितोंने इन तीनों देवताओंका तात्त्विक एकत्र प्रतिपादनकर शास्त्रोंके अनेक स्थलोंमें भेद-निषेधक उपदेश दिए हैं।

(त. वि. १म अनु. २१)

प्र. ३०—तात्त्विक शक्तिवादकी उत्पत्ति किस दर्शनसे हुई है?

उ.—विभिन्न तन्त्रोंके मत विभिन्न प्रकारके हैं। किसी एक विशेष दर्शनसे तात्त्विक शक्तिवाद उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। एक जगह जिसे स्वीकार किया है, अन्यत्र उसे अस्वीकार किया गया है। कहीं परब्रह्मको सर्वकर्ता माना गया है, तो कहीं प्रकृतिको और कहीं जीवको। किसी स्थानमें जीवको 'मिथ्या' माना गया है, और कहीं 'सत्य'। कहीं 'नादबिन्दु' को, कहीं 'प्रकृति-पुरुष' को और कहीं 'केवला-प्रकृति' को समस्त कर्तृत्व दिया गया है।

(त. वि. १म अनु. १४)

प्र. ३१—तात्त्विक शक्तिवादका वास्तविक स्वरूप क्या है?

उ.—सभी तन्त्रोंमें जो लता-साधन, पञ्च-मकार-साधन, सुरा-साधन आदि प्रणालियाँ बतलाई गई हैं, वे किसी आस्तिक दर्शनसे संग्रह की गई हैं, ऐसा नहीं जान पड़ता। निरीश्वर कर्मके अपूर्व या मन्त्रात्मक देवता एवं कमटी (कोंत) आदिकी काल्पनिक प्रकृति-पूजा व्यतीत तात्त्विक शक्तिवाद और कुछ नहीं है।

(त. वि. १म अनु. १४)

प्र. ३२—मायावादकी उत्पत्तिका संक्षिप्त इतिहास क्या है?

उ.—बौद्धमत ही क्रमशः तात्त्विक मत हो

पड़ा। इसी समय मायावादरूपी एक वादकी सृष्टि हुई। वह मत बौद्धधर्ममें बौद्ध नामसे ही था। किन्तु बौद्ध-मतके अतिरिक्त अन्यान्य लोगोंमें प्रच्छन्न बौद्ध-मतरूप मायावाद प्रचारित होने लगा।

(त. वि. १म अनु. १४)

प्र. ३३—मायावादी आस्तिक हैं या नास्तिक?

उ.—मायावादी वास्तविक रूपमें नास्तिक हैं।

(‘कथासार’, चै. च. म. ६ प.)

प्र. ३४—शैव-मत कहाँसे उत्पन्न हुआ है?

उ.—हमारी समझमें शैव-मत कपिलके सांख्यसे उत्पन्न हुआ है। किन्तु इस मतमें प्रकृतिका विशेष सम्मान होनेके कारण भूलसे अतत्वज्ञ व्यक्तियोंने इस मतको तात्त्विक मतके साथ एक कर दिया है। यद्यपि तन्त्र-मतमें किसी-किसी स्थानमें एक चनेकी दो दालोंसे प्रकृति-पुरुषकी उपमा दी गई है, तथापि फलकालमें प्रकृतिको चित्तत्वकी प्रसवित्री माना गया है।

(त. वि. १म अनु. १४)

प्र. ३५—बौद्ध-मत और जैन-मतका प्रचार क्यों हुआ?

उ.—भारतवर्षमें ब्राह्मणोंके एकाधिपत्य और निरीश्वर-कर्मवादके प्रचारसे क्षत्रियादि अन्यान्य वर्णके व्यक्ति अत्यन्त क्षुब्ध हुए। अतएव क्षत्रियोंने दलबद्ध होकर बौद्ध-मत और वैश्योंने दलबद्ध होकर जैन-मतका प्रचार किया।

(त. वि. १म अनु. १३)

प्र. ३६—बौद्ध और जैन-मतका संक्षिप्त

सार क्या है?

उ.—बौद्ध-मतानुसार अनेक जन्मोंमें दया और वैराग्यका अभ्यास करते हुए शाक्यसिंह बुद्ध पहले बोधिसत्त्व और अन्तमें बुद्ध हुए। उनके मतानुसार नम्रता, धैर्य, क्षमा, दया, निःस्वार्थपरता, चिन्ता, वैराग्य और मैत्री आदि गुणोंका अभ्यास करते-करते जीव परिनिर्वाण प्राप्त करता है। इस परिनिर्वाणमें जीवका अस्तित्व नहीं रहता। सामान्य निर्वाणमें जीवकी दयास्वरूप होकर अवस्थिति होती है। जैनोंका कहना है कि अन्य सभी सदगुण दया और वैराग्यके अनुगत होकर अभ्यस्त होनेपर जीव क्रमगतिके अनुसार नारदत्व, महादेवत्व, वासुदेवत्व, परवासुदेवत्व, चक्रवर्तित्व और अन्तमें निर्वाणगत भगवत्तत्त्वको प्राप्त करता है। दोनों मतोंमें ही जड़ जगत नित्य है, कर्म अनादि परन्तु अन्त्युक्त है। अस्तित्व ही क्लेश है, परिनिर्वाण ही सुख है; जैमिनि द्वारा प्रकाशित वैदिक कर्म-तत्त्व जीवोंके लिए अमङ्गल है। परिनिर्वाणकी प्राप्तिकी विधि ही मङ्गलजनक है, इन्द्रादि देवता कर्मवादके प्रभु हैं, किन्तु निर्वाण-वादीके सेवक हैं।

(त. वि. १म अनु. १३)

प्र. ३७—पाश्चात्य देशोंमें बौद्ध और जैन धर्मकी तरह क्या कोई निर्वाण धर्म है?

उ.—बौद्ध और जैन धर्मकी तरह यूरोपमें भी एक निर्वाणवाद प्रचलित है। इस धर्मको पेसिमिसम (Pessimism) कहते हैं। पेसिमिसम और बौद्ध धर्ममें कुछ विशेष भेद नहीं है, केवल यही भेद है कि बौद्ध धर्ममें जीव जन्म-जन्मान्तरसे क्लेश स्वीकारकर भटक

रहा है। किसी जन्ममें निर्वाण-विधिका अवलम्बन कर निर्वाण और क्रमशः परिनिर्वाण प्राप्त करेगा। किन्तु पेसिमिसम मतके अनुसार जीवका जन्म-जन्मान्तर नहीं है।

(त. वि. १म अनु. १३)

प्र. ३८—आनुकरणिक अवतारवाद क्या समर्थनयोग्य है?

उ.—कई लोगोंने स्थान-स्थान पर 'नए गौराङ्ग' होनेकी चेष्टा की थी। इस कार्यमें जो एकनिष्ठ थे, वे प्रायः ही मायावादी हैं। उन्होंने गुप्तवेशमें हरि-कीर्तनादि (?) के द्वारा कई व्यक्तियोंमें मोह उत्पन्न किया था। कोई गौराङ्ग, कोई नित्यानन्द और कोई अद्वैत होकर दलबलके साथ हरिकीर्तन (?) करने लगे। लोगोंमें भ्रम पैदा करना ही उन लोगोंका तात्पर्य था। आश्चर्यकी बात यह थी कि वे कीर्तनके समय ऐसा हावभाव प्रकाश करते थे कि अधिकांश व्यक्ति उनके हावभाव देखकर यही समझने लगते थे कि गौराङ्ग महाप्रभु पुनः आविर्भूत हुए हैं। उनमेंसे कई अंग्रेजी भाषामें शिक्षित और थियोसॉफी (Theosophy) आदि पाश्चात्य शास्त्रमें खूब निपुण थे? उनमेंसे कोई-कोई हमारे पास आकर कहते थे—“जब स्वयं भगवान गौरचन्द्र उदित हुए हैं, तब उनके पार्षद होकर आपलोग निश्चिन्त क्यों हैं?”

(‘नववर्षमें विगत वर्षकी आलोचना’, ससङ्गिनी स. तो. ८/१)

प्र. ३९—‘समन्वयवादी’ अथवा ‘खड़-जाठिया’ क्या शुद्ध भक्त हैं?

उ.—भक्तको देखनेसे ही अश्रु-पुलक होता है। कभी-कभी कथाकी आलोचनामें दशा

(?) को प्राप्त करते हैं। फिर आध्यात्मिक सभामें आध्यात्मिक मतकी सहायता करते हैं और कभी विषयोंमें आविष्ट होकर विषय-चेष्टामें उन्मत्तकी तरह व्यवहार करते हैं। ★★★ वे जगतको ऐसी व्यवहार-शिक्षा देकर शुद्ध भक्तिके प्रति केवल अपराध ही नहीं करते, बल्कि संसारी जीवोंको भी सर्वनाशकी पथमें ले जाते हैं।

(‘भक्तिके प्रति अपराध’, स. तो. ८/१०)

प्र. ४०—आत्मबज्ज्ञक कौन हैं?

उ.—जो व्यक्ति दीक्षाके विरोधी होकर केवल कपट-कीर्तनादिका रङ्ग दिखाकर अपनेको ‘वैष्णव’ अभिमान करते हैं, वे नितान्त आत्मबज्ज्ञक हैं।

(‘तत्त्वत्कर्म प्रवर्त्तन’, स. तो. ११/६)

(क्रमशः)

श्रीलप्रभुपादजीका उपदेशामृत

प्र. ६९—भक्तोंकी प्रार्थना कैसी होगी?

उ.—भक्त प्रार्थना करेगा—“हे राधारमण! मेरी रक्षा कीजिए। मैं कहीं इस घोर संसारमें गिरकर अपना सर्वनाश न कर लूँ।” जो संसारमें प्रवेश कर चुके हैं, वे प्रार्थना करेंगे—“हे भगवन्! मैं कहीं संसारमें अत्यधिक आसक्त न हो जाऊँ। आप कृपापूर्वक मेरी संसारकी वासनाको नष्ट कर दीजिए। जिससे कि मेरी बुद्धि निरन्तर आपकी सेवामें ही लगी रहे।”

प्र. ७०—मङ्गलका मार्ग क्या है?

उ.—वर्तमान समयमें जगतमें जितने भी प्रकारके मार्ग दिखाई पड़ रहे हैं, उनमेंसे एक भी मार्ग ऐसा नहीं है, जिसपर चलकर जीवका वास्तविक कल्याण हो। एक भी मार्ग भगवानकी सेवाका मार्ग नहीं है, जब कि केवल भगवानकी सेवाके मार्गपर ही चलकर जीवका वास्तविक कल्याण हो सकता है। मैं भक्तसे अधिक जानता हूँ—ऐसे विचार तो नरकका रास्ता है। इन विचारोंपर चलनेसे अकल्याण ही होता है।

हमें सर्वदा ही चेष्टा करनी चाहिए कि हमारे मार्गमें कितनी ही बाधाएँ क्यों न आ जाएँ, परन्तु हम भक्तोंका आनुगत्य नहीं छोड़ेंगे। जब हमारे हृदयमें दीनता आएगी अर्थात् हमें उपलब्ध होगी कि मैं सम्पूर्णरूपसे भगवानकी सेवाके अयोग्य हूँ, तभी हम भगवानके प्रिय भक्तोंकी महिमा जान सकते हैं।

इसके अतिरिक्त संसारमें जितने मार्ग प्रचारित हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य होता है—किस प्रकार अधिकसे अधिक परिमाणमें इन्द्रियतर्पण किया जाए अर्थात् विषयोंको भोगा जाय। इसीलिए इनमेंसे एक भी धर्म नित्यधर्म नहीं है। वास्तवमें भक्तोंकी सेवा ही सबसे अधिक कल्याणकारी है।

प्र. ७१—क्या अपनी स्वतन्त्रता त्यागने-योग्य है?

उ.—हाँ, अवश्य ही। स्वतन्त्र व्यक्ति ही दार्मिक होता है तथा अनुगत ही दीन-हीन होता है। यदि कोई भक्तिका आश्रय ग्रहणकर भी दार्मिक होता है अर्थात् केवल भगवानकी

पूजा करता है, परन्तु वैष्णवोंका अनादर करता है, तो वह वैष्णवापराधके कारण नाना प्रकारकी विपत्तियोंमें फँस जाता है।

परन्तु मनुष्यजन्म तो अमङ्गलोंको सञ्चय करनेके लिए नहीं, बल्कि मङ्गल सञ्चयके लिए होता है—हम इस बातको भूल जाते हैं। क्योंकि हम अपदार्थ हैं, तुच्छ तथा अधम हैं। मायाके प्रलोभनमें पड़कर भोगी होनेकी, बड़ा होनेकी तथा कर्ता होनेकी इच्छा अति क्षुद्र तथा व्यर्थ है। यदि किसीके हृदयमें बड़ा बननेकी इच्छा है, तो उसे गुरु तथा भगवानके दीनहीन भक्तोंका ही सङ्ग करना होगा तथा उन्हींके विचारोंको ग्रहण करना चाहिए।

प्र. ७२—वास्तविक स्वाधीनता क्या है?

उ.—इस जगतमें प्रभु (मालिक) होनेकी इच्छा ही अभक्ति है। इस जगतमें यदि कोई प्रभु होना चाहता है या स्वाधीन (स्वतन्त्र) होना चाहता है तो इसका तात्पर्य यह है कि वह दासता या अधीनताको छोड़ना चाहता है। परन्तु इस जगतमें जो स्वाधीनता दिखाई पड़ती है, वास्तवमें वह भी अधीनताका ही प्रच्छन्न रूप है। यदि जीव सच्चिदानन्दविग्रह भगवान कृष्णकी अधीनता स्वीकार कर ले, तभी उसे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है। जीव जबतक भगवानकी कृपारूप रस्सीको पकड़े रहता है, तभीतक वह जीव सेवक है। जो सोचते हैं कि हम इस जगतमें स्वावलम्बी (आत्मनिर्भर) हैं तथा निरपेक्ष हैं अर्थात् हमें किसीकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है, वास्तवमें वे ही दूसरोंकी कृपापर निर्भर रहते हैं।

परन्तु जो भगवानके अधीन हो जाते हैं,

वे ही वास्तवमें स्वाधीन होते हैं और यदि किसीको ऐसी स्वाधीनता प्राप्त हो जाती है, तो उसके हृदयमें यह बात दृढ़तापूर्वक बैठ जाती है कि “मैं भगवानका नित्य सेवक हूँ”。 जो वस्तु परिपूर्ण है, वही परवस्तु है। भगवान ही परवस्तु हैं। ऐसे परवस्तु भगवानकी दासता ही वास्तविक स्वाधीनता है तथा यह स्वाधीनता सुखप्रद है। इसके अतिरिक्त कर्त्ताभिमानसे या प्रभु-अभिमानसे जो स्वाधीनताका अभिनय किया जाता है, वह महा दुःखजनक है। वास्तवमें वह स्वाधीनता (स्वतन्त्रता) नहीं है, बल्कि मायाकी अधीनता ही है। अर्थात् जो व्यक्ति इस जगतमें आकर स्वयंको स्वतन्त्र समझता है, वास्तवमें वह स्वतन्त्र नहीं, अपितु मायाका दास है।

प्र. ७३—क्या भगवानपर पूर्णरूपसे विश्वास न कर पानेके कारण ही हमारा अमङ्गल हो रहा है?

उ.—जहाँ पर मङ्गलमय भगवानके प्रति विश्वास ही नहीं है, वहाँ पर मङ्गल कैसे हो सकता है? अतः हमें आरोह पथ अथवा अश्रौतपथको त्यागकर अवरोह (श्रौत पथ) को ग्रहण करना चाहिए। अर्थात् हमें अपने बल, बुद्धिका अभिमान त्यागकर सम्पूर्णरूपसे भगवानके ऊपर भरोसा रखना चाहिए। यदि हम वास्तवमें ही अपना आत्मकल्याण चाहते हैं, तो हमें अभी तक सञ्चित अपने समस्त विषयोंको सम्पूर्णरूपसे निष्कामभावसे भगवानके श्रीचरणकमलोंमें समर्पण करना होगा तथा भगवानकी अहैतुकी कृपाकी आशा ही रखनी होगी। क्योंकि उनकी लेशमात्र भी कृपाके बिना उन्हें जानना असम्भव है। परन्तु यदि

हमें भगवानकी दयालुता तथा मङ्गलदातृत्व (भगवान कल्याणकारी हैं) पर पूर्णविश्वास न हो, तो हम अपना सर्वस्व उन्हें निसङ्गोचरूपसे समर्पित नहीं कर सकते। ऐसी अवस्थामें समर्पण करते समय हमारे हृदयमें ऐसा विचार आएगा कि यदि मैंने अपना सर्वस्व भगवानके लिए समर्पित कर दिया तो अन्तमें मुझे विपक्षियों पड़ना पड़ेगा। यदि भगवानने हमें नहीं देखा तो मेरा यह कुल तथा वह कुल दोनों ही चला जाएगा। परन्तु वास्तवमें ऐसे सन्देह भित्तिहीन हैं अर्थात् निराधार हैं। ऐसे सन्देह हृदयमें उत्पन्न होनेपर जीवका अमङ्गल ही अमङ्गल होता है।

भगवान कभी भी अपने शरणागत भक्तको अपूर्ण मनोरथ नहीं करते। हमारे समस्त अभावोंको पूर्ण करनेमें तथा हमें सम्पूर्णरूपसे आश्रय प्रदान करनेमें केवल भगवान ही समर्थ हैं, दूसरा कोई नहीं—ऐसा सुदृढ़ विश्वास होनेपर ही जीव निर्भय, निश्चन्त तथा सुखी हो सकता है। भगवानकी अमन्दोदय दया (जिस दयाके द्वारा किसीका कभी भी अमङ्गल नहीं हो सकता है) के द्वारा जीवका कैसा महामङ्गल होता है, इसे भाषाके द्वारा प्रकट नहीं किया जा सकता। भगवानकी कृपा होनेपर निरन्तर उनकी सेवा करने पर भी, सेवाकी आशा नहीं मिटती। सर्वदा ऐसा अनुभव होगा कि मैं कुछ सेवा नहीं कर पाया। हाय! हाय! मेरी भगवानके प्रति लेशमात्र भी प्रीति नहीं है। इस प्रकारकी एक

अमूल्य अतृप्ति नामक सम्पत्ति प्राप्त होगी। उस समय भगवानके नाम, रूप, गुण तथा लीलाओंका अनुशीलन स्वाभाविक रूपमें ही होगा। ऐसी अवस्थामें उसे विषयकी लेशमात्र भी चिन्ता नहीं रहती।

भगवानका स्वभाव ही है कि वे किसीको भी निराश नहीं करते। वे ही वास्तवमें कृतज्ञ हैं, समर्थ हैं तथा महा कृपालु हैं। यदि कोई लेशमात्र उनकी सेवा करता है, तो वे उसे कदापि नहीं भूलते। जीवके पास स्वतन्त्रता नामक एक अमूल्य रत्न है, परन्तु वह स्वतन्त्रता भगवानके ही अधीन है। जब हम इस विचारका उल्लंघन करते हैं, अर्थात् स्वतन्त्रताका दुरुपयोग करते हैं, तभी हमारा सर्वनाश होता है।

जागतिक लोग कदापि हमारे अभावोंको पूर्ण नहीं कर सकते तथा न ही हमारी समस्याओंको दूर कर सकते हैं। इसीलिए गीतामें सर्वेश्वरेश्वर भगवानके श्रीचरणोंमें सम्पूर्णरूपसे शरणागत होनेको कहा गया है। श्रीकृष्ण ही वे भगवद् वस्तु हैं, अर्थात् वे ही स्वयं भगवान हैं। उनके श्रीचरणोंमें शरणागत होना जीवका एकमात्र कर्तव्य है। उनके श्रीचरणोंमें समर्पित होनेसे ही जीवनके सभी उद्देश्य तथा कर्तव्याकर्तव्य विचार साधित हो जाते हैं। अतः नाना प्रकारकी विघ्नवाधाओं तथा नानाप्रकार अनर्थोंकी अवस्थामें किस प्रकार आत्मसमर्पण किया जा सकता है, यह आलोचनाका विषय है। (क्रमशः)

जय नवद्वीप नवप्रदीप प्रभावः पाषण्डगजैकसिंहः।

स्वनामसंख्याजप सूत्रधारी चैतन्यचन्द्रो भगवान्मुरारिः॥

(श्रीचैतन्यभागवत मध्यलीला ५/१)

कृष्ण-तत्त्व

**(श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके शुभ अवसर पर ॐ विष्णुपाद श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी
महाराजजीके मुख्यनिःसृत अमृतमयी हरिकथा, मथुरा, २६ अगस्त २००२,)।**

श्रीकृष्ण-जन्मलीला

श्रीकृष्ण ब्रजमें मथुर लीलाओंको प्रकाश करते हैं, वे ब्रजमें पूर्णतम स्वरूपमें विराजमान हैं, मथुरामें पूर्णतर तथा द्वारकामें उनका पूर्ण स्वरूप प्रकाशित होता है। कृष्ण तो एक ही हैं, किन्तु पूर्ण, पूर्णतर तथा पूर्णतमका प्रकाश शक्तिके तारतम्यसे होता है। जन्मके समयसे ही उनकी ऐश्वर्य लीला देखी जाती है। एक ही समयमें गोकुल तथा मथुरामें वे प्रकट होते हैं। कंसके कारागारमें देवकी-वसुदेवके सम्मुख वे चतुर्भुज रूपमें प्रकट हुए। देवकी-वसुदेव भगवानको सामने देखकर कुछ सहम गए तथा उनकी स्तव-स्तुति करने लगे और उन्हें शिशुरूप धारण करनेकी प्रार्थना की। भगवान चतुर्भुज रूपसे शिशु बन गए तथा उन्हें कहा 'मुझे गोकुल ले चलो।' जब वसुदेवजी उन्हें गोकुलकी ओर ले जा रहे थे, तब मार्गमें बढ़ी हुई यमुनाकी मध्य-धारमें वे देवकीनन्दन-ब्रजेन्द्रनन्दन (यशोदानन्दन) में आत्मसात हो गए। किन्तु वसुदेवजी कुछ जान नहीं सके। कभी-कभी जब वसुदेवजी गोकुलमें नन्दभवनमें शिशुको गोदमें लिए पहुँचते हैं, तब यशोदाके पाश्वरमें लेटे उनके पुत्र देवकीनन्दनको आत्मसात कर लेते हैं। यहाँ मैया यशोदा तथा वसुदेवजी भी इस रहस्यको जान नहीं पाते हैं। प्रश्न उठता है कि जब वसुदेवजी शिशु कृष्णको लेकर नन्दभवन गोकुलमें पहुँचे, तब उन्होंने नन्दनन्दनको

क्यों नहीं देखा, केवल बालिकाको ही देखा? (ये बालिका योगमाया नवमी तिथि लग जानेपर प्रकट हुई थीं।) इसका समाधान इस प्रकार है कि यमुनाके मध्यधारमें वसुदेवजीके सिरपर टोकरीमें स्थित देवकीनन्दन अदृश्य हो गए और उनके स्थानपर यशोदानन्दन विराजित हो गए थे।

श्रीकृष्णका जन्म मथुरामें वसुदेव-देवकीके पुत्ररूपमें कंसके कारागारमें हुआ, फिर गोकुलमें लाये गए। प्रकटलीला लौकिक रीति-नीतिके अनुसार होती है। उसके अनुसार नन्दगाँवकी समस्त युवतियाँ कृष्णमें उपर्याप्ति भाव रखती थीं, किन्तु लौकिक रीतिके अनुसार नन्दगाँवकी कन्यायोंका नन्दबाबाके पुत्र होनेके कारण कृष्णके साथ भाईका सम्बन्ध होता है। तब उपर्याप्ति भाव अनीतिपूर्ण हो जाएगा। अतएव कृष्णका जन्म मथुरामें ही मानना चाहिए। इस प्रकार वे वसुदेवजीके पुत्र हैं तथा नन्दगाँवकी युवतियोंके प्रेमी हो सकते हैं। द्रोण तथा धराने तपस्या करके ब्रह्माजीसे कृष्णके प्रति वात्सल्य प्रेम माँगा। द्रोण आठ वसुओंमें एक हैं, कृष्ण उनके पुत्र हैं, इसलिए वे वासुदेवकृष्ण कहलाए। इन्हीं द्रोणका नन्दबाबामें प्रवेश हुआ तथा उन्होंने वात्सल्य रसकी सेवाका आस्वादन किया। इसलिए कृष्ण नन्दबाबाके पुत्र होनेके कारण नन्दनन्दन कहलाए। इस दृष्टिकोणसे ब्रजके युवतियोंका कृष्णके प्रति परकीया भाव अनुचित नहीं है। ब्रजकी

कुमारियोंकी स्वच्छ रति है। अर्थात् जैसा भाव देखा, वैसा ही होनेकी इच्छा हो जाती है। आगे पौगण्ड अवस्थामें आने पर नित्यसिद्धा गोपियोंके सङ्गके प्रभावसे उनकी रति उत्त्रत-उज्ज्वल रतिमें परिवर्तित हो जाती है। यशोदानन्दनने यमुनाकी धारके मध्यस्थल पर वसुदेवनन्दनको समाहित कर लिया। अतएव दो शिशुओंके स्थान पर केवल एक ही रहे। दूसरी स्थितिमें नन्दभवन गोकुलमें दोनों शिशुओंका आत्मसात् इतनी शीघ्रतासे हुआ कि वसुदेवजी कुछ समझ नहीं सके तथा प्रसव-वेदनासे मूर्छ्छतप्राय यशोदाजी भी इस रहस्यको नहीं जान पाई। वे अपनी कन्याके जन्मके विषयमें कुछ नहीं जान पाईं।

कृष्ण चाहे कितनी भी माधुर्य लीला करें, उनमें ऐश्वर्य रहता ही है। वे सर्वकाल ऐश्वर्य तथा माधुर्यसे परिपूर्ण रहते हैं। यद्यपि ऐश्वर्य रहता ही है, किन्तु नरलीलाका अतिक्रम नहीं करते और यही माधुर्य है। जब नरलीलाका अतिक्रम होता है, तब वह ऐश्वर्य है। कंसकारागारामें चतुर्भुज रूपमें प्रकट हुए, किन्तु उनमें द्विभुज रूप धरनेकी सामर्थ्य भी है, मथुरेश कृष्ण गोकुलमें नहीं जाते, इसीलिए यमुना मध्यधारमें गोकुल-मथुराके सन्धिस्थल पर वे नन्दनन्दनमें आत्मसात् हो गए। इसी कारण वसुदेवजीने यशोदाके पाश्वर्में केवल बालिकाको ही देखा।

पूर्णतम ब्रजेन्द्रनन्दन, पूर्णतर मथुरेश तथा पूर्ण द्वारकाधीश तत्त्वतः एक ही हैं, केवल अभिमानमात्र अथवा भावनाका अन्तर है। मैं नन्दपुत्र हूँ—यह अभिमान होनेपर गोपवेश रहता है। वसुदेवपुत्रका अभिमान होनेपर

गोपवेश, वंशी, मोरमुकुट आदि नहीं रहता, क्षत्रिय वेश हो जाता है। नन्दनन्दन अभिमान रखते हैं—मैं नन्द-यशोदाका पुत्र, सख्तोंका सखा तथा गोपियोंका प्राणवल्लभ हूँ तथा उनका नवकिशोर-वेणुकर गोपवेश रहता है। जिस प्रकार श्रीराधा वृषभानुपुरमें स्वयंको वृषभानु महाराजकी पुत्रीका अभिमान रखती हैं, कृष्णके साथ उनकी प्रियतमाका अभिमान रखती हैं, यावटमें वे समझती हैं कि यहाँ मेरे पति हैं, यह ससुराल है। श्रीराधा एक ही है, किन्तु भावना पृथक-पृथक है।

इसी प्रकार साधकको भी निरन्तर अपने सिद्धस्वरूपमें राधाजीकी सेविका हूँ और अन्त तक यह भाव बना रहे कि कृष्ण हमारी स्वामिनीके प्राणप्रियतम हैं, मैं श्रीयुगलकिशारकी सेविका हूँ, श्रीरूपमञ्जरीकी मैं दासी हूँ। बाह्य रूपसे समस्त कार्य करते रहें, किन्तु आन्तरिक भाव सदैव राधादासीका ही बना रहे, यही एक आशा धारण करके साधन करते रहना चाहिए।

कृष्णावतारके कारण

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परोभवेत् ॥
(श्रीमद्भा. १०/३३/३६)

भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए श्रीभगवान मनुष्याकृति धारणकर ऐसी सर्वचित्ताकर्षणी लीलाएँ करते हैं, जिनको सुनकर जीव भगवत्परायण हो सके।

एऽ सब रसनियासि करिब आस्वाद।
एऽ द्वारे करिब सब भक्ते प्रसाद ॥
ब्रजेर निर्मल राग शुनि भक्तगण।
रागमार्गे भजे येन छाडि धर्म-कर्म ॥

(चै. च. आदि ४/३२-३३)

असुर-विनाश, भू-भार-हरण आदि कृष्णकी लीला प्रकट होनेके बहिरङ्ग कारण हैं। इसके अतिरिक्त शान्त, दास्य, सख्य एवं वात्सल्य भावके भक्तोंको आनन्द प्रदान करना अनतरङ्ग कारण है, किन्तु अनतरङ्गका गौण। मुख्यातिमुख्य कारण है—चक्रवर्तीनी रासलीला, जिसमें समस्त लीलाओंका समावेश है। कोई ऐसी लीला नहीं जो इसमें न हो। क्योंकि यह ब्रह्माकी एक रात्रिके समान लम्बी है। रासलीला क्यों हुई? सर्वश्रेष्ठभाव—ओपपत्य भावकी जगतमें स्फूर्ति करानेके लिए। जीव जब इस लीलाको श्रद्धापूर्वक श्रवण करेंगे, तो इसमें प्रवेश करनेके लिए उनका लोभ होगा। श्रुतियोंने श्रवण किया, तब उन्होंने गोपाल मन्त्र आदि द्वारा तपस्या की तथा कृष्णकी लीलामें प्रवेश पानेका लोभ हुआ। अन्ततः वे ब्रजमें जन्म लेकर गोपियोंके आनुगत्यमें रासलीलामें प्रवेश पा सकीं। श्रुतियाँ, वेद-मन्त्र तथा श्रुतिधर मुनि आदि अनन्त हैं; उनमेंसे कुछको ही लोभ हुआ। इसी प्रकार जीव भी अनन्त हैं। जो सौभाग्यवान् जीव कृष्णभक्तिकी ओर आकृष्ट होते हैं, उन्हें देखकर अन्य कुछ जीवोंको भी लोभ हो सकता है, उन्हें स्फूर्तिप्राप्त होती है तथा वे भी साधन-भजनकी ओर अग्रसर होते हैं। साधन करते-करते कभी न कभी कृष्णकी प्रकट-लीलामें जन्म प्राप्त होगा।

रसिकशेखर कृष्ण परम करुण

श्रीकृष्ण अद्वितीय तत्त्व हैं। श्रीकृष्णके अतिरिक्त दूसरा तत्त्व नहीं है, इसीलिए उनको असमोर्द्ध्व कहा गया। जितने भी

श्रीकृष्णके गुण हैं, उन सबमें चक्रवर्ती गुण है—उनका वात्सल्य। इसीलिए श्रीकृष्ण जो कुछ करते हैं, जीवों पर कृपापरवश होकर करते हैं। वे निर्गुण हैं, अर्थात् उनमें प्राकृत गुण नहीं हैं। वे आत्माराम चक्रवर्ती हैं तथा आप्तकाम हैं, उनमें कोई कामना नहीं है। फिर उन्होंने रासलीला क्यों की? उनकी जितनी भी लीलाएँ हैं, सभी कृपा करनेके लिए हुई। एक साधारण रूपमें विचार करें—श्रीकृष्ण सबसे सुन्दर हैं। उनके समान कोई सुन्दर नहीं है, किन्तु श्रीकृष्ण कहते हैं कि राधाजीका रूपमाधुर्य देखकर मेरा हृदय शान्त हो जाता है, किन्तु मैं देखता हूँ कि मुझमें ऐसा कुछ है, जो गोपियाँ और विशेषकर श्रीराधाजीको पागल बना देती हैं मेरे रूप, गुण आदिके माधुर्यका आस्वादनकर वे उन्मादिनी हो जाती हैं। तो अवश्य ही मुझमें कुछ है। श्रीराधाजी सुन्दर हैं तथा श्रीकृष्ण भी सुन्दर हैं। श्रीराधाजीके रूपको देखकर श्रीकृष्ण आकर्षित होते हैं, किन्तु श्रीकृष्णके रूपको देखकर राधाजी अधिक आकर्षित होती हैं। अतएव श्रीकृष्ण अधिक सुन्दर हैं, उनका नाम इसीलिए कृष्ण है। श्रीकृष्ण श्रीराधाजीकी आराधना करते हैं, इसलिए उनका नाम राधिका है। श्रीकृष्ण यदि श्रीराधाजीकी आराधना करते हैं तो यह उनका गुण है, क्योंकि वे परतत्त्व हैं, साधारण नहीं हैं। रासलीलाका आयोजन गोपियोंको आनन्द देनेके लिए हुआ। (अपनेको नहीं, वे तो आत्माराम हैं।) साथ ही उन करोड़ो जीवों पर कृपा करनेके लिए, जो जीव भविष्यमें आँगे, इस अप्राकृत लीलाका श्रद्धापूर्वक श्रवण करेंगे तथा उनके

हृदयमें श्रीकृष्णकी सेवा करनेकी लालसा होगी। इसी कारण इस प्राकृत जगतमें अपने समस्त परिकर तथा गोपियोंको लेकर श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्हें यहाँ आनेकी क्या आवश्यकता थी? यह श्रीकृष्णका दया गुण ही है जो उन्हें इस धराधाममें इतना कष्ट उठाकर लीला करनेके लिए उन्हें प्रेरित करता है। श्रीराधाजी तथा श्रीकृष्ण दोनों ही दयालु हैं, किन्तु श्रीकृष्ण श्रीराधाजीके चरण- महावरको मस्तकपर धारणकर अपनेको धन्य मानते हैं—यह उनकी बहुत बड़ी दयालुता है। ऐसा और किसी अवतारमें नहीं देखा जाते। जब श्रीराधाजी इसपर विचार करती हैं, तो आश्चर्यमें पड़ जाती हैं। जब हम श्रीश्रीराधाकृष्ण दोनोंकी दयालुतापर विचार करेंगे, तो पाएँगे कि दोनोंमें दयालुताका गुण एकसे एक बढ़कर हैं। अपनी दयालुताके गुणके कारण ही वे अपने मातापिता, सखा, गोपियोंको छोड़कर

खारे पानीका देश द्वारकामें गए। यह कार्य जगत-कल्याणके लिए था। श्रीकृष्णने कितना दुःख सहा? उस दूरदेशमें वे अकेले रहे, उनके हृदयके भावोंको जानकर उन्हें कोई सान्त्वना देनेवाला भी नहीं था। किन्तु ब्रजमें सभी लोग एक दूसरेका देखरेख कर रहे थे और आपसमें चर्चाकर दुःख बाँट रहे थे। श्रीराधाजीको सम्भालनेवाली ललिता, विशाखा तथा अन्य अनेक गोपियाँ थीं।

यह श्रीकृष्णकी करुणा है कि वे ऐसी सुन्दर-सुन्दर लीलाओंको जगतमें प्रकट करते हैं—‘अनुग्रहाय भक्तानां’। उनकी कृपा-अनुग्रहकी व्याख्या करना असम्भव है। उन्होंने ही गोपियोंका ऋणी होना स्वीकार किया—

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां
स्वसाधुकृत्यं विवुधायुषापि वः।
या माभजन् दुर्जर्गोह-शृंखलाः
संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीमद्भा. १०/३२/२२)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष ४६, संख्या १०, पृष्ठ २३३ से आगे)

इस प्रकार दोनों प्रभु जब तैरते-तैरते शान्तिपुरकी ओर जा रहे थे तो रास्तेमें प्रभु क्रोधित होकर कहने लगे—“मैं वही हूँ। मैं वही हूँ। मैं तो अपने धाममें आनन्दसे शयन कर रहा था। यह नाड़ा (अद्वैताचार्य) अपनी प्रतिज्ञाके बलसे मुझे तो यहाँ ले आया, परन्तु स्वयं भक्तिके स्थानपर ज्ञानका प्रचार कर रहा है। अच्छी बात है। आज मैं इसे इसका दण्ड दूँगा। तब देखता हूँ कि इसका

ज्ञानयोग इसकी रक्षा कैसे करता है?” ऐसा कहते हुए प्रभु तैरते हुए जा रहे थे। यह सुनकर नित्यानन्दप्रभु भी चुपचाप उनके साथ-साथ तैरते हुए जा रहे थे। उस समय उन दोनोंकी शोभा अद्भुत हो रही थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे अनन्त (शेषनाग) तथा मुकुन्द (कृष्ण) क्षीरसागरमें तैर रहे हैं।

उधर अपने भक्तिके प्रभावसे आचार्य जान गए हैं कि प्रभु क्रोधित होकर आ रहे

हैं। अतः वे पहलेसे भी अधिक जोशसे ज्ञानयोगकी महिमाका गान करने लगे। जब दोनों प्रभु गङ्गाके किनारे पहुँचे तो देखा कि आचार्य प्रमत्त होकर ज्ञानयोगकी व्याख्या कर रहे हैं। प्रभुका दर्शन करते ही हरिदासजी तथा अद्वैताचार्यजीके पुत्र अच्युतने प्रभुको दण्डवत् प्रणाम किया तथा उनकी पत्नी सीतादेवीने मन ही मन प्रभुको प्रणाम किया। परन्तु आज प्रभुके शरीरसे कोटि सूर्योंके समान तेज निकल रहा था तथा उनका श्रीमुख बहुत गम्भीर दिखाई पड़ रहा था, जिससे वहाँपर उपस्थित सभी लोग भयभीत हो गए। प्रभु सीधे आचार्यके पास पहुँच गए तथा क्रोधित होकर पूछने लगे—“अरे नाड़ा! भक्ति तथा ज्ञानमेंसे कौन बड़ा है?”

अद्वैताचार्य—सदा-सर्वदा ज्ञान ही बड़ा है। जिसके पास ज्ञान नहीं है, उसका भक्तिमें क्या काम?

ज्ञान बड़ा है, यह सुनते ही प्रभुका क्रोध चरम सीमापर पहुँच गया। उन्होंने आचार्यको व्यास-आसनसे उठाकर आङ्गनमें पटक दिया तथा उनपर अपने हाथोंसे जोर-जोरसे प्रहार करने लगे। यह देखकर अद्वैताचार्यकी पत्नी जगन्माता सीतादेवी सबकुछ जानते हुए भी कि प्रभु आचार्यपर कृपा ही कर रहे हैं, प्रभुके सामने आकर कहने लगी—“प्रभो! इन्हें छोड़ दीजिए। ये वृद्ध ब्राह्मण हैं। आपके इस प्रकार निर्ममतापूर्वक मारनेसे यदि ये मर गए, तो आपको ब्रह्महत्याका पाप लगेगा।”

यह सुनकर नित्यानन्दप्रभु जोर-जोरसे हँसने लगे। परन्तु उन पतिव्रताकी बात सुनकर

श्रीहरिदासजी भयभीत हो गए। परन्तु प्रभु सीतादेवीकी बातोंको भी अनसुनाकर आचार्यको पीटते ही जा रहे थे तथा गर्जन करते हुए कह रहे थे—“अरे नाड़ा! मैं तो क्षीरसागरमें आनन्दसे शयन कर रहा था। परन्तु तू मुझे इस जगतमें ले आया। मुझे लाकर पहले तो तू भक्तिकी महिमा जगतमें प्रकाशित कर रहा था, परन्तु अब तू भक्तिको छिपाकर ज्ञानयोगका गुणगान कर रहा है। यदि तुझे ऐसा ही करना था, तो तू मुझे यहाँ क्यों लेकर आया? मैं तो तेरी प्रतिज्ञाकी उपेक्षा नहीं कर सकता था, इसीलिए यहाँ आ गया, परन्तु तू मुझे ठग रहा है।”

ऐसा कहते हुए प्रभुने उन्हें छोड़ दिया तथा द्वारपर बैठकर अपनी महिमा प्रकाशित करने लगे—“अरे नाड़ा! क्या तू नहीं जानता कि मैंने ही कंसका वध किया, मैंने ही अपने चक्रसे शृगाल वासुदेवको मारा, मेरे चक्रके प्रभावसे ही काशी जलकर भस्म हो गई थी, मेरे तेजस्वी वाणोंसे ही रावण मारा गया, मैंने ही अपने चक्रसे वाणासुरकी भुजाएँ काटी थीं, मेरे चक्रसे ही नरकासुरका विनाश हुआ, मैंने ही इन्द्रका मान भङ्ग करनेके लिए सात दिन तक बाँहें हाथसे गिरिराजको उठाया था, मैं ही स्वर्गसे पारिजात वृक्ष लेकर आया था, मैंने बलिको छलकर उसपर अपार कृपा की तथा मैंने ही हिरण्यकशिपुसे अपने प्यारे भक्त प्रह्लादकी रक्षा की। ब्रह्मा, शिव, शेष तथा लक्ष्मी आदि सभी मेरी सेवा करते रहते हैं।”

इस प्रकार प्रभु अपनी महिमा प्रकाशित कर रहे थे, जिससे आचार्य आनन्दसमुद्रमें

डूब गए। वे दोनों हाथोंसे ताली बजाकर नृत्य करते हुए कहने लगे—“हे प्रभो! बहुत अच्छा हुआ, जो आपने मुझे मेरे अपराधकी सजा दी। अब तो सभीने देख लिया कि आप मेरे प्रभु हैं, क्योंकि सेवकको अपराधकी सजा उसके स्वामी ही दिया करते हैं। मैं यही चाहता था। क्योंकि जब आप मेरे प्रभु होकर भी लोगोंकी बज्जना करनेके लिए मुझे प्रणाम करते थे, तो उस समय मेरे हृदयमें अपार पीड़ा होती थी। अब कहाँ गई आपकी वह स्तुति तथा प्रणाम। प्रभो! मैं दुर्वासा नहीं हूँ कि जिसकी जूठी खीरका लेप आपने अपने सारे शरीरमें किया तथा उनकी बज्जना कर दी, और न ही मैं भृगु हूँ कि जिसके चरणचिह्नको आपने अपने वक्षःस्थलपर धारणकर उसकी बज्जना कर दी, अर्थात् उन्हें अपना दासत्व प्रदान नहीं किया। मेरा नाम अद्वैत है। मैं तो आपका शुद्ध दास हूँ। जन्म-जन्मान्तरमें मैं आपका उच्छिष्ट प्रसाद चाहता हूँ। आपके उच्छिष्टके प्रभावसे आपकी दुष्कर माया मुझपर अपना प्रभाव नहीं डाल पाएगी। हे प्रभो! दण्ड तो आपने दे दिया, परन्तु अब अपने श्रीचरणोंको भी प्रदान कीजिए।”

ऐसा कहकर आचार्य प्रभुके श्रीचरणोंमें गिरकर प्रेमसे रोने लगे। उन्हें अपने चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर विश्वभरने झट आचार्यको अपनी गोदीमें ले लिया तथा प्रेमसे रोने लगे। अद्वैताचार्यके प्रति प्रभुका स्नेह देखकर श्रीनित्यानन्दजीकी आँखोंसे भी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी तथा हरिदासजी जमीनपर गिरकर रोने लगे। इसके अतिरिक्त वहाँ जितने भी लोग उपस्थित थे, उस समय उन सभीके

आँखोंसे अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी।

प्रभुने स्वयं प्रसन्न होकर वर दिया—“हे आचार्य! यदि कोई एक क्षणके लिए भी आपकी शरण ग्रहण करेगा तो वह चाहे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग किसी भी जातिका क्यों न हो, मेरे चरणोंमें अपराध करनेपर भी वह मेरा प्रिय ही होगा।”

यह वर सुनकर आचार्य रोते-रोते कहने लगे—“प्रभो! आपके सामने मैं आज एक प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि कोई आपको न मानकर मेरी भक्ति करेगा तो वही भक्ति उसका सर्वनाश कर देगी। क्योंकि यदि कोई आपकी सेवा न कर देवी-देवताओंकी पूजा भी करता है, तो आपकी अवज्ञाके कारण वे देवी-देवता ही किसी न किसी रूपसे उसका विनाश कर देते हैं। क्योंकि वे देवी-देवता स्वयं आपके दास-दासी हैं तथा आपका आदेश पालनमें रत रहते हैं। प्रभो! ऐसे अनेक उदाहरण हैं। काशीराजका पुत्र जिसका नाम सुदक्षिण था, उसने शिवजीकी कठोर तपस्या की। उसकी ऐसी कठोर तपस्यासे प्रसन्न होकर शिवजीने उसके समक्ष प्रकट होकर वर देते हुए उसकी भक्तिकी परीक्षा लेनेके लिए कहा—“तू अभिचार यज्ञ (अर्थव वेदोक्त मारण-उच्चाटन आदि हिंसात्मक मन्त्रोंके द्वारा यज्ञ, उसके लिए देवीकी पूजा भी की जाती है) कर, परन्तु भगवान् एवं भक्तोंसे द्वेष मत करना।” परन्तु वह शिवजीकी बात न समझ सका तथा उसने वास्तवमें ही यज्ञ आरम्भ कर दिया, जिससे उस यज्ञकुण्डसे एक भयङ्कर मूर्ति प्रकट हुई। उसके तीन सिर, तीन हाथ और तीन पैर थे तथा

तालवृक्षके समान उसकी जंघाएँ थीं। उसने भयङ्कर गर्जन करते हुए कहा—“मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम मुझसे वर मांगो।”

यह सुनकर सुदक्षिण बोला—“मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप जाकर द्वारकापुरीको जलाकर भस्म कर दें।”

यह सुनकर महाशिवमूर्ति दुःखी हो गई। वे जानते थे कि इसकी यह इच्छा कभी पूर्ण नहीं हो सकती। तथापि वे उसकी प्रार्थना स्वीकारकर जैसे ही द्वारकाके निकट गए, वैसे ही द्वारकाके रक्षक सुदर्शनचक्र क्रोधित होकर उन्हें भस्म करनेके लिए तीव्र गतिसे उनकी ओर बढ़े। यह देखकर वे शिवमूर्ति अपने प्राण बचानेके लिए भाग खड़े हुए, परन्तु सुदर्शनचक्रसे बचना सम्भव नहीं था। अतः वे अपने बचावका उपाय न देखकर श्रीसुदर्शनचक्रकी स्तुति करने लगे—“हे भगवानके प्रिय सुदर्शन चक्र! आपके भयसे जब दुर्वासा ऋषि भाग रहे थे, तो उस समय ब्रह्मा एवं शिव आदि भी उनकी रक्षा नहीं कर पाए। क्योंकि वे भलीभाँति जानते थे कि यदि उन्होंने दुर्वासाको आश्रय दिया तो आप उन्हें भी क्षमा नहीं करेंगे। अतः जब ब्रह्मा, शिव तथा दुर्वासा ऋषि जैसे महाप्रभावशाली आपके सामने भयभीत रहते हैं तो मेरा क्या सामर्थ्य है कि मैं आपसे बचकर भाग जाऊँगा? अतः हे प्रभो सुदर्शनचक्र! आपकी जय हो। आप वैष्णवोंके शिरोमणि हैं तथा द्वितीय शिवके समान ही प्रभावशाली हैं तथा कृष्णके अति प्रिय हैं। अतः आप सर्वदा भगवानके परमप्रिय भक्तोंकी रक्षामें रत रहते हैं तथा दुष्टोंका विनाश करते हैं।”

उनकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर सुदर्शनचक्रजीने कहा—“जाओ! जाकर काशीराजके पुत्र सुदक्षिणको ही जलाकर भस्म कर डालो।”

यह आदेश सुनकर वह महाभयङ्कर शिवमूर्ति वापस काशी पहुँची तथा उसने सुदक्षिणको भस्म कर दिया। इस प्रकार सुदक्षिणने आपकी अवज्ञाकर शिवपूजा की तथा स्वयं शिवने ही उसको मार डाला।

दुर्योधनने अपनी सेवासे बलदेवजीको तो प्रसन्नकर उनका शिष्यत्व ग्रहणकर लिया था, परन्तु आपसे विरोध किया, जिसके फलस्वरूप वह सवंश नष्ट हो गया। हिरण्यकशिपुने ब्रह्माजीकी कठोर तपस्याकर उनसे वर प्राप्त किया, परन्तु आपसे द्वेष करनेके कारण आपके ही हाथों द्वारा मारा गया।

इस प्रकार हे प्रभो! सभी देवी-देवताओंके मूल आप ही हैं। आप सबके ईश्वर हैं। अतः यदि कोई प्रभुको त्यागकर सेवककी पूजा करता है, तो वह सेवक उसकी पूजाको खाकर उसका ही संहार कर देता है। आपको त्यागकर यदि कोई देवी-देवताओंकी पूजा करता है तो उसकी यह पूजा वैसे ही व्यर्थ है, जैसे पेड़की जड़को काटकर उसके पत्तों तथा टहनियोंमें जल देना व्यर्थ है।

वेद, ब्राह्मण, यज्ञ तथा कर्म आदिके मूल (जड़) आप ही हैं। यदि कोई आपकी सेवा न कर मेरी सेवा करता है, तो मैं उसकी सेवा ग्रहण नहीं कर सकता।”

श्रीअद्वैताचार्यकी प्रतिज्ञा सुनकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर अति प्रसन्न हो गए तथा आचार्यसे बोले—“मैं सत्य कह रहा हूँ कि यदि कोई मेरे भक्तोंकी उपेक्षाकर मेरी सेवा करता है,

तो वह अधम मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े करता है। यदि कोई मेरे दासकी एक बार भी निन्दा करता है, तो मैं स्वयं उसका संहार कर देता हूँ। वास्तवमें सारा संसार ही मेरा दास है। अतः यदि कोई दूसरोंकी हिंसा करता है तो उसका विनाश हो जाता है।

फिर तुम तो मुझे अपने प्राणोंसे अधिक प्रिय हो। अतः यदि कोई तुमसे द्वेष करे तो उसकी रक्षा त्रिभुवनमें कौन कर सकता है? हे आचार्य! आप जैसे भक्तोंकी निन्दा यदि कोई संन्यासी भी करता है तो वह अपने संन्यास-धर्मसे पतित हो जाता है तथा नरकगामी होता है।”

यह कहकर प्रभुने दोनों भुजाएँ उठाकर घोषणा की—“हे जीवगण! परनिन्दा छोड़कर ‘कृष्ण-कृष्ण’ बोलो। अवश्य ही मैं तुम्हारा उद्धार कर दूँगा।” प्रभुकी ऐसी घोषणा सुनते ही भक्तवृन्द आनन्दसे ‘हरि-हरि’ बोलने लगे। अद्वैताचार्य प्रभुके श्रीचरणोंको पकड़कर रोने लगे। यह देखकर प्रभुने भी रोते हुए उन्हें उठकार प्रेमसे अपनी छातीसे लगा लिया तथा अपने आँसुओंसे उनके शरीरको भीगा दिया।

कुछ क्षण पश्चात् प्रभुका आवेश दूर हुआ। वे हँसते हुए अद्वैताचार्यजीसे बोले—“हे आचार्य! क्या इस बालक (स्वयं प्रभु) से कोई चञ्चलता हो गई?”

आचार्य—“प्रभो! चञ्चलता नहीं, बल्कि सत्य ही प्रकाशित हुआ। तब प्रभु श्रीनित्यानन्दजीसे बोले—“श्रीपाद नित्यानन्द! यदि मुझसे अनजानमें कोई चञ्चलता हो गई तो आप क्षमा करेंगे।”

यह सुनकर नित्यानन्द तथा अद्वैताचार्य हँसने लगे। तब महाप्रभुने अद्वैताचार्यजीकी पत्नी सीतादेवीसे कहा—“माँ! आप अतिशीघ्र भगवानके लिए रसोई बनाइए। आज हम सभी एक साथ प्रसाद पाएँगे।”

ऐसा कहकर नित्यानन्द, हरिदास तथा अद्वैताचार्यके साथ प्रभु गङ्गास्नानके लिए चले गए। वहाँसे लौटकर जब वे वापस अद्वैताचार्यके घरमें आए, तो प्रभुने पहले अपने चरणोंको धोया, तत्पश्चात् भगवानके मन्दिरमें जाकर श्रीकृष्णको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। उन्हें प्रणाम करते देखकर अद्वैताचार्यजी प्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणाम करने लगे तथा हरिदासजी आचार्यके श्रीचरणोंमें। इस अद्भुत दृश्यको देखकर नित्यानन्दजी खड़े-खड़े हँसने लगे। जब प्रभुने प्रणाम कर लिया तथा अपने चरणोंमें पड़े हुए अद्वैताचार्यको देखा तो हड्डबड़ाकर ‘विष्णु-विष्णु’ कहते हुए उठकर खड़े हो गए तथा कुछ लज्जित होकर नित्यानन्द एवं अद्वैताचार्यके साथ प्रसाद पानेके लिए प्रसादगृहकी ओर चल पड़े। अन्दर जाकर वे तीनों एक ही आसनमें बैठकर प्रसाद पाने लगे तथा हरिदास ठाकुर बाहर दरवाजेपर बैठकर प्रसाद पाने लगे। महासती योगेश्वरी सीतादेवी ‘हरि-हरि’ बोलते हुए उन्हें प्रसाद परिवेषण करने लगी।

इस प्रकार जब प्रसाद प्रायः पूर्ण होनेवाला ही था, उसी समय अकस्मात् श्रीनित्यानन्दप्रभु बाल्यभावमें आविष्ट हो गए तथा उन्होंने हँसते हुए सारे घरमें अपना उच्छिष्ट प्रसाद छिड़क दिया। यह देखकर प्रभु श्रीगौरसुन्दर ‘हाय-हाय’ करने लगे तथा बाहर दरवाजेमें

बैठे हरिदास ठाकुर यह देखकर आनन्दसे हँसने लगे। नित्यानन्दजीकी क्रिया देखकर आचार्य मानो क्रोधसे जलने लगे। वे क्रोधके छलसे नित्यानन्दजीकी महिमा प्रकाशित करने लगे—“इस नित्यानन्दने तो मेरी जाति ही नष्ट कर दी। न जाने यह किन शराबियोंके साथ रहता था। इसने गुरु तो बनाया नहीं, अपने आप ही संन्यासवेश धारण कर लिया। इसके अतिरिक्त यह किस जातिका है, इसका जन्मस्थान कहाँ है तथा इसके माता-पिता आदिका परिचय तो यहाँ कोई जानता नहीं है। हरिदास! देखो तो, हमने फिर भी इसे अपने साथ बिठाया, परन्तु इसने तो हम

ब्राह्मणोंका भी धर्म नष्ट कर दिया।”

अद्वैताचार्यकी बातें सुनकर दोनों प्रभु हँसने लगे। जब अद्वैताचार्यका प्रेमावेश कुछ शान्त हुआ तो तीनों आसनसे उठे, आचमन किया तथा नित्यानन्द और अद्वैताचार्यजी प्रेमसे एक दूसरेके गले लग गए।

वास्तवमें श्रीनित्यानन्द तथा अद्वैताचार्यजी श्रीगौरसुन्दरकी दो भुजाएँ हैं। उनमें परस्पर स्वाभाविक प्रीति है तथा उनमें आपसमें जो कलह दिखाई पड़ता है, वह कृष्णकी लीला है। भगवान् तथा उनके भक्तोंका व्यवहार परस्पर अबोध बालकोंके खेलके समान ही होता है।

(क्रमशः)

विविध संवाद

प्राच्य और पाश्चात्य देशोंमें श्रीमन्महाप्रभुकी वर्णीका प्रचार

श्रीगौरशक्ति गदाधरके प्रकाश सप्तम गोस्वामी सच्चिदानन्द श्रीलभक्तिविनोद ठाकुरने भविष्यवाणी की थी कि “थोड़े समयमें ही श्याम और गौर वर्णके व्यक्ति एकत्रित होकर एकसाथ हाथ उठाकर प्रेममें उन्मत्त होकर उच्चस्वरसे ‘हरिबोल-हरिबोल’ कीर्तन करेंगे।” सप्तम गोस्वामीकी इसी भविष्यवाणीको वास्तवमें सत्य करनेके लिए प्रधान भूमिकाको ग्रहण किया उन्हींके सुपुत्र विश्वव्यापी गौड़ीय मठोंके प्रतिष्ठाता—श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ‘प्रभुपाद’ ने। इन्हींके अन्तरङ्ग पार्षद श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता अस्मदीय परमगुरुदेव अष्टोत्तरशतश्री श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजके एकान्त अनुगृहीत हैं—अस्मदीय शिक्षागुरु पादपद्म श्रीलभक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराज। वे आजकल प्रचुर सफलता-

पूर्वक प्राच्य और पाश्चात्य देशोंमें प्रचार कर रहे हैं। साधनभूमि भारतवर्षसे विगत २८-११-२००२ तारीखको यात्रा करके बैंकाक (थाईलैंड), आस्ट्रेलिया स्थित ब्रिस्बॉन, सिड्नी, मुर्विलुम्बा आदि स्थानों पर प्रचार-सेवा समापनकर वर्तमानमें श्रीलमहाराजजी अमेरिकाके हवाई द्वीपमें प्रचार कार्य कर रहे हैं।

उपरोक्त स्थानोंपर प्रचारके प्रधान-प्रधान विषय थे—(१) भयका कारण एवं उससे उद्धार पानेका उपाय। (२) श्रीनाम महिमा। (३) गुरु-ग्रहणकी प्रयोजनीयता। (४) भक्तिके तारतम्योंसे भक्तोंका तारतम्य। (५) भक्तोंके तारतम्यसे भक्तिका तारतम्य।

थाईलैंडकी राजधानी बैंककमें तीन दिन पर्यन्त प्रचार करते समय वहाँके जातीय उद्यान लुम्बिनी पार्कमें श्रीलमहाराजजीने श्रीनाम

महिमाकी विस्तुत रूपसे व्याख्या की। वहाँके भक्तों सहित एकत्रित होकर श्रीहरिमान-कीर्तन किया गया। श्रीपाद कृष्णदास ब्रह्मचारीजीने अपने स्वभावसुलभ कीर्तन द्वारा शताधिक व्यक्तियोंको नचा दिया। श्रीकृष्णदासजीके कीर्तन और नृत्यको विराम देनेपर दर्शकोंके पुनः-पुनः अनुरोधसे वे कीर्तन पुनः आरम्भ करनेके लिए बाध्य हो जाते थे। कीर्तनके अन्तमें श्रीलमहाराजजीने उच्च संकीर्तनकी महिमाके प्रसङ्गमें कहा—

**जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जर्जन् श्रोतान् पुनाति च॥**

कलियुगमें ध्यान प्रधान नहीं है, बल्कि कीर्तन प्रधान है। केवल कीर्तन ही नहीं, उच्च-संकीर्तन। उच्च-संकीर्तन द्वारा समस्त इन्द्रियाँ एवं इन्द्रियोंका राजा मन भी वशीभूत हो जाता है। देखो न! हमारा एक छोटा-सा ब्रह्मचारी कृष्णदासने कैसे आज सभीके मनको एकत्रित करके नचा दिया। इस उच्च-संकीर्तनके द्वारा आप सभीका एवं स्थावर-जड़म सभीका कल्याण हुआ। यदि कोई धीरे-धीरे जप व कीर्तन करे तो वह स्वयं पवित्र होता है, उच्च स्वरसे करने पर कीर्तनकारी स्वयं एवं स्थावर-अस्थावर श्रोतागण सभी पवित्र होते हैं। इसके द्वारा कीर्तनकारी व्यक्ति भगवानकी अधिक कृपा प्राप्त करता है। जप करनेकी अपेक्षा उच्च स्वरसे हरिनाम कीर्तन करना सौ गुणा श्रेष्ठ है। इसलिए आप सभी उच्च स्वरसे प्रतिदिन संकीर्तन करना। भगवानकी कथा बोलना और सुनना। भगवानकी कथा निरन्तर श्रवण करनेसे भगवान अत्यन्त प्रसन्न होते हैं एवं श्रवण करनेवालोंका कभी भी

परित्याग नहीं करते। भगवानने स्वयं कहा है—

मत्कथा वाचकं नित्यं, मत्कथा श्रवणे रत्म्।

मत्कथा प्रीतिमनसं, नाहं त्यक्षामि तं नरम्॥

आस्ट्रेलियाकी प्रधान महानगरियों सिडनी, ब्रिस्बेन में श्रीलमहाराजजीने नाम-तत्त्वकी महिमा बताते हुए कहा कि—देखो, पहले पाश्चात्य देशवासी (पाश्चात्य वैज्ञानिक) भारतीय संस्कृतिको अपवाद करनेके लिए मन्तव्य करते हैं कि क्रम-विकासके फलसे धीरे-धीरे बन्दर व बनमानुषसे मनुष्यकी सृष्टि हुई है। यह पूर्णरूपसे भ्रान्त धारणा है। इस Theory का नाम Darwin's Theory है। आप यह अच्छेसे ही जानते हैं कि इस तथ्यके पीछे वैज्ञानिकोंके पास कोई ठोस प्रमाण नहीं है। यह पागलोंकी Theory, Mad Theory है। यदि क्रमविकासके फलसे ही मनुष्य होते, तो फिर मनुष्योंके बाद और कोई विशेष जीव व किम्भूतकिमाकार जीवकी सृष्टि होती, वह तो हो नहीं रही।

पाश्चात्य पुरातत्त्वविज्ञ-व्यक्ति भारतीय संस्कृतिका अपवाद करनेके लिए कहते हैं कि—‘हड्डपा, मोहज्जोदडो’ सभ्यता ही भारतकी प्राचीन सभ्यता है, जो केवल पाँच हजार वर्ष पुरानी मानी जाती है। वे कहते हैं कि सर्वप्रथम पत्थरका युग था, क्रमशः लौह-युग, ताम्र-युग एवं अन्तमें स्वर्ण-युग आया है। यह समस्त धारणा भी पागलोंके प्रलापके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। भारतीय संस्कृति इतनी पुरानी, मर्यादायुक्त और व्यवस्थित है कि समस्त आधुनिक वैज्ञानिक तथा पुरातत्त्वविज्ञानवाले एकत्रित होकर भी उस

कालकी गणना नहीं कर पाएँगे। आप सभी भारतवर्षकी अपेक्षा अधिक money minded एवं अधिक Internet लेकर ही व्यस्त हैं। देखो, वर्तमान विश्वमें जो सबसे अधिक उन्नत देश होनेका दावा करता है, उसी अमेरिकाकी एक कम्पनी 'NASA' ने Satellite द्वारा जो तथ्य भारतीय संस्कृतिके सम्बन्धमें मन्तव्य किया है, वह आपको सुना रहा हूँ। श्रीलम्हाराजजीके आदेशसे श्रीपाद ब्रजनाथ दासाधिकारीने उसको पढ़कर सबको सुनाया।

NASA Images Discover Ancient Bridge between India and Sri Lanka

(Courtesy: NASA Digital Image Collection)

Space images taken by NASA reveal a mysterious ancient bridge in the palk strait between India and Sri Lanka. The recently discovered bridge currently named as Adam's Bridge is made of chain of shoals, C.18 mi (30 km) long.

The bridge's unique curvature and composition by age reveals that it is manmade. The legend as well as Archeological studies reveal that the first sign of human inhabitants in Sri Lanka date back to the primitive age about 1,750,000 years ago and the bridge's age is also almost equivalent.

The information is a crucial aspect for an insight into the mysterious legend called 'Ramayan', which was supposed to have taken place in Treta Yuga (more than 1,700,000 years ago). In this epic there is a mentioning about a bridge, which was built between Rameshwarm (India) and Sri Lanka coast under the supervision of a dynamic and invincible figure called Ram who is supposed to be the incarnation of the supreme.

This information may not be much importance to the archeologists who are interested in exploring the origin of man, but it is sure to open the spiritual gates of the people of the world to have come to know an ancient history linked to the Indian mythology.

श्रीलम्हाराजजीने इसका भावार्थ किसी-किसी सभामें श्रीपाद माधव महाराज एवं किसी-किसी सभामें श्रीपाद पुण्डरीक प्रभुको बतानेके लिए कहा।

अनुवाद—

NASA के उपग्रहों द्वारा लिए गए चित्रानुसार भारत एवं श्रीलङ्काके मध्य प्राचीन-सेतुका प्रमाण मिलता है

NASA द्वारा अन्तरीक्षसे लिये गए चित्रोंमें भारत एवं श्रीलङ्काके बीच प्राचीन रहस्यमय सेतुका अनुसन्धान मिला है। कुछ दिन पहले

दूँढे गए सेतुका नाम Adam's bridge रखा गया है। ३० किलोमीटर लम्बा सेतु पत्थरों द्वारा निर्माण किया गया था। इसका कोई भी pillar नहीं है। सेतु-निर्माणका काल एवं इसकी शिल्पकला द्वारा समझा जा सकता है कि यह मनुष्यों द्वारा बनाया गया है। विशेषज्ञ एवं पुरातत्त्व विद्वज्जनोंके अनुसन्धानसे यही सिद्ध होता है कि भारत एवं श्रीलङ्कामें ही सर्वप्रथम मानव जातिके चिह्न प्रायः १७ लाख ५० हजार वर्ष पूर्व विद्यमान थे एवं उक्त सेतुकी आयु भी प्राय इतनी ही है।

पौराणिक रामायणको अच्छे प्रकारसे समझनेके लिए यह अनुसन्धान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। मान्यता अनुसार त्रेतायुग सम्बन्धीय अर्थात् आनुमानिक १७ लाख वर्ष प्राचीन इस प्रामाणिक ग्रन्थमें इसी प्रकारके एक सेतुका विवरण पाया जाता है, जिसका निर्माण रामेश्वर (भारत) एवं श्रीलङ्काके समुद्रतट पर्यन्त महान विभूति श्रीरामके निर्देशानुसार हआ था, जिनको भगवानका अवतार कहते हैं।

पुरातत्त्वविद् एवं मनुष्यके सृष्टि-रहस्यके सम्बन्धमें जो गवेषणा करते हैं, उनके पक्षने यह सूचना सम्भवतः इतनी अधिक महत्वपूर्ण न होनेपर भी यह अवश्य ही ध्रुव सत्य है—यह सूचना समस्त विश्ववासियोंके लिए पारमार्थिक द्वार खोल देगी तथा जो भारतीय शास्त्र सम्बन्धित प्राचीन इतिहासको जानना चाहते हैं, उनके लिए भी यह अत्यन्त गुरुत्वपूर्ण है।”

भावानुवाद श्रवण करनेके पश्चात् श्रोताओंने प्रश्न किया—गुरुदेव, NASA रिपोर्टके सम्बन्धमें

आपका क्या मन्तव्य है?

श्रीलम्हाराजजी—NASA के इस नवीनतम गवेषणाने प्राचीनी भारतीय संस्कृतिका दिग्दर्शन करा दिया है।

श्रोता—दो एक उदाहरण देनेपर विषयवस्तु हमारे जैसे अनभिज्ञ व्यक्तियोंको समझ आ जाएगा।

श्रीलम्हाराजजी—श्रीमद्भागवत आदि प्रामाणिक शास्त्रोंके अनुसार चार युगों (सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि) को मिलाकर एक दिव्ययुग बनता है। ७१ दिव्ययुगोंका एक मन्वन्तर होता है। १४ मन्वन्तरमें ब्रह्माजीका एक दिन होता है एवं इसी परिमापकी ही रात्रि होती है। ब्रह्माजीकी एक सौ वर्षोंकी आयु होती है। ब्रह्माजीके एक दिनमें मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्र एकबार, लीला पुरुषोत्तम भगवान श्रीकृष्ण एकबार एवं श्रीकृष्णके बाद कलियुगमें प्रेमपुरुषोत्तम भगवान श्रीशचीनन्दन गौरहरि जगतमें अवतीर्ण होते हैं। भगवान श्रीरामचन्द्र भगवान श्रीकृष्णके ठीक पूर्ववर्ती त्रेतायुगमें अवतीर्ण नहीं होते हैं। उस कालका अनुमान लगाना वैज्ञानिकोंकी धारणाके अतीत है।

श्रोता (एक भारतीय जो Australia में रहता है)—स्वामीजी! इसके अतिरिक्त क्या और कोई दिग्दर्शन है क्या?

श्रीलम्हाराजजी—मेरे वक्तव्यकी समाप्तिसे पहले ही आपने जिज्ञासा की है, अच्छा! तो सुनो। आप तो वैज्ञानिक हैं, कथा आरम्भ करनेसे पहले ही हमारे भक्तोंने आपका परिचय दिया था। देखिए, उस समय भारतीय विज्ञान, स्थापत्य कला, वास्तुकला कितनी

उन्नत थी—वह आपकी धारणाके अतीत है। 'NASA' द्वारा नवीनतम अनुसन्धान किया गया कि ३० कि. मी. सेतुमें कोई भी Pillar नहीं है और न ही कोई सीमेंट और लोहा है। वर्तमान सम्पूर्ण विश्वके वैज्ञानिक एकसाथ मिलकर भी क्या ऐसा कर पाएँगे? उस समय भारत कितना सभ्य था, उन्नत था एवं Technology भी कितनी उन्नत थी, वह सब आपकी धारणाके अतीत है।

वैज्ञानिक श्रोता—स्वामीजी! आपने Advance Technology के विषयमें बताया है। प्राचीन भारतमें क्या Computer Science थी? भारतीयोंने तो पाश्चात्य देशोंसे ही इस विद्याको सीखा है।

श्रीलमहाराजजी—आपके प्रश्नसे मुझे हँसी आ रही है। भारतीय विज्ञान, विशेष ज्ञान अर्थात् अनुभूति सम्पन्न ज्ञान और आपका विज्ञान—विगत ज्ञान अर्थात् जिनको ज्ञान नहीं है। आपलोग एक प्रकारसे Innocent हैं, आप भारतीय-वंशमें उत्पन्न होकर भी यह कैसे कल्पना कर सकते हैं? प्राचीन भारत एवं भारतीय संस्कृतिकी सहायताके बिना विश्व एक इंच भी अग्रसर नहीं हो सकता। आपने श्रीमद्भागवत ग्रन्थका नाम सुना है।

वैज्ञानिक श्रोता—स्वामीजी! हाँ जानता हूँ। मैं वैज्ञानिक होकर भी प्रतिदिन भागवतका अनुशीलन करनेकी चेष्टा करता हूँ।

श्रीलमहाराजजी—ठीक है, श्रीमद्भागवतसे ही आपको कम्यूटर Science का उदाहरण दे रहा हूँ। आप शारीक ऋषिके पुत्र शृङ्गी ऋषिकी कथाको जानते हैं, जिसने केवल पाँच वर्षकी आयुमें ही महाराज परीक्षिताको

अभिशाप दिया था?

वैज्ञानिक श्रोता—हाँ, स्वामीजी। जानता हूँ। मैंने अपनी मातासे सुना है कि इस अभिशापके कारण श्रीमद्भागवत जगतमें प्रकट हुई हैं।

श्रीलमहाराजजी—आपकी माँने ठीक ही कहा है, वह निश्चय ही भक्त होगी। भक्तोंके अतिरिक्त इस रहस्यको कोई साधारण व्यक्ति नहीं समझ सकते। उक्त अभिशापके तुरन्त बाद ही समस्त मुनि-ऋषिगण प्रायोपवेशनकारी (देहत्याग पर्यन्त उपवासका व्रत धारण करनेवाले) श्रीलपरीक्षित महाराजके निकट गङ्गाके तटपर उपस्थित हुए। मङ्गलेलियासे मङ्गल ऋषि, कैशिपयन सागरके तटसे कश्यप ऋषि उपस्थित हुए। देखिए, प्राचीन भारतका Internet System। Communication, Transportation की व्यवस्था कैसी थी कि कुछ क्षणोंमें ही सब एकत्रित हो गए।

भक्त श्रोता—गुरुदेव! श्रीमद्भागवतके सम्बन्धमें आपका और अन्यान्य वैष्णवोंके मुखारविन्दसे श्रवण किया है। आप नाम-महिमाके सम्बन्धमें व्याख्या कर रहे थे। नाम-महिमाके साथ NASA की इस Discovery का क्या सम्बन्ध है? हम सामज्ज्य नहीं कर पा रहे हैं।

श्रीलमहाराजजी—NASA Discovery का इस सेतुके निर्माणमें कौन-सी Technology का प्रयोग हुआ है, जानते हो? Name Technology, दूसरा कुछ नहीं। उस सेतुको बाँधते समय नल, नील, हनुमान आदि 'राम-राम' भगवत्रामका उच्चारण करते-करते पत्थर रख देते थे। उसी नामके प्रभावसे पत्थर डूबते

नहीं थे अपितु संयुक्त हो जाते थे। नल-नील बाल्यावस्थासे ऋषियोंके कुशादि आसनको जलमें डूबा देते थे। ऋषियोंने क्रोधित होकर कहा था कि तुम जो कुछ भी जलमें फेंकोगे, वह कभी भी डूबेगा नहीं। नामपरायण ऋषियोंके वाक्योंमें इतनी शक्ति थी कि उसी दिनसे नल-नील द्वारा फेंकी गई कोई भी वस्तु जलमें डूबती नहीं थी। उनके लिए यह शापके बदले वरदान हो गया। जैसे—नामपरायण नारद ऋषिके अभिशापने यमलार्जुन वृक्षके रूपमें स्थित दोनों कुवेर-पुत्रोंको ब्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दरको प्राप्त करा दिया। नामपरायण देवर्षिका अभिशाप न होनेपर नलकुवेर, मणिग्रीव वृक्ष योनिमें जन्मग्रहण नहीं करते और न ही भगवानको प्राप्त करते।

श्रीनाममहिमा सम्बन्धीय कथाने Bangkok, Sydney, Brisbane, Murwillumbah, Honolulu, Hilo, Magic Island आदि स्थानों पर भक्तोंमें विशेष उत्साह जगाया है।

Hawaii Island में प्रचार समाप्तकर श्रीलमहाराजजी अमेरिकाके Sanfrancisco, Los Angels, Miami, Alachua में प्रचारकर Brazil जाएँगे, Brazil के São Paulo, Rio de generio आदि स्थानों पर प्रचारके उपरान्त यूरोपके जर्मनी देशमें अवतरण करेंगे। जर्मनीके Frank fort, Berlin में प्रचारकर २६-२- २००३ तारीखको भारतवर्षकी राजधानी दिल्लीमें पदार्पण करेंगे।

श्रीलमहाराजजीकी प्रचारसेवामें श्रीपाद भक्तिवेदान्त माधव महाराज, श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी, श्रीपुण्डरीक ब्रह्मचारी, श्रीश्यामसुन्दर दास, श्रीब्रजनाथ दासाधिकारी योगदान कर रहे हैं। श्रीपाद माधव महाराज श्रीलमहाराजजीके साथ रहने पर भी विभिन्न स्थानों पर प्रचार कर

रहे हैं।

श्रीपाद भक्तिवेदान्त वन महाराज और श्रीरूपकिशोर ब्रह्मचारी अमेरिकाके San francisco, Los Angels, Badger, Huston, New jerry, New york, Washington आदि स्थानोंमें प्रचारकार्यमें व्यस्त हैं। अमेरिकाके प्रचारके बाद ब्राजील और इंग्लैंडके विभिन्न स्थानोंपर प्रचार करनेके बाद श्रीगौर-जन्मोत्सव पर योगदान हेतु वे भारतमें आगमन करेंगे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त भक्तिसार महाराज, श्रीपाद भक्तिवेदान्त पद्मनाभ महाराज, श्रीकृष्णभजन ब्रजवासी आस्ट्रेलियाके विभिन्न स्थान, न्यूजीलैंडके Auckland, Wellington एवं अमेरिकाके प्रधान-प्रधान महानगरोंमें प्रचारकर श्रीनवद्वीपधाम परिक्रमासे पहले भारतमें आगमन करेंगे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त अरण्य महाराज आस्ट्रेलियामें प्रचार समाप्तकर ब्राजीलके प्रमुख स्थानोंपर प्रचार करनेमें व्यस्त हैं। बादमें अमेरिकाके विभिन्न स्थानोंपर प्रचार करते हुए ईजराइलमें प्रचार करके भारतमें आगमन करेंगे। श्रीपाद भक्तिवेदान्त आश्रम महाराज यूरोपके इंग्लैंड एवं अफ्रीकाके नाईजीरिया इत्यादि स्थानोंपर प्रचार करते-करते भारत आएँगे। श्रीमती श्यामारानी दासी आस्ट्रेलिया, अमेरिका एवं यूरोपके विभिन्न स्थानोंपर प्रचार करके एवं श्रीपाद राधानाथ ब्रह्मचारी Indonesia, Phillipines, Honkong, Australia आदि स्थानोंपर प्रचार करके श्रीधामनवद्वीप परिक्रमामें आएँगे।

श्रीधाम परिक्रमाके बाद समस्त प्रचारक फिरसे प्रचार हेतु विभिन्न देशोंमें जाएँगे एवं श्रीश्रीराधागोविन्ददेवकी झूलनयात्रासे पहले भारतमें आएँगे।

—त्रिदण्डभिक्षु श्रीभक्तिवेदान्त माधव



श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति द्वारा
गोवर्धनमें
निर्माणाधीन श्रीगिरिधारी गौड़ीय मठ

श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ-जयतः



श्रीभागवत-पत्रिका

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना ॥

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्वाम वृन्दावनं, रम्या काचिदुपासना ब्रजवधूवर्गेण या कल्पिता ।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान् श्रीचैतन्यं महाप्रभोर्मत्तमिदं तत्रादरो नः परः ॥

एक भागवत बड़ भागवत शास्त्र । आर एक भागवत भक्तिरसपात्र ॥
दुई भागवत द्वारा दिया भक्तिरस । ताहाँर हृदये तार प्रेमे हय वश ॥

वर्ष ४६ }

श्रीगौराङ्ग ५१६
वि. सं. २०५९ फाल्गुन मास, सन् २००३, १७ फरवरी—१८ मार्च

{ संख्या १२

श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गल-स्तोत्रम्

[श्रीश्रीलठाकुरभक्तिविनोदकृतम्]

यस्यानुकम्पा सुखदा जनानां संसारकूपाद्रघुनाथदासम्।
उद्घृत्यगुञ्जाः शिलया ददौ सा तं गौरचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥६४॥
सद्वक्तिसिद्धान्तविरुद्धवादान् वैरस्य भावांश्च बहिरुखानाम्।
सङ्ग विहायाथ सुभक्तगोच्छां राज यस्तं प्रणमामि गौरम् ॥६५॥
नामानि विष्णोर्बहिरङ्गपात्रे विस्तीर्य लोके कलिपावनोऽभूत्।
प्रेमान्तरङ्गय रसं ददौ यस्तं गौरचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥६६॥

नामापराधं सकलं विनाशय चैतन्यनामाश्रित मानवानाम्।
 भक्तिं परां यः प्रददौ जनेभ्यस्तं गौरचन्द्रं प्रणमामि भक्त्या ॥९७॥

इत्थं लीलामयवरवपुः कृष्णचैतन्यचन्द्रो वर्षन् द्विद्वादशपरिमितान् क्षेपयामास गाहोऽ।
 सन्यासे यः समपरिमितं यापयामास कालं वन्दे गौरं सकलजगतामाश्रमाणां गुरुं तम् ॥९८॥

दरिद्रेभ्यो वस्त्रं धनमपि ददौ यः करुणया बुभुक्षून् योऽन्नादैरतिथिनिचयान् तोषमनयत्।
 तथा विद्यादानैः सुखमितिशयं यः समभजत् स गौराङ्गः शश्वत् स्मरणपदवीं गच्छतु मम ॥९९॥

सन्यासस्य प्रथमसमये तीर्थयात्राच्छलेन वर्षन् यो वै रसपरिमितान् व्याप्य भक्तिं ततान।
 शेषानब्दान् वसुविधुमितान् क्षेत्रेदेशे स्थितो यो वन्दे तस्य प्रकटचरितं योगमायाबलाद्यम् ॥१००॥

हा हा कष्टं सकलजगतां भक्तिभाजां विशेषं गोपीनाथालयपरिसरे कीर्तने यः प्रदोषे।
 अप्राकट्यं बत समभजन्मोहयन् भक्तनेत्रं वन्दे तस्याप्रकटचरितं नित्यमप्राकृतं तत् ॥१०१॥

भक्त्या ये वै सकलसमये गौरगाथामिमां नो गायन्त्युच्चैर्विंगलितहृदः गौरतीर्थं विशेषात्।
 तेषां तूर्णं द्विजकुलमणिः कृष्णचैतन्यचन्द्रः प्रेमावेशं युगलभजने यच्छति प्राणबन्धुः ॥१०२॥

षट् खवेदप्रमे शाके कार्तिके गोद्वमे प्रभोः।
 गीता भक्तिविनोदेन लीलेयं लोकपावनी ॥१०३॥
 यत्प्रेममाधुर्यविलासरागान्नदात्मजो गौडविहारमाप।
 तस्यै विचित्रा वृषभानुपुर्व्ये लीला मया तस्य समर्पितेयम् ॥१०४॥

इति श्री श्रील ठक्कुर भक्तिविनोद विरचितं श्रीश्रीगौराङ्गस्मरणमङ्गलस्तोत्रम् समाप्तम्

पद्मानुवाद

(परलोकगत पण्डित मधुसूदनदास गोस्वामीकृत)

‘गुञ्जा माला’ ‘गिरि शिला’ कर करुणा विस्तार।
 दई दास रघुनाथ कौं प्रभु भव कूप उबार ॥१४॥
 भक्तिविरोधी वाद प्रभु तजे विरस स्म भास।
 कियौ विमुख जन सङ्गं तज भक्त मण्डली वास ॥१५॥
 देख लोक बहिरङ्गं प्रभु करत दान हरिनाम।
 दियौ अन्तरङ्गन सुखद प्रेम सकल रसधाम ॥१६॥
 सकल नाम अपराध तज जब सुमिरै हरिनाम।
 तवै नाम फल लहत है नातर होत न काम ॥
 गौर नाममें होत नहीं कछू नाम अपराध।
 मिलत भक्तिरस सुलभही किय कलि जन सुख साध।
 सुमरन कीजै गौरहरि अन्य साधना छोड।
 मधुसूदन विनती यही करत सदा करजोड़ ॥१७॥

रहे बरस चौबीस प्रभु गृह आश्रमके माँहि।
 सन्यासाश्रम तिते दिन कृष्ण प्रेम अकुलाँहि॥९८॥
 दिये दरिद्रन वसन धन अन्नबुध्कुन दीन।
 विद्यार्थिन विद्या दई भक्ति दास निज चीन॥९९॥
 सन्यासाश्रम गृहण कर छै वत्सर निरधार।
 तीरथ यात्रा छल कियौ प्रेम भक्ति विस्तार॥
 बरस अठाह रहें प्रभु श्रीनीलाचल धाम।
 प्रकट वर्ष वसुवेद (४८) प्रभु दान कियौ हरिनाम॥१००॥
 मन्दर गोपीनाथके संकीर्तन आनन्द।
 तिरोधान सन्ध्या समय कियौ परम स्वच्छन्द॥
 भक्त जननके नयन सब भये नष्ट से हाय।
 गौर विरह व्याकुल जगत गति कछु कही न जाय॥
 लीला अप्राकृत दौँड प्रकट अप्रकट जान।
 नित्य विराजत गौरहरि वेद शास्त्र परमान॥१०१॥
 गौर भक्त गावैं सदा ‘श्रीगौराङ्ग विलास’।
 गायौ भक्तिविनोदने गौर चरित यह आस॥
 गौर चरित जे गावहीं कलि तरिवे के हेत।
 तिनै गौर प्रभु ‘प्रेम पर’ “जुगल भजन रुचि देत”॥१०२॥
 कार्तिक रसनभ वेद मित गौर अब्द परमान।
 श्रीयुत भक्तिविनोदने गोद्गुम मधि किय गान॥१०३॥
 यासु भाव माधुर्य बस श्याम गौर तन लीन।
 लीला तिन ‘वृषभानु जा’ चरन समर्पन कीन॥
 गुण शर नव धरणी प्रमित पूष धवल तिथि चन्द।
 मधुसूदन अनुवाद कर विरचौ दोहा छन्द॥१०४॥

५

वेदानुग्रहव और वेद-विरुद्ध अपसम्प्रदाय

—३० विष्णुपाद श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

(वर्ष ४६, संख्या ११, पृष्ठ २४७ से आगे)

प्र. ४१—बिल्ली-भगत कौन हैं?

चिह्नोंको धारण करते हैं। अपना मतलब

उ.—बिल्ली-भगत वास्तवमें भक्तिकी नित्यता गाँठना ही उनका उद्देश्य होता है।”

स्वीकार नहीं करते, किन्तु बाहरमें वे सभी

(चै. शि. ३/३)

प्र. ४२—मंत्राचार्य कौन हैं?

उ.—भण्ड-तपस्वी और बिल्ली-भगत ही मंत्राचार्यकी कपट-पदवी कर छिपे-छिपे नाना प्रकारके पाप-कार्य करते हैं।

वैरागी वैष्णवोंका चरित्र विशेषतः निर्मल होना चाहिए।

(स. तो. ५/१०)

प्र. ४३—धर्मध्वजी कौन हैं और कितने प्रकारके हैं?

उ.—जो व्यक्ति धर्मके सभी बाह्य चिह्नोंको तो धारण करते हैं, परन्तु धर्मका पालन नहीं करते, वे धर्मध्वजी हैं। धर्मध्वजी दो प्रकारके हैं अर्थात् कपट और मूढ़, अर्थात् वज्चक और वज्ज्यत।

(‘जनसङ्ग’ स. तो. १०/११)

प्र. ४४—परिपक्व योगीका अनुकरण करनेवाले कपट व्यक्तियोंका स्वभाव कैसा होता है?

उ.—केवल वेशधारी कपट व्यक्ति सच्चे योगीका वेश धारणकर जगतको ठगते-फिरते हैं। सच्चे योगीका अनुकरण करते हुए जीवन धारणपूर्वक वे अपनी-अपनी महिमाकी वृद्धि और इन्द्रियसुखको चरितार्थ करनेकी चेष्टा करते हैं। हरि-कीर्तन ही शुद्ध धर्म या कृष्ण-धर्म है। अतएव कपट रूपसे कीर्तन धर्मका आश्रय लेकर सच्चे योगीकी तरह कर्म धर्मादिके प्रति स्वेच्छाचारी होकर सुख-विलास विहारादि प्रकाशकर व्यक्तियोंमें भ्रम उत्पन्न करते हैं। उसका फल यह होता है कि ये जिन सुख-विलास-विनोदादिके द्वारा लोगोंमें भ्रम उत्पन्न करते हैं, उन्हीं विलासोंसे उन वेशधारियोंका अधःपतन होता है। कीर्तनादिमें

कपट रोदन और मूच्छादि ही वे सब विलास हैं। उनके द्वारा वे विषयी लोगोंके समान विषयी हो पड़ते हैं। वैष्णव-वेश और भिक्षुकाश्रमादिके बाह्य वेशादिको ग्रहण करनेसे उनका वैष्णवाभिजात्य उत्पन्न हो जाता है, इस कारणसे वे शुद्ध वैष्णवोंके निकट कदापि पहुँच नहीं पाते। कुछ ग्रामवासी नितान्त प्राकृत व्यक्तिका आश्रय ग्रहण करते हैं और प्राकृत व्यक्तियोंका सङ्ग करते हैं। समय-समय पर कृष्णगुण-महिमा-शून्य होकर भी कपट अनुरागके लक्षणोंको नर्तकोंकी तरह पुलक प्रेमादि बाह्य रसके द्वारा प्रकाश करते हैं। क्रमशः वे सभी दिखावटी लक्षण उनके विलास-स्वरूप बन जाते हैं।

(भजनामृतम्)

प्र. ४५—संसारमें सबसे बड़ा कुसङ्ग क्या है?

उ.—विषयी बल्कि अच्छे हैं, परन्तु धर्मध्वजीके समान संसारमें और कोई कुसङ्ग नहीं है। कपट धर्मध्वजी जगतकी वज्चना करनेके अभिप्रायसे धर्मके बाहरी चिह्नोंको धारण करते हैं और अपने दुष्ट-अभिप्रायकी सिद्धिके लिए मूढ़ व्यक्तियोंको ठगते हुए उस कार्यमें उनकी भी प्रवृत्ति उत्पन्न करते हैं। इनमेंसे कोई ‘गुरु’ होते हैं और दूसरोंको शिष्यकर संसारमें शठताके द्वारा प्रतिष्ठा, द्रव्य और कनक-कामिनीका संग्रह करते हैं। इन सभी कपट कुटिल व्यक्तियोंका सङ्ग परित्याग करनेपर साधक लोग सरलतासे भजन कर सकते हैं।

(‘जनसङ्ग’, स. तो. १०/११)

प्र. ४६—अनर्थयुक्त जीवोंकी वर्णाश्रम-विरुद्ध

चेष्टाएँ क्या हितकर हैं?

उ.—अवैष्णव सन्यासियोंका वर्णाश्रम—लोपरूप धर्मप्रवर्तन और नेड़ा, बाउल, दरवेश, कर्त्ताभजा, कुम्भपटिया, अतिबाड़ी, स्वेच्छाचारी—अवैष्णव और ब्रह्मवादियोंकी वर्णाश्रम विरुद्ध सभी चेष्टाएँ अत्यन्त अहितकर हैं।

(चै. शि. २/५)

प्र. ४७—उपधर्माश्रित व्यक्तियोंके द्वारा अपनेको 'ब्रह्मचारी', 'सन्यासी', 'परमहंस' आदिके रूपमें परिचय प्रदान करनेसे क्या हानि होती है?

उ.—आजकल नानाप्रकारके उपधर्मोंमें प्रवृत्त होकर बहुतसे अपनेको 'ब्रह्मचारी', 'सन्यासी', 'परमहंस' बतलाकर प्रकृत आर्य—धर्मको विनष्ट करनेमें प्रवृत्त हो रहे हैं।

(‘ब्रह्मचर्य आश्रम’, स. तो. १०/७)

प्र. ४८—जिस किसी मतको 'महाप्रभुका मत' मान लेनेसे क्या महाप्रभुजीकी शिक्षाको प्राप्त नहीं किया जा सकता है?

उ.—अधिकांश क्षेत्रोंमें विधर्म, छलधर्म आदि कुमतोंको ही दुष्ट व्यक्ति श्रीचैतन्य महाप्रभुकी शिक्षा कहकर प्रचार करते हैं और विचार शक्ति रहित विषयाविष्ट अधिकांश व्यक्ति उन्हीं कुमतोंको ही महाप्रभुजीका वास्तविक मत मानकर वास्तविक उपदेशसे वञ्चित होते हैं।

(‘विबोधन’ चै. शि.)

प्र. ४९—बाउल आदिका मत क्या वैष्णव मत है?

उ.—बाउल, साँई, नेड़ा, दरवेश, कर्त्ताभजा, अतिबाड़ी आदि सभी मत—अवैष्णव मत हैं। उनके उपदेश और कार्य अत्यन्त दूषित हैं।

बहुतसे व्यक्ति उनके मतकी आलोचनाकर वैष्णव—धर्मके प्रति अश्रद्धा प्रकट करते हैं। किन्तु वास्तविक वैष्णव—धर्म इन सभी धर्मध्वजियोंके दोषोंके लिए दायी नहीं है।

(प्रे. प्र. ६ प्र.)

प्र. ५०—क्या बाउल मत सनातन गोस्वामीपाद अथवा श्रीवीरचन्द्र गोस्वामी द्वारा प्रवर्त्तित हुआ है?

उ.—बाउल धर्म जिस प्रकार आजकल देखनेमें आता है, वह सर्वशास्त्र विरुद्ध है। शास्त्रमें वैधी और रागानुगा—दो प्रकारकी भक्तिका उल्लेख है। बाउल लोग वैधी भक्तिका तो लेशमात्र भी आचरण नहीं करते और रागानुगा भक्तिके छलसे नानाप्रकारके असदाचरण करते हैं। ★ ★ इस प्रथाके कौन प्रवर्त्तक हैं, यह कहा नहीं जा सकता। बाउल लोग कभी श्रीसनातन गोस्वामीको और कभी श्रीवीरचन्द्र गोस्वामी प्रभुको बाउल मतका प्रवर्त्तक कहते हैं। परन्तु वास्तवमें उन्होंने कभी भी ऐसे कुमतकी शिक्षा नहीं दी।

(‘बाउल—मतका विचार’)

प्र. ५१—क्या अभद्रवेश श्रीचैतन्य महाप्रभुजीके द्वारा अनुमोदित है?

उ.—महाप्रभुजीके प्रसादाकांक्षी श्रीसनातन गोस्वामीने जब महाप्रभुजीका दर्शन किया, तब उनकी दाढ़ी—मूँछें थी। वही दाढ़ी—मूँछें ही बाउल लोगोंके दाढ़ी—मूँछ रखनेका एकमात्र प्रमाण है। किन्तु महाप्रभुजीने श्रीसनातनजीका प्रेमालिङ्गन कर तुरन्त ही क्षौर—कार्य करानेकी आज्ञा दी थी। अतएव बाउल लोगोंके अच्छेद्य प्रमाणका तत्काल ही खण्डन हुआ है। (‘श्रीश्रीसनातन गोस्वामी प्रभु’, स. तो. २/७)

प्र. ५२—क्या बाउल लोग श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अनुगत हैं?

उ.—बाउल लोग कदापि श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अनुगत कहे नहीं जा सकते।

(‘श्रीश्रीसनातन गोस्वामी प्रभु’, स. तो. २/७)

प्र. ५३—साँई, दरवेशादि क्या श्रीचैतन्यनुग सम्प्रदाय हैं? यदि ऐसा नहीं है, तो वे कौन हैं?

उ.—श्रीसनातनजीको कहीं फकीर उल्लेख किया गया है। इसीकी आड़में साँई, दरवेश, चरणपाली, दुलालचाँदी आदि व्यक्ति मुसलमानोंका-सा फकीर-वेश धारणपूर्वक उसी प्रकारका आचार-व्यवहार करते हैं और अपनेको चैतन्य सम्प्रदायी (?) वैष्णव कहते हैं। यदि कोई उनसे पूछे कि ‘आपलोग मुसलमान फकीरोंका वेश धारण करते हैं और अपनेको चैतन्य सम्प्रदायी (?) वैष्णव कहते हैं, इसका क्या प्रमाण है? इसके उत्तरमें उन लोगोंका कहना है कि ‘गोस्वामी सनातनजी फकीर थे, यही प्रमाण है।’ किन्तु जब महाप्रभुजीने सनातनजीकी दाढ़ी-मैंछे और सिरके बालको कटवाकर वैष्णव वेश धारण करवाया, तब वहीं पर साँई, दरवेश, चरणपाली, दुलालचाँदी आदिका प्रमाण समाप्त हो गया है। इसलिए साँई, दरवेश आदिका चैतन्य-सम्प्रदायी (?) वैष्णव होना तो दूर रहे, उनको एक प्रकारसे मुसलमान-सम्प्रदायी कहना ही उचित है।

(‘श्रीश्रीसनातन गोस्वामी प्रभु’, स. तो. २/७)

प्र. ५४—‘वैष्णव-वंश’, ‘वैष्णव-जाति’ या ‘वैष्णवाचार्य-वंश’ आदि प्रयोग क्या ठीक हैं? और क्या ऐसा कहना वैष्णव धर्मके लिए गौरवजनक हैं?

उ.—‘वैष्णव-वंश’ यह शब्द सर्वथा अयोक्तिक है। वंश-परम्परामें कौन वैष्णव होगा, यह स्थिर नहीं है। हमने देखा है कि बहुतसे वैष्णव-वंशमें कई कुलाङ्गारोंने जन्म ग्रहण कर असुरों जैसा व्यवहार किया है और चांडाल तथा यवनकुलमें जन्म ग्रहणकर अनेक महापुरुष शुद्ध भक्तिके बलसे वैष्णव हुए हैं। वैष्णव-आचार्योंके कुलमें भी बहुतसे अवैष्णवोंको उत्पन्न होते देखा जाता है, अत्यन्त अधार्मिक वंशमें कई वैष्णव उत्पन्न हुए हैं। इसलिए वैष्णव-जाति या वैष्णवाचार्य-वंशके नाते जो सम्मान देखा जाता है, उससे वैष्णवधर्मका गौरव नहीं होता, परन्तु अवैष्णवता ही बढ़ती जाती है।

(‘वैष्णवमें जाति बुद्धि’, स. तो. ९/९)

प्र. ५५—सहजिया-धर्म क्या ‘वैष्णव-धर्म’ है?

उ.—बङ्ग देशमें अनेक स्थानोंमें ‘सहजिया’ नामक एक घृणित मत गुप्त रूपसे चल रहा है। इस मतके सभी कार्य अत्यन्त हेय हैं। शास्त्रमें जिसे ‘सहज-धर्म’ कहा गया है, उसका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। चिन्मय जीवकी चिन्मय कृष्णसेवा ही सहज धर्म है। यद्यपि यह धर्म आत्माके लिए सहज है, अर्थात् आत्माके साथ ही उत्पन्न हुआ है, फिर भी जड़बद्धावस्थामें उतना सहज नहीं है। उस विशुद्ध कृष्णरतिको वज्ज्यत और वञ्चक लोगोंने जड़के सहज धर्म अर्थात् स्त्री-पुरुषके संयोगमें परिणत कर दिया है। किन्तु वास्तवमें वैसा नहीं है। आत्माके सहज-धर्ममें जड़ीय स्त्री-पुरुष शरीरका संयोग नितान्त हेय और अनुपयुक्त है। वर्तमान समयमें जिस धर्मको

'सहजिया' धर्म कहा जाता है, वह सर्वशास्त्र विरुद्ध है।

(‘सहजिया मतका हेयत्व’, स. तो. ४/६)

प्र. ५६—मुष्टि-भिक्षाका प्रवर्तन किस उद्देश्यसे हुआ? वर्तमान समयमें उसकी क्या अवस्था है?

उ.—पहले-पहले शुद्ध वैष्णवोंके उपकारके लिए मुष्टि-भिक्षाकी सृष्टि हुई। अब वह एक व्यवसाय बन गया है। ★★★ धर्मध्वजी वैष्णवोंने सांसारिक कार्योंके द्वारा अन्न संग्रह

न करनेके उद्देश्यसे मुष्टि-भिक्षाका अवलम्बन किया है।

(‘मुष्टि भिक्षा’, स. तो. ६/३)

प्र. ५७—मुष्टि-भिक्षाकी प्रथामें व्यभिचार क्यों हुआ?

उ.—वैष्णवोंको मुष्टि-भिक्षा न लेते देखकर अयोग्य स्त्री-पुरुषोंके दल मुष्टिभिक्षाकी प्रथाका अनुचित लाभ उठाते हैं।

(‘मुष्टि भिक्षा’, स. तो. ६/३)

(क्रमशः)

श्रील प्रभुपादजीका उपदेशामृत

(वर्ष ४६, संख्या ११, पृष्ठ २४९ से आगे)

प्र. ७४—भगवान क्या भक्तोंके अधीन हैं?

उ.—अवश्य ही। गोविन्द भक्तोंके अधीन हैं। यद्यपि भगवानके भक्त भगवानकी शक्ति हैं, भगवानके अधीन हैं। तथापि सेवाके विचारसे उनकी शक्ति भगवानकी शक्तिकी अपेक्षा अधिक है। क्योंकि यदि ऐसा न हो तो वे भगवानकी सेवा करनेमें समर्थ न हो पाते। भगवान स्वतन्त्र होनेपर भी भक्तोंकी सेवाके सामने अस्वतन्त्र-से हो जाते हैं। वे स्वयं ही कहते हैं—“अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज”। अर्थात् भगवान श्रीदुर्वासा ऋषिसे कह रहे हैं—हे द्विज! मैं अपने भक्तोंके अधीन हूँ।

वास्तवमें सेव्य (जिसकी सेवा की जाती है) के हृदयको जाने बिना सेवा सम्भव नहीं है। उत्तम सेवक कभी अपने प्रभुके आदेशकी प्रतीक्षा करते हैं, तो कभी उनके हृदयके

भावोंको जानकर उसीके अनुसार सेवा करते हैं। भगवान जिस प्रकार भक्तके अन्तरबिहारी (अन्तर्यामी) हैं अर्थात् भक्तके हृदयमें विहार करते हैं, उसी प्रकार भक्त भी भगवानके अन्तर-विहारी हैं, अर्थात् भक्त अन्तर्यामीके भी अन्तर्यामी हैं। तात्पर्य यह है कि भगवान भक्तके हृदयको जानते हैं तथा भक्त भगवानके हृदयको।

प्र. ७५—हमें किसका सङ्ग करना चाहिए?

उ.—जो हमें भगवानकी आराधनाके लिए प्रेरित करते हैं, वे ही श्रीगुरु हैं। केवल भक्त (वैष्णव) ही साधु हैं, इनके अतिरिक्त कर्मी, ज्ञानी, योगी कोई भी साधु नहीं हैं। क्योंकि कर्मी, ज्ञानी तथा योगियोंकी विचारधारा भगवानसे विमुख होनेके कारण ही उत्पन्न होती है। यह विचारधारा नित्य नहीं है। अतः कर्मयोगियोंका सङ्ग, ब्रह्मज्ञानी मायावादियोंका सङ्ग तथा कुयोगियोंका सङ्ग कदापि नहीं करना चाहिए।

एकमात्र भक्तियोगियोंका ही सङ्ग करना चाहिए। तभी हमारा मङ्गल हो सकता है।

प्र. ७६—क्या श्रीगुरुदेव मनुष्य हैं?

उ.—कदापि नहीं। श्रीगुरुदेव क्षणभङ्गर रक्त एवं मांसका एक पिण्डमात्र नहीं हैं। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—श्रीगुरुदेव भगवान ही हैं। अर्थात् भगवानके अवतार हैं।

श्रीगुरुदेव कृपापूर्वक स्वयं ही उस जगत्से इस जगत्में आते हैं। प्रकट एवं अप्रकट दोनों ही लीलाओंमें वे नित्य हैं। वे सर्वदा ही हमारे नियामक (Controller) के रूपमें विराजमान रहकर हमें भगवानकी सेवाके लिए प्रेरित करते हैं।

सच्चिदानन्द श्रीगुरुदेव अतिमर्त्य महापुरुष हैं। उन्हें एक मनुष्य माननेपर निश्चितरूपसे नामापराध होता है, जिसके फलस्वरूप नरक गति प्राप्त होती है। वे आत्मवित्-कृष्णतत्त्ववित् हैं, अर्थात् वे आत्मतत्त्व एवं कृष्णतत्त्वको जानते हैं। वे श्रीचैतन्यमहाप्रभुके अत्यन्त प्रियजन हैं। हमारे जैसे पतितोंका उद्धार करनेके लिए ही वे अवतीर्ण होते हैं। वे कर्मी, ज्ञानी या योगी नहीं हैं, वे लीलामय भगवानकी लीलाओंके पार्षद या सङ्गी हैं। वे सर्वश्रेष्ठ भक्त हैं।

देवता जिस प्रकार नित्य हैं, उसी प्रकार वे भी नित्य हैं। देवता शब्दका अर्थ यहाँपर इन्द्र आदि नहीं है, बल्कि अप्राकृत कामदेव कृष्ण है। श्रीगुरुदेव उन्हीं कृष्णस्वरूप अर्थात् कृष्णसे अभिन्न, कृष्णके प्रकाश-विग्रह हैं।

श्रीगुरुदेव कृष्णसे अभेद विचारसे उपास्यकी पराकाष्ठा हैं। वे भगवानके अतिप्रिय हैं। श्रीगुरुदेव आश्रयजातीय तत्त्व तथा श्रीकृष्ण

विषयतत्त्व हैं। श्रीगुरुदेव सेवक-भगवान तथा श्रीकृष्ण सेव्य-भगवान या स्वयं भगवान हैं। श्रीगुरुदेव मुकुन्दप्रेष्ठ (प्रिय) हैं। रागमार्गसे भजन करनेवाले शिष्यके स्वरूपसिद्ध हो जाने पर उसे श्रीगुरुदेव श्रीकृष्णकी शक्ति या उनसे अभिन्न श्रीवार्षभानवी श्रीमती राधिकाके प्रकाशके रूपमें दिखाई पड़ते हैं।

कृष्णप्रेष्ठ श्रीगुरुदेव स्वरूपशक्ति हैं, किन्तु श्रीकृष्ण शक्तिमान हैं। श्रीकृष्ण पुरुष या भोक्ता हैं तथा हमारे श्रीगुरुदेव श्रीकृष्णकी शक्ति या उनकी कान्ता हैं।

प्र. ७७—क्या गुरुसेवा नित्यप्रति करनी चाहिए?

उ.—सर्वप्रथम श्रीगुरुदेवकी सेवा नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें, मासके प्रारम्भमें, दिवसके प्रारम्भमें, प्रत्येक मुहूर्तके प्रारम्भमें श्रीगुरुदेवकी सेवा करनी चाहिए। हम यदि सदा-सर्वदा श्रीगुरुदेवकी सेवा नहीं करेंगे, तो अवश्य ही हमें और भी अधिक कष्टोंका सामना करना पड़ेगा। जिस क्षण हम गुरुसेवाको भूल जाएँगे, उसी क्षण हम अपने स्वरूपको अर्थात् मैं भगवानका दास हूँ, इस सत्यको भी भूल जाएँगे।

जागतिक शिक्षकों या जागतिक गुरुओंके द्वारा दी गई विद्या क्षुद्र-क्षुद्र फल जैसे—मान-सम्मान, धन-सम्पत्ति इत्यादि दे सकती है। परन्तु पारमार्थिक गुरु ऐसे तुच्छ फल प्रदान नहीं करते। वे तो वास्तवमें ही मङ्गलप्रद वस्तु भगवानकी भक्ति प्रदान करते हैं। जिसे पानेपर जागतिक और किसी वस्तुकी कामना ही नहीं रह जाती। जैसे ही हम आश्रयजातीय भगवान श्रीगुरुदेवकी कृपासे रहित

होंगे, उसी क्षण हमारे हृदयमें नानाप्रकारकी सांसारिक कामनाएँ अपना अधिकार जमा लेती हैं। यदि वर्त्मप्रदर्शक (पथ प्रदर्शक) गुरु हमें उपदेश प्रदान न करें कि किस प्रकार श्रीगुरुदेवके श्रीचरणोंमें आश्रय लेना चाहिए, उनसे कैसा व्यवहार करना चाहिए तो अवश्य ही हम हाथमें आया हुआ रत्न भी खो देंगे, अर्थात् भगवद्भक्ति प्राप्त नहीं कर पाएँगे। नामभजन ही एकमात्र भजन है, श्रीगुरुदेव इसी भजन-प्रणालीकी शिक्षा प्रदान करते हैं। अतः श्रीगुरुदेव यदि हमपर प्रसन्न न हों, तो हम भजन बल कहाँसे प्राप्त करेंगे? इसलिए यदि कोई भगवानको प्राप्त करना चाहता है, वास्तविक शान्ति चाहता है, संसारसे छुटकारा चाहता है, तो उसे गुरुसेवाको ही जीवनका एकमात्र उद्देश्य बनाना चाहिए। उसे सदा-सर्वदा गुरुसेवा करनी चाहिए तथा उनकी प्रसन्नताके लिए अपने प्राणोंको भी न्यौच्छावर करनेके लिए तत्पर रहना चाहिए। ऐसा करनेपर और किसी प्रकारकी असुविधा नहीं रहेगी तथा समस्त प्रकारके मङ्गल उसके हाथमें आ जाएँगे।

विषयजातीय कृष्ण (भगवान) आधे तथा आश्रयजातीय कृष्ण (गुरुदेव) आधे हैं। इन दोनोंकी विलास विचित्रिता ही पूर्णता है। आश्रयजातीय कृष्ण (गुरु) के आनुगत्यमें विषयजातीय कृष्ण (भगवान) की सेवा करने पर ही पूर्ण सत्य वस्तु भगवानको मानना होता है। सम्पूर्ण जीवन भगवानकी सेवा करनी चाहिए। जो स्वयं सारा जीवन भगवानकी सेवाकर हमें सम्पूर्ण जीवन भगवानकी सेवा

करनेकी शिक्षा प्रदान करते हैं, वे ही श्रीगुरुदेव हैं। अतः प्रतिक्षण ऐसे श्रीगुरुदेवकी सेवाके अतिरिक्त हमारा दूसरा कर्तव्य नहीं है।

प्र. ७८—क्या वर्णाश्रमधर्म आत्माका धर्म या नित्यधर्म है?

उ.—ऋषियोंने हमें वर्णाश्रमधर्मके प्रति निष्ठायुक्त होनेका उपदेश दिया है। वर्णाश्रमधर्म पालनकी उपयोगिता है। किन्तु श्रीमन्महाप्रभुने कहा है—वर्णाश्रमधर्म पालनकी आवश्यकता कब तक है? वर्णाश्रमधर्म नित्यधर्म नहीं है। वह आत्माकी स्वरूप वृत्ति नहीं है अर्थात् आत्माका नित्यधर्म नहीं है। यह वर्णाश्रमधर्म अहैतुकी, अप्रतिहता (जो किसीके द्वारा नष्ट नहीं हो सकती) निर्मला कृष्णसेवा नहीं है। वास्तवमें वर्णाश्रमधर्ममें अवस्थित होकर कृष्णसेवा नहीं होती, बल्कि कृष्णसेवाकी चेष्टामात्र होती है। इसलिए श्रीचैतन्यदेवने कहा है—तुम कौन हो? पहले यह निर्णय करो कि तुम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र हो या सन्यासी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या ब्रह्मचारी हो। वास्तवमें हम इनमेंसे कोई भी नहीं हैं। ये सब हमारे परिचय नहीं हैं। बल्कि मायाबद्ध अवस्थामें सामयिक विचार हैं। अर्थात् जब तक हम मायाबद्ध हैं तथा हमारी शरीरके प्रति आत्मबुद्धि है, तभी तक हमारे ये सब परिचय हैं। ये सब हमारे स्वरूपके नित्य परिचय नहीं हैं। जीवके स्वरूपका नित्य परिचय है—जीव कृष्णका नित्यदास है। आत्मा परमात्माका सेवक है। परमात्माकी सेवा ही उसका नित्यधर्म है।

(क्रमशः)

महान्त गुरुतत्त्व

—जगद्गुरु श्रीश्रीलभक्तिसिद्धान्त
सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद

श्रीचैतन्यदेवकी अप्राकृत शिक्षामें जो पारङ्गत हो चुके हैं, उन तत्त्वविद् महानुभावोंकी शिक्षामें हम “चैत्यगुरु” और “महान्तगुरु”—ये दो शब्द देख पाते हैं। प्रत्येक जीवके हृदयमें भगवान ही चैत्यगुरुके रूपमें विराजमान होकर जीवके सत्-असत् प्रवृत्तियोंका नियमन करते हैं। चैत्यगुरु, महान्त गुरुका निर्देश करते हैं और महान्त-गुरु सेवक-सम्प्रदायके वर्त्मप्रदर्शक गुरुका कार्य करते हैं।

शास्त्रकीर्तनकारी, शास्त्रव्याख्याकारी, शास्त्रीय-शासनानुमोदित अनुष्ठानकारी व्यक्ति अनर्थयुक्त, अश्रुत, अनभिज्ञ और अस्थिर चित्तवाले वालिश व्यक्तियोंके चञ्चल चित्तको नियमित करके सुचारू गति प्रदान करते हैं। ऐसे शिक्षागुरु, दिव्यज्ञानदाता सद्गुरुकी प्राप्तिसे पूर्व श्रद्धालु जीवकी सहायता करते हैं, इसलिए उनको ‘वर्त्मप्रदर्शक गुरु’ कहा गया है।

शास्त्र-श्रवणमें, साधुके मुखसे भगवत् कथा कीर्तनमें अनुगमन आदिके प्रति रुचि उत्पन्न होनेपर जीव अपनेको दिव्यज्ञानके संग्रहके कार्यमें नियुक्त करता है। यहाँ भी चैत्यगुरु जीवके हृदयमें श्रौत-पथकी उपकारिताका विचार प्रकाशित करते हैं। चैत्यगुरुकी कृपाके बिना वर्त्मप्रदर्शकगुरु, महान्त-दीक्षागुरु और महान्त शिक्षागुरु—इनके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त करनेकी किसी प्रकार भी योग्यता नहीं होती। जबतक कृष्ण-प्रसादज सुकृतिका उदय नहीं होता, तबतक जीव चैत्यगुरुकी निष्कपट

कृपा प्राप्त नहीं कर सकते। जीवके हृदयमें जबतक धर्म-अर्थ-काम-मोक्षरूप चार प्रकारके कैतव प्रबल रहते हैं, तबतक चैत्यगुरु जीवको कुयोगी-वैभवानन्द विवेकानन्दकी ओर अग्रसर कराते हैं। परन्तु भक्ति विवेककी महिमा लाभ करनेकी योग्यता होनेपर चैत्यगुरु कृपापूर्वक निष्कपट वैष्णवमहान्त-दीक्षागुरु और महान्त शिक्षागुरुके प्रति विश्वास प्राप्त करनेके लिए प्रसाद (कृपा) प्रदान करते हैं।

महान्त गुरु आदि-शिक्षागुरुके रूपमें जीवके मायिक अहङ्कारको दूर करनेका यत्न करते हैं। उनके यत्नके फलस्वरूप जीव महान्त-दीक्षागुरुको प्राप्त करता है। श्रीगुरुदेव वैकुण्ठ लीलामय होनेपर भी इस जगतमें अवतारण करते हैं। वैसे अतवरणकी अवलम्बन रज्जु है—भगवद्भक्ति। संसार-सागरमें डूबे हुए प्राणियोंका उद्धार करते समय वे स्वयं भगवानकी सेवाको छोड़कर आत्मबलिदान करनेके लिए प्रस्तुत नहीं होते। परन्तु वे इस जगतमें अवतीर्ण होकर ऐसी लीला करते हैं, मानो वे भी हम जैसे बद्धजीवोंकी भाँति मायाद्वारा अभिभूत जीव ही हैं। इसलिए हम उनको भगवत्-कृपावतार न मानकर अपने चिरसञ्चित अपराधोंके कारण अपने जैसा मरणशील मानव मानकर उनके प्रति ईर्ष्या-द्वेष करते हैं तथा गुरुपादपद्मकी सेवासे विमुख हो पड़ते हैं।

श्रौत-पथमें ही गुरु-ग्रहणकी प्रथा वर्तमान

है। अश्रौत या तर्क-पथमें गुरुग्रहण-अनुष्ठानका आदर नहीं देखा जाता। जो लोग श्रौतपथका आदर नहीं करते, वे चैत्यगुरुद्वारा विमूढ़ होकर तर्कपथका अवलम्बन करते हैं। अश्रौत-पथावलम्बी अहङ्कारके वशवर्ती होकर स्वयं गुरु होनेकी चेष्टा करनेमें भी नहीं हिचकते।

तार्किक व्यक्ति कदापि गुरु नहीं हो सकते। श्रौतपथी ही गुरु हो सकते हैं। चैत्यगुरुकी कृपासे महान्त-गुरु निर्दिष्ट होते हैं। चैत्यगुरुकी कृपा दो प्रकारकी होती है। उन दो प्रकारकी कृपाके फलस्वरूप कोई-कोई आध्यक्षिक हो पड़ते हैं और कोई-कोई अधोक्षज सेवक। जिन लोगोंने जड़-विषय-भोगको ही जीवनका एकमात्र चरम सिद्धान्त बना लिया है, उनको ‘अन्याभिलाषी’ कहा जाता है। सौभाग्यवश उनमें प्रयोजक कर्त्ताके नियमन प्रभावसे सत्कर्मके प्रति झुकाव और आदर भाव देखा जाता है। अतएव उनमें कर्मकाण्डके प्रति रुचि होती है। वे अपनेको ‘कर्त्ता’ मानकर प्रकृतिके त्रिविधि गुणोंके अन्तर्गत अनुष्ठित क्रियाओंका भोक्ता बनकर अहङ्कार विमूढ़ताको ही श्रेय-पथ मानते हैं। परन्तु वास्तवमें प्रेयःपथको ही वे भूलसे श्रेयःपथ मान लेते हैं। यही चैत्यगुरुकी मायाविस्ताररूपी कपट कृपा है। जिन्होंने मुण्डक श्रुतिका पाठ किया है, वे यह जानते हैं कि प्रयोजक कर्त्ता अर्थात् भगवानकी सेवा द्वारा श्रेयःकी प्राप्ति होती है और प्रयोजक कर्त्ताके प्रति सेवा-विमुख होकर प्रयोज्यकर्त्ता जीव जब स्वयं अपनेको ही विषयोंका भोक्ता मानने लगता है, उस समय वह भक्तिरूपी श्रेयःपथसे च्युत हो पड़ता है।

दिव्यज्ञान प्रदाता महान्त दीक्षागुरु एक ही होते हैं, क्योंकि वे अद्वय ज्ञानके प्रियतम सेवक हैं। अद्वयज्ञानका सेवक होनेके नाते उनके ज्ञातव्य वस्तु एक ही हैं; इसलिए वे भी असमोद्भव तत्त्व हैं। वे विषय जातीय असमोद्भव न होनेपर भी आश्रयजातीय असमोद्भवकी लीला दिखलानेवाले हैं।

शिक्षागुरु दीक्षागुरुके वास्तविक ज्ञानलब्ध और शारणागत शिष्यको शिक्षा दिया करते हैं। उनकी वह शिक्षा दीक्षागुरुके विचारोंके अनुकूल और दीक्षागुरु द्वारा प्रदत्त दिव्यज्ञानकी पुष्टि करनेवाली होती है। इसलिए शिक्षागुरुका बहुत्व रहनेपर भी अद्वयज्ञानदाता दीक्षागुरुसे उनका मतभेद नहीं होता। परन्तु वे दीक्षादाताके अकृत्रिम बन्धु होते हैं।

दिव्यज्ञान प्राप्त होनेपर जीवके स्वरूपका उद्बोधन होता है। उन्मेषित स्वरूपमें स्थित होकर इहजगत और परजगतमें जिस प्रकार हरि-सेवा करनी होती है, इस विषयमें जो उपदेशदाता होते हैं, उन्हें ही “शिक्षागुरुवर्ग” कहते हैं। इन शिक्षागुरुरूप सेनावाहिनीके अग्रगामी जो (Precursor) वर्त्मप्रदर्शक गुरु हैं, वे शिक्षागुरुके ही प्रागभाव हैं। दोनोंके मध्यस्थलमें दीक्षादाता महान्तगुरु विराजमान रहते हैं।

भगवानकी जीवके प्रति जो दया होती है, उस दयारूपी प्रसादको वितरणकर जगतका कल्याण करते हैं। जो ज्ञानके विकारसे विकृत हैं, कर्मकाण्डके जालमें फँसे हुए हैं, जो यथेच्छाचारके स्रोतमें बह रहे हैं, उनको सद्बुद्धि प्रदान करनेके लिए तथा जीवमात्रको कृष्णसेवामें नियुक्त करनेके लिए ही श्रीगुरुदेवका

जगतमें आगमन होता है। वे कमलके पत्तेके ऊपरके जलबिन्दुकी भाँति अनासक्त भावसे संसारके विषयोंको ग्रहण करके भी विषयोंकी बाह्यभोगधारणाको दूर रखकर जीवोंको कृष्णके साथ सम्बन्धयुक्त करते हैं। इसलिए विषयासक्त जड़भिन्नविष्ट मनुष्य उनको विषयविरक्त मानकर घृणा करते हैं। इन विषयी लोगोंकी अपेक्षा मूळ मत्सर व्यक्ति भगवद्गत्तकोंकी निर्विषयिनी भक्ति-चेष्टाओंको भी विषय-चेष्टा समझकर उनकी सेवासे विमुख हो पड़ते हैं। यहाँ चैत्यगुरु उनके प्रेयःपथका अनुमोदन करके, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष ही प्रयोजन है—उनको ऐसा बोध कराते हैं। उस समय वे भक्तिका स्वरूप समझनेमें असमर्थ होते हैं तथा नित्यवृत्ति भजन और भजनीय वस्तुके प्रति उदासीन रहते हैं। भगवान् जिनके ऊपर प्रसन्न होते हैं, उनके हृदयमें ऐसी प्रेरणा प्रदान करते हैं, जिससे वह भगवद्गत्तको महान्तगुरुके रूपमें वरण करें। भक्तके जैसा विज्ञ, परविद्या पारङ्गत, महत्तम, सज्जनकुल चूडामणि दूसरा कोई नहीं है। भगवानकी कृपासे ही जीव महान्त महाभागवत् श्रीगुरुदेवके चरणनखोंकी शोभा सन्दर्शनकर अपने जीवनको धन्य करनेमें समर्थ होता है।

एक गुरुवादिगण एकमात्र “मेरी-पुत्र” (ईशामसीह) को ही जगद्गुरु मानते हैं, परन्तु उनके आश्रित अकृत्रिम सुहतवर्गको “महान्त गुरु” माननेके लिए प्रस्तुत नहीं होते। उनका कथन यह है कि—“प्रत्येक महान्तगुरुमें अवश्य ही दोष वर्तमान रहता है, इसलिए ईशामसीहके अतिरिक्त और किसी भी दूसरेको गुरु नहीं माना जा सकता है। ईशाके यथार्थ अनुगामी बारह शिष्य अथवा समय-समय पर उदित होनेवाले उनके विशुद्ध अनुगतजन भी जगद्गुरु नहीं हो सकते।” इन लोगोंका ऐसा एक गुरुवादका विचार या एक जन्मवादका विचार पापमें संश्लिष्ट होनेकी आशङ्कासे कल्पितमात्र हुए हैं। पापपङ्कमें निमज्जित व्यक्ति मुक्त पुरुषोंके सम्बन्धमें अनभिज्ञ रहनेके कारण एकगुरु-मतका तात्पर्य समझनेमें असमर्थ होते हैं। “एकगुरु” का तात्पर्य अद्वयज्ञान महान्त गुरुतत्त्वसे है। परन्तु पापी एवं अपराधी व्यक्ति अपराधोंके फलस्वरूप जड़से ही चेतनकी सृष्टि आदि कुमतोंकी सृष्टि करते हैं। ★★

शिक्षागुरुदेव किसी प्रकारकी संकीर्ण शिक्षा नहीं देते। शिक्षागुरुके अभावमें अनेक स्थलोंमें महान्तगुरु द्वारा प्रदत्त अद्वयज्ञान भी विपर्यस्त हो पड़ता है। ४

सद्गुरुके निकट एक जिज्ञासु

एक दिन श्रील आचार्यदेव (नित्यलीलाप्रविष्ट आचार्यकेशरी ॐविष्णुपाद अष्टोत्तरशत् श्रीश्रीमद् भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजजी) प्रातः—कृत्यसे निवृत्त हो श्रीश्रीराधाविनोदविहारीजीके समुख आसनपर विराजमान होकर एकान्त चित्तसे, श्रीनाम-भजन कर रहे थे। उसी

समय एक निष्कपट भगवद्भजन पिपासु कृष्णदास नामक व्यक्ति उनके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुए और दण्डवत् प्रणामकर उनके निकट ही बैठ गए। उनके मनमें कुछ शंकाएँ उठ रही थीं, जिनकी वे श्रीआचार्यदेवके निकट मीमांसा कराना चाहते थे। आचार्यजीने

आगन्तुकके मनोभावको समझकर उससे पूछा—‘तुम्हारा नाम क्या है? तुम क्या चाहते हो?’

कृष्णदासने नम्रतापूर्वक निवेदन किया—“मेरा नाम कृष्णदास है। मैं संसाररूपी दुःख-समुद्रमें काम, क्रोध, लोभ आदि भयानक मगर आदि जल-जन्तुओंसे कवलित होकर नाना प्रकारकी दुर्वासनारूप शृंखलामें आबद्ध पड़ा हूँ। पिंजड़ेमें बन्द पक्षी जिस प्रकार पराधीनताकी जंजीरमें आबद्ध रहकर अशेष दुःख भोग करता है, उसी प्रकार मैं भी जागतिक मोह-शृंखलासे आबद्ध और संसार सागरको तैरकर पार करनेमें अपटु होनेसे बीचमें ही डुबकियाँ खा रहा हूँ तथा नाना प्रकारके दुःखोंका भोग कर रहा हूँ। पिंजरेमें बद्ध पक्षी जिस प्रकार लाख कोशिश करनेपर भी स्वयं उस पिंजरेसे मुक्त होकर स्वच्छन्द भ्रमण नहीं कर सकता, उसी प्रकार मैं सांसारिक तापोंसे जर्जरित हो, माया-बन्धनसे मुक्त होनेमें नितान्त असमर्थ हूँ। इस अवस्थामें सांसारिक दुःखोंसे मुक्ति लाभ करनेके लिए संसार क्या वस्तु है, संसारमें कौन-सी वस्तु सार है, उसमें कौन-सी वस्तु असार है, जीवको संसारमें क्यों आना पड़ता है, मैं कोन हूँ, मेरा कर्तव्य क्या है तथा सांसारिक यन्त्रणाओंसे किस प्रकार छुटकारा मिल सकता है, इत्यादि तथ्योंको समझनेके लिए किसी तत्त्वविद् गुरुके चरणोंमें आश्रय लेनेकी परमावश्यकता है, ऐसा निश्चयकर मैं आपके श्रीचरणोंमें शरणागत हुआ हूँ। आप कृपाकर मेरे समस्त संशयोंका छेदनकर मुझे आत्मसात् (स्वीकार) करें। मैं सबसे पहले यह जानना चाहता हूँ कि संसार क्या है?

कृष्णदासका प्रश्न सुनकर आचार्यदेव बड़े प्रसन्न हुए और बोले—तुम बड़े सौभाग्यशाली हो। परम सौभाग्यवान ही ऐसा प्रश्न करते हैं। सुनो, संसार शब्दसे साधारणतः जगत, देह, माया-बन्धन अथवा मायाजनित वासना इत्यादिको समझा जाता है। और भी गम्भीरतापूर्वक विवेचन करनेपर ऐसा निश्चित होता है कि अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंका कर्ता, भोक्ता एवं पालन-पोषण करनेवाला तथा नियन्ता पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण ही हैं। वे ही जीवके एकमात्र अवलम्बन हैं। इस तथ्यको जब जीव भूल जाता है तथा इसके विपरीत वह अपनेको ही कर्ता, भोक्ता तथा नियन्ता समझ बैठता है, उस समय ऐसे कृष्णविमुख जीवोंको कृष्णोन्मुख करनेके उद्देश्यसे सर्व-शक्तिमान श्रीकृष्णकी अघटन-घटन-पटीयसी मायाशक्ति उन सब जीवोंको संसार-सागरमें निमज्जितकर नाना प्रकारके दुःखोंका भोग कराती है—

कृष्ण भूलि सेऽ जीव अनादि-बहिर्मुख।

अतएव माया तारे देय संसारादि दुःख॥

(चै. च. म. २०/११७)

संसारमें जितने भी सामर्थिक सुख दिखलाई पड़ते हैं, वे सभी दुःखदायक, असार एवं अनित्य हैं। मृत्यूपरान्त संसारमें उपलब्ध होनेवाली धन, जन आदि वस्तुएँ यर्हांकी यर्हां धरी रह जाती हैं। वास्तवमें संसार विषय-भोगोंको भोगनेका स्थान नहीं, बल्कि वह तो केवल पराशान्तिरूप कृष्ण-सेवा सुखलाभ करनेके लिए एक अनुकूल स्थान है।

केवल मनुष्य देह ही भगवद् भजन करनेके लिए नौका स्वरूप है। देवता, यक्ष,

गन्धर्व इत्यादि योनियाँ प्राप्तकर भोगोन्मत्त हो भगवानको भूल जाना नैसर्गिक है, किन्तु इस लोकमें मानवदेह धारणकर जीव विभिन्न दुःख, क्लेश सहन करते हुए भगवानका सेवा-सुखलाभ करनेमें सहसा समर्थ हो सकता है। इसीलिए शास्त्रोंमें मानव जन्मको हरिभजनका मूल कहा गया है—

तृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाविद्यं न तरेत् स आत्महा ॥

(भा. ११/२०/१७)

यह मानव देह समस्त देहोंसे श्रेष्ठ है। यह सुदुर्लभ होनेपर भी सुलभ हो गई है। यही संसार सागरसे पार होनेके लिए मजबूत नौका है। गुरुदेव ही इसके कर्णधार हैं। कृष्ण-कृपारूप अनुकूल वायु द्वारा परिचालित होनेपर इस संसार सागरसे पार हुआ जा सकता है। जो ऐसा नहीं करते हैं, वे आत्मघाती हैं।

अतएव जीव कृष्णदासत्वको विस्मृत होकर संसार समुद्रमें नाना प्रकारके कष्टोंका भोग कर रहे हैं, वे यदि इन कष्टोंसे मुक्त होकर कृष्ण-सेवा प्राप्त करना चाहते हैं तो वे केवल मनुष्य जन्ममें ही कृष्णसेवा पा सकते हैं। यही जन्म कृष्णसेवा पानेका प्रधान आधार है।

लब्ध्वा सुदुर्लभमिदं बहुसम्भवान्ते
मनुष्यमर्थदमनित्यमपीह धीरः ।
तूर्णं यतेत न पतेदनुमृत्यु यावत्
निःश्रेयसाय विषयः खलु सर्वतः स्यात् ॥

(भा. ११/९/२९)

अनेक जन्मोंके पश्चात् यह मनुष्य जन्म प्राप्त हुआ है। इसलिए यह अत्यन्त दुर्लभ है। यह जन्म अनित्य होनेपर भी परमार्थको देनेवाला है। जिस अर्थको प्राप्त कर लेनेपर मनुष्यके हृदयमें जगतके अर्थोंकी प्राप्तिके लिए स्पृहा नहीं रहती, उसी अर्थको पूज्यपाद श्रीश्रील सनातन गोस्वामीजीने प्राप्त किया था और उसी अर्थको प्राप्त कर लेनेके फलस्वरूप ही उन्होंने स्पर्शमणिको भी तुच्छ समझकर यमुनाजीकी रेतीमें फेंक रखा था। यहाँतक कि भिक्षुक ब्राह्मणने भी श्रीश्रील सनातन गोस्वामीजीसे श्रीकृष्ण-प्रेमरूपी उसी अर्थको प्राप्तकर स्पर्शमणिको नदीमें फेंक दिया तथा संसारमें लगी हुई समस्त आशाओंका भी मूलोच्छेदकर भगवद् भजनमें तत्पर हो गया। वह परमार्थ वस्तु इस जगतमें अत्यन्त ही दुर्लभ है।

यद्यपि यह संसार भगवानकी त्रिभुवन मोहनी माया शक्तिकी ताण्डवस्थली है, फिर भी मनुष्योंके लिए यह संसार नित्य गोलोक-वृन्दावन-विहारी द्विभुज मुरलीधर श्यामसुन्दर मदनमोहनकी नित्य सेवा प्राप्त करनेकी अनुकूल स्थली भी है।

कृष्णदास—इसमें सार और असार क्या है?

आचार्यदेव—उपर्युक्त सिद्धान्त-समूह द्वारा ऐसा निर्णीत होता है कि यह संसार असार है। क्योंकि इस परिदृश्यमान जगतमें हम जो कुछ भी देखते हैं, उन सबकी उत्पत्ति और विनाश होता रहता है। उनमें कभी भी नित्यत्व और सारत्व विद्यमान नहीं रह सकता। किन्तु असार और अनित्य होनेपर

भी संसारका एक वैशिष्ट्य है। वह यह कि बुद्धिमान लोग यहाँ रहकर असार वस्तुओंकी उपलब्धिकर सारतच्चके अनुसन्धानमें तत्पर होकर स्वयंको कृत-कृतार्थ किया करते हैं।

कृष्णदास—यहाँ जीवको क्यों आना पड़ता है?

आचार्यदेव—

जीवर स्वरूप हय कृष्णेर नित्य दास।
कृष्णेर तटस्थ शक्ति भेदाभेद प्रकाश ॥
कृष्ण भूलि सेङ जीव अनादि बहिर्मुख।
अतएव माया तारे देय संसारादि दुःख ॥

(चै. च. म. १०८, ११७)

कृष्ण बहिर्मुख हइया भोग वाज्ञा करे।
निकटस्थ माया तारे जापटिया धरे॥
पिशाची पाइले येन मतिछ्छन्न हय।
मायाग्रस्त जीवर हय से भाव उदय ॥

(प्रेम विवर्त)

जीव स्वरूपतः कृष्णका दास है। जीव जब अपने स्वरूपको भूलकर मायिक वस्तुओंकी कामना कर बैठता है, उस समय वह इस दुष्पार माया जगतमें पतित हो जाता है तथा जन्म और मरणकी शृंखलामें फँस जाता है। जीवका गठन तटस्थ शक्तिसे होनेसे वह स्वाभाविक रूपसे माया जालमें फँसने योग्य है। जीव स्वतन्त्रतावश जो कुछ भी सत् और असत् कर्म करते हैं, उसका फल भोगनेके लिए उन्हें पुनः पुनः इस संसारमें जन्म लेना और मरना (शरीर त्याग करना) पड़ता है। जीव मरणकालमें जिन-जिन भावनाओंका स्मरणकर शरीर त्यागता है, देहान्त होनेपर उनके अनुरूप ही वह दूसरा जन्म प्राप्त करता है—

देहे पञ्चत्वमापत्रे देही कर्मानुगोऽवशः।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥

(भा. १०/१/३९)

इस प्रकार जीव स्व-स्व कर्मानुसार ही शरीर धारण और शरीर परित्याग करता है—
ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवं त्रयीधर्ममनुप्रपत्ना
गतागतं कामकामा लभन्ते ॥

(गीता ९/२१)

जीव यद्यपि पुण्य कर्मोंके फलसे स्वर्ग लाभ करता है, परन्तु वहाँ अपने पुण्यकर्मोंके अनुरूप सुख भोगकर पुण्य क्षय होनेपर पुनः मृत्युलोकमें आगमन करता है। इस प्रकार काम-कामी जीव वेदत्रयीके अनुगत होकर संसारमें पुनः पुनः जन्मता और मरता है।

कृष्णदास—प्रभो! मैं कौन हूँ?

आचार्यदेव—मैं जीव अथवा आत्मा हूँ और स्वरूपतः कृष्णका नित्यदास हूँ। “आमि नित्य कृष्णदास एइ कथा भूले। मायार नफर हइया चिरदिन बुले ॥” इस कथन द्वारा प्रतीत होता है कि जीव अथवा मैं स्वरूपतः नित्य कृष्णदास हूँ। कृष्ण प्रभु हैं और मैं उनका नित्यदास हूँ। कृष्ण यन्त्री हैं और मैं यन्त्र हूँ। कृष्ण पूर्ण चिद्वस्तु हैं और मैं अणु चिद्वस्तु हूँ। इससे प्रमाणित होता है कि मैं विकारग्रस्तरूपमें मायाकवलित होनेके कारण अपनेको मायाका दास मानता तो हूँ, परन्तु स्वरूपतः मैं कृष्णका दास ही हूँ।

कृष्णदास—मेरा कर्तव्य क्या है?

आचार्यदेव—समस्त प्रकारकी उपाधियोंसे मुक्त होकर इन्द्रियों द्वारा अनुकूल कृष्णानुशीलन

करना ही जीवका एकमात्र कर्तव्य है। “हृषीकेण
हृषीकेश सेवनम्।” हृषीक शब्दका अर्थ इन्द्रियाँ
हैं। इन्द्रियों द्वारा इन्द्रियाधिपति हृषीकेश भगवानकी
सेवा करना ही प्रयोजन है।

अन्याभिलाषिताशून्यं ज्ञानकर्मद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा ॥

(भ. र. सि. पू. वि. १/९)

कृष्णोत्तर विषयोंमें अनासक्त एवं ज्ञान और कर्मसे निर्लिप्त रहकर अनुकूल कृष्ण-नुशीलनमें तत्पर रहना ही जीवका एकमात्र कर्तव्य है।

कृष्णदास—किस प्रकार सांसारिक कष्टोंसे छुटकारा पाया जा सकता है?

आचार्यदेव—श्रद्धा सहित कृष्णतत्त्वविद् सद्गुरुका पदाश्रय ग्रहणकर उनके द्वारा उपदिष्ट कृष्ण-नाम, कृष्णमन्त्र और गायत्रीका सम्यक् रूपसे कीर्तन और जप करते-करते जीवके समस्त पातक नष्ट हो जाते हैं तथा हृदयमें विशुद्ध भक्ति एवं कृष्णप्रेमका उदय हो जाता है।

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति ॥

(भा. १/२/६)

प

(श्रीगौड़ीय पत्रिकासे अनुदित, अनुवादक—
श्रीसत्यपाल गोयल)

श्रीगौराङ्ग-सुधा

—श्रीपरमेश्वरी दास ब्रह्मचारी

(वर्ष ४६, संख्या ११, पृष्ठ २५८ से आगे)

मुरारीगुप्त पर कृपा

एक दिन श्रीमन्महाप्रभु नित्यानन्दप्रभुके साथ श्रीवासजीके घरमें विराजमान होकर अनेक प्रकारसे हास-परिहास कर रहे थे। उसी समय मुरारीगुप्त वहाँपर उपस्थित हुए तथा उन्होंने पहले प्रभुके श्रीचरणकमलोंमें दण्डवत् प्रणाम किया, तत्पश्चात् श्रीनित्यानन्द-प्रभुके चरणकमलोंमें। दोनोंको प्रणाम करनेके पश्चात् वे हाथ जोड़कर प्रभुके समक्ष दीनतापूर्वक खड़े हो गए। मुरारी से प्रभु अति प्रसन्न रहते थे। अतः उन्होंने बहुत प्रेमपूर्वक मुरारीसे कहा—“मुरारी! तुमने जो कुछ अभी किया, वह उचित नहीं है। तुमने प्रणाम करते समय मर्यादा तोड़ दी। कहाँ तो तुम स्वयं आचरणकर

जगतको सिखाओगे, परन्तु ऐसा न कर तुम स्वयं ही विधिको तोड़ रहे हो। तुम ऐसा क्यों करते हो?”

यह सुनकर मुरारीगुप्त बोले—“प्रभु, मैं कैसे जान सकता हूँ? क्योंकि मेरा चित्त तो आपने हरण कर लिया। अतः कृपापूर्वक आप ही बताइए कि मैंने कौन-सा दोष किया?” यह सुनकर प्रभु मुस्कराते हुए बोले—“अच्छी बात है। आज तुम अपने घर जाओ। कल मैं तुम्हें सबकुछ बता दूँगा।”

यह सुनकर मुरारीगुप्त कुछ भयमिश्रित हर्षपूर्वक अपने घर जाकर सो गए। अर्द्धरात्रिके समय उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा—श्रीनित्यानन्दप्रभु मदमत्त होकर आगे-आगे जा

रहे हैं। उनके सिरपर एक भयङ्कर नाग अपना फन फैलाए हुए था। उन्होंने हाथोंमें हल एवं मूषल धारण किए हुए थे। इस प्रकार उस समय श्रीनित्यानन्दप्रभु श्रीबलदेवजीके रूपमें सुशोभित हो रहे थे। उसी समय उन्होंने इससे भी एक महान आश्चर्य देखा कि प्रभु श्रीगौरसुन्दर नित्यानन्दप्रभुके सिरपर छत्र धारणकर उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। स्वप्नमें ही श्रीगौरसुन्दर हँसते हुए मुरारीसे बोले—“मुरारी! अब तो तुम समझ गए कि मैं श्रीपाद नित्यानन्दसे कनिष्ठ हूँ।” इस प्रकार स्वप्नमें ही मुरारीको चकित देखकर दोनों प्रभु हँसते हुए अन्तर्धान हो गए।

उसी समय उनकी नींद टूट गई तथा स्वप्नके विषयमें विचारकर वे ‘हा नित्यानन्द! हा नित्यानन्द!’ कहकर क्रन्दन करने लगे। उन्हें इस प्रकार नित्यानन्दप्रभुका नाम लेकर रोते हुए देखकर उनकी पत्नी चकित होकर ‘कृष्ण-कृष्ण’ कहने लगी। स्वप्नके माध्यमसे मुरारीगुप्तको विश्वास हो गया कि नित्यानन्दप्रभु ही श्रीगौरसुन्दरके बड़े भाई हैं। अतः वे आनन्दित होकर प्रभुके दर्शनके लिए चल दिए। उस समय कमललोचन प्रभु गौरसुन्दर अपने घरमें आनन्दसे बैठे हुए थे। उनकी दायीं ओर श्रीनित्यानन्दप्रभु बैठे मुस्करा रहे थे। वहाँ पहुँचकर मुरारीगुप्तने आज पहले श्रीनित्यानन्दजीको प्रणाम किया, तत्पश्चात् श्रीगौरसुन्दरको। यह देखकर प्रभु हँसते हुए बोले—“तुमने यह क्या किया?”

मुरारी—“हे प्रभो! मैंने वही किया, जो आपने करवाया। हवाके कारण जैसे सुखे हुए घासके तिनके इधर-उधर उड़ते हैं, उसी

प्रकार आपकी शक्ति भी समस्त जीवोंका सञ्चालन करती है।”

प्रभु—“मुरारी! तुम मुझे बहुत प्रिय हो। इसीलिए मैंने तुम्हें यह रहस्य बताया।”

इस प्रकार प्रभु अपने तत्त्व (अपनी महिमा) को मुरारीके समक्ष प्रकाशित कर रहे थे तथा उनके बायीं ओर बैठे श्रीगदाधर पण्डित आनन्दसे उन्हें ताम्बुल (पान) अर्पण कर रहे थे। प्रभु बोले—“मुरारी! तुम मेरे प्रधान दास हो।” ऐसा कहकर उन्होंने अपना चबाया हुआ पान मुरारीको प्रदान किया। मुरारीने आनन्दपूर्वक हाथ जोड़ते हुए उसे ग्रहण कर लिया। उसे खाकर वे आनन्दसे प्रमत्त हो गए। कुछ क्षण पश्चात् प्रभु बोले—“मुरारी! जाकर शीघ्र ही अपने हाथ धोओ।”

यह सुनकर मुरारीगुप्तने हाथ धोनेके बजाय उन्हें अपने सिरपर धारण कर लिया। यह देखकर प्रभु कहने लगे—“मुरारी! तुम्हारी तो जाति ही चली गई, क्योंकि तुमने अपने समस्त शरीरमें मेरा उच्छिष्ट लगा लिया है।”

ऐसा कहते-कहते प्रभु भगवद् भावमें आविष्ट हो गए। वे दाँत किटकिटाते हुए कहने लगे—“काशीमें प्रकाशानन्द नामक एक संन्यासी रहता है, जो अच्छी तरहसे मेरे शरीरके टुकड़े करता है। सभीको तो वह वेदान्त पढ़ाता है, परन्तु स्वयं मेरा आकार नहीं मानता। इस अपराधके फलस्वरूप मैंने उसे कुष्ठरोग भी करा दिया। परन्तु वह ऐसा दुष्ट है कि मानता ही नहीं। अनन्त ब्रह्माण्ड मेरे जिन अङ्गोंमें स्थित रहते हैं, मेरे ऐसे श्रीअङ्गको वह मिथ्या बताता है। यह उसका

कैसा दुःसाहस है? मुरारी, तुम मेरे परमप्रिय दास हो। मैं सत्य कह रहा हूँ कि जो मेरा स्वरूप (आकार) नहीं मानता, उनका सर्वनाश निश्चित रूपसे हो जाता है। ब्रह्मा, शिव आदि भी अपने प्राणोंसे बढ़कर जिसकी सेवा करते हैं, जिस स्वरूपका स्पर्श करते ही पाप एवं पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं तथा वह व्यक्ति मुक्त हो जाता है, ऐसे मेरे स्वरूपको वह दुष्ट मिथ्या बताता है। मुरारी! मैं आज तुम्हें गम्भीर रहस्य बताता हूँ कि मैं सत्य हूँ, मेरे दास तथा उनके दास सभी सत्य हैं। इसके अतिरिक्त मेरी लीलाएँ, कर्म तथा मेरा धाम सभी नित्य हैं। यदि कोई इन सबको मिथ्या कहता है तो वह मानो मेरे शरीरके टुकड़े-टुकड़े करता है। मेरी जिन वीर्यवती लीलाओंको श्रवणकर अज्ञान नष्ट हो जाता है, पापी पण्डित अभिमानी लोग ऐसी मेरी लीलाओंको मिथ्या कहते हैं। मेरा गुणगान सुनकर आनन्दसे शिव दिग्म्बर हो जाते हैं। अर्थात् आनन्दसे नृत्य करते समय कहाँ उनका मृगछाला गिर गया उन्हें इसका होश ही नहीं रहता। स्वयं महीधर (शेषनाग) अपने हजारों मुखोंसे मेरा गुणगान करते हैं, मेरी महिमा श्रवणकर शुक, नारद आदि मतवाले हो जाते हैं, चारों वेद मेरा गुणगान करते हैं, ऐसे मेरी पुण्यकीर्तिके प्रति जो अनादर करता है, वह कदापि मेरे तत्त्वको नहीं जान सकता।”

इस प्रकार प्रभु मुरारीगुप्तको लक्ष्यकर सभीको शिक्षा दे रहे हैं कि मेरा स्वरूप, मेरे सेवक, मेरी लीला, मेरा धाम आदि सभी नित्य हैं। इस प्रकार प्रभु अपनी महिमा स्वयं

ही प्रकाशित कर रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् जब प्रभुका आवेश दूर हुआ, तो उन्होंने भाई कहकर मुरारीगुप्तको आलिङ्गन कर लिया तथा प्रेमसे कहने लगे—“मुरारी! सत्य-सत्य तुम मेरे शुद्धभक्त हो, जो तुमने श्रीनित्यानन्द-जीको पहचान लिया। नित्यानन्दजीके प्रति यदि किसीका लेशमात्र भी द्वेष रहता है, तो वह मेरा दास ही क्यों न हो, मुझे कदापि प्रिय नहीं हो सकता। तुमने आज मुझे खरीद लिया, क्योंकि तुम श्रीपाद नित्यानन्दको पहचान गए हो। अतः अब तुम अपने घर जाओ।”

यह सुनकर मुरारीगुप्त आनन्दपूर्वक अपने घरकी ओर चल पड़े। परन्तु प्रभु एवं श्रीनित्यानन्दप्रभु दोनों उनके हृदयमें विराजमान हो गए थे, जिसके प्रभावसे वे प्रेमसे विह्वल होकर मार्गमें जाते समय कभी अकस्मात् हँस रहे थे, कभी रो रहे थे तो कभी नृत्य कर रहे थे। घर पहुँचकर अपनी पत्नीसे बोले—“मुझे जल्दीसे प्रसाद दो, मैं प्रसाद पाऊँगा। यह सुनकर उनकी पत्नी अन्न, दाल, सब्जी इत्यादि ले आई। परन्तु कृष्णप्रेममें विह्वल मुरारीगुप्त “कृष्ण! खाओ, खाओ।” कहकर घी मिला हुआ अन्न सारे घरमें यहाँ-वहाँ फेंकने लगे। यह देखकर उनकी पत्नी हँसने लगी। वे मुरारीगुप्तकी महिमाको अच्छी तरहसे जानती थीं। अतः बहुत प्रेमसे वे “कृष्ण-कृष्ण” कहकर गुप्तको सावधान कर रही थीं।

इस प्रकार जब प्रेमसे मुरारीगुप्त प्रभुको खिला रहे थे, उस समय प्रभुने भी अपने भक्तके द्वारा दिए हुए व्यञ्जनोंको बहुत प्रेमसे ग्रहण किया। सन्ध्याके समय प्रभु मुरारीगुप्तके घरमें उपस्थित हुए। उस समय आनन्दसे वे

हरिनाम कर रहे थे। प्रभुका दर्शन करते ही उन्होंने प्रभुकी वन्दना की तथा आदरपूर्वक बैठनेके लिए उन्हें उत्तम आसन प्रदान किया। जब प्रभु आनन्दपूर्वक आसनपर विराजमान हो गए, तो गुप्तने हाथ जोड़कर विनीत भावसे पूछा—“हे प्रभो! आपका मेरे घरमें अकस्मात् आनेका क्या कारण है?”

प्रभु—अपनी चिकित्सा करानेके लिए आया हूँ।

गुप्त—प्रभो! आपको बदहजमी हो गई है। आपने आज क्या-क्या खाया?

प्रभु—मुरारी! तुम मुझसे क्यों पूछ रहे हो कि मैंने क्या-क्या खाया, यह तो तुम अपने आपसे पूछो कि तुमने मुझे क्या खिलाया? क्या तुम्हें याद नहीं है कि जब तुम “खओ-खाओ” कहकर मुझे अन्न इत्यादि खिला रहे थे। परन्तु तुम्हारी स्नीको सब मालुम है। तुम तो प्रेममें आविष्ट होकर देते ही जा रहे थे, तुम्हें तो यह भी ज्ञान नहीं था कि तुमने मुझे कितना खिला दिया और मुझे विवश होकर खाना पड़ा। परन्तु खिलानेके बाद तुमने मुझे जल नहीं पिलाया, इसीलिए मुझे अजीर्ण (बदहजमी) हो गई है। अतः तुम मुझे कुछ औषधी मत दो, बल्कि जल पिलाओ, उसीसे मेरा रोग दूर हो जाएगा। क्योंकि तुम्हारे अन्नसे ही मुझे बदहजमी हुई है, अतः तुम्हारे जलसे ही यह दूर भी होगा।

ऐसा कहकर प्रभुने मुरारीगुप्तका जलपात्र उठाया तथा उससे जल पान कर लिया। अपने ऊपर ऐसी अद्भुत कृपाका दर्शनकर मुरारीगुप्त आनन्दसे मूर्छ्छत हो गए। उनका सारा परिवार भी आनन्दसे क्रन्दन करने लगा।

मुरारीगुप्तके शरीरमें गरुड़का आवेश

एक दिन श्रीगौरसुन्दरने श्रीवासजीके घरमें भगवद् भावाविष्ट होकर चतुर्भुज रूप धारण कर लिया। उनके चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा एवं पद्म थे। उस समय प्रभु “गरुड़-गरुड़” कहने लगे। उसी समय आविष्ट होकर मुरारीगुप्त दौड़ते-दौड़ते श्रीवासजीके घरमें उपस्थित हुए। उस समय मुरारीगुप्तके शरीरमें गरुड़जीका आवेश था। वे कह रहे थे—“मैं ही गरुड़ हूँ, मैं ही गरुड़ हूँ।”

जब प्रभु गरुड़-गरुड़ कह रहे थे, तो मुरारीगुप्त बोले—“प्रभो! मैं ही आपका वह दास गरुड़ हूँ।” गुप्तको अपने समक्ष देखकर प्रभु बोले—“तू मेरा वाहन है?”

गुप्त—“प्रभो! आप इस दासको भूल गए। आप मेरे ऊपर सवार होकर वाणासुरके राज्यमें गए तथा उसका दमन किया। उस समय मैंने कार्तिकेयके मयूरके टुकड़े-टुकड़े कर दिए थे। मुझपर सवार होकर ही आप स्वर्ग गए तथा वहाँ समस्त देवताओंको पराजितकर पारिजात वृक्ष ले आए थे। प्रभो! कृपापूर्वक आज भी आप मेरी पीठपर आरोहण कीजिए तथा मुझे आदेश दीजिए कि मैं आपको कौनसे ब्रह्माण्डमें ले जाऊँ?”

यह सुनकर प्रभु गुप्तके कन्धे पर चढ़ गए। यह देखकर श्रीवासजीके घरके सभी सदस्य प्रभुकी जय-जयकार करने लगे। मुरारीगुप्त प्रभुको कन्धेपर धारणकर घरके भीतर चारों ओर आनन्दसे भ्रमण करने लगे। कुछ क्षण पश्चात् जब प्रभुका आवेश दूर हो गया तो गुप्तका भी गरुड़-भाव शान्त हो गया। अतः प्रभु उनके कन्धेसे नीच उत्तर गए। (क्रमशः)

साधु एक पारसमणि है

—श्रीनित्यानन्द राय

पारसमणि नामक परम लोभनीय वस्तुकी बात हम सभीने सुनी है, जिसके स्पर्शसे केवल लोहा सोनेमें परिणत होता है, किन्तु उसको किसीने देखनेकी बात स्वीकार नहीं की है। हम श्रीचैतन्यचरितामृतमें पारसमणिके सम्बन्धमें अनुसन्धान पाते हैं। यह पारसमणि है—साधु। शास्त्रोंमें साधुओंको पारसमणिके रूपमें वर्णित किया गया है। साधुके चरणोंमें बिना अपराध किए उनके उपदेशोंको निष्कपट रूपसे पालन करनेपर लोहा ही क्यों, उससे अधिक कठिन पापी भी स्वर्णकी अपेक्षा उज्ज्वलतम चरित्रवान अधिकारी हो सकता है। क्योंकि साधुका संस्पर्श प्राप्त करनेमात्रसे मायाकब्लित जीव अनायास रूपसे भगवान श्रीकृष्णके प्रेमी भक्तके रूपमें परिणत हो सकता है।

साधु-सङ्गके फलस्वरूप अत्यन्त महापापी हिंसक स्वभाव व्यक्ति भी किस प्रकार चरम कल्याण प्राप्तिका सौभाग्य पा लेता है, वह हम श्रीचैतन्यचरितामृतमें उक्त सनातन-शिक्षाके अन्तर्गत भक्त व्याधकी जीवनीमें पाते हैं।

एक दिन भगवानके प्रेमीभक्त नारद ऋषि वीणापर भगवानका नाम गान करते-करते प्रयाग जा रहे थे। हठात् राजपथको छोड़कर एक वनपथमें उन्होंने प्रवेश किया। कौन जानता था कि इसके भीतर एक रहस्य छिपा हुआ है। मार्गमें चलते-चलते उन्होंने देखा कि एक हिरण बाणबिद्ध होकर मृत्यु-यन्त्रणासे छटपटा रहा है। कुछ दूरीपर एक शूकर किसी एक व्याधके बाणोंसे बिद्ध होकर मृत्यु यन्त्रणासे कष्ट पा रहा है। और भी कुछ दूर चलनेपर उन्होंने एक खरगोशको इसी अवस्थामें

देखा। यह सब करुण दृश्य देखकर ऋषिके हृदयमें बहुत कष्ट हुआ। न जाने कौन पाणिष्ठ इन समस्त प्राणियोंको इस प्रकार यन्त्रणा देकर वध कर रहा है। इस प्रकार सोचते-सोचते कुछ दूरीपर जाकर उन्होंने देखा—एक वृक्षकी आड़में महाभयङ्कर धनुषबाण हाथमें लेकर यमदूतकी भाँति एक व्याध और भी एक हिरणको तीरसे मारनेके लिए तैयार था। नारदजीके आगमनसे वह व्याधका लक्ष चूक गया और हिरण वनमें कहीं भाग गया। व्याधके क्रोधकी सीमा न रही। इस अवस्थामें क्रोधका होना स्वाभाविक था। व्याध नारदजीकी भर्त्सना करनेके लिए उद्यत हुआ, किन्तु उनके अद्भुत प्रभावसे व्याधका क्रोध शान्त हो गया।

तब व्याध कहने लगा—“गोसाई, आप अपने पथको भूलकर इस वनपथमें क्यों आए हो? आपको देखकर मेरा लक्ष पशु इत्यादि सभी भाग गए।”

तब नारदजी मुस्कराते हुए कहने लगे—“ना, ना। मैं पथ भूलकर क्यों आने लगा? मैं यहाँ तुमसे एक बात पूछने आया हूँ। मेरे मनमें एक संशय उत्पन्न हुआ है। इस मार्गमें मैंने अनेक पशुओंको अर्द्धमृतावस्थामें मृत्यु-यन्त्रणासे छटपटाते हुए देखा है। सोचता हूँ कि यह तुम्हारा ही कार्य है। यदि तुम पशुहत्या करते हो तो तुमने उन्हें एक ही बारमें न मारकर तड़फता हुआ क्यों छोड़ा है? उनको इतनी यन्त्रणा देकर तुम्हें क्या लाभ होता है?”

नारदजीकी बात सुनकर यह व्याध प्रफुल्ल मनसे कहने लगा—“गोसाई! मैं व्याध हूँ, मेरा

नाम मृगारी है। पशुहत्या करना मेरा व्यवसाय है। मैंने अपने पितासे यह शिक्षा प्राप्त की है। इन जीवोंको सम्पूर्णरूपसे मारनेपर भी मेरी कोई वास्तविक क्षति नहीं है। किन्तु अर्द्धमृत पशु आदि जब मृत्यु-यन्त्रणासे तड़पते हैं, तब उनको रखकर मुझे बहुत आनन्द होता है। एकबारमें मारनेपर मैं उस प्रकारके आनन्दका भोग नहीं कर पाता हूँ। इसलिए उनको अर्द्धमृत करके रखता हूँ।” देखो, व्याधका अन्तःकरण कितना कठोर और निष्ठुर है।

नारदजीने कहा—“तुम यदि उनको एकबारमें ही मार देते तो उनको बहुत कम कष्ट होता।”

मृगारी इन सब बातोंपर विशेष ध्यान न देकर कहने लगा—“ऋषि! बोलो, तुम क्या चाहते हो? तुम हिरण्यकी छाल चाहते हो या शेरकी खाल? तुम्हें कितने खालोंकी आवश्यकता है? मैं बिना मूल्यका ढूँगा।”

नारदजीने कहा—“ना, ना। मैं यह कुछ भी नहीं चाहता। तुमसे मेरा एक अनुरोध है कि आगामीकल जब तुम मृगका शिकार करोगे, तब इन पशुओंको अधमरा न रखकर एकबारमें ही मार देना।”

व्याध यह सुनते ही अवाक रह गया। कुछ क्षणके बाद फिर बोला—“केवल यही तुम्हारी शिक्षा है, इससे तुम्हें क्या लाभ होगा? पशुओंको अर्द्धमृतावस्थामें रखनेपर क्या असुविधा है?”

तब नारदजीने कहा—“इससे जीव बहुत कष्ट पाता है। तुम व्याध हो, पशुहत्या तुम्हारी जीविका होनेपर भी इसमें पाप होता है। जीवहत्या पाप है, जीवको जानसे न मारकर केवल कष्ट देना भी पाप है। तुम दोनों प्रकारसे पापी हो। आज तुम जिस

प्रकारकी यन्त्रणा जीवोंको देते हो, तुम्हें भी अगले जन्ममें इस प्रकारका फल भोगना होगा। यन्त्रणा देकर तुमने जिनकी हत्या की है, तुमको भी प्रत्येकके हाथसे उसी प्रकारकी यन्त्रणा भोगनी होगी। तुम्हारे पापकी सीमा नहीं है। तुमको बहुत जन्मोंतक इसी प्रकारकी अशेष यन्त्रणा भोग करते हुए बाणबिद्ध होकर प्राणत्याग करना होगा। अब चिन्ता करके देखो, तुम्हारे इन समस्त पापोंके फल तुम्हें किस अवस्थामें ले आएँगे। देखो, ‘स्वकर्म फलभुक् पुमान्’—अपने-अपने कर्मोंके फल भोगसे कोई भी नहीं बचा है।”

जब किसी व्यक्तिका भाग्य सुप्रसन्न होता है, तभी साधुका दर्शन होता है, तभी साधुके वाणीके प्रति श्रद्धा उत्पन्न होती है। “दर्शने पवित्र कर एइ तोमार गुण”। परमभागवत नारदजीका दर्शन करनेसे एवं उनकी वाणी सुनकर क्रुर व्याधका मन निर्मल हो गया। उसके मनमें एक परिवर्तन आ गया। भविष्यमें कर्मोंके भीषण परिणामकी चिन्ता करके उसके मनमें भय उत्पन्न हुआ। वह सोचने लगा कि “मैंने सैकड़ों जीवोंकी हत्या की है, अतः कितने जन्मोंतक मुझे इस प्रकारसे बाणबिद्ध होकर असहनीय यन्त्रणाका भोग करते हुए प्राणत्याग करना होगा।” यह सब सोचकर व्याध भयसे शिहर उठा। अपनी भावी दुर्दशाकी चिन्ता करते हुए वह नारदजीके चरणोंमें गिरकर मुक्तिलाभके लिए व्याकुल भावसे कृपाभिक्षा करने लगा—“प्रभो! मैं अधम, दुराचार और महापापी हूँ। मेरा उद्धार करें। बचपनसे आजतक मैंने अगणित पशुओंका इसी प्रकारसे परम दुःख और कष्ट देते हुए वध किया है। तब मैं समझ नहीं पाया कि इसका परिणाम इतना भयानक होगा। अब इस अधमका आपके सिवाय और कौन

उद्धार करेगा? मैं आपके चरणोंमें शरणागत हुआ हूँ। मेरा उद्धार करें।”

नारदजी करुणापरवश होकर कहने लगे—“हे व्याध! यदि तुम मेरी बात सुनो तो मैं तुम्हारी मुक्तिका उपाया बतला सकता हूँ। मेरा उपदेश मानते हुए उसीके अनुसार काम करो।” व्याध अत्यन्त कातर स्वरसे कहने लगा—“प्रभु! मेरा उद्धार करें। आपकी बात मानकर मैं काम करूँगा।”

तब ऋषिने कहा—“अभी तुम यदि जीवहत्याके पापसे मुक्त होना चाहते हो तो सबसे पहले तुम इस अनर्थके मूल अपने धनुषको तोड़ फेंको। इसके बाद मुक्तिका उपाय बता दूँगा।”

धनुष तोड़नेकी बात सुनकर व्याध चिन्तित हो गया। उसने सोचा कि धनुष मेरी जीविकाका मूल-धर्म है। यदि मैं इस धनुषको तोड़कर फेंकता हूँ तो कैसे बचूँगा?

थोड़ा इधर-उधर होकर उसने ऋषिको कहा—“ठाकुर! धनुष तोड़ दिए जानेपर मैं जीवननिर्वाह कैसे करूँगा?”

परमकरुण नारद ऋषिने कहा—“उस विषयमें तुम्हें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। मैं उसकी सब व्यवस्था कर दूँगा। प्रतिदिन तुम्हारी जो आवश्यकता होगी, उसकी मैं व्यवस्था कर दूँगा। खाने और पहननेकी कोई चिन्ता मत करो।”

नारदजीके सङ्के प्रभावसे व्याधका चित्त निर्मल हो गया था, उनकी वाणीपर विश्वास और आस्था हो चुकी थी। यह बात सुनकर व्याधने उसी समय अपने धनुषको तोड़ दिया तथा नारदजीके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणामकर स्वयंको समर्पित कर दिया। तब ऋषिने करुणार्द्र हृदयसे व्याधको दोनों हाथोंसे उठाकर उसके कर्तव्यके सम्बन्धमें उपेदश

दिया—“व्याध! तुम घर चले जाओ, तुम्हारा जो कुछ है, वह सद् ब्राह्मणोंको दान कर दो। अपने लिए कुछ भी मत रखो। तत्पश्चात् तुम तथा तुम्हारी पत्नी मात्र दो वस्त्र लेकर गङ्गाके तटपर निर्जन स्थानमें एक कुटिया तैयार करके उसके सामने एक तुलसी मंच स्थापित करो। प्रत्येक दिन गङ्गास्नान करके इस तुलसीकी सेवा और परिक्रमा करना और निरन्तर कृष्णनाम कीर्तन करना। कोई परचर्चा मत करना। तुम खाने-पीनेकी चिन्ता मत करना। केवल आहारकी ही नहीं, तुम्हें भजनके लिए जो कुछ प्रयोजनीय होगा, वह सब कुछ कुटीमें भेज दूँगा। संचय मत करना। दो जनोंके लिए जो कुछ आवश्यक हो उतना ही तुम ग्रहण करना।”

यह सुनकर उसने घर जाकर केवल दो जनोंके लिए दो वस्त्र छोड़कर अपना सबकुछ ब्राह्मणोंको दान कर दिया। परन्तु उसके हृदयमें शंका थी कि रहनेको तो हम घास-फूसकी कुटियामें रह लेंगे, परन्तु खाएँगे क्या? ये ऋषि तो प्रतिदिन भिक्षा माँगकर खाएँगे। क्या इस प्रकार ये हमें खिला पाएँगे? नारदजी उसके मनकी बात समझ गए। अतः उसको विश्वास दिलानेके लिए उन्होंने उन घायल प्राणियोंको स्वस्थ कर दिया। ऐसी अलौकिक शक्ति देखकर व्याध अवाक रह गया। उसे विश्वास हो गया कि इनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। तब उसने गुरुदेव श्रीनारदको प्रणामकर उनके आदेश और निर्देशोंका अक्षरसः पालन किया।

**गुरुमुख-पद्म वाक्य चित्तेते करिया एक्य
आर ना करिह मने आशा।**

इस प्रकार व्याध-दम्पत्तिने अपना भजन-जीवन आरम्भ किया। नारदजीके बताए अनुसार “योगक्षेमवहाम्यहम्” गीताके निर्देशानुसार देखा

गया कि प्रत्येक दिन इस व्याध-दम्पत्तिको जो कुछ प्रयोजन था, वह आने लगा। गाँवमें सब जगह प्रचार हो गया कि दुर्दान्त व्याध गुरुदेवकी कृपासे वैष्णव हो गया है। गाँवके सभी लोग व्याधके पास अन्न-व्यंजनादि लेकर आने लगे। यहाँ तक उसकी परीक्षा करनेके लिए प्रयोजनसे अधिक वस्तुएँ आनेपर भी वह प्रयोजनसे अधिक ग्रहण नहीं करता था। कुछ ही दिनोंमें उसका चित्तरूपी दर्पण मार्जित हो गया। वे निष्किञ्चन नैष्ठिक भक्तके रूपमें परिणत हो गए।

भगवान ही भक्तकी महिमा प्रकाश करते हैं। कुछ ही दिनोंमें क्रूर व्याध परम वैष्णव बन गया है—यह संवाद चारों ओर फैल गया। भक्तोंके समावेशसे उसकी कुटिया सब समय हरिसंकीर्तनसे मुखरित हो उठी।?

एकदिन नारद ऋषि पर्वत मुनिको साथ लेकर व्याधकी भजन कुटिया पर गए। दूरसे भक्त व्याधने अपने गुरुदेवका दर्शन करने मात्र ही गुरुदेवको एवं उनके साथ पर्वतमुनिको साष्टाङ्ग प्रणाम करनेके लिए यत्नशील होनेपर भी शीघ्रतासे जा नहीं सका। कारण, मार्गमें सर्वत्र चींटियाँ थीं, पैरोंके चापसे चींटियाँ मर जातीं। यहाँ तक कि गुरुके निकट पहुँचने पर सहसा दण्डवत् नहीं कर सका। क्योंकि दण्डवत्के स्थानपर भी जो चींटियाँ हैं, शरीरके चापसे ये चींटियाँ मर जावेंगी। व्याधने पहननेके कपड़ोंसे चींटियोंको हटाकर दण्डवत् किया।

देखो, साधुसङ्गका फल कैसा आश्चर्यजनक है। जिस व्याधका व्यवसाय ही पशुहत्या थी, आज वही व्याध सामान्य चींटियोंके मरनेके भयसे चल नहीं पा रहा है। यह सब कार्य साधारण लोगोंके लिए आश्चर्यजनक होनेपर भी भक्तोंके लिए आश्चर्य नहीं है। चूँकि

हरिभक्तिका ऐसा ही प्रभाव है।

नारदऋषि सत्य ही अत्यन्त आनन्दका अनुभव करने लगे यह चिन्ता करते हुए कि उस व्याधकी निष्ठुरता कहाँ गई! आज उसकी सब जीवोंके प्रति करुणा है। तो क्या यह हरि-भक्तोंका स्वाभाविक गुण है? भक्तिका ऐसा ही प्रभाव है कि वज्रसम कठिन हृदयको भी कुसुमके समान कोमल कर देता है। विशेष रूपसे हरिभक्त यह जानते हैं कि समस्त जीवोंमें भगवानका अधिष्ठान है। कृष्णसेवा, जीवके प्रति दया ही हरिभक्तोंका चरित्र है।

व्याधने गुरु श्रीनारद एवं पर्वतमुनिको अपनी कुटिया पर ले जाकर यथायोग्य अर्घ्य प्रदान किया। इसके पश्चात् श्रीचरणोंको धोकर उसने और उसकी पत्नीने उस चरणामृतका पान किया एवं मस्तक पर धारण किया। वैष्णवोंके पादोदकका असीम माहात्म्य है। उन गुरुके दर्शनसे, भक्तोंके दर्शन एवं गुरु-वैष्णवोंका पादोदक पान करनेसे उनके हृदयमें कृष्णप्रेम उदित हुआ। प्रेमके साथ-साथ वे हाथोंको ऊपर उठाकर नृत्यकीर्तन करने लगे। उनके शरीरमें अश्रु-कम्प-पुलकादि उदित होने लगे।

जो निष्ठुर व्याध था, उसका ऐसा अपूर्व प्रेम देखकर पर्वत मुनिने अत्यन्त आनन्दित होकर खूब उल्लासपूर्वक नारदऋषिसे कहा—“हे नारदजी! सचमुच ही आप एक पारसमणि हैं। पारसमणिके स्पर्शसे लोहा जिस प्रकार स्वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार आपके आशीर्वादने इस व्याधरूपी लोहेको प्रेमिक भक्तरूप सोनेमें परिणत कर दिया है। हम ऐसी किंवदन्ति पाते हैं कि पारसमणि नामकी एक वस्तु है, जिसके स्पर्शसे लोहा स्वर्णमें बदल जाता है। किन्तु ऐसा किसीने देखा

नहीं है। परन्तु आज जो प्रत्यक्ष देखा, उसने निःसन्देह प्रमाणित कर दिया—लोहा ही क्यों, उससे भी अधिक कठिन यह चरम पापी व्याध आपके स्पर्शसे स्वर्णसे भी अधिक उज्ज्वलतम् चरित्रका अधिकारी हो गया है। कारण, घोर पापी आज परमभागवत् कृष्णभक्तके रूपमें परिणत हो गया है।”

इसलिए पारसमणि नामकी कोई वस्तु हो

या नहीं, उसकी उज्ज्वलता रहे या न रहे, उत्तम भगवद् भक्त पारसमणिकी अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हैं, जिनके स्पर्शमात्रसे मायाक्वलित जीव भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमी भक्तके रूपमें परिणत हो सकता है।

(श्रीगौड़ीय पत्रिका वर्ष ५४ संख्या १० से अनुदित, अनुवादक—श्रीओमप्रकाश ब्रजवासी, एम. ए., एल. एल. बी., साहित्यरत्न)

विविध संवाद

श्रीव्यासपूजा महोत्सव

२८ दिसम्बर २००२ शनिवारको श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके वर्तमान आचार्य ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन गोस्वामी महाराजजीकी ८२ वर्षी आविर्भाव तिथि श्रीगोपीनाथ गौड़ीय मठमें परम हर्षोल्लासपूर्वक मनाई गई। इस शुभ अवसर पर अन्यान्य मठोंसे भी बहुतसे वैष्णवोंने इस शुभ अनुष्ठानमें भाग लिया। सभी वैष्णवोंने उनके अलौकिक जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए कहा कि वास्तवमें एक वैष्णवमें जो गुण होने चाहिए, वे सब इनमें पूर्णरूपसे विद्यमान हैं। शास्त्रोंमें तो वे पारङ्गत हैं ही, परन्तु साथ ही दीनता भी उनमें कूट-कूटकर भरी है। इस प्रकार श्रीमद्भागवतमें “तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासु श्रेयः उत्तमम्। शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम्॥” इस श्लोकमें गुरुके जो स्वरूप लक्षण भगवानकी अनुभूतिसे सम्पन्न एवं तटस्थ लक्षण शास्त्रज्ञ होना बताया गया है, वे दोनों लक्षण इनमें देखनेको मिलते हैं। अभिमान तो इन्हें छू तक नहीं पाया है। ये सर्वदा ही दूसरोंको सम्मान प्रदान करते हैं। भगवान् ऐसे ही भक्तोंके अधीन होते हैं। अतः ऐसे भक्तोंकी कृपासे ही भगवान् प्रसन्न होते हैं। इस प्रकार उपस्थित वैष्णवोंने उनके श्रीचरणकमलोंमें श्रद्धा-पुष्टाज्जलि प्रदानकर महाप्रसाद ग्रहण किया।

२९ जनवरी बुधवारको नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराजजीका आविर्भाव महोत्सव मनाया गया। इस शुभावसर पर सभीने उनके श्रीचरणोंमें श्रद्धापुष्टाज्जलि प्रदान करते उनसे अहैतुकी कृपाकी याचना की तथा उनके अलौकिक जीवन-चरित्र पर प्रकाश डाला।

१ फरवरी शनिवारको मौनी अमावस्याके दिन श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके उपसभापति ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीद्वक्तिवेदान्त नारायण गोस्वामी महाराजजीकी आविर्भाव तिथि हर्षोल्लासपूर्वक मनाई गई। इस शुभावसर पर ब्रजमण्डलके समस्त गौड़ीय वैष्णवोंको निमन्त्रित किया गया, जिन्होंने उनके अलौकिक जीवन चरित्रपर प्रकाश डालते हुए बताया कि आजकल श्रीलमहाराजजी सारे विश्वमें जो श्रीमन्महाप्रभुकी वाणीका प्रचार कर रहे हैं, वह अत्यन्त ही सराहनीय है। वास्तवमें श्रीमन्महाप्रभुकी कृपाशक्तिके बिना उनके मनोभीष्टको पूरा करना आसान नहीं है। वक्तृताके पश्चात् उपस्थित सभी वैष्णवोंने श्रीलमहाराजजीके श्रीचरणोंमें श्रद्धाज्जलि अर्पित की। तत्पश्चात् सभी वैष्णवोंका महाप्रसाद आदिके द्वारा यथोचित सम्मान किया गया।